दुर्गा सप्तशती रहस्य

8520
Q2:23/114

आचार्य गंगाराम शास्त्री

कृति-परिचय

अबतक दुर्गासप्तशती की हिन्दी, अंग्रेजी तथा संस्कृत में अनेक टीकाएं प्रकाशित हो चुकी हैं। सप्तटीका नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं। सप्तटीका नाम से प्रकाशित भास्कराचार्य, चतुर्धर मिश्र, शन्तनु तोमर, नागोजिभट्ट, जगच्चन्द्रपुरोहित भागीरथ, राजाराम और प्रदीप व्याख्या समन्वित टीकाओं की विद्वत्समाज में सर्वाधिक प्रतिष्ठा है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी भी टीकाएं प्रकाशित हैं जिनमें सप्तशती की पाठविधि का संकल्प और विनियोग से लेकर क्षमाप्रार्थना तक सम्पूर्ण पूजा विधान दिया गया है। इनमें से अधिकांश टीकाओं में सप्तशती के मन्त्रों का केवल व्याकरण की दृष्टि से शब्दपरक अर्थ दिया गया है जबकि मन्त्र की दृष्टि से दुर्गासप्तशती त्रितापोंआधिभौतिक, आध्यात्मिक, तथा आधिदैविक दृष्टि से सप्रमाण व्याख्या की गई है- तथा मन्त्रों में निहित शक्ति के रहस्यों को स्पष्ट किया गया है। छन्दों के अन्वय और शब्दार्थ के साथ विस्तृत व्याख्या साथ रहस्य के उद्घाटन का प्रयास पहली बार हुआ है। अतएव संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी की तमाम टीकाओं के होते हुए भी प्रस्तुत टीका का महत्व स्वयंसिद्ध है।

कृतिकार शास्त्री मन्त्र-तन्त्र शास्त्र के विद्वान हैं। उन्होंने ग्रन्थ के अन्त में ऐसे काम्य प्रयोगों को विधि-विधान सहित लिखा है जो अभीतक किसी टीकाकार ने नहीं लिखे।

–प्रकाशक

Tantra / Agam
Q2:23

Forwarded free of cost
with the Compliments of
Rastriya Sanskrit Sansthan
New Delhi

RajivGandhiCampus

Q2:23/114

दुर्गा सप्तशती रहस्य

प्रथम संस्करण - गुरु पूर्णिमा संवत् 2061 विक्रमी सन 2004

सर्वाधिकार - सुरक्षित

ISBN-81-86654-08-9

प्रकाशक - **आदित्य प्रकाशन**
ई-4/64, अरेरा कालोनी, भोपाल-462016
फोन - 0755-2466393, 5278310

शाखा - जोन 2/92, महाराणा प्रताप नगर,
भोपाल-462011, फोन : 2558026

मूल्य - 250/-

मुद्रक - चेतना प्रिंटर्स, 210 जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल-11
फोन - 2553109, मो. 9425010040

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

सारे जीवों में शक्तिरूप से स्थित देवी को बार-बार नमस्कार।

समर्पण

तन्त्र और योगमार्ग के पथिकों, साधकों, अनुष्ठानकर्ताओं और सुधीजनों को सादर

अपनी बात

दुर्गासप्तशती अथवा दुर्गामाहात्म्य तान्त्रिक साधनामार्ग का प्रमुख ग्रन्थ है। इसका वर्णन मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत ८१ से ९३ अध्याय में आया है। किन्तु इसका कथानक वराह पुराण, वामन पुराण, शिवपुराण, स्कन्दपुराण और देवी भागवत में भी आया है। इससे इसकी महत्ता का प्रतिपादन होता है। इसमें प्रायोगिक स्तर पर उस मार्ग का संकेत किया गया है जिससे व्यक्ति को उस जगन्माता की कृपा प्राप्त होती है जो सभी सांसारिक अभीष्ट पदार्थों को प्राप्त कराने वाली शक्ति है। महर्षि अरविन्द ने अपने तन्त्र संबंधी लेख में कहा है-

The Worship of the energy, The SHAKTI, as the sole effective force for all attainment.

शाक्तोपासना का मूल तो ऋग्वेद के वागृम्भणी सूक्त में ही प्राप्त होता है जिसे देवीसूक्त कहा जाता है। दुर्गासप्तशती में इसका उल्लेख किया गया है कि सुरथ और समाधि दोनों ने अपनी आराधना में देवीसूक्त का जप किया था- "देवीसूक्तं परं जपन्"। रुद्रयामल तन्त्र में बताया गया है कि देवीमाहात्म्य अतिरहस्यपूर्ण और सभी सिद्धियों का देने वाला है- अस्ति गुह्यतमं देव्या माहात्म्यं सर्वसिद्धिदम्।

मानवजीवन में चार पुरुषार्थ प्राप्तव्य कहे गये हैं- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मनुस्मृति को मानव धर्मशास्त्र कहा गया है, दुर्गामाहात्म्य अर्थ का शास्त्र है, वात्सायन प्रणीत कामसूत्र काम का शास्त्र है और गीता मोक्ष का शास्त्र है। दुर्गासप्तशती को अर्थ का शास्त्र-अर्थशास्त्र नहीं- कहने का तात्पर्य यही है कि संसार में अर्थ-पदार्थ कहे जाने वाले जो भी संग्रहणीय और अभिलषणीय हो सकते हैं, वे शक्ति की आराधना, जगदम्बा की उपासना करने से प्राप्त होते हैं, इसीलिये इस दुर्गामाहात्म्य को सर्वसिद्धिदम् कहा गया है।

संस्कृत के टीकाकारों ने इसके आध्यात्मिक पक्ष को अछूता छोड़ दिया है। तन्त्र इस शरीर में शक्ति का आवाहन करता है। न्यासों के द्वारा देवो भूत्वा यजेद्देवम् की भावना करता हुआ स्वयं शरीर में देवत्व की प्रतिष्ठा करता है। महर्षि अरविन्द ने तन्त्र के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि शक्ति की आराधना निम्नतम स्तर से प्रारंभ करते हुए उच्चतम शिखर पर पहुंचने की विद्या है। उसके द्वारा शरीर के विभिन्न केंद्रों-षट्चक्रों को जागृत करते हुए नरो नारायणो बुभूषति-नर से नारायण बनने की यात्रा है।

लोक व्यवहार में हम जब किसी से अपनी बात कहना चाहते हैं तो अपने उस कथन का पूरा आशय हमारे मन में स्पष्ट रहता है। जगन्माता से जब निवेदन किया जाय

तो अपने एक-एक वाक्य ही नहीं प्रत्येक शब्द का आशय स्पष्ट समझा जाना चाहिये। सप्तशती का पारायण भी हमारा आत्मनिवेदन ही तो है। इसीलिये कहा गया है कि- सार्थस्मृतिं पठेच्चण्डीस्तवं स्पष्टपदाक्षरम्। अर्थ को समझकर और उसका स्मरण करते हुए ही चण्डीपाठ करना चाहिये। हमारा ध्यान एकाग्र हो, चित्त स्थिर हो, प्रयत्नपूर्वक मन लगाकर ही पाठ किया जाय- शुद्धेनाचलचित्तेन पठितव्यं प्रयत्नतः। जगज्जननी से जो निवेदन किया जा रहा है, यदि निवेदक स्वयं उसका आशय नहीं समझता तो उसका पाठ उसी प्रकार का होगा-

नार्थज्ञानविहीनं शब्दस्योच्चारणं फलति।
भस्मनि वन्हिविहीने न प्रक्षिप्तं हविर्ज्वलति।।

बिना प्रज्वलित अग्नि के जिस प्रकार आहुति भस्म में देना, उसी प्रकार बिना अर्थज्ञान के पाठ करना है। चण्डी पाठ करने कराने वाले उसके अर्थ को रहस्य को भलीभांति समझ सकें इसी उद्देश्य से इस ग्रन्थ की रचना की गई है। हमारी आराधना फलवती हो, अभीष्ट सिद्ध करने वाली हो, इसके लिये शास्त्र में निर्दिष्ट नियमों का पालन भी आवश्यक होता है- शनैस्तु पठ्यमानेऽस्मिन् स्तोत्रे सम्पत्तिरुच्चकैः। पाठ करने में शीघ्रता न करें। शनैः का आशय त्वरा न करें। पदाक्षर का उच्चारण स्पष्ट हो। इसका पारायण तन्मयता के साथ होने पर देवी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उपस्थित रहती है। स्वयं सप्तशती में देवी का कथन है-

सर्व ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम्।

यह पूरा माहात्म्य मन्त्रमय है। यदि एकाग्रता के साथ अर्थ और भाव को हृदयंगम करते हुए पाठ किया जाय तो वातावरण में जो स्वर लहरी, जो स्पन्दन, जो तरंगें प्रवाहित होती हैं, उन तरंगों में उस महिमा समुद्र में साधक अपने को निमज्जित अनुभव करता हुआ जिस अभूतपूर्व आनन्द का अनुभव करता है, उसके द्वारा उसकी समस्त सत्ता शक्ति-समन्वित होने लगती है।

हवन के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। उसके सम्बन्ध में शास्त्र का स्पष्टीकरण है कि-

पाठे मन्त्रपुटं वाच्यं होमे मन्त्राःपृथक् पृथक्।
होमसंख्या च मन्त्राणां शतं वै चैकविंशतिः।।

यदि किसी मन्त्र विशेष के सम्पुट के साथ पारायण किया गया हो तो सम्पुट मन्त्र की चौदह सौ आहुति पृथक् से दी जाना चाहिये जिससे सम्पूर्ण आहुति संख्या २१०० होती है।

यदि सम्पुट किसी बीजमन्त्र का लगाया गया हो तो आहुति में भी उस बीजमन्त्र

सहित उच्चारण करते हुए आहुति देना चाहिये-

पाठे बीजपुटं वाच्यं होमे बीजपुटं हुनेत्।

यदि मन्त्रसम्पुट पाठ करते हुए भी सम्पुट मन्त्र की १४०० आहुति न दी जा सकें तब आहुति के समय सम्पुट सहित मन्त्र का उच्चारण करते हुए सात सौ आहुति दी जा सकती हैं-

कदाचित्संपुटैर्युक्तं पठेत्सप्तशतीस्तवम्।
ससम्पुटं पठेद्होमे हुनेत्सप्तशताहुती:।।

वर्तमान में यह देखने में आता है कि मन्त्रसम्पुटित पाठ करने वाले भी सम्पुट के मन्त्र से १४०० आहुति नहीं देते हैं और न आहुति देते समय सम्पुटित मन्त्र ही पढ़ते हैं। यदि केवल सात सौ आहुति ही देना है तो सम्पुटित मन्त्र तो कहा ही जा सकता है। नवार्ण की सौ आहुति तो देते ही हैं।

देवी का यन्त्र लाल वस्त्र पर लिखे जाने का विधान है। तर्पण में जल के साथ हरिद्रा और रोली मिलाना चाहिये। दुर्गा सप्तशती में मन्त्रयोग, लययोग, नादयोग और संयम आदि के गूढ़ रहस्यों का वर्णन किया गया है। उसके लिये सांकेतिक प्रतीकों और पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग आवश्यक था। इसलिये अस्त्रों के स्थान पर मन्त्रपूत जल, हुंकार आदि उच्चारण, (हुंकारोच्चारणादीभि:) में उच्चारण का भी विशेष अर्थ में प्रयोग है, सिंह, हंकार की असि, महाअसि, अम्लानपंकजा माला, क्षण, क्षणम्मूढ़, आदि न जाने कितने प्रयोग गूढ़ार्थों से भरे पड़े हैं उनके रहस्य का संबंधित अध्यायों में यथा स्थान उल्लेख किया गया है।

दुर्गा सप्तशती को समझने के लिये पूर्व जन्म के संस्कार के साथ जीवन व्यापी ऐसी साधना की आवश्यकता है जिसके अनुसार तमस्, रजस् और सत का गुणातीत अवस्था में विलय होता है, जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं से आगे तुरीयादशा को बोध होता है, स्थूल, सूक्ष्म और कारण देह का परावस्था में विलय होता है। प्राण के धर्म, भूख-प्यास, शरीर के धर्म जरा-मरण और मन के धर्म शोक मोह से मुक्ति मिलती है। गीता में तो केवल जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये- कहकर केवल दो ही से मुक्ति की बात आती है, यहां इन षडूर्मियों से मुक्ति का सोपान क्रम से तीनों चरित्रों में आरोहण बताया गया है। व्यक्ति की इच्छा, क्रिया और ज्ञान का इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति से आगे उस चेतनावस्था की ओर प्रस्थान है जिस बिन्दु पर इन तीनों का मिलन होता है। साधना के उस सोपान का निर्देश है जहां मेटर, मेटर न रहकर एनर्जी में परिवर्तित होता है। व्यक्ति का जहां विराट् में लय होता है, आवरण विक्षेप के रहस्य को जान लेने पर उस अखण्ड सत्ता से मिलन होता है

जिसे श्रुति-यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह-कहकर विराम देती है।

इस रहस्य ग्रन्थ में उस जगदम्बा की प्रेरणा से ही इसके सामान्य अर्थ के साथ व्यक्ति और समष्टि के धरातल पर जो प्रतीकों का आशय प्रकट किया है इसी शरीर में कुण्डलिनी जागरण के द्वारा जो शक्ति की प्रतिष्ठा का साधकों के लिये संकेत किया है, वह सब उसी आदिशक्ति की कृपा का फल है। जो गलतियाँ हैं वह मानव स्वभाव के प्रमाद के कारण, किन्तु मैं तो एक शिशु के समान यही कहने की धृष्टता कर रहा हूँ-

त्वत्प्रेरणेन मिषितोन्मिषितस्य मातः प्रामादिकेऽपि सति कर्मणि मे न दोषः।
मातैव दत्तमशनं ग्रसतः सुतस्य को नाम वक्ष्यति शिशोरतिभुक्तिदोषम्।

विदुषामनुचरः
गंगाराम शास्त्री

अक्षय तृतीया संवत् २०६१ विक्रमी

अनुक्रम

पृष्ठ

1. **दुर्गासप्तशती परिचय-** प्रथम चरित प्रथम अध्याय 1-34

2. **प्रथम अध्याय-** 35-122

ओंकार, चण्डिका, मंगलादि, कथा प्रसंग, पंचकर्म, महाभाग, चैत्र, सुरथ की पराजय, वनगमन, चिन्तन, समाधि से मिलन, सुमेधा के समीप गमन, सुरथ का प्रश्न, ऋषि का उत्तर, महामाया का वर्णन, योगनिद्रा, शेष, कल्प, मधु-कैटभ, ब्रह्मकृत योगमाया की स्तुति, स्वाहा, स्वधा, वषट्कार, त्रिधा मात्रा, स्वरात्मिका, स्तोमविद्या, वषट्कारविद्या, अर्धमात्रा, अनुच्चार्या, सन्ध्या, द्वादशान्त, नाद, परापश्यन्ती, उच्चार, अनाहत, दशमहाविद्या, महामाया, महादेवी, प्रकृति, महारात्रि, दारुणा, परिघ, भुशुण्डी, स्तुति के प्रकार, वरप्रदान, जघन, जल, मधुकैटभ वध

3. **द्वितीय अध्याय-** 123-165

मध्यम चरित पुरन्दर, इन्द्र, देवताओं का ब्रह्मा के साथ शिव और विष्णु के पास गमन, देव-पराजय सुनकर शिव और विष्णु का क्रोध, तेजोरूपादेवी का प्रादुर्भाव, अष्टादश मर्मस्थान,,देवी को आयुध-प्रदान, आभूषण दान, अम्लानपंकजा माला, देवी का नाद, अट्टहास, त्रैलोक्य में क्षोभ, महिषासुर के द्वारा देवी का दर्शन, सेना का युद्ध, गणों की उत्पत्ति, विविध आयुधों से युद्ध, सेनानुकारिण:, कबन्ध-युद्ध, सेना का नाश, देवताओं द्वारा पुष्पवर्षा

4. **तृतीय अध्याय-** 166-198

चिक्षुर का युद्ध, चामर का युद्ध, षटकर्म, अन्य असुरों का वध, महिषासुर का युद्ध, गणों की सेना का हनन, महिषासुर के नि:श्वास, अनेक रूप धारण, देवी का वीरपान, मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षर, क्षणंमूढ और मधु, देशकाल का ऐक्य, अजपा हंस, द्वादशान्त, शून्य, कुलाकुल, तिथि, वार, नक्षत्र, शक्तिचालन मुद्रा, सहस्रार, महिषासुरवध, दैत्यसेना का नाश, देवताओं का हर्ष

5. **चतुर्थ अध्याय-** 199-228

वाणी के चार भेद, चार वाणी, शक्तिगायत्री, लक्ष्मी, अलक्ष्मी, ज्येष्ठा, धूमावती, परमा प्रकृति, सरस्वती लक्ष्मी, गौरी-रूपा की

स्तुति, वेदत्रयी, ऐं, स्वौं, श्रीं बीजोद्धार, देवी की स्तुति, विश्वातीता मन्त्र, सूर्य, चन्द्र, अग्नि की कलाएं, अंगन्यास के मन्त्र शक्तिगन्धाष्टक, यक्षकर्दम

6. पंचम अध्याय- 229-271

उत्तम चरित निशुम्भ का देवशक्तियों पर अधिकार, देवताओं का तिरस्कार कर निर्वासन, देवताओं के द्वारा देवी का स्मरण, त्रिदश, हिमालय पर जाकर विष्णुमाया की स्तुति, प्रकृति, नियत, सिद्धियां, कूर्मि, दशविध प्राणाग्नि, उनके रूप, गुण, प्राण, कूर्मनाडी, सुश्रुत के अनुसार दशविध वायु के कार्य, विष्णुमाया की परिभाषा और उत्पत्ति अष्टमातृका, तेईस रूप गणना, शरीर के छः कोश, कौशिकी और कालिका, शुम्भ-निशुम्भ द्वारा देवताओं से छीना झपटी, नवनिधि,

7. षष्ठ अध्याय- 272-280

धूम्रलोचन का प्रयाण, धूम्रलोचन की ललकार, देवी का उत्तर, धूम्रलोचन का वध, सैनिकों से युद्ध, सिंह का युद्ध, सिंह का ध्यान व स्तुति, चण्ड मुण्ड को आदेश

8. सप्तम अध्याय- 281-291

चण्ड मुण्ड का प्रस्थान, देवी को पकड़ने का उद्योग, काली का प्रकट होना उसके स्वरूप का वर्णन, हाथियों और रथों का भक्षण, असुरसेना का नाश, काली का चक्र-भक्षण कर अट्टहास, चण्ड का वध, मुण्ड का वध, सेना का पलायन, काली के द्वारा चण्डिका को चण्डमुण्ड के सिर भेंट, चामुण्डा नामकरण।

9. अष्टम अध्याय- 292-320

शुम्भ द्वारा समस्त सेना को सज्जित होने का आदेश, शुम्भ का युद्ध के लिए प्रस्थान, काली के द्वारा धनुष्टंकार, घण्टा-नाद, सिंहनाद, ब्रह्मादि देवों के शरीर से शक्तियों का प्रकट होना, ब्रह्माणी, माहेश्वरी कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री इन सातों शक्तियों के रूप और आयुध का वर्णन, शिव का उक्त शक्तियों के साथ आना, देवी के शरीर से चण्डिका का प्रादुर्भाव, शिव को दूत के रूप में शुम्भ-निशुम्भ के पास भेजना, शिवदूती, सन्देश सुनकर क्रुद्ध दैत्यों का अभियान, कात्यायनी से युद्ध, काली का संग्राम, खट्वांग, सप्तमातृकाओं का युद्ध, दैत्यसेना का पलायन, रक्तबीज का युद्ध, ऐन्द्री से युद्ध,

रक्तबीज के रक्त से अन्य समान रक्तबीजों की उत्पत्ति, रक्तबीजों के समूह से देवताओं का भयभीत होना, प्राहसत्वरा, काली के द्वारा चामुण्डा को आदेश, चामुण्डा द्वारा रक्तपान, कामना का प्रतीक, रक्तबीज-वध, देवताओं में हर्ष, मातृगणों का नर्तन।

10. नवम अध्याय- 321-335

रक्तबीजवध से निशुम्भ का कुपित होना, देवी के प्रति उन दोनों का अभियान, निशुम्भ का देवी के साथ युद्ध, निशुम्भ का घायल होकर गिरना, शुम्भ का अष्टभुजा बनकर आकाश में जाना, देवी का शंखनाद, धनुष्टंकार और घण्टानाद से दैत्यसेना का निस्तेज होना, सिंह का गर्जन, देवी का आकाश में जाकर करतलध्वनि करना, शिवदूती के अट्टहास से असुरों में त्रास, शुम्भ का सिंहनाद, शुम्भ का मूर्च्छित होकर गिरना, निशुम्भ का होश में आकर युद्ध, दस हजार भुजा से निशुम्भ का देवी को घेरना, निशुम्भ के हृदय से अन्य असुर की उत्पत्ति, उसका संहार, सिंह और शिवदूती, कौमारी के प्रहारों से दैत्यों का नाश, ब्रह्माणी के मन्त्र-जल से दैत्यनाश, माहेश्वरी वाराही, वैष्णवी और ऐन्द्री द्वारा दैत्यों का हनन।

11. दशम अध्याय- 336-346B

शुम्भ का देवी के प्रति आक्षेप, देवी के द्वारा अन्य शक्तियों का स्वशरीर में विलय, शुम्भ का ललकारना, सर्वलोकभयंकर युद्ध, दिव्यास्त्रों से घात-प्रतिघात, अस्त्र, प्रतिघात, हुंकार से दिव्यास्त्र-भंजन, देवी द्वारा शुम्भ का धनुष, शक्ति, खड्ग, चर्म नष्टकर अश्वों सहित सारथि का वध, देवी के थप्पड़ से शुम्भ का गिरना, शुम्भ का देवी के साथ आकाश में युद्ध, निरालम्बा, देवी के शूल प्रहार से शुम्भ का वध, शुम्भ-वध से विश्व में प्रसन्नता, उत्पात-शन्ति।

12. एकादश अध्याय- 347-378

देवताओं द्वारा देवी की स्तुति, नारायणी के विभिन्न अर्थ, महीरूप शक्ति सबका आधार, जलरूप में आप्यायन, विश्वबीज, परमा माया, मुक्तिप्रद, समस्त विद्या सरस्वती के रूप, सम्पूर्ण कलाएं और स्त्रीवाची देवी के रूप, देवी की संसार में व्याप्ति, चौंसठ कलाएँ, स्तुति की व्याख्या और प्रकार, परा आदि वाणी, स्वर्गापवर्गदात्री, कलाकाष्ठा, परिणमनक्रिया, लय तिरोधान, सर्वमंगला, सर्वार्थसाधिका, गुणत्रया, गुणमया, सनातनी, परित्राणकारिणी, आर्तिहरा, ब्रह्माणी का

ध्यान, सरस्वती, माहेश्वरी, कौमारी मयूरकुक्कुट, वैष्णवी वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री, शिवदूती, चामुण्डा रूपों में स्तुति, अक्षमाला, षट्चक्र, अभयदा दुर्गा, कात्यायनी, भद्रकाली, रूपों की स्तुति, नाद, घण्टा खड्ग की स्तुति, विद्या, शास्त्र विवेकदीप होने पर भी ममत्वगर्त में भ्राम्यति, राक्षस, विषधर, नाग, शत्रु, दस्युबल, दावानल समुद्र में रक्षा करने वाली, पापनाशिका, उत्पातपाकजनित महाविपत्ति से रक्षा, भविष्य में देवी के अवतार, दशविधशाक, अवतार प्रतिज्ञा।

13. द्वादश अध्याय- 379-393

स्तुतियों के पाठ का फल, माहात्म्य का श्रवण और पठन तथा उसका फल, पाठ के छः दोष, श्राव्य पाठ, हवनपूजन में भी, शारदीय पूजा, वार्षिकी पूजा, देवी की प्रसन्नता का फल, मैत्री-करणप्रयोग, अनेक संकटों से मुक्ति, वन में भटक जाने, दावानल से घिरने, एकान्त में डाकुओं और शत्रुओं से घिरने, हिंस्र पशुओं के पीछा करने, राजकोप से वध, बन्धन सजा से बचने, वात्याचक्र में फंसने डूबती नाव में, संग्राम में अस्त्र-शस्त्र से बचने, घोर बाधा और रोगपीड़ित, होने से स्मरण मात्र से संकट दूर होना, देवताओं को राज्य प्राप्ति, दैत्यों का पातालगमन, सृष्टिस्थिति प्रलयकारिणी, ऋषिद्वारा शुभ फल कथन।

14. त्रयोदश अध्याय- 394-400

ऋषि द्वारा उपदेश, भोग, स्वर्ग और अपवर्ग देने वाली, विष्णुमाया का कार्य, मोह, राजा सुरथ और समाधि वैश्य का अम्बा के दर्शनार्थ तप, देवी की मिट्टी की मूर्ति का पूजन, तीन वर्ष तक आराधना, देवी का प्रकट होना राजा ने राज्य और वैश्य ने ममता मोहरहित ज्ञान मांगा, राजा को शत्रुओं पर विजय और राज्य प्राप्ति का वरदान, जन्मान्तर में सावर्णि मनु होने का वरदान।

परिशिष्ट एक- काम्य प्रयोग सूची 401-421

परिशिष्ट दो- सहायक ग्रन्थों की सूची 422-426

दुर्गासप्तशती परिचय

मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत अध्याय ८१ से ९३ तक तेरह अध्यायों में भगवती का जो चरित्र वर्णन किया गया है, उसे दुर्गामाहात्म्य कहा गया हैं। इन तेरह अध्यायों का मन्त्र शास्त्र के क्रम से मन्त्रों में विभाजन करने से मन्त्र संख्या सात सौ होती है, इसलिये इसे सामान्यतया सप्तशती कहा जाने लगा। कहीं-कहीं सप्तशती के स्थान पर सप्तसती भी कहा जाता है। यह नाम भी सार्थक है। इसमें श्री दुर्गा के सती के सात रूप धारण कर अवतरित होने की कथा के कारण इसे सप्तशती कहा जा सकता है। यह ग्रन्थ प्राचीनकाल से ही विद्वानों, साधकों, भक्तों और श्रद्धालुओं में समादृत रहा है, इसलिये इसकी कथा को भी अनेक दृष्टिकोणों से परखा गया है, अनेक प्रकार से समझने का प्रयत्न किया गया है। डारविन के विकासवाद को मानने वाले इसमें मानव के विकास की तीन अवस्थाओं का इतिहास के क्रम से विवेचन पाते हैं तो पौराणिक इसमें भगवान के दस अथवा चौबीस अवतारों के समान भगवती के अवतरण की विविध कथाएँ पाते हैं। उनके लिये तो यही कहा जा सकता है-

मरम न जान्यों रूप को, मुकुर कपोलन पेखि।
सबै गंवारें गांव की, गई आपु सम लेखि।।

किसी गांव में एक अत्यंत सुन्दरी रूपवती दुल्हन बनकर आई। जैसा कि सामान्य चलन है, उसके रूप को देखने के लिये गांव भर की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियां एकत्र हुई। सबने उसके घूंघट को उघाड़ कर उसका मुखावलोकन किया। इसे मुख देखने की प्रथा कहा जाता है। उसके कपोल दर्पण की भांति पारदर्शी थे। अत: उनमें प्रत्येक देखने वाली को अपने ही मुख का प्रतिबिम्ब दिखाई दिया। उसे देखकर सभी यह कहते सुनी गई कि अरे कुछ नहीं, वह तो हम तुम जैसी ही है। इसके लिये कहा गया है कि उन्होंने रूप सौन्दर्य का वास्तविक मर्म ही नहीं समझा। अपनी भावनाओं के रंग में अनुरंजित होने के कारण तटस्थ दृष्टि ही न रही।

दूसरे साधनों के अनुसार भगवती के तीन चरित्रों में विभाजित इस रूपक में त्रिगुणात्मक सृष्टि के उस अचिन्त्यरूपचरिता के सत, रज और तम के क्रियाकलापों का आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक स्तर पर विवेचन दिखाई देता है। गुणात्मक सृष्टि के सात भेद हो जाते हैं- तम, रजस्, सत्व, सत-रज, सत-तम्, तम-रज और सत-रज-तम। इन्हीं सात रूपों की कथा सती के सात रूप धारण करने से संबंधित है। साधना के सप्त सोपान का क्रम भी अभिप्रेत है। कुण्डलिनी जागरण के अनुसार मूलाधार से लेकर सहस्रार तक के क्रम का भी विवेचन है। काम, लोभ, क्रोध, मोह, मद मत्सर, अहंकार रूप सात मनोविकारों के शमन का आख्यान है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर

के अनुसार भू, भूव: और स्व: इन तीनों लोकों के अनुसार पृथ्वी, आकाश, अन्तरिक्ष के अनुसार मानव जीवन के संघर्ष की कथा है।

योग साधन करने वालों के लिये ब्रह्म-ग्रन्थि भेदन से लेकर निराधारा-निरालम्बा मुद्रा तक के अभ्यास-क्रम का संकेत है। विद्युत के एक सामान्य स्विच से जिस प्रकार सौ वाट से लेकर सौ किलोवाट तक पावर का आवश्यकतानुसार ग्रहण किया जा सकता है, उसी प्रकार मन्त्रशास्त्र के ज्ञाताओं के लिये मन्त्र-जप-अनुष्ठान-पुरश्चरण से लेकर कमण्डलु-जलाक्षेप से लेकर हुंकारास्त्र और हुंकार की तलवार तक का प्रावधान कर दिया गया है। विज्ञान के इलेक्ट्रान, न्यूट्रान और प्रोटोन के एक ही न्यूक्लियस पर घूमने के सिद्धान्त के अनुसार यहां भी रूप परिवर्तन, शक्ति-संचरण और उसके ट्रान्स्फार्मेशन का योगविद्या और मन्त्र विद्या के बल पर निदर्शन है। शक्ति के संघात और बिखराव की क्रियाएं हैं। इस सबके लिये तुलसीदास के शब्दों में इतना ही कहा जा सकता है-

जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।

आवश्यकता है, उस भावना को सतत साधन और अभ्यास के द्वारा अपने में जागृत करने की-अपने इस ब्रह्माण्ड के लघु संस्करण में पिण्डाण्ड में प्रसुप्त चेतना को जगाने की जिससे सौ वाट का कनेक्शन सौ किलोवाट और सौ मेगावाट में बदल कर आलोकित हो उठे। इसी के लिये श्रीमद्‌भगवद्गीता में कहा गया है-

दिवि सूर्यसहस्त्रस्य भवेद्‌युगपदुत्थिता।
यदि भा:सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मन:।।

शक्ति की उपासना संबंधी धारणाएं:- अपने आसपास की प्रकृति का अवलोकन करने पर हम देखते हैं कि समस्त जड़-चेतन, स्थावर-जगम, चर-अचर में निरन्तर परिवर्तन की एक क्रिया चल रही है। इसे भौतिकवादी अनीश्वरवादी प्रकृति का स्वभाव मानता है तो आस्तिक ईश्वर के क्रियाकलाप और उसकी लीला कहता है। इतना तो निर्विवाद सिद्ध है कि पृथ्वी पर जो बीज गिरता है वह मिट्टी में मिलकर उसकी ऊष्मा से अंकुरित होता है, सूर्य से प्रकाश पाकर हरीतिमा में परिवर्तित होता है, कोपलें निकलती हैं, भूमि से जड़ों के द्वारा पोषक तत्व ग्रहण करता है, सूर्य से प्रकाश पाकर किरणों के चुम्बन से आल्हादित होकर अपने जनक के आकार के समान ही पत्तों के आकार प्रकार कटाव, गन्ध आदि गुणों से युक्त होता है। अस्तित्व की निरन्तरता के लिये फल फूल देता है जिससे बीज बनते हैं, जो इस प्रक्रिया को, प्रकृति की स्वभावगत उर्वरता को बनाये रखने में सहायक होते हैं। सृष्टि का क्रम चलता रहता है। इसे प्रकृति का जो स्वभाव मानते हैं, उसके इस स्व-अपने भाव होने में जिस एनर्जी की आवश्यकता होती है, जिस एनर्जी के संयोग से यह प्रक्रिया चलती है, उसी को भारतीय परम्परा में और विश्व की पिछड़ी कही जाने वाली जातियों में सचेतन शक्ति माना गया

है, उसकी इस विकासमान नाम-रूप की आराधना की जाती रही है जिसे विज्ञान अपने संतोष के लिये जड़ मानता आ रहा है। ऋग्वेद के वागम्भृणी सूक्त में ऋषि उसके इन क्रियाकलापों का स्मरण करता हुआ वन्दना के स्वरों में कहता है-

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुःपुरुत्रा भूरिस्थात्रीं भूर्यावेशयन्त्रीम् ।।

"मैं ही इस विश्व की नियामिका शक्ति हूं, अष्टमूर्ति की समन्वय करने वाली मैं ही हूँ। सृष्टियज्ञ के प्रवर्तन में प्रथम मैं हूँ। मैं सभी में स्थित हूँ। सभी में व्याप्त हूँ। प्राणिमात्र में द्योतनशील प्रकाश-चेष्टा स्वरूप में ही हूँ।"

यह अणु में व्याप्त, सबमें क्रियाशील, सबकी प्रेरिका-शक्ति जिसे कोई नेचर अथवा प्रकृति का स्वभाव कहना चाहे तो भी उस गतिशक्ति की- उस क्रियाशक्ति की वन्दना है जिसकी स्फुरणा से संसार का कण-कण स्पन्दन करता है जिसके कारण जड़चेतन में लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा की परिणमन क्रिया चल रही है।उसे प्राचीनतम साहित्य में मातृरूप से मानने का कारण केवल यही है कि बालक का जन्म के समय सबसे पहला परिचय माता से ही होता है। इसके लिये सबसे सुलभ आश्रय-धारणास्थल-विपत्ति से रक्षा का स्थल माता की गोद ही होती है। माता ही उसकी पुकार को सबसे पहले सुनती है, वही उसके लिये तत्काल उन्मुख होती है। वैसे शक्ति न स्त्रीलिंग है न पुरुष है न नपुंसक। एनर्जी अथवा विद्युत को हम भले ही व्याकरण की दृष्टि से स्त्रीलिंग कह लें पर उसमें ऐसा कोई तात्विक भेद कर सकना कठिन है। इसीलिये कहा गया है:

परमात्मा शिवः प्रोक्तः शिवा सैव प्रकीर्तिता।

जिसे परमात्मा शिव कहा जाता है, उसी को शिवा भी कहा गया है। तथा

न त्वमम्ब पुरुषो न चांगना चित्स्वरूपिणि न षण्ढतापि ते।
नापि भर्तुरपि ते त्रिलिंगता त्वां विना न तदपि स्फुरेदयम्।।

हे माँ तू न पुरुष है और न स्त्री, न नपुंसक। तुम्हारे पति में भी तीनों लिंग नहीं हैं, तुम्हारे बिना उनमें भी स्फुरण नहीं होता।

परमात्मा का एक नाम सच्चिदानन्द है। यह तीन-सत्, चित् और आनन्द से मिलकर बना है। परमात्मा सत् है, सदैव रहने वाला है चेतन है- चैतन्यस्वरूप है और आनन्दमय है। जागतिक कार्यों की प्रेरणा में तीन मुख्य तत्व कार्य करते हैं इच्छा, ज्ञान और क्रिया। सच्चिदानन्द में आनन्द अनुभूति का विषय है, सत्व निश्चेष्ट है, चेतना ही क्रिया का कारण होती है। इसी को क्रियाशक्ति और गतिशक्ति कह सकते हैं। सत् और आनंद के मध्य में चित् है चेतना है- प्रेरणा है कर्तव्यशक्ति है जो अपनी सम्पूर्णता में आनंद का हेतु है। अतः जीव भी सत् है उसकी चेतन शक्ति जितनी अधिक जागृत

होगी, उसी अनुपात में वह आनन्द का अधिकारी होगा। अत: चितिशक्ति ही वह सेतु है जिसके द्वारा शुद्ध ज्ञान रूप जीव का आनन्द से साक्षात्कार होता है। चेतना ही वह शक्ति है जो इस संसरण शील जगत के सभी व्यापारों के मूल में विद्यमान है। चेतना ही वह क्रिया शक्ति है जो इस जगत् का जगत्-गतिशील नाम सार्थक करती है। चेतना ही उन पंचक्रियाओं का मूल है जिन्हें अस्ति, जायते,वर्धते, विपरिणमति और अपक्षीयते कहा जाता है। उसी को आवरण और विक्षेप शक्ति कहा जाता है। इसी को सृजन-पालन-संहार और उत्पत्ति और प्रलय कहा जाता है। वास्तव में किसी भी वस्तु का सर्वथा अस्तित्व नहीं मिटता।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत:।

किसी वस्तु का सर्वथा अभाव नहीं होता और जो नहीं है उसका होना संभव नहीं। इस प्रकार जागतिक वस्तुओं के आविर्भाव और तिरोभाव का नाम ही सृष्टि और प्रलय है। इसी को शक्ति का प्रसारण और संकोच कहा जाता है। यह सारा संसार ही शक्ति का लीला विलास है। इसीलिये कहा गया है-

या देवी सर्वभूतेषु चिति रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम:।।

जो शक्ति सब में चैतन्य के रूप में प्रकाशमान है जो सबमें क्रीड़ा करती है जो आलोक रूपा है उसे नमस्कार है।

उपनिषद् इस शक्ति की महिमा के प्रतिपादन से भरे पड़े हैं। केनोपनिषद का उमा हेमवती का आख्यान उसके बाह्य रूप पर प्रकाश डालता है तो श्वेताश्वतरोपनिषद्के इस वाक्य से पिण्डाण्ड में उसके साक्षात्कार का प्रमाण मिलता है-

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।

"उन्होंने ध्यानयोग के द्वारा अपने सत रज और तम इन तीन गुणों से आवृत उस देवात्मशक्ति को देखा- उसका अनुभव किया।"

ऋग्वेद के वागृम्भृणी सूक्त में भी उसके ईं बीज का नाम निर्देश किया गया है। जिसके लिये भगवान शंकराचार्य ने सौन्दर्यलहरी में मुखं बिन्दुं कृत्वा-आदि के द्वारा निर्देश किया है। अन्यत्र कहा गया है-

य ईं श्रणोत्यलकं श्रणोति

यहां लकार ककार रहित ई का ग्रहण है। लकार ककार सहित यही कामबीज और कालीबीज बनता है। यही भगवान कृष्ण का बीजमन्त्र बन जाता है।

लोक व्यवहार में प्राय: पति-पत्नी और स्त्री-पुरुष के बहिन-भाई आदि अनेक रूपों

का व्यवहार चलता है, इस प्रकार की कल्पना देवताओं के संबंध में कर लेना एक भ्रान्ति है। पुस्तकों में शिव-पार्वती के विवाह का प्रसंग और उनसे सृष्टि रचना की बात कही जाती है, कहीं अर्धनारीश्वर के रूप में उनका वर्णन मिलता है, उसके लिये तुलसीदास का यह वाक्य ही मनन करने योग्य है-

गिरा अरथ जल वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।

जिस प्रकार वाणी और अर्थ दो होते हुए भी दो न होकर अभिन्न हैं जिस प्रकार समुद्र और उसकी तरंग दो न होकर एक हैं उनका सहअस्तित्व है उसी प्रकार शिव-शक्ति दो न होकर एक ही हैं- जहां शक्ति है, वहीं शिव है कल्याण है मंगल है जहां शिव है वहां शक्ति होगी ही। क्योंकि दोनों के लिये कहा गया है-

शक्तिशक्तिमतोरभेदात्

शक्ति और शक्तिमान में भेद हो ही नहीं सकता।

दुर्गासप्तशती में इस सिद्धांत का अनेक प्रकार से प्रतिपादन किया गया है। आयुध से आयुध निकाल कर देना क्या है। इसके लिये कहा गया है-

आयुधाख्या परा शक्तिःतान्यहं पूजयाम्यहम्।

आयुध उस देवता के कार्यसाधन के उपकरण हैं, उसके शक्तिरूप हैं। देवताओं की क्रियाशक्ति का ही नाम आयुध है। अनेक भुजाएं उनके अनेकविध कर्तृत्व और सामर्थ्य को प्रकट करने के लिये हैं। इसलिये शक्ति उमा कुमारी होकर भी शिव की पत्नी है स्वसा है ऋग्वेद के अनुसार लक्ष्मी भी विष्णु की बहिन है। सप्तशती में ब्रह्माणी, इन्द्राणी आदि को ब्रह्मा और इन्द्र की पत्नी नहीं उनकी शक्ति के रूप में वर्णन किया गया है। इसीलिये उसमें कमण्डलुजलाक्षेप हतवीर्यान्हतौजसः कहा गया है। मन्त्रशक्ति के गोपनीय चमत्कारों का संकेत-हुंकाराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभम् और हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः से मिलता है। शक्ति का आविर्भाव उसके चिन्तन से होता है, संघटना से वह एकरूपा होती है। इसीलिये कहा गया है-

ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम्।
तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः।।

वह सभी देवताओं के तेज से समुद्भूत तेज है। वही शक्ति है। क्या हम भी अपनी सुप्त शक्ति को जगाकर इस प्रकार तेजोराशि में नहीं बदल सकते। जैन और बौद्ध साधकों के उदाहरण इतिहास के पृष्ठों में भरे पड़े हैं कि किस प्रकार उनके प्रयोगों से विदेशी शत्रु सेना रक्तवमन करती हुई युद्ध क्षेत्र से पराङ्मुख होकर भागती रही। यह एक अविज्ञात तथ्य है कि इन प्रयोगों को सदा सदा के लिये नष्ट करने के लिये ही विदेशी आक्रांताओं के द्वारा हमारे नालन्दा और विक्रमशिला के ज्ञान के भण्डार

पुस्तकालय जलाकर राख कर दिये गये। देवी का वाहन सिंह है जिसे धर्म भी कहा गया है जो वास्तव में ओजस् है, पौरुष का प्रतिरूप है। शक्ति को वहन करने में ओज और पौरुष ही तो समर्थ हो सकता है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है-

अभ्रं वै अपां भस्म।

''मेघ जल की भस्मीभूत राशि है।''

इसी प्रकार ऊर्ध्वरेतस् का वीर्य ही ओज रूप में कान्ति रूप में उद्दीप्त होता है, यही शक्ति का वहन करने वाला है। निस्तेज, निःसत्व, निर्वीर्य कामवासना के भूखे भेड़ियों-असुरों का संहार तो शक्ति के गर्जन मात्र से होता रहता है।

गीता का सन्देश उस कर्मविमुख अर्जुन के लिये है जो यदि वा जयेम यदि वा नो जयेयु:- के पशोपेश में युद्ध से पराङ्मुख हो चुका है। जो एक ओर तो भगवान श्रीकृष्ण से एक ही सांस में चार-चार बातें कह जाता है-

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्ते हं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।

''मेरा जिसमें कल्याण हो वही मुझसे कहिये, २- मैं आपका शिष्य हूँ, ३-मुझे उचित शिक्षा दी जाये, ४- मैं आपकी शरण हूँ।''

और साथ ही यह भी कहने से नहीं चूकता-

एवमुक्तत्वा हृषीकेशं गुडाकेश:परन्तप।

न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह।।

ये सब कहने पर भी वह यह कहना नहीं भूलता कि मैं युद्ध तो नहीं ही करूंगा। गीता में मनस्ताप से जीवन से पलायन करने वाले अर्जुन को प्रवृत्तिमार्ग का उपदेश दिया गया है, युद्धस्व विगतज्वरः की सीख दी गई है। इसलिये आनुषंगिक रूप से उसमें निवृत्तिमार्ग की चर्चा हो, पर लक्ष्य कर्तव्यच्युत को कर्तव्यबोध कराने का ही रहा है। अन्त में न योत्स्ये कहने वाला अर्जुन यही तो कहता है कि करिष्ये वचनं तव। उसके सन्देह की निवृत्ति हो गई है- स्थितोऽस्मि गतसन्देहः।

दुर्गासप्तशती में हमारे सामने दो व्यक्ति उपस्थित हैं राज्यच्युत सुरथ और परिवार से निष्कासित समाधि। कथानक को तो एक से भी आगे बढ़ाया जा सकता था- इन दो का प्रयोजन क्या है। किसी भी देवता की अराधना से सांसारिक सुखोपभोग अथवा मोक्ष की प्राप्ति की कामना की जा सकती है, पर देवी अपने भक्तों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चतुर्वर्ग की प्राप्ति कराने वाली है। कहा भी गया है-

यत्रास्ति भोगो नहि तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्र भोगः।

श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।

''जहां भोग मिलता है, वहां मोक्ष नहीं है, जहां मोक्ष है वहां भोग नहीं है, पर

श्री जगदम्बा की उपासना करने वालों के लिये भोग और मोक्ष दोनों ही करतलगत हैं।" समाधि मोक्ष मार्ग का पथिक है और सुरथ राज्य का अभिलाषी। उसे राज्य की प्राप्ति तो होती है, अगले जन्म में मन्वन्तर का अधिपति बनने की मंगल वाणी के साथ साधना के अंतिम सोपान का समापन है-

सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनु।

अर्जुन अपने रथ की बागडोर भगवान के हाथों में देकर भी दुखी है, उसकी त्वचा जल रही है, चक्कर आ रहे हैं, रोमरोमथर्रा रहा है, शरीर कांप रहा है, उसका विषाद अन्नमय कोश तक सीमित है, शरीर तक सीमित है। पर सुरथ और समाधि की चिन्ता प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय स्तर की है। सुरथ के लिये कहा गया है, उसके मन्त्रियों ने विद्रोह कर दिया है, वे उसे धोखा दे रहे हैं अत: वह-

एकाकी हयमारूह्य जगाम गहनं वनम्।

अकेला ही अश्व पर सवार होकर गहन वन में चला जाता है, जहां उसकी भेंट ऋषि से होती है :-

स तत्राश्रममद्राक्षीद्द्विजवर्यस्य मेधसः।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम्।।

सुरथ के प्रज्ञा के क्षेत्र में पहुंचने पर ही उसे यह सब विचार प्रकट होते हैं। मन ही वह मन्त्री है जिसे वश में होकर जीवात्मा का अनुचर होना चाहिये। पर व्यवहार में जीव जीवन भर मन की मनमानी के आगे घुटने टेक देता है, सुरथ के समान उसे मन के इस विद्रोह का पूर्वाभास ही नहीं हो पाता। इन्द्रियां जिन्हें जीव के वशवर्ती होकर आचरण करना चाहिये वे अपने-अपने विषयों को यथार्थ रूप में प्रकाशित न कर अन्यथा करती हैं। इसीलिये कहा गया है-

परांचि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्।

"स्वयभू ब्रह्मा ने इन्द्रियों की बहिर्मुखी वृत्ति बनाई है, इसीलिये वे बाहर के विषयों को ही प्रकाशित करती हैं, कोई धीर पुरुष ही जिसके ज्ञान के नेत्र खुल जाते हैं, उन इन्द्रियों को अन्त:मुखी करके देख पाता है।"

सुरथ का यह इन्द्रिय रूपी अश्व पर गहन वन में प्रयाण ही उसके विवेक जागृत होने के कारण सम्भव हो सका है, यही वह स्थिति है जिसके लिये योग कहता है- ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा। यह आत्मा की ही आत्म कल्याण के पथ पर यात्रा है-

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।
इन्द्रियाणिहयानाहुः कठोपनिषद् ३/३-५

आत्मा ही रथी है, शरीर ही रथ है, बुद्धि सारथी है, मन लगाम है और इन्द्रियां ही अश्व हैं।

सुरथ का गहन वन में प्रवेश ही हृदयगुफा में अन्वेषण है। जहां जगती का कोलाहल शान्त हो जाता है, वहां वासनाओं के हिंसक पशु शान्त भाव से विचरण करते हैं- अतः उसे प्रशान्तश्वापदाकीर्ण कहा गया है। मेधा ऋषि से मिलन-सुमेधस् होना उस जगज्जननी की कृपा से ही सम्भव हो पाता है, पर जो प्रयत्नशील होते हैं, उन्हीं पर यह कृपा होती है। ऋग्वेद के वागम्भृणीसूक्त में कहा गया है-

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुतमानुषेभिः
यं कामये तं तमुग्रं करोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।

कल्याण मार्ग के पथिक को स्वयं मेधा के समीप पहुंचाती है। यहां से दुर्गासप्तशती का प्रारंभ होता है- जहां से यह यात्रा प्रारंभ होकर उसे मोक्ष के द्वार और मन्वन्तराधिप बनने के आधिपत्य तक पहुंचा देती है। दुर्गासप्तशती मन्त्र-शास्त्र का ग्रन्थ है, उसमें एक-एक शब्द विशेष प्रयोजन से विशेष अर्थ-गूढ़ अर्थ को प्रकट करने के लिये प्रयुक्त हुआ है जिसे अगले अध्यायों में यथा-स्थान स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जायगा।

दुर्गा सप्तशती की कथा तीन भागों में विभाजित है जिन्हें प्रथम चरित्र, मध्यम चरित्र और उत्तम चरित्र कहा जाता है। प्रथम चरित्र की कथा इस प्रकार है-

सुरथ नामक राजा समस्त क्षितिमण्डल का शासक था। वह अपने औरस पुत्रों की भांति प्रजा का पालन करता था। उसके शत्रु कोलाविध्वंसियों ने संख्या में न्यून होने पर भी उसे जीत लिया। तब वह अपने पुर को लौट आया और मात्र अपने देश का स्वामी रह गया। वहां भी दुष्ट मंत्रियों ने उसके धन, खजाने और सेना को अपने अधिकार में कर लिया। इस प्रकार आधिपत्यहीन होकर वह अकेला ही घोड़े पर सवार होकर घने वन में चला गया। वहां उसने विप्रवर मेधा ऋषि का आश्रम देखा। वहां मुनि से सत्कार पाकर वह कुछ दिन रहने के पश्चात् ममता-वश अपने, पुर, हाथी, सेवकों और कोश की चिन्ता करने लगा। एक दिन उसने उसी आश्रम के समीप समाधि नामक वैश्य को देखा जिसे उसके पत्नी और पुत्रों ने धन के लोभ से अनादर के साथ घर से निकाल दिया था। वह भी राजा की भांति मोहवश अपने पुत्रों और स्त्रियों के लिये चिन्तित था। उन दोनों ने मुनि मेधा के पास जाकर पूछा कि क्या कारण है कि अपने गुणहीन और अनादर करने वाले स्वजनों के प्रति भी हम दोनों के मन में चिन्ता है। ऋषि ने बताया कि यह महामाया का प्रभाव है जो इस विश्व का सृजन, पालन और संहार करने वाली है। इसके पश्चात् विष्णु शयन और उनके कान के मैल से मधु और कैटभ नामक दो दैत्यों की उत्पत्ति होने पर वे दोनों ब्रह्मा को मारने को उद्यत होते हैं। ब्रह्मा के द्वारा योगनिद्रा की स्तुति किये जाने पर वह तामसी देवी विष्णु के नेत्र, मुख, नाक, बाहु, हृदय और

वक्ष:स्थल से निकलकर सामने प्रकट हुई। उस योगनिद्रा से मुक्त होकर विष्णु ने उठकर अपने सामने दोनों असुर-मधु और कैटभ को देखा उनके साथ विष्णु का पांच हजार वर्ष तक युद्ध होता रहा। अन्त में महामाया ने उनकी बुद्धि को मोहित कर दिया जिससे उन्होंने स्वयं विष्णु को वरदान दिया कि जहां पृथ्वी पर जल न हो वहां हमें मार डालो। तदनुसार उन दोनों के वध के साथ प्रथम अध्याय और प्रथम चरित्र की समाप्ति होती है।

ऐतिहासिक और विकासवाद की दृष्टि से विवेचना करने वालों के अनुसार यह मनुष्य की अविकसित आदिम अवस्था की कहनी है जब सर्वत्र जल ही जल था और व्यक्ति में इतना भी विवेक न था कि स्वयं अपनी मृत्यु के लिये सहमति दे और उपाय बताये। यह मूढता की चरमावस्था है।

वैदिक मान्यता के अनुसार यह सृष्टि के उन्मेष की प्रथमावस्था है। जिसके लिये नासदीय सूक्त में कहा गया है-

तम आसीत्तमसा गूढमग्रे प्रकेतं सलिल सर्व मा इदम्।

तुच्छ्वेनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतेकम्।

तम की व्याख्या करते हुये सायण भाष्य में कहा गया है-

आत्मतत्वस्यावरणत्वान्मायापरसंज्ञं भावरूपाज्ञानमत्र तम इत्युच्यते। मनुस्मृति में भी कहा गया है-

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।

अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वत:।

यहां विष्णु ही आत्म तत्व है जिसके आवरण रूप में योगनिद्रा को माया नाम दिया गया है। यहां देश काल का विभाजन नहीं है जो इसी प्रक्रिया से प्रारंभ होता है जिसके संबंध में अघमर्षण सूक्त में कहा गया है-

ऋतंचसत्यंचाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ततो रात्र्यंजायत तत: समुद्रादर्णव: समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।

यहां सप्तशती के प्रथम चरित्र में तामसी शक्ति जो रात्रिरूपा है, वह है, समुद्र है और जगत्स्वामी विष्णु के जागरण के साथ ही काल की कलना का प्रारंभ होता है इसीलिये प्रथम चरित्र की अधिष्ठात्री देवी काली है जिसके लिये महाविद्यासूत्र में कहा गया है- काल एवं स्त्रीलिंगेन काल्युच्यते।

अत: मधुकैटभ का युद्ध-पंचवर्षसहस्राणि चलता है। प्रजापत्य वर्ष को मानव का एक हजार वर्ष मानकर यहां गणना की गई है। क्योंकि मानवीय धरातल पर जो युद्ध

अदृश्यतानुजा विष्णोःसायुधाष्टमहाभुजा। और तया हृतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु द्वाः स्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वपि रासलीला में भी योगामायामुपाश्रितः भागवत १०/२९/१

ते योगमाययारब्धपारमेष्ठ्यमहोदयम्।
प्रोचुः प्रांजलयो विप्राः प्रहृष्टाः क्षुभितत्वचः।

- भागवत ३/१६/१५

प्रथम चरित्र का सामान्य आशय यही है कि किसी भी प्रकार के कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये अपने मनोयोग के द्वारा समस्त प्रसुप्त शक्तियों को जागृत करना आवश्यक है।

तीन गुण में यहां विष्णु को जिस तामसी शक्ति के कारण सुप्त दिखाया गया है, उससे मुक्त होना साधना का प्रथम चरण है, प्रथम चरित्र है।

दुर्गासप्तशती के दूसरे, तीसरे और चतुर्थ अध्यायों में महिषासुर वध की कथा और इन्द्रादि देवताओं के द्वारा देवी की स्तुति का वर्णन किया गया है। इसे मध्यम चरित्र कहा गया है। संक्षेप में कथा इस प्रकार है कि देवी और असुरों का युद्ध सौ वर्ष तक चलता रहा देवता पराजित हुए और इन्द्र के स्थान पर महिषासुर प्रतिष्ठित हो गया। देवता हार कर ब्रह्मा को आगे कर विष्णु और शिव के पास गये और महिषासुर के इन्द्र बनने और अपने हारने का पूरा वृतांत सुनाया। देवताओं के इस प्रकार कथन को सुनकर विष्णु ने अत्यंत क्रोध किया, उनके मुख से तथा अन्य शिव, ब्रह्मा, इन्द्र आदि सभी देवताओं के शरीर से उस समय महातेज निकला जो एकाकार होकर एक नारी के रूप में बदल गया। उस तेज की पुंजीभूत राशि को देखकर महिषासुर के सताए हुए देवता बहुत प्रसन्न हुए। उस नारी रूप शक्ति को उन्होंने अपने-अपने आयुधों से समान आयुध निकाल कर दिये। इस प्रकार देवताओं से आयुध और आभूषण पाकर देवी ने अट्टहास किया। जिससे पृथ्वी, आकाश और समुद्र में क्षोभ होकर उसकी प्रतिध्वनि सर्वत्र गूंजने लगी। महिषासुर 'अरे यह क्या' ऐसा कहकर सेना सहित उस शब्द की ओर दौड़ा। उसके साथ अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित सेना और सेनापति भी आकर युद्ध करने लगे। देवी के निःश्वासों से अनेक गण उत्पन्न होकर युद्ध करने लगे। कुछ घण्टानाद से विमोहित हो गए और क्षण में वह सेना नष्ट हो गई। महिषासुर का सेनापति चिक्षुर युद्ध करते हुए मारे जाने पर चामर नामक सेनापति ने आकर देवी पर शक्ति से प्रहार किया वह शक्ति देवी की हुंकार से ही निष्प्रभ होकर भूमि में जा गिरी। सिंह ने भी कुछ को युद्ध में मार डाला और अनेक सेनानियों के मारे जाने पर महिषासुर भी देवी की तलवार से मारा गया। शेष असुर सेना भाग गई। देवी की इस विजय से प्रसन्न होकर इन्द्र आदि देवताओं ने चतुर्थ अध्याय में बड़े ही सुन्दर भावयुक्त ढंग से देवी की स्तुति की। देवताओं को वरदान देकर देवी वहीं अन्तर्धान हो गई।

मध्यम चरित्र की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी हैं जो रजोगुण प्रधान है। संसार का समस्त वैभव और समृद्धि इन्हीं की कृपा से है। इसलिए मध्यम चरित्र में देवताओं के द्वारा उन्हें निर्मल, जीर्ण न होने वाले दो वस्त्र, चूड़ामणि, दिव्य कुण्डल, पैरों में पहिनने के लिये कड़े, सभी भुजाओं के लिए बाजूबंद, दो चरणों के लिए नूपुर, गले का आभूषण और उंगलियों के लिए रत्न जटित अंगूठियां भेंट की गई। इसी प्रकार उन्हें महामणियों से युक्त हार, विविध रत्न और अन्य अनेक प्रकार के भूषण प्रदान किये गये जो लक्ष्मी-श्री, समृद्धि-की देवी के लिए सर्वथा उचित है।

मन के स्तर पर चेतना के तीन विभाग होते हैं जिन्हें सत, चित् और आनन्द कहा जाता है। भौतिक स्तर पर उसके दो विभाग हैं। एक सुप्त कुण्डलिनी के रूप में, दूसरी प्राण के रूप में कर्तृत्वशक्ति। रजोगुण, कर्तव्य प्रधान होता है। इसीलिए उसके अष्टादश भुजा हैं। आयुध के रूप में सभी देवताओं की क्रियाशक्ति उसे प्राप्त है। रुद्र का शूल, कृष्ण का चक्र, वरुण का शंख, अग्नि की शक्ति, मरुद्गण का धनुष और तूणीर, इन्द्र का बज्र, ऐरावत का घंटा, यम का दण्ड, वरुण का पाश, प्रजापति की अक्ष माला, ब्रह्मा का कमण्डलु, काल का खड्ग और ढाल, विश्वकर्मा का परशु ये सब देवी को प्राप्त होते हैं।

प्रथम चरित्र में दैत्य दो हैं- मधु और कैटभ। उनसे विष्णु को अकेले बाहुयुद्ध मल्लयुद्ध करना पड़ता है। वह युद्ध व्यक्ति के स्तर पर है। इतिहासवेत्ताओं के अनुसार मध्यम चरित्र समाज की उससे आगे की विकसितावस्था है। जिसमें समष्टि शक्ति मिलकर असुरों का सामना करने को उद्यत होती है।

आध्यात्मिक स्तर पर मध्यम चरित्र के प्रारंभ में ही संकेत दे दिया गया है कि सौ वर्ष तक जीवनव्यापी संग्राम में आसुरी शक्तियों की विजय होती है। देवशक्ति पराजित होती है। सभी देवताओं को जीतकर महिषासुर-जीव का दम्भ, जीव का अभिमान-इन्द्र पद प्राप्त करता है, देहस्थित इन्द्रियों का स्वामी बन जाता है। इन्द्रियां विवश होकर उसका शासन मानने को बाध्य हैं। पर साधक की चेतना यहां जागृत होती है। ब्रह्मा-आत्मा को आगे कर सभी देवता विष्णु और रुद्र-पालन और संहार के देवता के साथ अपनी उस सुप्त क्रियाशक्ति का आवाहन करते हैं जिसके समष्टि रूप से उस शक्ति पुंज का उदय होता है जो अपनी प्रभा से अपनी कान्ति से तीनों लोकों में व्याप्त हो जाता है। उस तेज का आवाहन ही नहीं जब सम्मान किया जाता है तो उसके अट्टहास से जो प्रतिशब्द-प्रतिध्वनि होती है वह लोकों में विलीन नहीं हो जाती। अशक्त की वाणी के समान अनसुनी नहीं कर दी जाती, उससे सम्पूर्ण लोक क्षुब्ध हो जाते हैं, सत्तासीन असुरों के आसन कांप जाते हैं। महिषासुर चौंक पड़ता है- अरे यह क्या है।

शक्ति को माता के रूप में माना जाता है। माङ्माने धातु से इसका अर्थ होता

शुम्भ-निशुम्भ रूपी छः मल्ल दैत्यों का दर्पदलन करने के लिये दुर्गा के रूप में अवतरित होने वाली''

इस प्रकार यहां यथासंख्य नियम के अनुसार महिषासुर को लोभ का वाचक बताया गया है। यह सभी मत ठीक हैं, पर अपनी अल्पबुद्धि के अनुसार इसे उच्छृंखल मन के अभिमान का प्रतीक समझना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है जो प्राण और बुद्धि को दबाकर हमारे न चाहते हुए भी हमारी इन्द्रियों पर शासन करता है। इस स्थिति में प्राण असहाय है, बुद्धि अपनी विवशता पर रोने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर पाती और हम जानते हुए भी मन पर नियन्त्रण नहीं कर पाते। यही महिषासुर है जो हमारी दैवी वृत्तियों को पराजित कर हम पर जाने अनजाने हावी हो गया है। उस ज्योतिर्मयी वाङ्मयी शक्ति के पूंजीभूत होने से ही इसकी अनन्त अभिलाषाओं, आंकाक्षाओं वाली सेना पर विजय पाना सम्भव होता है। यह मन रूपी महिषासुर मरकर भी अमर है। इसीलिये इस छिन्नशीर्ष मन रूपी महिषासुर की देवी के वामभाग से आगे पूजा करने का विधान किया गया है। शक्ति के आगे ही यह नियंत्रित रह सकता है-

वामभागऽग्रतो देव्याश्छिन्नशीर्ष महासुरम्।
पूजयेन्महिषं येन प्राप्तं सायुज्यमीशया। - वैकृतिकरहस्यम्-३०

दुर्गा सप्तशती के पंचम अध्याय से लेकर त्रयोदश अध्याय पर्यन्त उत्तम चरित्र की कथा का वर्णन किया गया है। विस्तार की दृष्टि से उत्तम चरित्र जितना बड़ा है साधना की दृष्टि से भी उतना ही महत्वपूर्ण है। इसमें शुम्भ-निशुम्भ वध का वर्णन किया गया है। किसी समय शुम्भ और निशुम्भ दो दैत्यों ने अभिमान में भरकर इन्द्र से तीनों लोकों का राज्य और यज्ञभाग ग्रहण करने का अधिकार छीन लिया। सूर्य, चन्द्र, अग्नि, कुबेर, वरुण, वायु आदि विभिन्न देवताओं के जो कार्य नियत हैं उन्हें उनके अधिकार से वंचित कर वे स्वयं उन अधिकारों का उपयोग करने लगे। इस प्रकार देवता अपमानित और राज्यभ्रष्ट होकर उस शक्ति का स्मरण करने लगे जिसने पूर्व में उन्हें यह आश्वासन दिया था कि विपत्ति पड़ने पर तुम जब मेरा स्मरण करोगे तो मैं प्रकट होकर बड़ी से बड़ी विपत्ति का नाश कर दूंगी। वे हिमगिरि पर जाकर विष्णुमाया की स्तुति करने लगे। पहिले उन्होंने उस शक्ति का जगत के कृतित्व के रूप में स्मरण करते हुए फिर वैयक्तिक स्तर पर इस मानव शरीर में स्थित शक्ति की स्तुति की। इस स्तुति से प्रसन्न होकर देवी उनके समक्ष पार्वती के रूप में प्रकट होकर गंगा के जल में स्नान करने के लिये चल दी। देवता इस रूप में देवी को न पहिचान सके। तब देवी ने स्वयं पूछा कि तुम किसकी स्तुति कर रहे हो। इस प्रश्न का उत्तर भी उन्हीं के शरीर कोश से उत्पन्न होने वाली शक्ति ने दिया कि मेरी स्तुति की जा रही है। शुम्भ और निशुम्भ के दो सेवक चण्ड और मुण्ड ने देवी के उस मनोहर रूप को देखकर शुम्भ और निशुम्भ के पास पाकर निवेदन किया

कि आपके योग्य स्त्री हिमालय पर बैठी है, उसे आप ग्रहण करें। यहां उन असुरों की उस समृद्धि का भीं उल्लेख किया गया है जो उन्होंने विभिन्न देवताओं को पराजित कर प्राप्त की। ऐसा सुनकर शुम्भ ने अपने दूत सुग्रीव को इस आदेश के साथ देवी के पास भेजा कि तुम उसे मेरी ओर से ऐसा ऐसा समझाकर प्रीतिपूर्वक ले आओ। सुग्रीव ने जाकर देवी से कहा कि मैं शुम्भ का भेजा हुआ दूत हूँ। उसने कहा है कि त्रैलोक्य की उत्कृष्ट समृद्धि मेरे पास है, अत: तुम जैसी सुन्दरी को भी मेरे पास आकर मेरा अथवा मेरे भाई निशुम्भ का वरण करना चाहिये। इस पर देवी कह देती है कि मेरी प्रतिज्ञा है कि जो मुझे युद्ध में जीतेगा, मैं उसी के साथ विवाह करूंगी। सुग्रीव समझाकर और धमकी देकर चला जाता है। उसका सन्देश सुनकर शुम्भ ने क्रुद्ध होकर धूम्रलोचन को सेना सहित भेजकर देवी को पकड़ लाने की आज्ञा दी।

धूम्रलोचन को देवी ने हुंकार से ही भस्म कर उसकी सेना का संहार किया। यह समाचार पाकर शुम्भ ने चण्ड और मुण्ड को देवी को जीवित अथवा मृत पकड़ लाने को भेजा। देवी के क्रोध से उत्पन्न काली के द्वारा उन दोनों का वध किया जाता है। उन दोनों के वध का समाचार पाकर शुम्भ एक बड़ी सेना के साथ लड़ने के लिये आता है। उस समय सभी देवताओं की शक्तियां उसी रूप में उपस्थित होकर उस देवता के वाहन और आयुध सहित युद्ध क्षेत्र में आई। उन शक्तियों के साथ चण्डिका के पास जाकर ईशान ने कहा कि मेरे लिये तुम इन असुरों का वध करो। तब देवी के शरीर से अपराजिता शक्ति ने प्रकट होकर शिवको दूत बनाकर दैत्यों के पास इस सन्देश के साथ भेजा कि यदि जीवन चाहते हो तो त्रैलोक्य का राज्य देवताओं के लिये छोड़कर पाताल में जाकर निवास करो।

इस पर क्रोधित असुरों और देवशक्तियों का संग्राम होने पर रक्तबीज का वध हुआ। इस दैत्य के शरीर से रक्त निकलने पर उससे उसी के समान सैकड़ों दैत्य उत्पन्न हो जाते थे। जिसे देवी के द्वारा भूमि पर गिरने के पहिले ही काली जीभ से पान कर जाती थी। इसके पश्चात घोर युद्ध में निशुम्भ का वध हो जाने पर शुम्भ अकेला ही युद्ध के लिये जाता है और कहता है कि यह कैसा युद्ध है कि तुम अन्य के बल पर गर्वित होकर लड़ती हो। इस पर देवी ने कहा कि मेरे अतिरिक्त इस संसार में दूसरा है ही कौन। ये सब मेरी ही विभूतियां हैं जिन्हें तू मुझ में ही समाते हुए देख ले। तब वे ब्रह्माणी आदि देवियां देवी के शरीर में ही लय हो गई। उस दैत्य के द्वारा प्रयुक्त सभी अस्त्रों को देवी ने हुंकार आदि शब्दों के उच्चारण मात्र से भग्न कर दिया। इस प्रकार उसके सभी शस्त्र और रथ सारथि नष्ट हो जाने पर उसका देवी के साथ तुमुल द्वन्द्व युद्ध प्रारंभ हुआ। यह युद्ध आकाश में होता है इसके लिये निराधारा कहा गया है। उसे देवी भूमि

पर पटक कर मार डालती है। उसके मरने पर सर्वत्र शान्ति हो जाती है। देवता देवी की स्तुति करते हैं, वे उससे वर देने की प्रार्थना करते हैं। देवी उन्हें कुछ भविष्य कथन कर और वरदान देकर अन्तर्धान हो जाती है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण के इस कथन और देवी के आश्वासन में बहुत कुछ साम्य है। गीता में कहा गया है-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे।

देवी का कथन है-

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्।

उक्त संदर्भ से विदित होता है कि भगवान के अवतार एक निश्चित समय पर निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिये हुआ करते हैं। वे प्रत्येक युग में अवतार लेते हैं। पर शक्ति के अवतरण में ऐसी कोई सीमा नहीं है, जब-जब और जहां भी इस प्रकार दानवों का प्राबल्य होने पर बाधा हो, वह तभी उसी समय अवतरित होकर शत्रु नाश की प्रतिज्ञा करती है, भक्त को आश्वासन देती है कि मैं तुम्हारे साथ ही हूँ तुम जब भी पुकारोगे में अवतरित हो जाऊँगी। सदा न तद्विमोक्ष्यामि सानिध्यं तत्र में स्थितम्। इसी प्रकार का एक संकेत वराह पुराण अध्याय ९० में आया है। देवी-देवताओं से कहती है-

किं मां न वेत्थ सुश्रोणीं स्वशक्ंति परमेश्वरीम्।

'क्या तुम मुझे नहीं जानते, मैं तुम्हारी ही परमेश्वरी शक्ति हूँ।'

क्या आज भी वह जगदम्बा, वह परमेश्वरी हमारे अन्त:करण में समाहित शक्ति हमसे यही प्रश्न नहीं कर रही है, क्या वह आज अन्तरात्मा के मूक स्वरों में तुम्हारे अन्दर प्रतिष्ठित होकर नहीं पूछ रही है कि क्या तुम मुझे नहीं पहिचानते मैं तुम्हारी ही शक्ति तो हूँ। इसी को सप्तशती में शरीर कोशों से उत्पन्न होने के कारण कौशिकी कहा गया है। इसी को कोशाम्भः क्षरिके कहा गया है। हमारे मूलाधार से लेकर सहस्त्रार तक के कोशों पद्मकोशों का जो अमृतस्त्राव से आप्यायन करने वाली हैं जिसके यिये भावनोपनिषद में कहा गया है-

सदानन्दपूर्णा स्वात्मैव परदेवता ललिता।

इसी के लिये तो विवेकरूपी मेधा का अनुरोध है जिसे हमारा मन अनसुना करता आ रहा है- तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम्।

सुरथ दुखी होकर भी इस जिज्ञासा से महाभाग होकर नृपनन्दन से आगे महाराज सम्बोधन का अधिकारी हुआ है। एक बात विशेष ध्यान देने की यह है कि गीता में जहां सम्बोधन अपना कोई विशेष अर्थ नहीं रखते, सप्तशती में नाम और संबोधन दोनों ही साभिप्राय प्रयुक्त है।

उत्तम चरित्र में स्थूल और सूक्ष्म से आगे साधना के अगले स्तर-देवी के पर रूप का वर्णन है। समष्टि रूप में जो विश्वशक्ति है, वही व्यष्टि में अन्तश्चेतना है।

श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण से दिव्य दृष्टि पाकर उनके पर रूप का दर्शन करता है-

दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।

और **मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपंपरं दर्शितमात्मयोगात्।**

हे अर्जुन मैंने प्रसन्न होकर आत्मयोग के द्वारा तुझे यह पर रूप दिखाया है। स्थूल और सूक्ष्म रूप के दर्शन प्रथम और मध्यम चरित्र में हो चुके हैं। यहां साधना के उस स्तर पर साधक पहुंच चुका है जहां उसे भगवती के पर रूप के दर्शन होते हैं-

ततोऽम्बिकां परं रूपं विभ्राणां सुमनोहरम्।
ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः।

मध्यम चरित्र में महिषासुर रूपी मन पराजित हो चुका हैं। बुद्धि और अहंकार रूप शुम्भ और निशुम्भ के सेवक चण्ड और मुण्ड ने देवी के सुमनोहर विविध देवतामय पर रूप को देखा। प्रथम चरित्र में तामसी वृत्ति से प्रारंभ होकर मध्यम चरित्र में रजोगुण के आगे यहां अहंकार और अस्मिता के शेष रह जाने पर सत्व का भी लय होकर त्रिगुणातीत अवस्था तक पहुंचने के लिये संघर्ष है। मध्यम चरित्र के प्रारंभ में देवता पद्मयोनि प्रजापति को आगे कर शक्ति को उद्बोधन करते हैं। यहां इन्हें किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं रह जाती। प्रथम चरित्र में देवी नेत्रास्यनासिकावाहुहृदयेभ्यस्ततोरसः- नेत्रं, मुख, नासिका, बाहु, हृदय और वक्ष से निकल कर प्रकट होती है। मध्यम चरित्र में समस्त देवताओं का अन्तस्तेज एक होकर शक्ति रूप में युद्धरत है। यहां उत्तमचरित्र में प्रत्येक शक्ति स्वयं क्रियाशील होकर युद्धक्षेत्र में अग्रसर है-

यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम्।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ।

जिस देवता का जो रूप जो आभूषण और वाहन थे उसी रूप में उसकी शक्ति युद्ध करने के लिये आई।

संसार में दैवी और आसुरी शक्तियां सदैव से रहती आई हैं और रहेंगी। इसलिये देवी दैत्यों को एक अवसर देती है- शिव को दूत बनाकर शुम्भ निशुम्भ के पास भेजती

है कि इन्द्र को त्रैलोक्य का राज्य करने दो, देवता यज्ञभाग पूर्ववत् प्राप्त करें। तुम्हें जीवित रहना है तो पाताल में निवास करो।

साधना के इस सोपान पर आकर प्राय: अनेक तपस्यारत मुनियों के आगे सिद्धियों के प्रलोभन आते हैं, उनके लोभ में पड़कर अनेक साधक आगे की साधना का मार्ग त्याग देते हैं। किन्तु जब तक अस्मिता शेष है, जब तक कर्मसंस्कार और उनका बीज शेष है, तब तक मोक्ष का मार्ग प्रशस्त नहीं होता। पातंजल योग के विभूतिपाद में जिन सिद्धियों का वर्णन किया गया है- पंचभूत के स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय और अर्थवत्त्व पर संयम करने से जो सिद्धियां प्राप्त की जा सकती हैं, उनकी गति यहीं तक है। शुम्भ निशुम्भ इन्हीं सामान्य सिद्धियों के प्रतिनिधि हैं। इनका नाश होने पर ही उनके प्रलोभन से आगे बढ़ने पर ही विवेकख्याति की अवस्था आती है। वैखरी और मध्यमा वाक् का क्षेत्र मध्यम चरित्र तक रहा। यहां उत्तम चरित्र की अधिष्ठात्री सरस्वती है जिसके लिये कहा गया है-

ऐं अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।

अप्रशस्ता इवस्मि प्रशस्तमम्ब नस्कृधि।

अब शब्दे धातु से जो नादरूपा है, अम्ब से जो जलमय-रसरूपा हैं, सृ गतौ धातु से सृष्टिनदी की प्रवाहरूपा है, जो परा, पश्यन्ती, मध्यमा, बैखरी वाणी के रूप में परावाक् है, सरस्वती है उससे प्रार्थना की जाती है कि हम अप्रशस्त से हो गये हैं, आप हमें प्रशस्त बनायें।

यहां भी संकेत किया गया है-

त्वयैकयापूरितमम्मबयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरापरोक्तिः।

हे अम्ब, समस्त वाङ्मय तो आपका स्वरूप ही है फिर हम आपकी क्या स्तुति करें। जो शब्द प्रयुक्त किये जाते हैं वे तो स्वयं आपके ही रूप हैं। स्तुति में तो श्रेष्ठता होना चाहिये। जहां कर्ता और कर्म एक ही हो स्तुति और स्तोतव्य जहां एक ही हो गुण और गुणी का जहां समानाधिकरण्य हो वहां क्या स्तुति की जाय। परा और अपरा पश्यन्ती और मध्यमा और उक्ति-वैखरी वाणी तो आप ही हैं। वाणी जितने सूक्ष्मता को प्राप्त होती है। उतनी ही उसकी प्रभविष्णुता में वृद्धि होती जाती है। परमाणु शक्ति में जो सिद्धान्त काम करता है, वही सिद्धान्त यहां भी लागू है। मन्त्र-शक्ति का यही रहस्य है। वैखरी वाणी की अपेक्षा मध्यमा का क्षेत्र व्यापक है, उससे भी अधिक व्यापक पश्यन्ती वाक् है यही मन्त्रशक्ति है। इसका प्रभाव इस उत्तमचरित्र में अनेक स्थलों पर देखने को मिलता है- यहां वही वाणी अस्त्र-शस्त्र का काम करती है- धूम्रलोचन का वध केवल हुंकार मात्र से होता है-

हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः।

हं मन्त्ररूपी तलवार से चण्ड का शिर काटा जाता है-

उत्थाय च महासिं हं देवी चण्डमधावत।
गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत्।

हं मन्त्र की तलवार लेकर देवी चण्ड दैत्य की ओर दौड़ी और उसी से उसका सिर काट लिया।

ब्रह्माणी के कमण्डलु के जल छींटों से ही दैत्य निर्बल और ओजहीन हो गये-

कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान्हतौजसः ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून्।

उसी ब्रह्मशक्ति के अभिमन्त्रित जल से अन्य अनेक दानव ध्वस्त कर दिये गये-

ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः।

देवी ने शुम्भ के द्वारा प्रयुक्त अस्त्रों को हुंकार से ही नष्ट कर दिया-

मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी।
बभंज लीलयैवोग्रहुंकारोच्चारणादिभिः।

गीता में अनेक प्रकार के यज्ञ गिनाये गये हैं। पर साधना के क्षेत्र में आसुरी वृत्तियों से जो संग्राम होता है, वह युद्ध भी यज्ञ होता है-

युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि।

रक्तबीज उन कामनाओं, वासनाओं, अतृप्तआकांक्षाओं का प्रतीक है जिन्हें पूरा करने, शमन करने के पश्चात् दूसरी स्वयं उत्पन्न होती रहती हैं जिनके संबंध में भागवत में कहा गया है-

न जातु कामाः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।

कालीकरालवदना का जीभ बढ़ाकर उस रक्त को पान करने का यही तात्पर्य है कि कामनाओं के बीज ही मन की भूमि पर गिरने न पावें।

प्रथम चरित्र की योगनिद्रा जो विष्णु के सोने पर भी जागती है, उसकी अधिष्ठात्री काली तामसी शक्ति है, काली है। सरस्वती सत्व की अधिष्ठात्री श्वेत है। उसका नाम स्वयं सरस्वती प्रसरणशीला है। अंग्रेजी में इसके संबंध में वैज्ञानिक मान्यता है। Eather at rest is darkness, Eather in motion is light. इस प्रकार दुर्गासप्तशती का कथानक तमसो मा ज्योतिर्गमय के अनुसार तमस् से शक्ति का अन्वेषण करते हुए, उसकी स्तुति करते हुए, मनोविकारों के शमन के लिये, प्राण की

चंचलता के शमन के लिये, चित्त की एकाग्रता-स्थिरता के लिये आसुरी वृत्तियों से संघर्ष करते हुए देवशक्ति का आह्वान करते हुए उद्धरेदात्मनात्मानं के अनुसार अपनी सुप्त शक्तियों को जगाकर-आत्मकल्याण से आगे लोककल्याण के लिये समर्पित होने का यह रूपक है। इस आख्यान की समग्रता तो इसी में है, पर इसके बिखरे अंशों का उसी रूप में कथन अन्यत्र भी मिलता है, जैसे कि अन्धकासुर के आख्यान में मत्स्य पुराण में बताया गया है कि उसके शरीर की रक्त की बूंद पृथ्वी पर गिरते ही उसी के समान अन्धकासुर उत्पन्न हो जाते थे। उसके रक्तपान के लिये शिव ने एक सौ आठ मातृकाओं का आवाहन किया। जिस प्रकार सप्तशती में देवताओं की विभिन्न शक्तियां उपस्थित है उसी प्रकार त्रिपुरवध के आख्यान में महाभारत कर्ण पर्व में बताया है कि शिव ने त्रिपुरासुर को मारने के लिये देवताओं में से प्रत्येक को अपना आधा बल देने को कहा।

साधना के क्रम में प्रथम चरित्र का ब्रह्मग्रन्थि-भेदन से संबंध है, मध्यम चरित्र का विष्णुग्रन्थि (भेदन से) उत्तम चरित्र में रुद्रग्रन्थि का भेदन बताया गया है। यहां शुम्भ के साथ देवी का अंतिम संघर्ष भूतल पर न होकर गगन-विशुद्धि चक्र और आज्ञाचक्र तक है-

उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थित:।
तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका।

यहां निराधारा से निरालम्बा मुद्रा का संकेत किया गया है। यह निरोधिका से आगे शक्ति के प्रयाण की अवस्था है। शुम्भ का वध ही रुद्र ग्रन्थि का भेदन है।

चालयन्सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम्।

इस अवस्था में पृथ्वी-मूलाधार से लेकर द्वीप रूप विभिन्न ग्रन्थियां और पर्वसहित मेरुदण्ड सुषुम्णा में प्राणस्थिति के कारण चलायमान हो जाता है। इसका संकेत पंचम अध्याय में ही कर दिया गया है-

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती।
स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या कृपनन्दन।

मन्त्रजप के द्वारा जिसे यहां स्तवादियुक्तानां देवानां कहा गया है- मेरुदण्ड के पर्वतमध्य स्थित शक्ति-पार्वती सुषुम्णा में प्राणसंचार के साथ ही गंगाजल में स्नान के लिये चल पड़ती हैं- इसी प्रतीकात्मक भाषा में गंगा का यह वर्णन मार्कण्डेय पुराण में सप्तशती के इस आख्यान के पूर्व ही अध्याय ५३ श्लोक तीन में इस प्रकार कर दिया गया है-

मेरुकूटतटान्तेभ्यो निपतन्ती विवर्तिता।
विकीर्यमाणसलिला निरालम्बा पपात सा।

जिस ध्रुवाधार से यह गंगा निकलती है, उसके लिये विष्णु पुराण और मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है-

बिभर्ति यां शिरसा भक्त्याहर्निशं ध्रुवः - विष्णु पुराण

ध्रुवाधारं जगद्योनेः पदं नारायणस्य च

ततः प्रवृत्ता सा देवी गंगा त्रिपथगामिनी -मार्कण्डेय पुराण

शरीर में इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा ही यह त्रिपथ है। ध्रुवाधार अथवा ध्रुवलोक के संबंध में शारदातिलक की पदार्थदर्श टीका में बताया गया है-

अनाहतं पद्मपुटं व्योमचक्रं ततो भवेत्

बोधनं ध्रुवसंज्ञं च

अनाहत से आगे व्योमचक्र और उससे आगे ध्रुवनामक चक्र है। मूलाधार से उत्थित होकर कुण्डलिनी मेरुदण्ड के पर्वों में होती हुई इसी ध्रुवचक्र पर प्रकट होती है। साधक उस अवस्था में आत्मविस्मृत हो जाता है। उसे इसका ज्ञान ही नहीं हो पाता। उसके प्रत्येक चक्र के आप्यायित होने पर ही उसे इसका भान होता है। इसीलिये सप्तशती में इन्द्रियाधिष्ठित देवताओं को शक्ति की पहिचान नहीं होती। तब पद्मकोशों से प्रकट होने वाली कौशीतकी-स्वयं अपना परिचय देती है कि ये हमारी स्तुति की जा रही है, अब तक साधक का मन्त्रजप हमारे लिये होता रहा है- स्तोत्रं ममैतत् क्रियते।

प्रथम चरित्र में मधुकैटभ का वध विष्णु की जंघा पर होता है, मध्यम चरित्र में महिषासुर पहिले युद्ध में महिष के रूप में युद्धरत है जो तमस् का प्रतीक है। पुनः सिंह का रूप धारण करता है जो रजस् का प्रतीक है। अन्तिम अवस्था में वह मनुष्यरूप फिर गजरूप और फिर महिष रूप धारण करता है। यह उस अवस्था का द्योतक है जब मन की चंचलता के कारण विचार अनेक प्रकार बदलते है। मधुमती भूमिका प्रारंभ होने को है, अतः देवी के मधुपान का वर्णन है। ममता के बन्धन काटने वाली महा असि से उसका बध होता है।

इस प्रकार विकास क्रम की जहां उन्नत अवस्था है वहीं साधना के अन्तराय रूप असुरों का बाहुल्य होने पर भी अष्टमातृका भी अष्ट शक्तियों के रूप में उन्हें वध करने को उद्यत हैं। पर इन बिखरी शक्तियों से साधना का चरम लक्ष्य नहीं प्राप्त किया जा सकता। इसलिये शुम्भ के वध के पूर्व वे सारी शक्तियां देवी में लय हो जाती हैं और-

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदा स्थिता।

तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव।

कहा गया है।

उत्तम चरित्र के प्रारंभ में वह देवी शक्ति, शान्ति, श्रद्धा और चेतना रूप होने के साथ क्षुधा, तृषा, निद्रा और भ्रान्तिरूपा भी है। वह जीवचेतना के रूप में देखी जा रही है। साधक की दृष्टि सीमित है। एकादश अध्याय में आकर वही देवी विश्व चेतना के रूप में है, शक्ति के उस स्वरूप की अनुभूति है जो परावाक् है। काल की कलना में जो-

कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनी है।

उसका अखण्डकालसत्ता से खण्डकाल सत्ता तक का प्रसार है, विश्व के अन्तराल में प्रवर्तन है। देश रूप में अखिल जगत की माता-प्रमाता है। मातर्जगतोऽखिलस्य। प्रकृति रूप में गुणाश्रया और गुणमया है। योगिनीतन्त्र में कहा गया है-

कारणावस्थयापन्ना सदाहं ब्रह्मरूपिणी
कार्यभावसमापन्ना सदा प्रकृतिरूपिणी।

कार्य भावापन्न प्रकृति से यहां कारण रूपा शक्ति की अनुभूति के स्वर हैं। तीनों चरित्रों में क्रम से क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध कर्मों का क्षय हो जाने पर ही प्रथम चरित्र में मधुकैटभ वध हो ब्रह्मग्रन्थि भेद से सत् की प्रतिष्ठा, मध्यम चरित्र में विष्णु ग्रन्थि-भेदन से चित् की प्रतिष्ठा और उत्तम चरित्र में रुद्रग्रन्थि भेदन से आनन्द प्रतिष्ठा है। प्रथम चरित्र में स्थूल शरीराभिमान से मुक्ति ही मधुकैटभ वध, मध्यमचरित्र में रजोरूप सूक्ष्मशरीराभिमान से मुक्ति-महिषासुर-वध और उत्तम चरित्र में कारण शरीराभिमान से मुक्ति की साधना। सुरथ जो आत्मराज्य से विच्युत जीवात्मा का प्रतिनिधि है उसे इन्द्रियों पर आधिपत्य प्राप्त होता है। आत्म ममत्वरूप समाधि वैश्य को ज्ञान का उदय होने पर-

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः की स्थिति प्राप्त होने पर अहमि प्रलयं कुर्वन्निदमप्रतियोगिनः की अवस्था प्राप्त हो जाती है। इदम् सत्ता का अहं में विलय होकर वह जीवन्मुक्त अवस्था को प्राप्त होता है। गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन के सारथि है, उसके प्रेरक हैं। यहां शक्ति स्वयं संघर्षरत है, आसुरी वृत्तियों के नाश के लिये अन्तःकरण की सुप्त शक्ति को जागृत करना सप्तशती का सन्देश है। रामचरित मानस में रावण वध के पश्चात् तासुतेज समान प्रभु आनन है पर यहां स्वयं ही देवी के उस रूप की अभिव्यक्ति हैं जिसे ब्रह्मवैवर्तपुराण में-

सर्वस्वरूपां सर्वेषां सर्वाधारां परात्पराम्
सर्वविद्यासर्वमन्त्रसर्वशक्ति स्वरूपिणीम्

जो सबका स्वरूप है, जो सबकी नियामिका है, जो पर से भी पर है, जो सर्व विद्यामय है, जो सर्वमन्त्रमय है जो सबकी ही शक्तिरूपा है, उसका साक्षात् अनुभव है। प्रथम और मध्यम चरित्र का युद्ध पंचवर्षवसहस्त्राणि और पूर्णमब्दशतं चलता है,

पर उत्तम चरित्र का संघर्ष जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति से आगे तुरीया अवस्था का द्योतक है, उस अखण्ड कालसत्ता का आभास देने वाला है, जिसके लिये गीता में कहा गया है-

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः

और उपनिषद्‌की वाणी में-

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।

वहां तो केवल क्षण का ही निर्देश किया गया है।

दुर्गा सप्तशती में मन्त्रयोग, लययोग, नादयोग और संयम आदि के गूढ़ रहस्यों का वर्णन किया गया है। उसके लिये सांकेतिक प्रतीकों और पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग आवश्यक था। इसलिये अस्त्रों के स्थान पर मन्त्रपूत जल, हुंकार आदि उच्चारण, (हुंकारोच्चारणादिभिः) में उच्चारण का भी विशेष अर्थ में प्रयोग है सिंह, हुंकार की असि, महाअसि, अम्लानपंकजा माला, क्षण, क्षणम्मूढ़ आदि न जाने कितने प्रयोग गूढ़ार्थों से भरे पड़े हैं उनके रहस्य का संबंधित अध्यायों में यथा स्थान उल्लेख किया गया है।

●●●

प्रथम चरित, प्रथम अध्याय
आख्यान और रहस्य

सप्तशती की कथा का प्रारम्भ प्रथम चरित से होता है। प्रथम चरित की समाप्ति भी प्रथम अध्याय में हो जाती है। इसे उपक्रम कहा जा सकता है। मन्त्रार्थ और उसके विवेचन के पूर्व कथाक्रम को जानलेना आवश्यक होता है। इसी विचार से प्रारम्भ में 'दुर्गा-सप्तशती' लेख में सम्पूर्ण दुर्गामाहात्म्य पर विहंगम दृष्टि से विचार किया गया है। अब कुछ विस्तार से प्रथम चरित प्रथम अध्याय के संबंध में वर्णन करना अपेक्षित है।

भुवनेश्वरी संहिता में कहा गया है- यथा वेदो ह्यनादिर्हि तद्वत्सप्तशती स्मृता। वेद की भांति सप्तशती भी अनादि है अपौरुषेय है। मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत होते हुए भी ऋषि मार्कण्डेय इसके रचनाकार न होकर दृष्टा हैं। उन्होंने अपनी अन्त:प्रज्ञा से देवी के जिन रूपों और चरितों का साक्षात्कार किया वही इसमें वर्णित है। देवी के सम्बन्ध में ऋग्वेद का वागृम्भणी सूक्त जिसे देवी सूक्त कहा जाता है, इस बात का प्रमाण है। सप्तशती के त्रयोदश अध्याय में इसका संकेत भी किया गया है- स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन्। राजा सुरथ और समाधि वैश्य ने देवी की आराधना देवी सूक्त का जप करते हुए ही की। वास्तव में पुराणों के अन्य आख्यानों की भांति यह एक कथा मात्र नहीं है, इसका कुछ गूढ़ रहस्य भी है। इसे एक रूपक भी कहा जा सकता है समझा जाता रहा है। अत: चरित में वर्णित घटना-क्रम के साथ उसके आध्यात्मिक और आधिदैविक पक्षों पर भी विचार किया गया है। व्यक्ति और समाज के जीवन में एक अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति आती है जब दुर्वृत्तियों और सद्वृत्तियों में रस्साकशी की स्थिति होती है। सद्वृत्तियों पर जब जब दुर्वृत्तियां हावी होती हैं तो व्यक्ति औरर समाज के अन्तस्तत्वों से किसी ऐसी शक्ति का आविर्भाव होता है जिसके द्वारा दैत्य-राक्षस-दुर्वृत्ति का शमन होता रहता है। समाज में ऐसी परिस्थितियां अनेक बार उत्पन्न हुई हैं जब अदृश्य शक्ति के अवतरण से उस बाधा का शमन किया जाता रहा है। व्यक्ति कभी सत्कर्मों के पूर्वजन्म के संस्कारों से प्रेरित होकर तो कभी इसी जन्म में आत्मोन्नति की अभिलाषा करते हुए गहराई से चिन्तन करता है, अन्त:प्रज्ञ होकर विचार करता है तो गुरुकृपा से अपने में निहित शक्ति के उन स्रोतों का रहस्य ज्ञात और अनुभूत होने लगता है जिससे- नरो नारायणो बुभूषति-इच्छा से आगे ज्ञान और क्रिया की ओर उन्मुख होने और गहरे पानी पैठ कर खोज में प्रवृत्त होकर कल्याण-मार्ग पर चलने की प्रेरणा स्वत: होने लगती है। सप्तशती में व्यष्टि और समष्टि दोनों ही स्तरों पर इस यात्रा का उन्नेय भूमिका में आरोहण का काव्यात्मक भाषा में रूपक और प्रतीकों के सहारे संकेत

मिलता है। सामान्य आख्यान में नामों का कोई महत्व नहीं होता, कोई विशेष अर्थ नहीं होता, किन्तु सप्तशती में नामों का भी विशेष प्रयोजन है, सुरथ, समाधि और मेधा ऋषि अपने विशेष अर्थ को प्रकट करने वाले हैं। इसमें चरित शब्द भी अपना विशेष अर्थ रखता है। चर गतौ धातु से क्त प्रत्यय लगने पर चरित शब्द बनता है जिससे सृष्टि विस्तार का संकेत किया गया है। यहाँ तीन चरितों के द्वारा तीन घटनाओं का वर्णन किया गया है। आधिभौतिक पक्ष में आसुरी प्रवृत्तियों और देवताओं के जय पराजय का वर्णन है। सामाजिक स्तर पर मानव विकास की तीन अवस्थाओं का वर्णन है। व्यक्ति के स्तर पर आध्यात्मिक स्तर के तीन सोपानों का वर्णन है। तन्त्र की दृष्टि से साधक की तीन ग्रन्थियों-ब्रह्मग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि के विमोचन का आख्यान है। वेदान्त के अनुसार भी 'भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे' का उदाहरण है। मानव से मन्वरन्तराधिप बनने की कथा है।

कथा का प्रारम्भ सुरथ राजा के वर्णन से प्रारम्भ होता है। राजा का नाम सुरथ विशेष अर्थ का बोधक है। श्रुति का कथन है- आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु सामान्य अर्थ होता है जिसका रथ अच्छा है वह सुरथ। रथ जब शरीर का द्योतक है तो अर्थ हुआ कि जिसका शरीर रूपी रथ अच्छा है। साधना के लिये उपयुक्त है। वह राजा सुरथ-चैत्रवंशसमुद्भव है। चैत्रवंश में उत्पन्न हुआ है। यह वंश द्वितीय मन्वन्तर के अधीश्वर स्वारोचिष मनु से संबंधित है। वंश रीढ़ की हड्डी को भी कहते हैं। कोश के अनुसार- वंशो वेणौ कुले वर्गे पृष्ठाद्यवयवेऽपि च। पृष्ठावयव-पृष्ठवंश। शरीर में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के अतिरिक्त चौदह मुख्य नाड़ियाँ हैं, उनमें चित्रा का विशेष महत्व है। अतः पृष्ठवंश चित्रा से उत्पन्न-चैत्रवंश समुद्भवः तासांमध्ये गतानाडी चित्रा सा ममवल्लभा। ब्रह्मरन्ध्रंच तत्रैव सक्ष्मात्सूक्ष्मतरंशुभम्। उस समस्त भूमण्डल के राजा सुरथ को उसके शत्रु कोलाविध्वंसियों ने पराजित कर दिया। न्यूनैरपि शब्द आया है कि उसके ये शत्रु उसके समकक्ष किसी प्रकार न थे उससे न्यून-हीन होने पर भी राजा उनसे पराजित हुआ। संकेत यह कि हमारा शरीर दृढ़-सुरथ होने पर भी मन से पराजित होता है। तब उस भूमण्डल के आधिपत्य से च्युत होकर वह अपने ही पुर लौट आता है। कोश के अनुसार- पुरं शरीरमित्याहुः। शरीर को भी पुर कहा जाता है। अतः राजा सुरथ का क्षेत्र संकुचित होकर- साधना के विस्तृत क्षेत्र के स्थान पर अपने शरीर तक ही सीमित रह गया। किन्तु वहाँ भी वह शान्ति न पा सका। क्योंकि दुरात्मा, दुष्ट और बलिष्ठ अमात्यों ने उस दुर्बल राजा का अपने ही पुर में कोश-खजाना और सेना का अपहरण कर लिया। उसके पास अपना कुछ भी न रहा। उसके स्वपुर-अपने ही शरीर पर मन और इन्द्रियरूपी अमात्यों का अधिकार हो गया जिससे उसके पास इतना आत्मबल न रह गया कि मन को मनमानी करने से रोक सके। इन्द्रियां उसके स्वयं के वश में न रह कर मन के अनुसार कार्य करती हैं। नेत्र उसे आत्मोपलब्धि के लिये अन्तःस्थ होने में

सहायक नहीं हो रहे, कान पश्यन्ती और मध्यमा वाक्, नाद सुनने के प्रति सावधान नहीं हैं। त्वचा शीतधाम के प्रभाव में है। वह बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा-होना चाहकर भी नहीं हो पा रहा। इसे वह मेधा ऋषि के समक्ष इन शब्दों में स्वीकार करता है-

दु:खाय यन्मे मनस: स्वचित्तायत्ततां बिना। मेरा मन मेरे अनुसार कार्य नहीं कर रहा है। यह मेरे अधीन नहीं है। मेरा होते हुये भी मेरी आज्ञा न मानकर मेरे दु:ख का कारण बन रहा है। मनोराज्य से च्युत होने का यह उदाहरण है। इस प्रकार अधिकारच्युत और निराश होकर राजा सुरथ अकेला ही घोड़े पर सवार होकर गहन वन में प्रवेश करता है। अश्व पर सवार होकर-इन्द्रियाणि हयान्याहु: के अनुसार इन्द्रियों को वश में कर गहन वन हृदयगुफा में प्रवेश करता है। यह उस स्थिति की ओर प्रस्थान है जिसे उपनिषद् में-कश्चिद्धीर: प्रत्यगात्मानमैक्षत् कहा है। वहां उसे मेधा ऋषि का आश्रम दिखाई देता है। इसीको योग की भाषा में ऋतम्भरा-तत्र प्रज्ञा कहा गया है। वह आश्रम प्रशान्तश्वापदाकीर्ण है। वहां पहुंच कर काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर रूपी श्वापद अपने आप प्रशान्त हो जाते हैं। यहीं सुरथ का समाधि वैश्य से मिलन होता है। समाधि नाम से ही स्पष्ट है कि वह निवृत्तिमार्ग का पथिक है जबकि सुरथ प्रवृत्तिमार्ग का अनुसरण करने वाला है। वह उत्पन्नो धनिनां कुले है। कुलपरम्परा से समृद्ध रहा है। गीता में कहा गया है-शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते। निवृत्तिमार्ग का पथिक होना बिना पूर्वजन्म के संस्कारों के सम्भव ही नहीं। अत: समाधि नाम। किसीके मत से समाधि का अर्थ-सम: सर्वपर्याय: आधिर्मनोव्यथा यस्य असौ समाधि:। इस प्रकार समाधि आधिग्रस्त जीव का प्रतिनिधि है। यहां विशेष ध्यान देने की बात यह है कि गीता में अर्जुन का विषाद अन्नमय कोश का है- उसका मुख सूख रहा है, चक्कर आ रहा हैं, त्वचा जल रही है। जिन परिजनों ने उसका सब प्रकार से अनिष्ट किया है आज उन्हीं परिजनों के प्रति मोहग्रस्त होकर वह गाण्डीव त्याग कर कह देता है- न योत्स्ये। युद्ध तो नहीं ही करूँगा। भगवान कृष्ण के उपदेश से वह अन्त में करिष्ये वचनं तव कहकर सन्नद्ध हो जाता है। कर्तव्य-विमुख अर्जुन को कर्तव्यरत करना ही गीता का प्रतिपाद्य है। किन्तु यहां सप्तशती का प्रारम्भ ही मनोमय भूमिका से हो रहा है। अत: इसी दृष्टिकोण से किसीने कहा है कि गीता का जहां अवसान है, वहीं से सप्तशती का प्रारम्भ होता है। गीता में श्रीकृष्ण उपदेशक की भूमिका में हैं। यहां अम्बा-जगदम्बा साधक के पथ में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिये स्वयं युद्ध करती है। दुर्वृत्तवृत्तशमन ही उसका स्वभाव है।

राजा सुरथ का मेधा ऋषि से यही प्रश्न है कि विषयों में प्रवृत्ति के दोष जानते हुए भी ममता से उसी ओर हमारा मन खिंचा जा रहा है जिसके कारण हम दोनों दुखी हो

रहे हैं। उन दोनों को मन की परवशता खल रही है, विवेक होते हुये भी मूढ़ के समान आचरण कर रहे हैं। हम दोनों ही ज्ञानी हैं फिर यह मोह क्यों हो रहा है। ऋषि इसका समाधान करते हुये कहते हैं कि हमें जिस विषय का भी ज्ञान होता है, उसका संबंध इन्द्रियजन्यज्ञान से ही है। अत: ऐसा नियम तो नहीं है कि मोह और ज्ञान का आधार एक न हो सकता हो। आगे- दिवान्धा: प्राणिन: आदि का जो उदाहरण दिया गया है उसका सामान्य अर्थ तो उलूक, चमगादड़, पक्षी और बिल्ली सिंह आदि का दिया ही गया है। गीता के अनुसार इसे- या निशा सर्वभूतानाम् के सन्दर्भ में भी समझा जा सकता है। रामचरितमानस के अनुसार- मोह निशा सब सोवनहारा के अर्थ में भी लिया जा सकता है। अविद्या के अन्धकार को निशा और विद्या के प्रकाश को दिवा कहा जाता है। कुण्डलिनीयोग के अनुसार प्राण का सूर्यनाड़ी पिंगला में संचरण ही दिवा और चन्द्रनाड़ी इडा में संचरण रात्रि है। सुषुम्ना में प्राणसंचार ही तुल्यदृष्टि है। पशुपक्षियों में भी ज्ञान होता है क्षुधा तृषा का स्वयं अनुभव करते हुए भी चोंच में से अन्न पक्षिशावकों के मुख में चिड़िया देती देखी जाती है। यह महामाया का ही प्रभाव है जिसने इस संसार को चलाने के लिए सबको ममता के भंवर और मोह के गड्ढे में डाल रखा है। यह भगवान विष्णु की योगनिद्रा है जिसके कारण जगत् सम्मोहित हो रहा है। वही इस चराचर जगत् को उत्पन्न करने वाली है। वही संसार के बन्ध और मोक्ष का कारण है। उसके विषय में अधिक जिज्ञासा करने पर ऋषि कहते हैं कि वह नित्या है यह सारा संसार उसीका विस्तार है। राजा सुरथ का प्रश्न है कि हे भगवन् आप जिसे महामाया कह रहे हैं वह कौन है, वह किस प्रकार उत्पन्न हुई, उसका क्या कार्य है, उसका क्या प्रभाव है, क्या स्वरूप है। इन्हीं प्रश्नों का उत्तर देते हुये ऋषि कहते हैं कि-

१. वह कौन है इसके उत्तर में कहते हैं कि वह नित्या है। सनातनी है, सदैव रहने वाली है। अत: उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं। क्योंकि जो उत्पन्न होता है, उसकी मृत्यु भी होती है।

२. दूसरा प्रश्न है कि उसका कार्य क्या है, वह क्या करती है। इसके उत्तर में कहते हैं कि सारा जगत् सारी दृष्टि उसीने बनाई है।

३. तीसरा प्रश्न है कि उसका स्वभाव क्या है। इसके उत्तर में कहते हैं कि यह जगत् ही उसका व्यक्त आकार है। यही उसका स्वरूप है। जगदाश्रयभूता शक्ति है। जगत् ही उसकी मूर्ति-शरीर है।

४. चौथा प्रश्न है कि वह किस प्रकार उत्पन्न हुई। उसके उत्तर में कहते हैं कि जो नित्या है, उसकी उत्पत्ति नहीं होती। देवकार्य का सम्पादन करने के लिए उसका आविर्भाव होता है उसीको लोक में उसकी समुत्पत्ति कहा जाता है।

पूर्व में कहा गया है कि जो देवी ज्ञानियों के चित्त को भी मोह में डाल देती है

वह महामाया है। अत: प्रथम चरित में देवी के उसी रूप का वर्णन किया गया है जो तामसी है, मोहरूपा है जिसे योगनिद्रा कहा गया है जिसके प्रभाव से शेषशायी विष्णु भी प्रसुप्त दिखाई देते हैं।

कथा का प्रारम्भ कल्पान्त से होता है। ऋग्वेद के नासदीयसूक्त में इसका वर्णन किया गया है। उस अवस्था में सर्वत्र जल ही जल रह जाता है। अन्धकार छाया हुआ है। अत: इस तम से सृष्टि का प्रारम्भ होने के कारण देवी को रात्रिरूपा कहा जाता है। विष्णु की नाभिकमल से सृष्टिकर्ता ब्रह्मा का प्रादुर्भाव हो चुका है। शयन के संबंध में मनुस्मृति में आया है-

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्। अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वत:। यही सर्वत: प्रसुप्तम् इव व्यापनशील विष्णु का शेष को बिछौना बनाकर सोना है। शेष को आस्तरण बनाने का अर्थ सर्प के साथ ही उस समय कल्पान्त में पंचभूत के लय हो जाने पर जो शेष रह गया है। योगनिद्रा ही तामसी शक्ति है। जिस प्रकार कोई सोते समय चादर ओढ़ ले, उसी प्रकार योगनिद्रा आवरक अथवा प्रभु: सर्वसमर्थ होने के कारण स्वेच्छा से निद्रा का वरण। जैसे कोई खेल में साथी की आँख बन्द कर दे, उसी प्रकार यह नेत्रनिमीलन। हरिवंश पुराण में कहा गया है-

सखी सर्वसहस्यैषा माया विष्णो: शरीरजा। सैषा नारायणमुखे स्थिता कमललोचना। ब्रह्मा वर्धनशील: बृंहति वर्धत इति ब्रह्मा। कल्पान्त में विष्णु के कर्णमल से मधु और कैटभ नामके दो राक्षस उत्पन्न होकर ब्रह्मा को मारने को दौड़ते हैं। ब्रह्मा ने देखा कि विष्णु सो रहे हैं जो उनकी इस विपत्ति से रक्षा कर सकते हैं। अत: उन्होंने योगमाया की स्तुति की कि वे विष्णु को जगा दें। ब्रह्मा के द्वारा की गई इस स्तुति में कहा गया है कि इस विश्व का पालन, सृजन और संहार करने वाली ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप आप ही हैं। सृजन के समय सृष्टिरूपा, पालन के समय स्थितिरूपा और इस जगत के अन्त के समय संहाररूपा आप ही हैं।

इसी स्तुति में देवी के नाम महाविद्या, महामाया, महामेधा, महामोहा और महादेवी, महासुरी दिये गये हैं। कालरात्रि, महारात्रि, मोहरात्रि और दारुणा रात्रि भी देवी के नाम दिये गये हैं। इन सभी कर्तृत्वशक्ति के बोधक विशेषणों पर अलग से विचार किया जायेगा।

आगे आया है- **खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा।**
शंखिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा।

इसे कुछ टीकाकारों ने दशभुजा का ध्यान माना है तो किसी ने अष्टभुजा का। विनियोग के साथ जो ध्यान दिया गया है, उसके अनुसार ब्रह्मा ने जिस महाकालिका

की स्तुति की वह स्पष्टतः दशायुधा और दशभुजा है। अतः खींच तान कर अष्टभुजा का अर्थ करना असंगत प्रतीत होता है। प्रतीकात्मक रूप से भी दश दिशाएं ही काली की दश भुजाएं हैं। कालशक्ति की दिशाएं ही भुजास्थानीय हो सकती हैं। वैकृतिक रहस्य में घोर के लिए निश्च्योतद्रुधिर शीर्ष आया है। नागोजिभट्ट ने भी यही अर्थ किया है अन्त में ब्रह्मा कहते हैं कि हे देवी आप इन दुर्जेय दोनों असुरों को मोह में डाल दें और जगत्स्वामी को जगाकर उन्हें इन दोनों को मारने के लिए अध्यवसाय के लिए प्रेरित करें। इस प्रकार स्तुति करने पर वह तामसी योगनिद्रारूपा देवी विष्णु के नेत्र, मुख, नासिका, बाहु, हृदय और वक्ष से निकल कर ब्रह्मा के आगे प्रत्यक्ष हुई। उस योगनिद्रा से मुक्त होकर जगत के स्वामी विष्णु उस एकमात्र जलमय समुद्र में सर्पशयन से उठे तब उन्होंने मधुकैटभ दैत्यों को देखा और उन दोनों ने विष्णु को देखा। तब भगवान् ने उठकर उन दोनों दुष्ट दैत्यों से पांच हजार वर्षतक मल्लयुद्ध किया, वे दैत्य लाल लाल आँखें करके उस समय ब्रह्मा को मारने के लिये प्रयत्न कर रहे थे। वे दैत्य दो थे और विष्णु अकेले, अतः इनके पराक्रम से प्रसन्न होकर और महामाया के द्वारा मोह में पड़ जाने के कारण उन दैत्यों ने विष्णु से वरदान मांगने के लिए कहा। इस पर भगवान् ने कहा कि यदि तुम दोनों मुझसे सन्तुष्ट हो तो मेरे द्वारा मारे जाओ। इसके अतिरिक्त और मुझे क्या वर चाहिए। जब उन दोनों दैत्यों ने देखा कि यह तो बड़ा छल हुआ तो सब ओर जल ही जल देखकर उन्होंने कहा कि हमें ऐसे स्थान पर मार सकते हैं जहां जल न हो। तो विष्णु भगवान ने उन्हें अपनी जंघा पर रखकर चक्र से उनके सिर काट डाले। इस प्रकार देवी भगवती का आविर्भाव हुआ जिसकी स्तुति ब्रह्मा ने स्वयं की। इस देवी के प्रभाव के विषय में और भी सुनिये जो मैं आपसे कहता हूँ।

विष्णु के द्वारा जंघा पर मधुकैटभ वध का प्रतीकार्थ- कुण्डलिनी जागरण के संबंध में षट्चक्रों के क्रम में मूलाधार में शिशुरूप में ब्रह्मा की स्थिति मानी गई है।

मूलाधारे धराबीजं तद्बिन्दौ ब्रह्मणस्थितिः।
तदंके शिशुरूपस्य

तथा- तदंके च चतुर्बाहुं रक्तवर्णं शिशुं शिवे। चतुर्वक्त्रं हंसपृष्ठे ब्रह्माणं विद्धि पार्वति। तथा च-ऐन्द्रबीजं वरारोहे लिंगस्य वामदेशके। सुसिद्धं ब्रह्मसदनं नादोपरि सुसुन्दरम्। तत्रैव निवसेद्ब्रह्मा सृष्टिकर्ता प्रजापतिः। ब्रह्मा को प्रजापति तो कहा ही जा चुका है-स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः षट्चक्रनिरूपण में भी कहा गया है-

चतुर्बाहुभूषं गजेन्द्राधिरूढं तदंके नवीनार्कतुल्यप्रकाशः।
शिशुः सृष्टिकारी लसद्वेदबाहुर्मुखाम्भोजलक्ष्मीश्चतुर्भागभेदः।

मूलाधार से आगे षड्दलकमल वाला स्वाधिष्ठान चक्र है। जो जलमय है। इसीलिये- जगत्येकार्णवीकृते कहा गया है। यह कामवासना का स्थान है। अतः कहा

गया कि-

आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता।

मधुकैटभ दोनों ही कामवासना के प्रतीक हैं। साधक कुण्डलिनी जागरण के समय मूलाधार से आगे स्वाधिष्ठान तक पहुंचता है तो कामवासना के प्राबल्य के कारण उसका पतन होते देखा जाता है। इसीलिए सौन्दर्यलहरी में भगवत्पाद शंकराचार्य ने जो क्रम बताया है उसके अनुसार मूलाधार से पृथ्वीतत्व और जल तत्व का भी जय करते हुए मणिपुर में अग्नितत्व पर विजय के बाद स्वाधिष्ठान नाम आता है। स्वामी विष्णुतीर्थ की सौन्दर्यलहरी की हिन्दी टीका के अनुसार उन्होंने बताया है कि मूलाधार में उन्नेय भूमिका से आगे स्वाधिष्ठान की प्रदक्षिणा करते हुए साधक को मणिपुर में पहुंचना चाहिए। अब प्रश्न होता है कि यह जघन क्या है जिस पर सिर रखकर मधुकैटभ का वध किया गया। उसके संबंध में कहा गया है-

गंगायमुनयोर्मध्ये पृथिव्यां जघनं स्मृतम्। तथा-
प्रयागं जघनस्थानं उपस्थं कवयो विदु:।

गंगा और यमुना से पिंगला और इड़ा नाड़ी उनका संगम सुषुम्ना ही प्रयाग यही जघन कहा गया है। तात्पर्य यह कि कुण्डलिनी शक्ति जागृत कर सुषुम्ना-त्रिवेणी-संगम पर विष्णुशक्ति द्वारा मधुकैटभ का वध। इसके साथ ही ब्रह्मग्रन्थि विमोक। यही प्रथम चरित का प्रतिपाद्य है। अगले चरित में महिषासुरवध के माध्यम से विष्णुग्रन्थि भेद का रूपक बताया जायेगा।

मधुकैटभ को विष्णुकर्णमलोद्भूतौ कहा गया है। विष्णुकर्ण चिदाकाश के आवरक-विष्णुकर्णमल। किसी का मत है कि देश और काल ही विष्णु-व्यापनशील के दो कर्ण। ब्रह्मा सत्वगुण और मधुकैटभ रजस् और तमस्। जो सत्व को पराजित करना चाहते हैं। ब्रह्मा नाभिकमल पर आसीन होने का आशय यही कि संसारचक्र की नाभि को आश्रय कर सृष्टिविस्तार का कार्य संचालन होता है। अत: सृष्टिकार्य यद्यपि रजोगुणविशिष्ट ही होता है किन्तु सत्व के अभाव में उसका होना सम्भव नहीं। अत: तमस् और रजस् के प्रतीक मधुकैटभ से सत्व के रक्षण की आवश्यकता। योगमाया तम:प्रधान होने के कारण विष्णु का उसके प्रभाव से निद्रामग्न होना। हरिवंश पुराण में भी यह कथा आती है जहाँ मधु को तमस् और कैटभ को रजस् बताया गया है-

चतुर्युगादिसम्भूतौ सहस्त्रयुगपर्यये। विघ्नस्तमसि सम्भूतो मधुर्नाम महासुर:।
तस्यैव च सहायोऽन्यो भूतो रजसि कैटभ: तौ रजस्तमसाविष्टौ सम्भूतौ कामरूपिणौ।

प्रथम चरित में मोह करने वाली शक्ति का वर्णन किया गया है जिसकी अधिष्ठात्री काली का प्रथम ध्यान किया गया है वही योगमाया के रूप में वर्णित है। इसीको महामाया हेरेश्चैषा कहा गया है।

सत्वगुण स्थिति तत्व जिसका प्रतिनिधि ब्रह्मा हैं। रजस् क्रिया तत्व और तमस् आलस्य निष्क्रियता है। हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ का आशय सत्व को नष्ट करने का प्रयत्न किसी किसी विद्वान के मत से कर्णमल का आशय शरीर के विकारों से है। वास्तव में यह सृष्टि के प्रथम उन्मेष का वर्णन है जिसमें नादात्मक अभिव्यक्ति के पश्चात् देश और काल का आविर्भाव हो रहा है। इसे निम्नलिखित तालिका से समझा जा सकता है-

सगुण शिव

|

शक्ति चैतन्य

|

नाद चैतन्य अशब्द

|

परबिन्दु शब्दब्रह्म

|

बिन्दु	बीज	नाद
शिव रूद्र	विष्णु	बिन्दु बीज से ब्रह्म
इच्छा शक्ति	ज्ञान शक्ति	क्रियाशक्ति
अग्नि	सूर्य	चन्द्र
तमस्	सत्	रजस्
काली	सरस्वती	लक्ष्मी

परा-मूलाधार-कारणबिन्दु-निष्पन्द

पश्यन्ती-मणिपुर-सामान्य स्पन्द-मन से युक्त कार्यबिन्दु

मध्यमा-नाद-विशेष स्पन्द-अनाहत

वैखरी-बीजदशा-स्पष्टतर-वर्णव्यक्ति-स्थानसंस्थ उच्चारण के पूर्व

ऋग्वेद में इसके संबंध में एक मन्त्र आया है-

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती एकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन्।

ऋग्वेद। २२/१६४/४१

सायण भाष्य के अनुसार व्याकरणसम्मत अर्थ किया गया है-

गौरी मध्यमा वाक् मिमाय शब्दयति वा मिमाय माति प्रतिष्ठितानि घटादि द्रव्याणि

तक्षती तत्तद्वाचकत्वेन निष्पादयन्ती एकपदी अव्याकृतत्वेन एकप्रतिष्ठाना एकरूपा वा आत्मना द्विपदी सुप्तिङन्तभेदेन पादद्वयवती, चतुष्पदी नामआख्यात उपसर्गनिपात भेदेन, अष्टापदी अमान्त्रितसहिताष्टभेदेन नवपदी बभूवुषी साव्ययैरुक्तै: अष्टभिर्नवपदी अथवा सनाभिकेषूरसिकण्ठादिषु नवसु पदेषु भवन्ती पश्चाद्बहुविधाभिव्यक्तिमुपेयुषी परमे व्योमन् उत्कृष्टे हृदयाकाशे मूलाधारे सहस्राक्षरानेकाकारेण व्याप्तानेकध्वनिप्रकारा भवति।

यहां सलिलानि तक्षती से जल से सृष्टि की उत्पत्ति का संकेत।

गौरी शक्तिरूपा परावाक् एकपदी मध्यमा से द्विपदी और परापश्यन्तीमध्यमावैखरी से चतुष्पदी अकचटतपयश इन अष्टवर्ग से अष्टपदी और क्ष जोड़ने से नवपदी, अथवा हृदय, कण्ठ, तालु, जिह्वा, ओष्ठ, नासिका, दन्त और मूर्धा से अष्टपदी तथा आज्ञाचक्र में नवपदी तथा सहस्रार में सहस्राक्षरा बन जाती है। अथवा सप्तशती में आया है- स्नातुमभ्याययौ के अनुसार सलिलानि तक्षती से एकपदी, कौशिकी के निष्क्रमण से द्विपदी, चामुण्डा और चण्डिका से चतुष्पदी अथवा-

एकैव माया-परमेश्वरस्य स्वकार्यभेदाद्भवति चतुर्धा।
भोगे भवानी समरे च दुर्गा क्रोधे च काली पुरुषे च विष्णु:।

भवानी, दुर्गा, काली और विष्णुरूपा होने से चतुर्धा, चतुष्पदी, समष्टिरूपा एक और ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वाराही, वैष्णवी, इन्द्राणी और चामुण्डा से अष्टपदी तथा शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी और सिद्धिधदात्री इस प्रकार नवदुर्गा के रूप में नवपदी है। सहस्रनाम के क्रम में सहस्राक्षरा है अथवा वाणी के रूप में व्याप्त सहस्राक्षरा अनन्तरूपा है।

देवी के दुर्गा नाम के संबंध में कहा जाता है कि-शरीर रूपी दुर्ग में निवास करने के कारण दुर्गा है। दुर्गम नामक दैत्य को मारने के कारण दुर्गा है। मनुष्य के लिए कठिन से कठिन दुर्गम कार्य को सुगम करने के कारण दुर्गा है। देवी उपनिषद् में कहा गया है- दुर्गात्संत्रायते यस्माद्देवी दुर्गेति कथ्यते।

प्रथम चरित में देवी के जिस रूप का ध्यान किया गया है, वह दश भुजा में दश आयुध धारण करने वाली महाकालिका-महाकाली है। ब्रह्मा ने इसी देवी की स्तुति मधुकैटभ को मारने हेतु विष्णु को जगाने के लिए की थी। देवी की दश भुजाएँ दश दिशाओं की द्योतक हैं इससे देश में व्याप्ति की सूचना मिलती है। काल की कलना करने वाली वह है ही जैसाकि महाविद्यासूत्र में कहा गया है-

काल एव स्त्रीलिंगेन काल्युच्यते। महाविद्यासूत्र प्रथम पटल सूत्र-९

शरीर में दशविध प्राण ही काली है- प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय।

प्रथम चरित में देवी के आयुधों का प्रयोग नहीं किया गया अत: उनके प्रतीकार्थ प्रयोगानुसार ही कथन किये जायेंगे।

प्रथम चरित

प्रथम अध्याय

ओं नमश्चण्डिकायै।

यह सात अक्षर का जगदम्बा का मन्त्र है। प्रारम्भ में ओंकार का प्रयोग निम्न लिखित विचार से किया गया है-

प्रपंचसार में कहा गया है-

अस्य तु वेदादित्वात् सर्वमनूनां प्रयुज्यतेऽथादौ।

१- ओम् में तीन अक्षर हैं- अ, उ और म। ऋग् वेद का आरंभ अग्निमीले के अकार से प्रारम्भ होता है। इसलिए इसे वेदादि कहा गया है। इसीलिए इसका प्रयोग सर्वप्रथम मन्त्र के आदि में किया गया है।

२- **सर्वमन्त्रप्रयोगेषु ओमित्यादौ प्रयुज्यते।**
तेन सम्परिपूर्णानि यथोक्तानि भवन्ति हि।
जप्त्वा च प्रणवं चादौ स्तोत्रं वा संहितां पठेत्।
अन्ते च प्रणवं दद्यादित्युवाचादि पूरुषः।

सभी मन्त्रों के आदि में ओम् का प्रयोग किया जाता है जिससे मन्त्र की पूर्णता और अभीष्ट की सिद्धि होती है।

३- **मंगल्यं पावनं धर्म्यम् सर्वकामप्रसाधनम्।**
ओंकारं परमं ब्रह्म सर्वमन्त्रेषु नायकम्।

ओम् मंगलवाची शब्द है, अत्यंत पवित्र है, पवित्र करने वाला है, सभी कामनाओं की पूर्ति का साधन है। संसार को धारण करने वाला है, यह ब्रह्म का वाचक है और सभी मन्त्रों में प्रधान है।

४- अव रक्षणे धातु से ओम् बनता है। उपासक की सब प्रकार से रक्षा करने के कारण आदि में इसका प्रयोग किया जाता है।

५- **प्रणवाद्या स्मृता मन्त्राश्चतुर्वर्गफलप्रदा।**

ओंकार से प्रारम्भ होने वाले मन्त्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों के ही देने वाले होते हैं अतः आदि में ओंकार का उच्चारण।

६- प्रारम्भ में ओम् के उच्चारण से साधक उसी प्रकार पाप मुक्त होकर पवित्र हो जाता है कि जिस प्रकार सांप पुरानी केंचुली को त्याग कर फिर से नवीन हो जाता है। पाप केंचुली के समान है जिसके छूट जाने पर मानव तनमन से पवित्र हो जाता है।

व्याख्या- छाया से उत्पन्न सूर्य के पुत्र जिन्हें सावर्णि मनु कहा जाता है, उनकी उत्पत्ति के विषय में मुझसे विस्तार से सुनिये।

सावर्णि:- अग्रजस्य वैवस्वतमनो: समानो वर्णो यस्य स सावर्णि:

अपने अग्रज वैवस्वत मनु के समान ही जिनका वर्ण है वे सावर्णि। इसके संबंध में विष्णुपुराण में कहा गया है-

छायासंज्ञासुतो योऽसौ द्वितीय: कथितो मनु:
पूर्वजस्य सवर्णोऽसौ सावर्णिस्तेन कथ्यते।

अर्थ ऊपर लिखे अनुसार ही है।

मम यह अस्मद् के षष्ठी एकवचन का रूप है, किन्तु यहां गदत: के साथ पंचमी विभक्ति का प्रयोग होना चाहिए था। उसका समाधान यह दिया है कि कहीं पंचमी विभक्ति के अर्थ में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग भी मान्य होता है। अथवा मम यहां पंचम्यन्त अव्यय है।

अथवा मम विस्तरात् ऐसा अन्वय करके मेरे वर्णन विस्तार से यह अर्थ किया गया है। इसके लिए कहा गया है-

विस्तारो विग्रहो व्यास: स च शब्दस्य विस्तर:। अमरकोश।
अथवा मम गदत:- मेरे मुख से अथवा मेरे वचन से।

गद का अर्थ मुख और वचन भी होता है- यथा-गद्यते अनेनेति गदं मुखम् और गदनं गदो वच:।

रहस्य- इस प्रथम श्लोक में ही ऋषि ने अपनी वाणी का चमत्कार प्रकट कर दिया है। सामान्य अर्थ होता है कि सवर्णा से सूर्य के पुत्र सावर्णि जो अष्टम मनु हुए उनके विषय में वर्णन करता हूँ। पर पूरी सप्तशती में कहीं भी सावर्णि की उत्पत्ति का वर्णन नहीं किया गया है। कोश के अनुसार उत्पत्ति का अर्थ ऊर्ध्व गमन और ऊर्ध्व पतन भी होता है, इस प्रकार यह शब्द उन्नयन का समानार्थक भी है। इससे यह अर्थ स्पष्ट हुआ कि इस वर्णन में यह बताया जायेगा कि किस प्रकार देवी की उपासना करके, देवी का अनुग्रह प्राप्त कर सावर्णि ने मनुत्व की पदवी प्राप्त की उत्पत्ति का दूसरा अर्थ आप्टे के कोश के अनुसार मूल भी होता है, अत: इसमें सावर्णि जो मन्वन्तराधिप हुए, उनका मूल क्या था वे प्रारम्भ में अथवा पूर्व जन्म में क्या थे, इसका वर्णन किया जाता है।

उत्पत्ति का एक अर्थ आविर्भाव, प्रादुर्भाव और अवतार भी होता है। नागोजिभट्ट ने अपनी टीका में संकेत दिया है कि यो मनु: कथ्यतेऽष्टम: से जिस मन्त्र का उद्धार होता है, उसके प्रतिपाद्य देवता के अवतार की कथा सुनिए। तदुत्पत्तिं का यही अर्थ है।

कोश के अनुसार निशामय के तीन अर्थ होते हैं-देखिये, सुनिए, जानिए। सामान्य पाठक के लिए तदुत्पत्तिं निशामय का अर्थ होगा-उस मनु की कथा विस्तार से सुनिए। उससे उच्च श्रेणी के साधक के लिए अर्थ होगा-उस मन्त्र के प्रतिपाद्य देवता के विषय में जानिए।

सरस्वती ज्ञानरूपा है, काली इच्छारूपा शक्ति है और महालक्ष्मी क्रियारूपा हैं। मनुष्य में इच्छा, ज्ञान और क्रिया तीनों ही होती हैं। किन्तु विराट् विश्व के सृष्टि, स्थिति, लय, तिरोधान और अनुग्रह ये पंचकृत्य का सम्पादन करने वाली उस महाशक्ति का चिदंश जो व्यष्टिरूप में हम सबमें बीजमें वटवृक्ष की भांति सुप्तावस्था में है, उसके उन्नयन, ऊर्ध्वगमन, शक्ति के जागरण की क्रिया को देखो। यह सन्देश उद्बुद्ध प्रबुद्ध साधकों के लिए है। ऋषि का संकेत है कि उस शक्ति का अवतरण किस प्रकार होता है, यह तुम समझो और देखो, प्रकारान्तर से अपने में ज्ञान ज्ञानशक्ति में और क्रिया क्रियाशक्ति में परिणत होती है, हो सकती है। प्रारम्भ में ही इस प्रकार संकेत कर दिया गया है कि यह मात्र कथा नहीं है, यह केवल सुनने के लिए नहीं है, अभ्यास के द्वारा इन गूढ़ विधियों को जानकर शक्ति का अवतरण-कुण्डलिनी जागरण का प्रकार समझो अनुभव करो और देखो।

महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः।
स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः। २

अन्वय-स सावर्णिः रवेस्तनयः, महाभागः महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः बभूवतथा निशामय।

शब्दाथ- सवर्णा से सूर्य का वह पुत्र सावर्णि जो षडैश्वर्य सम्पन्न महा भाग्यवान्-महामाया के अनुभाव-ऐसा हो इस इच्छाशक्ति के द्वारा-अष्टम मन्वन्तर का स्वामी जिस प्रकार बना, उस कथा को मेरे मुख से विस्तार से सुनो। यहाँ पूर्व वाक्य से संबंधित होने के कारण यथा के साथ तथा जोड़कर वाक्य पूरा किया गया। विष्णु पुराण के अनुसार भग की परिभाषा दी गई है-

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।

ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य ये छः जहां सम्पूर्ण रूप से हों उसे भग कहते हैं। महाभाग की परिभाषा करते हुए बताया गया है-महान्भागो भक्तिर्यस्य स महाभागः जिसमें पूर्ण भक्तिभाव हो वह महाभाग। महत् भाग्यं यस्य सः महाभागः-जिसका महान् भाग्य हो वह महाभाग। महांश्चासौ भागश्चेति महाभागः जो महान् और उक्त छः ऐश्वर्य से युक्त हो वह महाभाग। अनुभाव का अर्थ कोश के अनुसार-अनुभावः

प्रभावे च सतां च मतिनिश्चये। प्रभाव अथवा दृढ़ मति का निश्चय। इसलिए यहाँ महामाया के प्रभाव और इच्छाशक्ति ये दोनोंका अर्थ संगत हैं।

व्याख्या- महामाया का ऐसा प्रभाव है कि उनकी भक्ति करके सावर्णि मन्वन्तर का स्वामी बन गया। महाभाग से यह भी ध्वनित होता है कि बिरले भाग्यवान ही इस प्रकार शक्ति की कृपा प्राप्त कर पाते हैं।

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः।
सुरथो नाम राजाभूत् समस्ते क्षितिमण्डले।३

अन्वय- स्वारोचिषेऽन्तरे चैत्रवंशसमुद्भवः सुरथो नाम समस्ते क्षितिमण्डले राजा अभूत्।

व्याख्या- पहिले स्वारोचिष मनु जो द्वितीय मनु हुए हैं उनके पुत्र चैत्र के वंश में सुरथ नामका प्रसिद्ध राजा हुआ जो समस्त भूमण्डल का स्वामी था।

रहस्य- यहां चैत्रवंशसमुद्भव और सुरथ दोनों ही नाम विशेष प्रयोजन का निर्देश करने वाले हैं। चैत्र की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है- चेतति जानाति धर्माधर्मप्रवृत्यप्रवृत्तीकर्तुम् इति चैत्रः। जो धर्म और अधर्म को जान कर धर्म में प्रवृत्ति और अधर्म से निवृत्ति करने वाला हो वह चैत्र। इस प्रकार धर्माधर्म का विवेक करने में समर्थ चैत्र वंश में राजा सुरथ उत्पन्न हुआ। अथवा- चीयते चित्रमद्भुतं कर्मतस्यायं चैत्रः। जो अद्भुत कर्म कर्ता हो वह चैत्र, उसके वंश में उत्पन्न रथ-रमन्ते अस्मिन् इति रथः और शोभनो रथो यस्य सः सुरथः। रथ कहते हैं जिसमें रमण किया जाय। हमारा मन इन्द्रियों के विषयों में इस शरीर के माध्यम से रमण करता है अतः यह शरीर ही रथ है। जिसका रथ सुन्दर वही सुरथ। श्रुति का कथन है-

इस शरीररूपी रथ में इन्द्रिय रूपी घोड़े हैं, मन की लगाम है। आत्मा ही सारथि है। अतःइतिहास के इतिवृत्त के साथ साथ आत्मोत्थान का यह वर्णन भी ऋषि का अभिप्रेत है।

तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान्।
बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा। ४

अन्वय- औरसान् पुत्रान् इव सम्यक् प्रजाः पालयतः तस्य कोलाविध्वंसिनः भूपाः शत्रवः बभूवुः।

शब्दार्थ- कोलाविध्वंसिनः- कोलाविध्वंसिनः शब्द से ऋषि का क्या आशय है, यह तो स्पष्ट नहीं होता, इतिहास के अनुसार कोल्हापुर को कोला मानकर उस पर विजय प्राप्त कर उसकी लूट खसोट कर उजाड़ देने वाले किसी बर्बर आक्रमण का भी संकेत

हो सकता है। शाब्दिक व्याख्या के अनुसार टीकाकारों ने जो अर्थ किए वे इस प्रकार हैं-

कोल नामक किन्हीं अन्य राजाओं की राजधानी उसे नष्ट करने के कारण शत्रुओं को कोलाविध्वंसिन नाम दिया गया। अथवा एक अर्थ यह भी किया गया है कि कोल प्रदेश के राजा उसके शत्रु हो गए। कोल नामक सुरथ की ही कोई उपराजधानी रही हो जिसका विध्वंस करने वाले। उन्होंने पहले कोला का विध्वंस किया अब सीधे चक्रवर्ती सुरथ से शत्रुता कर ली। अमरकोश के अनुसार कोला शस्त्र विशेष को कहते हैं- कोला शस्त्र प्रभेदे स्यात्: उस शस्त्र से युद्ध करने वाले। अथवा कोल सूकर को कहते हैं। कोल अविध्वंसिन ऐसा पदच्छेद करने का अर्थ होगा जो कोल को नहीं खाते वे यवन। कोल-अवि-ध्वंसिन: ऐसा पदच्छेद करने पर अर्थ होगा कि कोल सुअर की रक्षा करने वाले जो यवन उनका ध्वंस करने वाला अन्य क्षत्रिय राजा।

पहिले कहा गया है कि सुरथ समस्त क्षितिमण्डल का चक्रवर्ती राजा था, इसलिए यह अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि उसी के किन्हीं मण्डलाधीश अधीनस्थ राजाओं ने विद्रोह करके उससे स्पष्ट शत्रुता घोषित कर दी हो। आगे के श्लोक से भी इस अर्थ की पुष्टि होती है। सम्यक्-भलीभांति, नीतिशास्त्र के अनुसार। औरस पुत्र अपनी धर्मपत्नी से उत्पन्न पुत्र स्मृति का कथन है- औरसपुत्र धर्मपत्नीज:।

व्याख्या- वह सुरथ भलीभांति नीति का अनुसरण करते हुए प्रजा की अपनी निज की सन्तान के समान पालन-रक्षण की व्यवस्था करता था किन्तु फिर भी कोलाविध्वंसी नाम के अनेक राजा उसके शत्रु हो गए।

तस्य तैरभवद्युद्धमतिप्रबलदण्डिन:।
न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जित:। ५

अन्वय- अतिप्रबलदण्डिन:तस्य तै: कोलाविध्वंसिभि: सह युद्धम् अभवत्। तै: न्यूनै: अपि स जित:।

शब्दार्थ- अतिप्रबलदण्डिन: के निम्नलिखित दो तीन अर्थ मुख्य हैं- दण्ड का अर्थ- हाथी, घोड़ों का समूह अतिशयेन प्रबलो विद्यते दण्डो यस्य- जिसकी सेना में हाथी घोड़ों की संख्या बहुत अधिक हो। अथवा अतितरां प्रकृष्टं बलं हस्त्यष्वरथपादातसन्नद्धं सैन्यं येषां तान्दण्डयतीति अतिप्रबलदण्डी तस्य अतिप्रबलदण्डिन: जिन शत्रुओं की चतुरंगिणीसेना-हाथी, घोड़े रथ और पैदल सैनिक से युक्त अत्यन्त प्रबल उन्हें भी दण्डित करने वाला सुरथ अतिप्रबलदण्डिन:-अतिप्रबलदण्डकर्तु:-कठोर दण्ड देने वाला। नागोजि भट्ट के अनुसार कठोर दण्डव्यवस्था के कारण मण्डलान्तर्गत राजाओं ने असंतुष्ट होने के कारण मिलकर उस पर आक्रमण कर दिया और सुरथ के स्वपक्ष का

असन्तोष ही उसके पराजय का कारण बना। अत: अतिप्रबलदण्डी के दोनों ही अर्थ यहां अभीष्ट हैं।

व्याख्या- सुरथ की सेना विशाल थी और शत्रुपक्ष के पास साधनों की न्यूनता और संख्या में कम होने पर भी वह शत्रुओं के द्वारा पराजित हुआ।

ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत्।
आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः।६

अन्वय- ततः तैः प्रबलारिभिः आक्रान्तः स महाभागः स्वपुरं आयातः निजदेशाधिपः अभवत्।

शब्दार्थ- महाभाग का अर्थ पूर्व में बताया जा चुका है। सुरथ युद्ध में हार गया है, शत्रुओं से पराजित हो गया है, उसे अपना राज्य छोड़कर भागना पड़ रहा है, फिर भी उसके लिए महाभाग का प्रयोग उसके भावी मन्वन्तराधिप होने के संकेत को सूचित करने के लिए है। कहा गया है- सम्भवे व्यभिचारे च स्याद्विशेषणमर्थवत्। तदा का प्रयोग भी तात्कालिक स्थिति का द्योतक है। जिसे अंग्रेजी में फॉर द टाइम बीइंग कहा जाता है।

व्याख्या- उस समय प्रबल शत्रुओं से पराजित और आक्रान्त हो जाने के कारण वह महाभाग सुरथ युद्धस्थल से लौट कर अपने पुर-नगर में आया और अपने भूभाग का स्वामी मात्र रह गया।

स्वपुर और देश शब्द भी साभिप्राय विशेषण है, इसलिए इसे परिकरांकुर अलंकार भी कहा जा सकता है। इनके प्रयोग का प्रयोजन आगे स्पष्ट किया जा रहा है।

अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैः दुर्बलस्य दुरात्मभिः।
कोशो बलं चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः। ७

अन्वयः- तत्र स्वपुरे अपि ततः दुर्बलस्य बलिभिः दुष्टैः दुरात्मभिः अमात्यैः कोशःबलंच अपहृतम्।

व्याख्या- वहां अपने नगर में भी उस दुर्बल राजा का कोश और सेना उसी के दुष्ट और दूषित अन्तःकरण वाले मन्त्रियों ने जिनका कि शासन में रहते हुए दुष्ट उपाय अपनाने के कारण बल बढ़ गया था, उस निर्बल राजा सुरथ से छीन लिया।

ततः का अर्थ सभी टीकाकारों ने तस्य किया है। स्वामी से द्वेष करने के कारण मन्त्रियों को दुष्ट और कपट से राजा को निर्बल बनाते हुए कोश और सेना हथिया लेने के कारण दुरात्मा कहा गया है।

रहस्य- पहिले बताया जा चुका है कि राजा सुरथ स्वारोचिष मनु के कुल और राजा चैत्र के वंश में उत्पन्न हुआ था। मन्वन्तराधिप का अंश उसमें विद्यमान था। प्रत्येक

प्राण उस विराट् के अंश से उत्पन्न होता है, उसमें उस चिच्छक्ति का अंश रहता है जो इस समस्त सृष्टि की नियामक है। इस नियम के अनुसार, प्रत्येक मनुष्य में-क्षुद्र अंश में ही सही- उस विराट की सभी शक्तियां निहित रहती हैं। जिसके लिए तुलसीदास जी ने कहा है- ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखरासी। परन्तु जिस प्रकार भूमि पर गिरने से बादलों का निर्मल जल मैला हो जाता है, उसी प्रकार जीव इस संसार में आकर अपनी आन्तरिक शक्तियों को भूल जाता है- भूमि परत भा डाभर पानी। जिमि जीवहि मायालपटानी। इस प्रकार इस सार्वभौम साम्राज्य के कोलाविध्वंसी कहीं बाहर से नहीं आते, उस राज्य के भीतर से ही उठ खड़े होते हैं, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर के रूप में ये चोला विध्वंसी-चोला-काया को विध्वंस करने वाले हमारे मन की ही उपज हैं। ये हमारे शरीर के एक अंग होने के कारण हमसे न्यून हैं फिर भी हमारे ऊपर हावी हो रहे हैं। मन हमारा मन्त्री है। हमारे जाने अनजाने वह हमें इन्द्रियों के परवश करके स्वपुर के अधिकार से भी वंचित कर देता है। कोश के अनुसार स्व का अर्थ होता है- स्वःस्यात् पुंस्यात्मनो ज्ञातौ त्रिष्वात्मीयेऽस्त्रियां धने। तथा पुर शरीर को कहते हैं- पुरं शरीरमित्याहु' गृहोपरि गृहे पुरम्। पुरो गुग्गुलराख्यातो नगरेऽपि पुरं पुरी। अतः यह शरीर ही पुर है। दिश्यते देशः स्थानमात्रम्। इस प्रकार हम सर्वशक्तिमान् के अंश होकर भी अपने केवल उस स्थान मात्र के स्वामी रह जाते हैं जिसे पुर कहा गया है। मन हमारा मन्त्री इतना कुटिल है कि षड्रिपुओं के चक्कर में फंसा कर इन्द्रियों का दास बनाकर हमें इस शरीर के स्वामी होने का दम्भ मात्र भरने देता है। इन्द्रियाणि हयानाहुः कहा गया है कि इस शरीर रूपी रथ की इन्द्रियां ही घोड़े हैं। मन लगाम है। हमारे मन की लगाम ढीली होते ही ये इन्द्रिय रूपी अश्व मनमानी करने लगते हैं। होना यह चाहिए कि मन हमारा है, इसलिए उसे हमारा वशवर्ती होना चाहिए। इन्द्रियां मन के द्वारा अपने अपने विषयों की ओर ले जाकर हमारे पतन का कारण बनती हैं। हम अपने इस शरीर रूपी पुर के राजा होते हुए भी सुरथ की भांति अधिकारच्युत हैं। मनुष्य यदि मन और इन्द्रियों को वश में रख सके तो जगत् की सम्पूर्ण सत्ता उसकी है। अभी इन इन्द्रियों से केवल स्थूल का साक्षात्कार कर सकते हैं। इन्द्रियातीत जगत् से हमारा संबंध विच्छेद हो गया है। यदि इस स्थूल के आवरण से मुक्त होकर सूक्ष्म और पर जगत तक हमारी गति हो तो जड़ पंचभूत जो हमारे ऊपर शासन कर रहे हैं, हमारे अधीन हो जायं। पातंजल योग में पंचभूतजय का प्रकार बताते हुए उससे प्राप्त होने वाली सिद्धियों का वर्णन आया है। आगे के कथानक में इतिहास के साथ सुरथ की साधना के संकेत और 'नरो नारायणो बुभूषति' के अनुसार उसके मन्वन्तराधिप तक उत्थान का क्रिया निर्देश किया गया है।

ततो मृगयाव्याजेन हतस्वाम्यः स भूपतिः।

एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम्।८

अन्वय- ततः हतस्वाम्यः स भूपतिः मृगयाव्याजेन हयं आरुह्य एकाकी गहनं वनं जगाम।

व्याख्या- मन्त्रियों के द्वारा राज्य पर अधिकार कर लेने के कारण स्वामित्व से वंचित राजा सुरथ आखेट-शिकार खेलने के बहाने-अकेला ही घोड़े पर सवार होकर गहन वन में चला गया।

विशेष- हृतस्वाम्यः स्वामिनः ईश्वरस्य भावः स्वाम्यं हृतं स्वाम्यं यस्मात् स हृतस्वाम्यः स्वाम्य से आशय ईश्वर के भाव से हैं जिसका ईश्वरत्व हरण कर लिया गया है वह हृतस्वाम्यः। एकाकी-अकेला ही, कहा गया है- एकस्तपो द्विरध्यायी। तपस्या के लिए एकाकी और अध्ययन के लिए दो चाहिए। गहन वन-हृदयगुफा ही वह गहन वन है जहां आत्मा की खोज की जाती है। श्रुति कहती है- आत्मानं विद्धि आत्मा को जानो। सूरदास ने कहा है-

अपनपौ आपही बिसरो।
जैसे सुनहा कांच मंदिर में भरमत भूंक मरो।

महर्षि रमण ने इसी उद्देश्य से लिखा है- मैं कौन हूं। लेकिन इस मैं का जानना बड़ा ही कठिन है। किसी उर्दू के शायर ने कहा है-

मारफत खालिक की आलम में बहुत दुश्वार है।
शहरे तन में जबकि खुद अपना पता मिलता नहीं।

स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य मेधसः।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम्।९

अन्वय- सः तत्र प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम् द्विजवर्यस्य मेधसः आश्रमं अद्राक्षीत्।

शब्दार्थ- मुनिशिष्योपशोभितम् के तीन अर्थ हैं- मुनेर्मेधसः शिष्याः मुनिशिष्याः मुनयो मननशीलास्ते शिष्या, मुनिभिः तच्छिष्यैश्च उपशोभितम्।

१- मननशील शिष्यों से शोभित, २- मुनि और शिष्यों से शोभित
३- मुनि के शिष्यों से शोभित।

प्रशान्तश्वापदाकीर्णं-जिनकी हिंसा वृत्ति शान्त हो गई है ऐसे हिंस्त्र पशुओं से व्याप्त आश्रम में हिंस्त्र पशु परस्पर वैर को भुला कर जहां रहते थे।

व्याख्या- उस राजा सुरथ ने उस गहन वन में ब्रह्माणों में श्रेष्ठ मेधा मुनि का आश्रम देखा जहां हिंसक पशु हिंसा वृत्ति भूलकर त्याग कर विचरण करते थे और जिसमें अनेकों मननशील शिष्य ऋषि से वेदाध्ययन करते थे। अथवा जहां अनेक मुनि और शिष्य रहते थे।

तस्थौ कंचित्सकालं च मुनिना तेन सत्कृत:

इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे।१०

अन्वय- तेन मुनिना सत्कृत: स: तस्मिन् मुनिवराश्रमे इतश्चेतश्च विचरन् कंचित् कालं तस्थौ।

अर्थ- राजा सुरथ के आश्रम में पहुँचने पर उन मुनिवर सुमेधा ने उनका यथोचित सत्कार किया। राजा भी उन मुनिवर के आश्रम में कुछ दिनों तक इधर उधर घूमकर विचरण करता रहा।

सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतन:

मत्पूर्वै: पालितं पूर्वं मयाहीनं पुरं हि तत्।।

मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तै: धर्मत: पाल्यते न वा। ११

अन्वय- तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतन: स: अचिन्तयत् पूर्वं मत्पूर्वै: पालितं तत् पुरं मया हीनं हि तै: मद्भृत्यै: असद्वृत्तै: धर्मत: पाल्यते न वा।

शब्दार्थ- ममत्वाकृष्टचेतन:- यह मेरा है ऐसा अभिमान का भाव ही ममता है उस ममता के कारण जिसकी सम्पूर्ण चेतना मन, बुद्धि और अहंकार निवृत्तिमार्ग को छोड़ कर इसी ओर आकृष्ट हो रही है। राज्य से विरक्त होकर सब कुछ छोड़ कर वन में आया, ऋषि के आश्रम में आया, जहां हिंसक पशु भी वैरभाव भुलाकर शान्त ही नहीं प्रकृष्ट रूप से शान्त हैं, वहां भी सुरथ को साधना में मन लगाने के स्थान पर उसी राज्य की याद सता रही है। विचित्र है यह महामाया का बन्धन। सच है याद उसीकी करते हैं जिसके लिए किसी उर्दू के शायर ने कहा है- बड़े बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले। मत्पूर्वै:- मेरे प्राचीन पुरुषों के द्वारा, पालितं-रक्षितं पूर्व-पूर्व काल में, मद्भृत्यै: मेरे सेवक रहे मन्त्रियों आदि के द्वारा, असद्वृत्तै:- स्वामी के साथ विश्वासघात कर राज्य हथिया लेने के कारण, मयाहीनं- मेरे चले आने के कारण मेरे बिना।

व्याख्या- तब आश्रम में कुछ दिन तक इधर उधर घूमने के पश्चात् वहां पर भी राजा ने सोचा कि मेरे पूर्व पुरुष जिस पुर की सदा से रक्षा करते आये और प्रजा का पालन करते रहे, वही अब मेरे बिना मेरे अमात्य मन्त्री आदि उन सेवकों के अधिकार में आगया है जिनका स्वयं का आचरण असत् रहा है अत: वे पुरवासियों की दुखों से रक्षा अपना धर्म समझ कर करते हैं अथवा नहीं। यह विचार राजा के मन में इसलिए आ रहे थे क्योंकि उसका मन आश्रम में भी अशांत ही था। उसे अपने पुर की याद यहां भी सता रही थी।

न जाने सप्रधानो मे शूरहस्ती सदामद:।

ममवैरिवशं यात: कान्भोगानुपलप्स्यते।१२

अन्वय- सं प्रधानः मे सदामदः शूरहस्ती मम वैरिवशं यातः कान् भोगान् उपलप्स्यते इति न जाने।

शब्दार्थ- प्रधान-मुख्य, प्रमुख, संस्कृत में प्रधान शब्द नपुंसक लिंग में प्रयुक्त होता है, यहां पुल्लिग में प्रयोग आर्ष है। इसे आर्ष प्रयोग मान लेना चाहिए यह किसी टीकाकार का मत है। अन्य टीकाकारों के अनुसार सप्रधान को एक समस्त पद मान लेने से पुल्लिग प्रयोग भी ठीक है। किसी का मत है कि व्यवहार में प्रधान शब्द का पुल्लिग में प्रयोग वाल्मीकि रामायण में भी आया है यथा- ये प्रधानाः प्लवंगमाः। अतः पुल्लिग प्रयोग भी हो सकता है। कोश के अनुसार-प्रधानं प्रकृतौ बुद्धावुत्तमे परमात्मनि। महामात्रे- इसके अनुसार नपुसंकलिंग प्रधान उत्तम और महामात्र के लिए आता है। मेदिनीकार के अनुसार-प्रधानं स्यान्महामात्रे प्रकृतौ परमात्मनि। प्रज्ञायामपि च क्लीबमेकत्वे तूत्तमे सदा। इसके अनुसार महामात्र और उत्तम दोनों के ही अर्थ में यह नपुंसलिंग में ही प्रयुक्त होता है। किन्तु महामात्रः प्रधानः स्यात् इसके अनुसार पुल्लिग भी हो सकता है।

इस प्रकार अर्थ होता है- वह प्रधान-मुख्य। सप्रधान मानकर अर्थ होता है- प्रधानानि महामात्रास्तैः सहितः महावतों के सहित अथवा सप्रधानः-महामात्रसहितः महावत सहित।

सदामदः- इसे सदामदः सदा-मदः और स दामदः तीन प्रकार से पदच्छेद करके अर्थ किए गये हैं। स को पृथक् पद मानकर वह प्रसिद्ध दामदः दामानि द्यति खण्डयति इति दामदः वह हाथी जो अपने बन्धन की रज्जु को तोड़ डालता है। दाम्ना सह सदामा स्तम्भस्तं द्यति खण्डयति इतिसदामदः रस्सी के साथ बांधने के स्तम्भ को जो तोड़ डालता है वह सदामदः। सदा मदो यस्येति सदामदः जिसके मस्तक से सदैव मद झरता रहता है। वह सदामद।

व्याख्या- मेरे जिस शूरवीर हाथी को सदामद सार्थक नाम दिया गया है जिसके मस्तक से सदैव मद झरता रहता है जो बंधन को तोड़ डालता है और जो बन्धन सहित स्तम्भ को भी उखाड़ देता है वह हाथी और उसके महावत अब मेरे शत्रुओं के वश में पड़ गए हैं, वे शत्रुओं के हाथों न जाने किस अवस्था में होंगे उन पर क्या बीत रही होगी यह भी मुझे ज्ञात नहीं।

ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः।१३

अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम्।

अन्वय- ये नित्यं प्रसादधनभोजनैः ममानुगता ते अद्य अन्यमहीभृतां अनुवृत्तिं ध्रुवं कुर्वन्ति।

शब्दार्थ- प्रसादधनभोजनैः-प्रसाद-अनुग्रह अथवा सन्तोष देना, धन-जो वेतन के रूप में दिया जाय, भोजन जो प्रतिदिन दिया जाय, इस प्रकार दैनिक, मासिक और यथाकाल दान से सर्वथा मेरे अनुगत, ध्रुव-विश्वकोश के अनुसार-ध्रुवं तु निश्चिते तर्के निश्चले शाश्वतेऽन्यवत्। ध्रुव का प्रयोग निश्चित के अर्थ में होता है, परन्तु यहां तर्क वितर्क के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है- अलंकार शास्त्र के अनुसार भी-मन्ये शंके ध्रुवं नूनं प्राय इत्येवमादिभिः। उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिव शब्दोपि तादृशः। उत्प्रेक्षा के अर्थ में आया है। अनुवृत्ति-सेवा।

व्याख्या- मैं अपने जिन सेवकों को सदा ही भोजन, वेतन और अनुग्रह से संतुष्ट रखता था वे ही मेरे सेवक अब अन्य राजाओं की चाकरी कर रहे होंगे। ऐसा वह सोचता रहा।

असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम्।१४

संचितः सोऽति दुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति।

एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः।१५

अन्वय- अतिदुःखेन (मत्पूवैः मया च) संचितः सः कोशः सततं व्ययं कुर्वद्भिः असम्यग्व्ययशीलैः तैः क्षयं गमिष्यति सः पार्थिवः एतत् अन्यत् च सततं चिन्तयामास।

व्याख्या- जिस धन का-खजाने का-मेरे पूर्वजों ने और मैंने बड़े कष्ट से संचय किया था, वही कोश अब उन लोगों के हाथ आ गया है जो सदा ही असम्यक् अनुचित ढंग से व्यय करने के अभ्यस्त हैं और जो सदा व्यय करते रहते हैं, इसलिए उस कोश का भी क्षय हो जायगा। कहा गया है-

आगमे च व्ययाभावे व्यये चानागमे क्रमात्।

कोशस्य वृद्धिनाशौस्तः तत्साम्ये पूर्वरूपता।

आय होती रहे पर व्यय न हो तो कोश बढ़ता जाता है और व्यय होता रहे पर आय न हो तो कोश का क्षय हो जाता है। नीति के अनुसार-आयात्तुरीयांशो व्ययः सम्यग्व्ययः ततोऽन्यथा असम्यग्व्ययः। आय से व्यय चौथाई हो तो उसे उचित व्यय कहा जाता है इससे अधिक व्यय होने पर वह असम्यग्व्यय है। अथवा आयात्तृतीयांश व्ययः सम्यग्व्ययः तद्रहितः असम्यग्व्ययः। आय से तिहाई व्यय हो तो सम्यग्व्यय और उससे अधिक हो तो असम्यग्व्यय। पर वास्तव में असम्यग्व्यय से यहां तात्पर्य उस प्रकार के व्यय से है जिसे राजा जुआ, मद्यपान और वेश्यागमन आदि में व्यय करते रहते हों। कहा भी है, कि माले मुफ्त दिले बेरहम। मुफ्त में जो कोश बिना पसीने की कमाई के हाथ आ गया उसके असम्यग्व्यय की सम्भावना तो स्वाभाविक है। पार्थिव कहते हैं-पृथ्वी का स्वामी, परन्तु अब तो वह पृथ्वी का स्वामी नहीं है, किन्तु पृथ्वी में

विख्यात के लिए भी पार्थिव का प्रयोग होता है। राजा सुरथ इस प्रकार अपने परिकर, हाथियों, अनुचरों, सेवकों और खजाने की चिन्ता के साथ ही अन्य जैसे रनिवास, नगर और देश आदि की चिन्ता करता रहा। कहा भी गया है-

मम भार्या वरारोहा पुत्रश्चातीवशोभनः।

सद्मानि स्वर्गसदृशान्यप्सरः प्रतिमाः स्त्रियः

मेरी ऐसी सुन्दर स्त्री, ऐसा अच्छा पुत्र ऐसे स्वर्ग के समान महल और अप्सराओं के समान अन्य स्त्रियों की न जाने क्या दशा हुई होगी।

सततं चिन्तयामास पार्थिवः इसके दो प्रकार से अर्थ किए गये हैं– स पार्थिवः ततं चिन्तयामास, और पार्थिवः सततं चिन्तयामास। प्रथम के अनुसर अर्थ होता है- वह राजा इस प्रकार लगातार अथवा इससे अन्य प्रकार भी सोचता रहा। दूसरे का अर्थ होता है कि राजा सदैव सोचता रहा। सदैव अर्थ से उसकी जिस मानसिकता का पता चलता है, उसके अनुसार ऐसी मानसिकता उसके भावी साधनामय जीवन के द्वारा प्राप्तव्य मनु की पदवी के अनुरूप नहीं होती इसीलिए सतत को असमस्त स और ततं मानकर अर्थ किया जाता है।

तत्र-विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः।

स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः।१६

सशोक इव कस्मात्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे।

अन्वय- सः विप्राश्रमाभ्याशे तत्र एकं वैश्यं ददर्श, तेन सः पृष्टः भो त्वं कः अत्र आगमने च कःहेतुः। त्वं कस्मात् सशोक इव दुर्मना इव च लक्ष्यसे।

शब्दार्थ- विप्रस्यमेधसः आश्रमस्य अभ्याशे निकटे-विप्राश्रमाभ्याशे

व्याख्या- उस राजा ने उन विप्र के आश्रम के समीप वहां एक वैश्य को देखा और उससे पूछा कि अरे तुम कौन हो, तुम्हारे यहां आने का क्या कारण है, तुम यहां किसलिए आये हो। आप कुछ खिन्न से कुछ अनमने से जान पड़ते हो।

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम्।१७

प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम्।

अन्वय- इति तस्य भूपतेः प्रणयोदितं वचः आकर्ण्य सः वैश्यः प्रश्रयावनतः सन् तं नृपं प्रत्युवाच।

शब्दार्थ- प्रणयोदितम्-प्रणयेन उदितम् प्रेमपूर्वक कथितम्। उदित वद धातु का क्त प्रत्ययान्त रूप है। प्रश्रयावनतम् प्रश्रयेण विनयेन अवनतम् नम्रम्-विनय से नम्र कोश के अनुसार-प्रणयः प्रसरे प्रेम्णि याञ्चाविश्रम्भयो रपि। तथा-परिचयप्रार्थनयोः प्रणयः परिकीर्तितः।

इस प्रकार विश्वास, परिचय और घनिष्ठता ये तीनों ही अर्थ यहां संगत हैं। प्रश्रय का भी वही अर्थ है कोश के अनुसार-प्रश्रयप्रणयौ समौ।

व्याख्या- उस राजा सुरथ की इस प्रकार अत्मीयता और विश्वास से युक्त वाणी सुनकर वैश्य ने विनय और नम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

वैश्य उवाच- समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले। १८

अन्वय- धनिनां कुले उत्पन्नः अहं समाधिर्नाम वैश्यः अस्मि।

व्याख्या- मैं धनी परिवार में उत्पन्न समाधि नाम का वैश्य हूँ। इस प्रकार राजा के उस प्रश्न का उत्तर हुआ कि तुम कौन हो। कस्त्वं भो

नोट- यहां वैश्य उवाच पाठ अधिक ही है। क्योंकि ऊपर की पंक्ति से-प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम् से स्पष्ट हो जाता है कि आगे वैश्य का प्रत्युत्तर है।

सम्भव है कि उस समय इस प्रकार कथन की परिपाटी रही हो। जैसे कि गीता में

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः।

इसके पश्चात यह स्पष्ट होने पर भी कि मधुसूदन उवाच-आगे कहा गया है- श्री भगवानुवाच। परन्तु यहाँ तो मार्कण्डेय उवाच और वैश्य उवाच जैसे वाक्यों को सातसौ मन्त्रों की गणना में माना गया है। मार्कण्डेय उवाच स्वाहा और वैश्य उवाच स्वाहा कहकर आहुति दी जाती है। गुप्तवती टीकाकार भास्करराय ने इसका बड़ा ही सुन्दर समाधान दिया है। उनका कहना है कि-मार्कण्डेय उवाच स्वाहा ऐसा कहने का तात्पर्य यही समझना चाहिए कि मार्कण्डेयो यस्या माहात्म्यमुवाच तस्यैव हविरिदं दत्तम्। ऐसा विचार कर आहुति देना चाहिए। इसी प्रकार अन्यत्रापि स्वयमूहनीयाः तद्नुसार ही अन्य मन्त्रों में भी आहुति देवीपरक ही मानी जाना चाहिए।

पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः।
विहीनः स्वजनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम्।१९

अन्वय- धनलोभादसाधुभिः पुत्रदारैः निरस्तः स्वजनैः दारैः पुत्रैः मे धनं आदाय विहीनः।

शब्दार्थ- पुत्रदारैः-पुत्रैश्च दारैश्च पुत्र और स्त्रियों के द्वारा, पुत्राणां दारैश्च-पुत्र-वधुओं के द्वारा, निरस्तः निष्कासितः निकाल दिया गया, त्याग दिया गया, कोश के अनुसार-निरस्ते प्रेषितशरे संत्यक्ते त्वरितोदिते और प्रत्यादिष्टो निरस्तः स्यात्प्रत्याख्यातो निराकृतः अतः निरादार करके निकाल दिया अथवा त्याग दिया विहीनः-आप्टे के कोश के

अनुसार-परित्यक्त।

व्याख्या- मेरे पुत्र, पत्नी और पुत्रवधुओं ने धन के लोभ से दुष्टतापूर्वक मेरा अपमान किया, मुझे तिरस्कृत किया मेरी निन्दा की, मुझे बुरा भला कहा स्वजनों के द्वारा भी मेरा तिरस्कार किया गया। इतना ही नहीं पुत्रों और पत्नियोंने मिलकर मेरा धन छीन लिया और मुझे घर से निकाल दिया। इस प्रकार सशोक इव लक्ष्यसे का उत्तर पूरा हुआ।

वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः।

सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम्।२०

प्रवृत्तिं स्वजनानांच दाराणांचात्र संस्थितः।

अन्वय- आप्तबन्धुभिः निरस्तः चकारेण अपहृतधनश्च अहं दुखीसन् वनं अभ्यागतः सःअहं अत्र संस्थितः सन् पुत्राणां दाराणां स्वजनानांच कुशलाकुशलात्मिकां प्रवृत्तिं न वेद्मि।

शब्दार्थ- आप्तबन्धुभिः निरस्तः आप्तैश्च तैः बन्धुभिः। आप्त का अर्थ विश्वसनीय मित्र और बन्धुभिः- बन्धु बान्धवों के द्वारा। निरस्तः-अपमानित किया और निकाल दिया दोनों ही अर्थ यहां अभिप्रेत हैं। चकार से ऊपर कह आये हैं- स्वजनैः दारैः पुत्रैः मे धनं आदाय-इसलिए धन का अपहरण करके भी प्रवृत्ति-वृत्तान्त कुशलाकुशलात्मिकाम् कुशंलं चाकुशलं आत्मा स्वभावो यस्याः सा तथोक्ता, संस्थित-ठहरा हुआ।

व्याख्या- इस प्रकार अपने परिचित विश्वसनीय घनिष्ठ मित्रों और बन्धु बान्धवों से अपमानित होकर दुःखी होकर वन में चला आया। अब यहां रहकर मुझे पता नहीं कि मेरे पुत्र, पत्नियाँ और स्वजन क्या करते हैं किस अवस्था में हैं, कुशलपूर्वक रह रहे हैं अथवा नहीं। राजा का प्रश्न था कि-दुर्मना इव लक्ष्यसे-अस्थिर चित्त और खिन्न होने का यही कारण है।

किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम्।२१

कथं ते किं नु सद्वृत्ताः दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः।

अन्वय- साम्प्रतं तेषां गृहे किं नु क्षेमं किं नु अक्षेमं (इति न वेद्मि)। ते सुताः साम्प्रतम् किं सद्वृत्ताः नु अथवा ते सुताः किं दुर्वृत्ताः नु (इति तदुभयं कथं मे ज्ञेयं स्यात्)।

शब्दार्थ- साम्प्रतम्-सम्प्रति, इस समय, तेषाम्-पुत्र आदि का, किम्-प्रश्न और नु वितर्क के लिए प्रयुक्त, कोश के अनुसार-नु स्यात्प्रश्ने विकल्पार्थेऽप्यतीतानुनयोरपि। प्रश्न और अनिश्चयवाचक। "नु पृच्छायां विकल्पने" क्षेम-कुशलं क्षेममस्त्रियाम्। कुशल और अक्षेम अकुशल। सुताः-पुत्र और पुत्रियां।

व्याख्या- मेरे उन पुत्रादिकों के घर में इस समय कुशल क्षेम है अथवा नहीं, यह भी मुझसे ज्ञात नहीं हो पा रहा है। मेरे पुत्र-पुत्रियां स्वजनों के जैसा आचरण कर रहे हैं अथवा दुर्जनों के समान, यह भी मुझे ज्ञात नहीं। यही मेरा चिन्ता का विषय है, इसीलिए में दुर्मना-अस्थिरचित्त हूं। यह राजा के तीसरे प्रश्न का उत्तर हुआ।

रहस्य- राजा सुरथ की भांति समाधि की भी यही दशा है। राजा अपने स्वत्व से वंचित हो गया है, समाधि अपने स्व से वंचित हुआ है। इस शरीर रूपी पुर में हमारी इन्द्रियां और मन अपने हैं। हम उनकी प्रत्येक सुविधा का ध्यान रखते हैं। इन्द्रियां मन के माध्यम से जब भी जो भी मांग प्रस्तुत करती हैं, हम उसे पूरा करने के लिए प्रयत्नशील हो जाते हैं। हमें पता ही नहीं चलने पाता कि इन इन्द्रियों ने मन से मिलकर हमारे स्व से और स्वत्व से हमें कबका अपदस्थ किया हुआ है, उन पर हमारा शासन होना चाहिए था ठीक इससे उलटे हम उनके वश में अवश और असहाय होकर चल रहे हैं। रसना स्वाद मांगती है, घ्राण सुगन्धि मांगती है, नेत्र सुन्दरता के लोभी हैं। किसी ने कहा भी है- कुरंगमातंगपतंगभृंगमीनाः हताः पंचभिरेव पंच मृग मधुर स्वरमाधुरी के मोह में पड़कर जाल में फंसता है, हाथी कामवासना से प्रेरित होकर बन्धन में पड़ता है, पतिंगा दीपक की लौ से आकर्षित होकर प्राण गंवाता है, भौंरा गन्ध में पड़कर कमलदल में बन्दी होता है, मछली स्वाद के मोह में पड़कर कंटिया में फंसती है। इस प्रकार रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द इनके केवल एक एक के ही मोह से क्रमशः पतिंगा, मछली, भ्रमर, हाथी और मृग बन्धन में पड़ते हैं, फिर मनुष्य जिसे इन पांचों का आकर्षण अवश किए दे रहा हो, किस प्रकार सुरक्षित रह सकता है। स्थिति यह है कि जिन इन्द्रियों और मन पर हमें नियन्त्रण करना चाहिए, हम उलटे इनके नियन्त्रण में चल रहे हैं। यहां पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि गीता में इस प्रकार मोह में पड़कर कर्तव्य से विमुख होने वाला अर्जुन श्रीकृष्ण से-शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्-कहकर भी कहता है-न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह। परन्तु उसके रथ के दिशानिर्देशक स्वयं भगवान हैं। सप्तशती में महामाया के अनुभाव से सुरथ और समाधि दोनों ही अपरिचित हैं और ऋषि जब उन्हें सम्पूर्ण इतिवृत्त सुनाकर आदेश देता है-तामुपैहि महाराज, तब उनका साधना का कार्यक्रम प्रारम्भ होता है। सुरथ और समाधि के समान ही हमारे रथ के चालक भगवान् कृष्ण नहीं हैं, हमें अपनी साधना से अपने पर विजय पाना है। अतः सप्तशती के सुरथ और समाधि का उपासना मार्ग हमें अपनी सामर्थ्य का स्मरण करा कर आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।

राजोवाच- यैर्निरस्तो भवांल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः।२२
तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम्।

अन्वय- भवान् धनैःलुब्धैः यैः पुत्रदारादिभिः निरस्तः तेषु भवतः मानसं स्नेहं

किम् अनुबध्नाति।

शब्दार्थ- धनैः - धन केकारण से, लुब्धैः- लालची, मानसम्-मन, अनुबध्नाति-लगाव रखता है, आसक्ति है।

व्याख्या- राजा ने वैश्य के इस प्रकार के वचन सुनकर कहा कि-

धन के लोभ में पड़कर जिन स्त्रीपुत्रों ने आपको अपमानित करके घर से निकाल दिया उन्हीं के प्रति आपके मन में इतनी आसक्ति इतना लगाव क्यों है।

वैश्य उवाच- एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मदगतं वचः।२३

किं करोमि न बध्नाति ममनिष्ठुरतां मनः।२३

अन्वय- भवान् अस्मदगतं यद्वचः यथा प्राह एतत् एवम्। अहं कि करोमि मम मनः तेषां प्रति निष्ठुरतां न बध्नाति।

भवानस्मदगतं के स्थान पर भवान्यन्मद्गतं पाठ भी है। कुछ टीकाकारों का कहना है कि वैश्य का अपने लिए अस्मद्गतम बहुवचन का प्रयोग करना विनयावनत होने के स्थान पर प्रगल्भता का सूचक प्रतीत होता है। दूसरे एतत् के साथ यत् का पूर्व प्रयोग भी उचित है। किन्तु अस्मदोद्वयोश्च, इसके अनुसार एकवचन के लिए भी बहुवचन का प्रयोग हो सकता है। और भवानस्मद्गतम् प्रचलित भी है।

व्याख्या- वैश्य ने कहा- हे राजन् आप मेरी बात के विषय में जो कह रहे हैं वह यथार्थ है। किन्तु मैं क्या करूँ। मेरा मन उन आत्मीयों के प्रति जिन्होंने मेरे प्रति भले ही अपकार किया है, परन्तु मैं निष्ठुर नहीं हो पाता। यह मेरे मन की दुर्बलता भले ही मानी जाय।

यैः सन्त्यज्य पितृस्नेहं धनुलुब्धैः निराकृतः।

पतिस्वजनहार्दं च हार्दि तेष्वेव मे मनः।२४

अन्वय- यैः धनलुब्धैः पितृस्नेहं पतिस्वजनहार्दं च सन्त्यज्य निराकृतः तेषु मे मनः हार्दि एव।

शब्दार्थ- यैः पुत्रदारस्वजनैः जिन पुत्र, पत्नी और स्वजनों ने, हार्दि-हृदयस्य स्वान्तस्य कर्म हार्द हृदय से चाहना अर्थात् प्रेम स्नेह हार्दि मन का विशेषण है अर्थ होता है- स्नेहयुक्त। पतिस्वजनहार्दं-पतिहार्द' स्वजनहार्दंच। पति के प्रति प्रेम और अपने ही आत्मीय के प्रति प्रेम।

व्याख्या- धन के लोभ से मेरे जिन स्त्रीपुत्र और परिजनों सृहदों स्नेहियों घनिष्ठ मित्रों ने मुझे त्याग कर अपमानित करके निकाल दिया है, उनके प्रति भी मेरे मन में प्रीति है यह क्यों है इसे मैं नहीं जानता।

किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते।

यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु।२५

अन्वय- हे महामते जानन् अपि विगुणेषु अपि बन्धुषु यत्प्रेमप्रवणं चित्तं एतत् किम् इति नाभिजानामि।

अन्यथा अन्वय- हे महामते विगुणेषु अपि बन्धुषु प्रेमप्रवणं में चित्तं इति जानन्नपि यत् नाभिजानामि एतत् किम्।

तीसरा अन्वय- हे महामते यत् बन्धुषु विगुणेषु अपि मे चित्तं प्रेमप्रवणं एतत् जानन्नपि एतत् वारयितुम् किम् करोमि इति नाभिजानामि।

चतुर्थ अन्वय- हे महामते तेषां दोषं जानन्नपि यत् विगुणोष्वपि बन्धुषु प्रेमप्रवणं चित्तं तत् किम् कस्माद्हेतोः इति न अभिजानामि।

शब्दार्थ- प्रेमप्रवणम्-प्रेम से नम्र अथवा अनुकूल, जानन्-ज्ञानवान् जानते हुए भी, समझदार होते हुए भी, महामति-महती मतिर्यस्य सः महामति, अत्यंत बुद्धिमान्, विगुणेषु-विरुद्ध गुण वाले, गुणों से रहित, हीनगुण वाले अथवा स्नेहरहित।

व्याख्या- हे महामति, मैं ज्ञानवान् होते हुए भी अपने से विरुद्ध स्वभाव वाले बन्धुओं के प्रति स्नेहवश उनके अनुकूल हूं, ऐसा क्यों है, इसे में नहीं जानता।

दूसरा अर्थ- हे महामति, स्नेहरहित अथवा विपरीत गुण वाले अथवा गुणहीन बन्धु बान्धवों के प्रति मेरे मन में उनके लिए बहुत स्नेह है इसे जानते हुए भी मैं इसका कारण नहीं समझ पाता।

तीसरी व्याख्या- हे महामति, बन्धुओं के स्नेहरहित होने पर भी मेरा मन उनके प्रति प्रेममय है, यह जानते हुए भी मन की इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए क्या करूं मैं यह नहीं समझ पाता।

चतुर्थ व्याख्या- हे महामति, अपने बन्धु बान्धवों के दोषों को जानते हुए भी उन बन्धु बान्धवों के प्रति मेरे चित्त में किस कारण यह प्रेम है यह मैं नहीं समझता।

तेषां कृते मे निश्वासो दौर्मनस्यं च जायते।

करोमि किं यन्नमनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम्।२६

अन्वय- तेषां कृते मे निश्वासो दौर्मनस्यं च जायते, यत् मयि अप्रीतिषु अपि तेषु मे मनः निष्ठुरं न जायते अतः किम् करोमि।

शब्दार्थ- निःश्वास-निर्गच्छति श्वासो यस्मात् स निःश्वासः शोकः जिसके कारण मुख से आह निकले ऐसा शोक, दौर्मनस्यं-दुस्थं मनो स दुर्मना तस्य भावः दौर्मनस्यम्। मन स्थिर-शान्त न हो वह दुर्मना दुर्मना होने का भाव ही दौर्मनस्य। अप्रीतिषु-प्रीति रहित

निष्ठुर कठोर।

व्याख्या- अपने उन्हीं स्त्रीपुत्र और स्वजनों के लिए मैं शोक कर रहा हूँ और आहें भर रहा हूं जिनकी मेरे प्रति प्रीति नहीं है। मेरा मन उनके लिए कठोर नहीं हो पाता मैं क्या करूं।

मार्कण्डेय उवाच- ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ।
समाधिर्नाम वैश्योऽसौ सच पार्थिवसत्तमः।२७

अन्वय- हे विप्र ततः समाधिर्नाम असौ वैश्यः पार्थिवसत्तमः स च तौ सहितौ तं मुनिं समुपस्थितौ।

शब्दार्थ- सहितौ-मिलकर अथवा हितसंयुक्त अथवा मित्रता के कारण मिलकर वास्तव में समान हित-उद्देश्य है जिनका, पार्थिवसत्तमः-पार्थिव-राजाओं में सबसे अधिक सज्जन। तम उत्कृष्टतावाची प्रत्यय है। समुपस्थितौ-दोनों समीप पहुंचे।

व्याख्या- मार्कण्डेय ऋषि ने शिष्य को सम्बोधित करते हुए कहा कि हे विप्र, तब वे दोनों-समाधि नामक वैश्य और राजाओं में श्रेष्ठ सुरथ मिलकर उन सुमेधा मुनि के समीप उपस्थित हुए।

कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम्।
उपविष्टौ कथाः काचिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ।२८

अन्वय- तेन यथान्यायं यथार्हं संविदं कृत्वा उपविष्टौ तौ वैश्यपार्थिवौ काचित् कथा चक्रतुः।

शब्दार्थ- यथान्यायम्-शास्त्र के विधान के अनुसार, यथार्हम्-जैसा कि उचित हो, संविदम्-कोश के अनुसार-संवित्संभाषणे ज्ञाने संग्रामे नाम्नि तोषणे। क्रियाकारे प्रतिज्ञायां संकेताचारयोरपि। यहां संविदा के दो अर्थ अभिप्रेत हैं-संभाषा और आचार।

व्याख्या- मुनि के पास जाकर उन दोनों-सुरथ और समाधि ने शास्त्रानुमोदित विधि के अनुसार प्रचलित आचार के अनुसार मुनि को प्रणाम नमस्कार आदि करके उनकी अभ्यर्हणा की। मुनि के साथ सामान्य शिष्टाचार के अनुसार सम्भाषण किया। मुनि का संकेत पाकर वे दोनों वहीं बैठ गये। फिर उनमें परस्पर किसी प्रकार की अपने स्वार्थ अथवा किसी अन्य के संबंध में बातचीत होने लगी।

काचित् का अर्थ एक टीकाकार ने स्वार्थपरक किया है, वैसे स्वपरविषया अर्थ ही अधिक ठीक प्रतीत होता है।

राजोवाच- भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत्।
दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां बिना।२९

अन्वय- हे भगवन् त्वां एकं प्रष्टुम् इच्छामि तत् वदस्व यत् स्वचित्तायत्ततां बिना मे मनसः दुःखाय भवति।

शब्दार्थ- एकं-एक बात, वदस्व-सामान्यतया परस्मैपद वद होता है, यहां आत्मनेपद का प्रयोग बात पर जोर डालने के लिए किया गया है कि आप यत्न करके भी अवश्य ही बतायें। दूसरा पक्ष यह भी है कि "भासनोपसंभाषा" सूत्र के अनुसार ध्यान आकर्षित करने अथवा एकान्त में परामर्श करने के अर्थ में इसका आत्मनेपद प्रयोग भी होता है। स्वचित्तायत्ततां बिना-आयत्तता का अर्थ अधीन होना होता है कोश के अनुसार-अधीनो निघ्न आयत्तः "स्वचित्तायत्ततां" अपने मन का अधीन होना स्वचित्ते निरोधं बिना-हृदय से निरोध न कर पाने के कारण, संकल्पविकल्पात्मक मन को स्थिर निश्चयात्मक न कर पाने के कारण।

व्याख्या- राजा ने ऋषि से पूछा कि हे भगवन् मैं एक बात आपसे पूछना चाहता हूं कि मेरा मन मेरे वश में न होने के कारण अनेक संकल्प विकल्पों में पड़कर दुखी हो रहा है, इस मन की परिस्थिति से मैं दुखी हूं। आप जब तक मुझे इस विषय में उपदेश देकर समझायेंगे नहीं तब तक मेरा मन वश में न हो सकेगा और मैं दुखी रहूंगा।

ममत्वं गतराज्यस्य राज्यांगेष्वखिलेष्वपि।
जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम।३०

अन्वय- हे मुनिसत्तम, जानतः अपि गतराज्यस्य अखिलेषु अपि राज्यांगेषु यथाज्ञस्य ममत्वं वर्तते एतत् किम् अथवा किम् एतत्।

शब्दार्थ- मुनिसत्तम- मुनियों में अत्यन्त विद्वान्, अतिशयेन सत् विपश्चित् इति। जानतः अपि-जानते हुए भी, ज्ञानवान होते हुए भी, गतराज्यस्य-गतं राज्यं यस्य सःतस्य राज्यांगेषु-राज्य के सात अंग बताये गए हैं- स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च। स्वामी-राजा, अमात्य-मन्त्री, सुहृत्-मित्र, कोश-खजाना, राष्ट्र-देश, दुर्ग-किला, बलानि-सेना यथाज्ञस्य-अज्ञ-मूर्ख के समान, एतत् किम्-ऐसा क्यों है। किम् एतत्-यह सब क्या है यह है क्या।

व्याख्या- हे मुनिवर आप ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं, मुझे यह बताइये कि मैं यह जानते हुए भी कि मेरा राजपाट सब चला गया है। अब उसमें मेरा कुछ भी नहीं है फिर भी मैं अब भी अपने पूर्व सेवकों हाथी घोड़े खजाना और सेनाओं की चिन्ता करता रहता हूं। इस ममता का क्या कारण है। ऐसा क्यों है।

अयं च निकृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः।
स्वजनेन च संत्यक्तः तेषु हार्दी तथाप्यति।३१

अन्वय- अयं च पुत्रैर्दारैः निकृतः तथा उज्झितः भृत्यैः उज्झितः स्वजनेन च

संत्यक्त: तथापि तेषु अति हार्दी।

शब्दार्थ- निकृत: कोश के अनुसार ''निकृतं विप्रलब्धे स्यात् शठे विप्रकृते त्रिषु'' जिसे धोखा दिया गया हो जिसका अपमान किया गया हो, सताया गया, हानि पहुंचाना, दुर्व्यवहार किया गया, उज्झित:-निकाला गया, त्यागा गया, अतिहार्दी-अतिशय स्नेहवान्।

व्याख्या- यह समाधि वैश्य जिसे इसके स्त्री पुत्रों ने धोखा दिया, उसका धन छीन लिया, अपमानित किया, दुर्व्यवहार किया और फिर घर से निकाल बाहर किया, सेवकों ने इसका साथ छोड़ दिया, स्वजन, इष्टमित्र और बन्धुबान्धवों ने भी इसे त्याग दिया फिर भी इसके हृदय में सबके प्रति अत्यन्त स्नेह है ऐसा क्यों है।

एवमेष तथाहंच द्वावप्यत्यन्तदु:खितौ।
दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ।३२

अन्वय- एष: एवं अहं च दृष्टदोषे अपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ द्वौ अपि अत्यन्त दु:खितौ वर्तावहे।

शब्दार्थ- एष: यह समाधि वैश्य, तथा और एवं- उसी प्रकार, दृष्टदोषे- जिसके दोष दिखाई दें, जिसकी बुराइयां सामने हों, विषये- उस विषय में वास्तव में इन्द्रियों के तत्संबंधी विषयों में ममत्वाकृष्टमानसौ-ममता वश जिनका मन उन विषयों की ओर आकर्षित हो रहा है।

व्याख्या- यह समाधि वैश्य और इसी प्रकार मैं भी ममता के कारण उन्हीं विषयों की ओर आकर्षित हो रहे हैं जिनके कि दोष भी हम जान चुके हैं, अनुभव कर चुके हैं और उन्हीं के लिए अब भी अत्यंत दु:खी हो रहे हैं। कहा भी है- अर्थानामर्जने दु:खं अर्जितानां च रक्षणे। रक्षितानां व्यये दु:खं धिगर्थं दु:खभाजनम्। अर्थ धन और पदार्थ भी इनके कमाई करने में कष्ट होता है, अर्जित की हुई सम्पत्ति, धन, जमीन जायदाद की रक्षा करने में भी कष्ट होता है और अर्जित सम्पत्ति को व्यय करते समय भी दु:ख होता है। ऐसे दु:ख के भाजन जिसमें आदि से अन्त तक दुख ही दुख है उस अर्थ को धन को धिक्कार है।

तत्किमेतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि।
ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता।३३

अन्वय- हे महाभाग, मम अस्य चज्ञानिनो: अपि यत् मोह:तत् एतत् किम्। एषा मूढता विवेकान्धस्य अथ च अविवेकान्धस्य भवति (न तु विवेकिन:) तत्कथम् आवयो: मोह: एतत् किम्

शब्दार्थ- महाभाग-भग का आशय पहले बताया जा चुका है भग का भाव-ऐश्वर्यादि महांश्चासौ भाग: अस्य महाभाग तत्संबोधने हे महाभाग एषा-मूढता के लिए

प्रयुक्त। विवेकान्धस्य-विवेकहीन, विवेकशून्य, अविवेकानधस्य-अविवेक के कारण जो अन्धे के समान अज्ञानी हो।

व्याख्या- हे महान ऐश्वर्यशाली मुनि, मैं और यह समाधि वैश्य दोनों ही ज्ञानी हैं। फिर भी हम लोगों को इस प्रकार मोह होना क्या है, यह किस कारण होता है। ऐसा मोह तो अविवेकी पुरुषों को ही होता है। विवेकान्ध-विवेक के चक्षु जिनके बन्द हैं। यह ज्ञान और अज्ञान का एक साथ होना किस कारण है यही हमें समझाइये।

ऋषिरुवाच- ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे।

विषयश्च महाभाग याति चैवं पृथक् पृथक्।३४

अन्वय- ऋषि: उवाच- हे महाभाग, समस्तस्य जन्तो: विषयगोचरे ज्ञानं अस्ति।

द्वितीय पंक्ति में कुछ पाठभेद मिलते हैं-

विषयाश्च महाभाग यान्ति चैवं पृथक् पृथक्।

विषयश्च महाभाग जातिश्चैव पृथक् पृथक्।

अन्वय होगा- विषय: च एवं (वक्ष्यमाण प्रकारेण) पृथक् पृथक् याति।

विषया: च एवं (वक्ष्यमाणप्रकारेण) पृथक् पृथक् यान्ति।

विषय: जातिश्च वक्ष्यमाणप्रकारेण पृथक् पृथक् एवम्

यथा विषय: पृथक् पृथक् एवं जाति: च

शब्दार्थ- महाभाग-महद् भागं यस्यासौ महाभाग: राजा के लिए भावी उत्थान-सूचक संबोधन, विषयगोचरे-रूपरसगन्धस्पर्शशब्द आदि जो विषय हैं, उनका इन्द्रिय प्रत्यक्ष होने पर उत्पन्न होने वाला ज्ञान, विषय-विषिणोति बध्नातीति विषय: षिञ बन्धने धातु से विषय बनता है जो बन्धनकारक हो, दूसरे प्रकार से व्युत्पत्ति-विसिन्वन्ति निबध्नन्तीन्द्रियाणि-जो इन्द्रियों के लिए बन्धनकारक हो याति-उपतिष्ठते-उपस्थित होना अथवा केवल होना, कोश के अनुसार रूपं शब्दो गन्धरस स्पर्शाश्च विषया अमी। गोचरा इन्द्रियार्थाश्च इस प्रकार विषय और गोचर दोनों एकार्थक पर्याय हैं। विषय अथवा गोचरे मात्र कहने से भी काम चल सकता था। यहां ऋषि ने विषय शब्द को बन्धनार्थक मानकर ही प्रयोग किया है जिससे यह भाव ध्वनित होता है कि इन्द्रियों के जो भी विषय हों वे बन्धनकारी और मोह का कारण तो होते ही हैं। कोश के अनुसार-विषयो यस्य यो ज्ञातस्तत्र गोचरदेशयो: गोचरे-गो-इन्द्रियां अत: इन्द्रियों से जिसका प्रत्यक्ष किया जा सके।

व्याख्या:- राजा ने कहा कि हम दोनों ज्ञानी हैं फिर भी इस प्रकार का मोह क्यों है। अत: ऋषि उनके इस अभिमान को मिटाने के उद्देश्य से कहते हैं कि ज्ञान दो प्रकार

का होता है- एक तो वह ज्ञान जो सम्पूर्ण प्राणिमात्र में इन्द्रियों से प्रत्यक्ष अनुभव से होता है- इस सर्वसाधारण ज्ञान से मोह न हो यह तो नहीं देखने में आता। अत: इस प्रश्न का उत्तर हो जाता है कि ज्ञानी होते हुए भी मोह हो। क्योंकि वस्तुविषयक और इन्द्रियविषयक ज्ञान होने पर भी मोह तो होता है। विषय का अर्थ ही बन्धन है। अत: सामान्य इन्द्रियजन्य ज्ञान होने पर मोह न हो ऐसा नियम तो नहीं है। यहां कोश के अनुसार-मोक्षे धीर्ज्ञान उस मोक्ष संबंधी ज्ञान से नहीं है। विषय गोचरे कहने से यहां पुनरुक्ति दोष नहीं है। विषये, गोचरे और विषयगोचरे इनके अनुसार शब्द स्पर्शादिरूप विशेष और सामान्य तथा तीसरा विषयता-संबंध इन तीनों का बोध समझना चाहिए। ऋषि का आशय यह है कि यदि ज्ञानमात्र से मोह न होता हो तो ऐसी बात नहीं है। ज्ञानविशेष से मोह न होना माना जा सकता है। इस प्रकार हे महाभाग हे राजन्-विषय और विषयवृत्तियां भिन्न हैं। आगे जो कथन करेंगे उसके अनुसार यह स्पष्ट हो जायेगा कि रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द इनमें से किसी एक ही विषय का अनुभव भिन्न भिन्न प्रकार से होता है विषय और जाति दोनों ही भिन्न भिन्न प्रकार से गोचर होते हैं। मन की भावना के अनुसार एक ही वस्तु में भिन्न भिन्न अनुभाव का उदाहरण-

मल्लानामशनि: नृणां नरवर:स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रो:शिशु:
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्वं परं योगिनाम्
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगंगत: साग्रज:।

-भागवत १०/४३/१७

श्री कृष्ण जब कंस की सभा में मथुरा पहुंचे तो उन्हें सभी ने अपने-अपने दृष्टिकोण से जैसा समझा उसका वर्णन किया गया है कि उनसे मल्लयुद्धकरने आये हुए मल्लों ने उन्हें वज्र समझा, सामान्य मनुष्यों ने नरश्रेष्ठ समझा, युवतियों ने उन्हें साक्षत् कामदेव, गोपालों ने स्वजन, असज्जन राजाओं ने अपना नियन्त्रणकर्ता, उनके मातापिता ने अबोध बालक, कंस ने साक्षात् मृत्यु कालरूप, अज्ञानियों ने विराट्, योगियों ने पर तत्व, वृष्णिवंशियों ने पर देवता समझा। इस प्रकार कृष्ण अपने बड़े भाई बलराम के साथ कंस की रंगभूमि में प्रविष्ट हुए।

विषय के समान मनुष्य आदि जाति भी पृथक होती है अथवा जाति में समानत्व रूपत्व, रसत्व गन्धवत्ता पृथक् हो जाती है। अथवा जाति यद्यपि नित्य और एक है तथापि गोत्व ब्राह्मणत्व से पृथक् हो जाती है। अथवा रूपरस आदि पृथक् विषयों की भांति जाति भी व्यक्ति से पृथक् होती है। ज्ञान तो शब्दादि संबंधी होता है और विषय का ज्ञान से संबंध होता ही है।

दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे।
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः।३५

अन्वय- केचित्प्राणिनः दिवान्धाः अपरे केचिद् रात्रौ अन्धाः केचित्प्राणिनः दिवा तथा रात्रौ तुल्यदृष्टयः।

व्याख्या- पहिले कह आये हैं कि विषयों का ग्रहण भी पृथक्-पृथक् होता है उसी के लिए यहां एक विषय रूप को लिया गया है। जो नेत्र का विषय है। नेत्रेन्द्रिय से जिसका प्रत्यक्ष होता है। कहा गया है चक्षुर्ग्राह्यो गुणो रूपम्। सभी प्राणियों में दृष्टि के लिए नेत्र दिए गए हैं परन्तु उन सब में देखने के प्रकार और शक्ति में अन्तर रहता है। नेत्र होते हुए भी कुछ प्राणी दिन में दृष्टिहीन रहते हैं- देख नहीं पाते जैसे कि उल्लू, छछूंदर और चमगादढ़। कोई रात में नहीं देख पाते जैसे चिड़ियां-बाज, कबूतर, अबाबील आदि। कुछ प्राणी इस प्रकार के भी हैं जिनकी दृष्टि रात और दिन दोनों समय समान रहती है जैसे कि शेर, बाघ, चीता, बिल्ली आदि। इस प्रकार ऋषि के कहने का भाव यह है कि इन्द्रियजन्य ज्ञान का मोह के होने से कोई संबंध नहीं है। अध्यात्मपक्ष में इसका अर्थ गीता के अनुसार भी लगाया जाता है- यानिशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः। तुलसीदास जी की यह उक्ति भी विचारणीय है- मोह निशा सब सोवन हारा। इस मोह रूपी निशा और अभिमान रूपी दिवस में ग्रस्त जन वास्तविकता को न समझ पाने के कारण अन्धे जैसे हो जाते हैं। इस प्रकार काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर यही ज्ञान के आवरक बनकर विवेकान्ध बना देते हैं।

ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किं नु ते नहि केवलम्।
यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः।३६

अन्वय- मनुजाः ज्ञानिनः इति सत्यम्, केवलं ते ज्ञानिनः किं नहि, हि यतः पशुपक्षिमृगादयः सर्वे ज्ञानिनः।

अन्यथा अन्वय- मनुजाः ज्ञानिनः सत्यं ते केवलं ज्ञानिनः किं नु उत अज्ञानिनोऽपि ते केवलं ज्ञानिनः नहि। तेन किम्।

अन्यथा अन्वय- मनुजाः ज्ञानिनः इति सत्यम् केवलं तेन किं

केवलं ज्ञानिनो मनुजाः किम् नहि तेन किंम्।

शब्दार्थ- केवलम्-कोश के अनुसार-एके मुख्यान्यकेवला-अतः एक मात्र अथवा मुख्यरूप से इसका प्रयोग यहां केवलम् ज्ञानिनः ज्ञानिनः मनुजाः केवलम्, केवलम् मनुजाः इस प्रकार प्रश्न को भिन्नार्थक बनाने के लिए आया है। अन्वय की भिन्नता के अनुसार केवलं अर्थ बदलने में सहायक हुआ है इन अर्थों के अतिरिक्त शिवसूत्र के

अनुसार केवलं-तद्विमुक्तस्तु केवली-इस सूत्र के अनुसार योगि विशेष को प्राप्त ज्ञान विशेष को केवल कहते हैं। ते नहि और तेन हि इस प्रकार दो पदच्छेद होने पर ते नहि का अर्थ होगा वे ही नहीं और तेन हि का अर्थ होगा- तो उससे हि का अर्थ हि हेतावथधारणे के अनुसार यहां अवधारणा के ही अर्थ में आया है। किन्तु वितर्क के अर्थ में आया है। पशुपक्षिमृगादयः-पशु आदि, जैसे गाय बैल भैंस वैसे ग्राम्य पशुओं में इन सात को गिना जाता है- गौरविरजोऽश्वोऽश्वतरो गर्दभो मनुष्यश्चेति। गाय, भेड़, बकरी, घोड़ा, खच्चर गधा और मनुष्य। पक्षि के अन्तर्गत सभी पंखवाले उड़ने वाले बाज, गीध चील, चिड़िया आदि। मृग आदि से वन्य पशु जो सात प्रकार के बताये गये हैं- महिषवानरराक्षस सरीसृपरुरुपृषतमृगाश्चेति। महिष, वानर, पिशाच, रेंगने वाले, जीव एक विशेष प्रकार का हिरण, चितकबरा हिरन, हरिण, बारहसिंगा आदि।

व्याख्या- राजा सुरथ का प्रश्न कि हम ज्ञानी होकर भी मोहग्रस्त क्यों है। उसके इस ज्ञानी होने के अभिमान को दूर करने के लिए इस छोटे से वाक्य में ऋषि ने अनेक तर्क वितर्क देकर यह बता दिया है कि तुम्हारा ज्ञान उस कोटि का ही है जैसा कि प्राणिमात्र में होता है। उच्चकोटि का नहीं है। जिसके लिए श्रुति का कथन है- तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः। मोह और शोक तो केवल उस उच्चकोटि के साधक को नहीं होते जो सबमें उस ईश्वर की व्याप्ति देखता है- समं पश्यन् हि सर्वत्र. समवस्थितमीश्वरम्। जिसके लिए गीता में कहा गया है-

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।

विद्याविनय सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और श्वपच इन सबमें जो समान भाव से एक ही सत्ता का अनुभव करता है। अथवा शिवसूत्र के अनुसार जिसे वह केवल ज्ञान हो गया है जो मोह से सर्वथा असम्पृक्त होकर शुद्ध ज्ञानमात्र में अवस्थित हो जाता है।

ऋषि कहते हैं कि हम ज्ञानी हैं इस प्रकार आपके कथन के अनुसार ज्ञानी तो सभी मनुष्य हैं। किन्तु यह ज्ञान क्या अज्ञान से सर्वथा असम्पृक्त है। यदि नहीं तो ऐसा सामान्य ज्ञान तो सभी पशु, पक्षी और वन्य जीवों में भी होता है।

ज्ञानिनः मनुजाः सत्यम्-आपका यह कथन सत्य है कि मनुष्य ज्ञानी है ते केवलं ज्ञानिनः किम्-वे क्या केवल ज्ञानी हैं अथवा उनमें अज्ञान का अंश भी है। ते केवलं ज्ञानिनः नहि। वे केवल ज्ञानी तो नहीं है, उनका ज्ञान अज्ञान संवलित है। और इस प्रकार का ज्ञान तो पशु पक्षी आदि सभी में होता है। नहि-ऐसा नहीं है।

यदि कहा जाय कि प्राणिमात्र के ज्ञान से मेरा अभिप्राय नही तो फिर प्रश्न उठता

है कि क्या मनुष्य ज्ञानी ही हैं, अथवा मनुष्य ही ज्ञानी हैं ये प्रश्न के दो पक्ष हो जाते हैं जिसमें पहले का उत्तर तो यही है कि मनुष्य में केवल ज्ञान ही नहीं, अज्ञान भी किसी अंश में विद्यमान रहता है। यदि कहा जाये कि केवल मनुष्य ही ज्ञानवान होता है तो सामान्य ज्ञान तो पशुपक्षियों में भी होता है। यदि कहा जाय कि मनुष्यों में ही शास्त्रीय ज्ञान होता है तो उस केवल शास्त्रीय ज्ञान से भी क्या जो विज्ञान अथवा अनुभव रहित है। इसीलिए गीता में भगवान ने अर्जुन से कहा है कि-

ज्ञानविज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम्।१८/४२ और

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।

ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्। ९/१ और

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः। ७/२

महाभारत में भी कहा गया है-

विज्ञानरहितं ज्ञानं नहि बन्धविमोचकम्।

नहि दीपस्य वार्ताभिस्तमो नश्यति तत्क्षणात्।

ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम्।

मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः। ३७

अन्वय- यत् मृगपक्षिणां ज्ञानं तत् तेषां मनुष्याणामपि। यत् च मनुष्याणां तत् तेषां मृगपक्षिणामपि। तथा अन्यत् उभयोः तुल्यम्।

ज्ञानं च यन्मनुष्याणां के स्थान पर ज्ञानं च तन्मनुष्याणाम् पाठ मानकर भी कुछ टीकाकारों ने अर्थ किया है, अन्वय इस प्रकार होगा-

तेषां मृगपक्षिणां यत् ज्ञानं तत् मनुष्याणां न, तेषां मनुष्याणां च यत् ज्ञानं तत् मृगपक्षिणां नतथा अन्यत् यत् ज्ञानं तत् उभयोः तुल्यम्।

व्याख्या- मृग का अर्थ यहां वन्य और ग्राम्य पशुमात्र से है। पशुपक्षियों में जो ज्ञान होता है वह मनुष्यों में भी होता है। मनुष्यों में जो सामान्य ज्ञान होता है उसी प्रकार पशुपक्षियों में भी है तथा अन्य बातें भी मनुष्य और पशुपक्षियों में समान ही हैं जैसे कि कहा गया है-

आहारनिद्राभयमैथुनानि समानि चैतानि नृणां पशूनाम्।

ज्ञानं नराणामधिको विशेषो ज्ञानेनहीना पशुभिः समानाः।

भर्तृहरि का नीतिसंबंधी कथन है कि आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि मनुष्य और पशुओं में समान ही है। मनुष्य में ज्ञान ही उसे पशुओं से विशेष कोटि में रखता है अतः ज्ञान (शास्त्रीय ज्ञान) विद्या से अभिप्राय है उससे रहित मनुष्य भी पशुओं के

समान हैं।

पाठभेद के अनुसार अन्य व्याख्या-पशुपक्षियों में जिस प्रकार का ज्ञान है उसी प्रकार का मनुष्यों में नहीं है। मनुष्यों में जिस प्रकार की विद्या और शास्त्रीय ज्ञान है वह पशुपक्षियों में नहीं है। अन्य इसके अतिरिक्त आहारनिद्रा आदि मनुष्य और पशुपक्षियों में समान ही है।

विशेष- पशुओं में कुछ विशेषताएं पाई जाती हैं जो मनुष्यों में नहीं है। जैसे कुत्तों में घ्राणशक्ति विशेष होती है। गन्ध के बल से चोरी आदि अपराधों का पता लगाने के लिए पुलिस द्वारा खोजी कुत्तों को रखा जाता है। कौवों में सहयोग की प्रवृत्ति बहुत अधिक मात्रा में पाई जाती है। उदाहरण के लिए कहीं पर भी कोई सड़ा गला खाद्य पदार्थ पड़ा हो उसे कोई भी कौवा अकेले न खाकर कांव कांव करके अपने अन्य साथियों को पहले बुलाता है। कहने को मनुष्य के लिए भी शास्त्रीय विधान यही है कि "एक: स्वादु न भुंजीत" स्वादिष्ट वस्तु को अकेले नहीं मिलबांटकर खाना चाहिए। गीता में कहा है-

भुंजते ते त्वघं पापाः ये पचन्त्यात्मकारणात्।

जो अपने अकेले के लिए भोजन पकाता है, वह पापी है।

तथा-केवलाघो भवति केवलादी आदि। इसीलिए हमारे यहां अभ्यागत और अतिथि के स्वागत का विधान है- अतिथि देवो भव कहा गया है। तोते मैना में विषाक्त भोजन को दूर से ही जान लेने की शक्ति होती है। इसी कारण प्राचीनकाल में राजा महाराजाओं को जो भोजन परोसा जाता था उसके साथ ही अथवा पहिले तोता मैनाओं के सामने रखा जाता था। यदि भोजन में विष मिला होता तो तोता टें टें करके आसमान सर पर उठा लेता और मैना चीखने चिल्लाने लगती थी। आसमान में उड़ती हुई चीलों को वर्षा का पूर्वाभास हो जाता है। जिससे वे धरती पर बूंद गिरने के पहिले ही नीचे को उतरने लगती हैं। गीध अपनी दूरदृष्टि के लिए प्रसिद्ध ही है। आगामी खतरे को भांप कर चिड़ियां चीं चीं कर शोर तक मचाती हैं, जब तक खतरा दूर नहीं हो जाता जैसे कि सांप या बिल्ली की उपस्थिति पर चिड़ियां एकदम चहचहाने लगती हैं। जंगल में यदि आसपास हिंसक पशु सिंह व्याघ्र आदि हो तो चिड़ियां आपके सिर पर मंडरा कर सावधान करने के लिए उपस्थित हो जाती हैं। आवारा कुत्ता यदि बीच रास्ते में पड़ा हो तो दूर से ही अपराधप्रवृत्ति वाले आदमी को देखकर भोंकने लगता है। परन्तु "आहारनिद्राभयमैथुनानि- के कथन से सहमत होना कठिन है। मनुष्य को छोड़कर संसार के सभी प्राणियों में काम का वेग समय विशेष पर ही होता है। कालिदास ने इसी को लक्ष्य कर मेघदूत में कहा है-

गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमाला।
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः।

गर्भाधान काल से परिचित होने के कारण आकाश में बगले आपका स्वागत करेंगे। किन्तु मनुष्यों के लिए तो गर्भाधान का क्षण लाटरी जैसा अनिश्चित हो गया है और नैषधकार की व्यंग्योक्ति वास्तविक प्रतीत होती है कि-

स्त्रीपुंसोर्द्वयी कामे सज्जेदिति मुनेर्मतम्।

अतः ज्ञानं न तन्मनुष्याणम्-पाठ ही अधिक समीचीन जान पड़ता है।

ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान्पतंगांश्छावचंचुषु।
कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपि क्षुधा।३८

अन्वय- ज्ञाने सति अपि क्षुधा पीड्यमानान् अपि एतान् पतंगान् मोहात् शावचंचुषु कणमोक्षादृतान् पश्य।

शब्दार्थ- ज्ञाने सति अपि-ज्ञान होने पर भी क्षुधा-भूख से पीड्यमानान्-पीड़ित होते हुए, पतंगान्-पक्षियों को, शावचंचुषु-बच्चों की चोंच में, कणमोक्षादृतान्-कणमोक्षे-भक्ष्यनिक्षेपे आदृतान्-दत्तचित्तान्, सावधानान्, उत्साहवतः-शिशुओं की चोचों में अपने चोंच के कण डालने में दत्तचित्त। आदृत-उत्साही, सावधान और दत्तचित्त (आप्टे के कोश के अनुसार) आदृताः कणमोक्षाः यैः ते कणमोक्षादृताः

व्याख्या- ये पक्षी भूख से स्वयं पीड़ित होते हुए भी और यह जानते हुए भी कि इन दानों के खाने से हमारी क्षुधा-निवृत्ति हो जायगी इस प्रकार जानबूझकर मोह के वशीभूत होकर उन दानों को स्वयं न खाकर अपने छोटे बच्चों के मुख में अपनी चोंच से दाने डाल रहे हैं, मोह का यह प्रभाव देखो। यहां ऋषि ने यह स्पष्ट किया है कि जानतोऽपि विवेकान्धस्य मूढता की जो बात कही गई, उसके दृष्टान्त पशुपक्षियों तक में मिलते हैं। ज्ञान और अज्ञान का यह सामान्याधिकरण कहीं भी देखा जा सकता है।

मानुषाः मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति।
लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेतान् किं न पश्यसि।३९

अन्वय- हे मनुजव्याघ्र मानुषाः लोभात्प्रत्युपकाराय सुतान् प्रति साभिलाषाः ननु एतान् किं न पश्यसि।

शब्दार्थ- मनुजव्याघ्र-मनुष्यों में श्रेष्ठ, कोश के अनुसार-स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुंगवर्षभकुंजराः। सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थवाचकाः। साभिलाषाः- अभिलाषा रखते हुए सुतेषु के स्थान पर प्रति के कारण द्वितीया का प्रयोग सुतान् प्रति-सुतेषु लोभात्प्रत्युपकाराय-प्रत्युपकार के लोभ से।

व्याख्या- हे मनुष्यों में श्रेष्ठ राजन् मनुष्य तो पुत्रादिकों का पालन पोषण किसी स्वार्थ की भावना को लेकर करते हैं कि हम उनका अच्छी तरह लालन पालन करेंगे तो ये हमारा उपकार मानकर बड़े होने पर अथवा हमारे असमर्थ होने पर हमारी सेवा

करेंगे। किन्तु इन पशुपक्षियों को तो देखो कि जिन्हें किसी प्रकार के प्रत्युपकार की अभिलाषा न होते हुए भी अपने मुंह का ग्रास अपने बच्चों को स्वयं भूखे रहकर खिला देते हैं। अत: मनुष्य के मोह में तो कुछ कारण भी हो सकता है, पर बिना कारण भी मोह देखा जा सकता है, इसे आप देखते परखते और जानते हुए भी क्यों नहीं समझ पाते। ज्ञान के साथ मोह का यह संगम कहीं स्वार्थप्रेरित साकांक्ष है तो कहीं नि:स्वार्थ।

तथापि ममतावर्ते मोहगर्ते निपातिता:।

महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिण:।४०

अन्वय- तथापि महामायाप्रभावेण संसारस्थिति कारिण: (मनुजा) ममतावर्ते मोहगर्ते निपातिता:।

अन्यथा अन्वय- तथापि संसारस्थितिकारिणा महामायाप्रभावेण ममतावर्ते मोहगर्ते निपातिता:।

शब्दार्थ- तथापि इस प्रकार सांसारिक अनुभव होने पर भी संसार से विरक्ति क्यों नहीं होती उसके लिए कहते हैं कि ऐसा होते हुए भी ममतावर्ते-ममता के भंवर में ममता यह मेरा है ऐसी बुद्धि होने पर उस विषय का ज्ञान पुन: पुन: होता है इसलिए उसे आवर्त-पानी में पड़ने वाले भंवर के समान कहा गया है। मोहगर्ते मोह गर्त इव मोह जो गड्ढे के समान है ममता जो आवर्त के समान है। निपातित:- कोश के अनुसार- अवनायस्तु निपातनम् नीचे ले जाने की क्रिया ही निपातन यहां तात्पर्य अधोगति से है। मोह के कारण अधोगति के गड्ढे में गिरते हैं। महामायाप्रभावेण-महती माया के प्रभाव से सांसरस्थितिकारिण:- संसार की स्थिति बनाये रखने वाले भगवान विष्णु और महेश ये तीनों ही सृजन, पालन और संहार करने वाले हैं। संसारस्थितिकारिणा ऐसा पाठ मानकर अर्थ होगा कि संसार की वर्तमान स्थिति को बनाये रखने वाली महामाया के प्रभाव से।

व्याख्या- संसार में इस प्रकार का व्यवहार देखकर विरक्ति क्यों नहीं होती, अथवा सभी मोक्ष के लिए क्यों उपाय नहीं करते अथवा ऐसा होने पर भी सभी को मोहनिवर्तक ज्ञान क्यों उत्पन्न नहीं होता अथवा ऐसा होने पर भी सभी की ज्ञान विशेष के प्रति प्रवृत्ति सुलभ क्यों नहीं, इसी को लक्ष्य कर कहते हैं कि ऐसा होने पर भी संसार की स्थिति अविच्छिन्न बनाये रखने के लिए, इस संसार के प्रवाह को पूर्व से लेकर अब तक और आगे भी इसी प्रकार बनाये रखने के लिए इसके पालन करने वाले भगवान विष्णु की महामाया के प्रभाव से संसारी जीव ममता और मोह के अध:पतनकारी गर्त में पड़कर इस अनादि प्रवाह में बहे जा रहे हैं। संसार की निरन्तरता बनाये रखने के लिए ही यह विष्णु भगवान की माया से ममता और मोहग्रस्त होते रहते हैं।

संसारस्थितिकारिणा पाठ माना जाय तो यह पद महामाया के प्रभाव का विशेषण बन जाता है कि यह तो संसार की स्थिति बनाये रखने वाली महामाया का ही प्रभाव है जिससे जानते हुए भी लोग मोहमाया में पड़ते हुए इस संसार के प्रवाह में पड़कर जन्ममरण के चक्कर में पड़े रहते हैं।

तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः।
महामाया हरेश्चैतत् तया संमोह्यते जगत्।४१

अन्वय- तत् अत्र विस्मयः न कार्यः, एतत् जगत् तया संमोह्यते, महामाया च जगत्पतेः हरेः योगनिद्रा अस्ति।

कहीं महामाया हरेश्चैषा तया-ऐसा पाठ भी है। तब अन्वय होगा। तया जगत् मोह्यते, एषा महामाया जगत्पतेः हरेः योगनिद्रा

शब्दार्थ- अत्र-इस मोह के विषय में, विस्मय-आश्चर्य, एतत्-जगत् का विशेषण, एषा महामाया का विशेषण, जगत्-जंगम्यते इति जगत् जो सदैव गतिशील रहता है। पंचमहाभूतेन्द्रियविषयात्मकं जगत्-जो पंचमहाभूत और इन्द्रियों का विषय है।

यहां चैतत् सृष्टि का बोधक, यहां महामाया को ही भगवान् की योगनिद्रा कहा गया है। योगनिद्रा-परमानन्दमयी शक्ति, किसी टीकाकार के मत से यह तमः प्रधाना शक्ति वास्तव में, संहार और सृजन के मध्य की सन्ध्या अवस्था सन्धिकाल क्योंकि आगे के वर्णन से स्पष्ट होता है कि विष्णु के नाभिकमल से ब्रम्हा का प्रादुर्भाव हो रहा है और भगवान् योगसमाधि में लीन हैं। ब्रंहण शक्ति के उदयकाल तक संहार शक्ति का अवसान नहीं हुआ इसीलिए योगो निद्रा इव योगनिद्रा न तु जगतो निवेशनी सामान्य निद्रा।

व्याख्या- संसार में सभी चेतन प्राणी मोह ममता में पड़कर अज्ञानी के समान आचरण करते देखे जाते हैं, इसके विषय में आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। उस महामाया के प्रभाव से यह जगत् मोह में पड़ा हुआ है। यह महामाया कौन है इस जिज्ञासा के लिए कहते हैं कि यह महामाया जगत के पालनकर्ता विष्णु की योगमयी निद्रा है। प्रथम चरित में श्री दुर्गा के इसी योगनिद्रा विषयक रूप की चर्चा की गई है। योगनिद्रा से आशय उसकी अधिष्ठात्री शक्ति दुर्गा से ही है।

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति। ४२

अन्वय- सा देवी भगवती महामाया ज्ञानिनां अपि चेतांसि बलात् आकृष्य मोहाय प्रयच्छति।

शब्दार्थ- देवी-धातुपाठ के अनुसार-दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहार-

दयतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु। दिवु धातु से देवी शब्द निष्पन्न होता है। यहां देवी से उसके ये सभी अर्थ अभिप्रेत हैं। संसार को मोह में डालना उस दिव्य शक्ति की क्रीडा मात्र है। मधुकैटभ के बधका प्रसंग आ रहा है, इसलिए यह उस शक्ति की विजिगीषा जेतुमिच्छा-जीतने की इच्छा का सूचक है। जीवों को मोह में डालना उस शक्ति का सामान्य व्यवहार ही है। द्योतनशीला प्रकाशशीला होने के कारण देवी, योगमाया के अधीन भगवान् सुषुप्तावस्था में न होकर स्वप्नावस्था में हैं। ब्रह्मा जी के द्वारा स्तोतव्या और कमनीय देवी त्वरित स्फूर्ति का मूर्त रूप गतिशील सदा ही है।

स्वक्रीडया जगन्मादयन्ति मोदयन्ति च। जगदुत्पत्तिस्थिति लयादिना क्रीडन्ती जगन्निर्माणनर्म रसिका, कामवत्साऽमृतं दुहाना।

भगवती- षडैश्वर्य सम्पन्न। महामाया-महती माया, महत्व क्या है उसके लिए कहा गया है- महत्वं च देशकालाकारैरनवच्छिन्नत्वम्। देश काल और आकार की सीमा से जो आश्रित नहीं है वही महामाया। मोहाय प्रयच्छति-मोह के हाथों सोंप देती है।

व्याख्या- आप जैसे लोगों की तो बात ही क्या है। यह भगवती वैष्णवी महामाया अच्छे अच्छे ज्ञानियों, केवल ज्ञानियों, निवृत्तिमार्ग के पथिकों साधकों को भी बलपूर्वक विवेक के मार्ग से खींचकर मोह में डाल देती है। इसके लिए गीता में भगवान कृष्ण ने भी कहा है-दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्।
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।४३

अन्वय- तया एतत् विश्वं चराचरं जगत् विसृज्यते। सा एषा प्रसन्ना सती वरदा भवति नृणां मुक्तये भवति। वा सा एषा प्रसन्ना सती नृणां मुक्तये वरदा भवति।

शब्दार्थ- तया- मूलप्रकृतिरूपा महामाया विश्व-सम्पूर्ण, कोश के अनुसार-विश्वमशेषं कृत्स्नम् और विश्वं कृत्स्ने च भुवने। चराचर-चर जगत् कोश के अनुसार चराचरं जंगमे स्यात् विसृज्यते-सृष्टि की जाती है, वरदा-वरदान देने वाली, मुक्तये-मुक्ति के लिए।

व्याख्या- मूल प्रकृति के रूप में वही भगवती दुर्गा जिसे महामाया कहते हैं इस सम्पूर्ण गतिशील चेतन प्राणियों की सृष्टि करती है। यहाँ यह शंका होना स्वाभाविक है कि यही शक्ति सृष्टि का कारण होकर भी प्राणियों को मोह ममता रूपी माया के बन्धन में डालती है। इसलिये कहते हैं कि वही शक्ति प्रसन्न होने पर अभीष्ट प्रदान करने वाली है और यही प्रसन्न होकर मुक्ति का कारण भी है। महामाया के दो रूपों का यहां वर्णन किया गया है। अविद्या रूपा जो मोह के बन्धन में डालने वाली है और विद्यारूपा जो मुक्ति का कारण है। ईशावास्य उपनिषद में कहा गया है- विद्यां चाविद्यांच यस्तद्वेदोभयं सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते। इसीलिए आगे कहा है-सा विद्या परमा

मुक्तेहेतुभूता सनातनी।

साविद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी।
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी।४४

अन्वय- सा सनातनी परमा विद्या मुक्ते: हेतुभूता, सा परमा अविद्या संसारबन्धहेतु: यत: सर्वेश्वरेश्वरी।

शब्दार्थ- सा विद्या और सा अविद्या- यह शक्ति विद्यारूपा है और अविद्या भी वही है, परमा-उत्कृष्ट सर्वोत्तम, हेतुभूता-कारण बनने वाली, सनातनी, शाश्वत जिसका आदि अन्त न हो। संसारबन्धहेतु: संसार के बन्धन का कारण, सर्वेश्वरेश्वरी सर्वा ईश्वरस्य ईश्वरी ऐसा मान कर सर्वा का अर्थ विश्वरूपा जैसा कि आगे कहा गया है- एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा। सर्वेश्वराणां ईश्वरी-सर्वेश्वर जो ब्रह्मा विष्णु और महेश उनकी शक्ति के रूप में जो ब्रह्मी, माहेश्वरी और वैष्णवी शक्ति है। ईश्वरेश्वरी-ईश्वर की नियामिका शक्ति।

व्याख्या- वह महामाया परमा है सर्वोत्कृष्ट है। उसके दो रूप हैं विद्या और अविद्या। विद्या जो उपनिषद्ज्ञानरूपा है उसके रूप में मुक्ति का कारण यही विद्या है और अविद्या जो विद्या के समकक्ष विज्ञान तथा कला आदि हैं उनके रूप में जो संसार से बांधने वाली हैं। वही शक्ति, ब्राह्मी, माहेश्वरी और वैष्णवी के रूप में, सृष्टिस्थितिपालनकर्ताओं की शक्ति है। वही सर्वा है अत: विश्वरूपा है यह विश्व प्रपंच उसी का विस्तार है।

राजोवाच- भगवन्का हि सा देवी महामायेति यां भवान्।
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज। ४५

अन्वय- हे भगवन् हे द्विज, भवान् यां महामाया इति ब्रवीति का हि सा देवी सा कथम् उत्पन्ना अस्या: कर्म च किम्।

व्याख्या- इसमें राजा ने सुमेधा ऋषि से देवी महामाया के संबंध में तीन प्रश्न किए हैं- का हि सा देवी से उसके स्वरूप के संबंध में कथं सा उत्पन्ना से उसके उद्भव के संबंध में और अस्या: कर्म च किम् से उसके प्रभाव के संबंध में प्रश्न किया गया है। राजा ने ऋषि से पूछा कि हे भगवन् आपने महामाया नाम से जिसका उल्लेख किया है हे द्विज वह कौन सी देवी हैं, उनका प्रादुर्भाव कैसे हुआ और इनका कर्म अथवा प्रभाव क्या है।

यत्प्रभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदांवर। ४६

अन्वय- हे ब्रह्मविदां वर, त्वत्त: तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि सा देवी यत्प्रभावा यत्स्वरूपा यदुद्भवा च यत्प्रभावा के स्थान पर यत्स्वभावा भी पाठान्तर मिलता है।

व्याख्या- हे भगवन् आप ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं अत: आप मुझे बतायें कि उस देवी का सामर्थ्य क्या है अथवा स्वस्य भाव: स्वभाव: उस देवी के विशेष लक्षण क्या हैं। उनका स्वरूप कैसा है। उनका प्रादुर्भाव कब कहां और कैसे हुआ।

विशेष- ऋषि के लिए ब्रह्मविदां वर का सम्बोधन होने से यह स्पष्ट हो जाता है कि दुर्गामाहात्म्य का पूरा प्रकरण वेदसम्मत है।

ऋषिरुवाच- नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्।
तथापि तत्समुत्पत्तिर्वहुधा श्रूयतां मम।४७

अन्वय- ऋषि: उवाच-सा नित्या एव तया इदम् सर्वं ततम्। सा जगन्मूर्ति: तथापि तत्समुत्पत्ति: बहुधा मम श्रूयताम्।

शब्दार्थ- नित्या-शाश्वत, सनातन, सदैव रहने वाला, कोश के अनुसार नित्यं स्यात्संततेऽपिच शाश्वते त्रिषु जगन्मूर्ति:- जगदेव मूर्ति: जगत् ही जिसका शरीर है। कोश के अनुसार मूर्ति: काठिन्यकाययो:। जगत् जगति वा मूर्ति: यस्या: जगत् ही अथवा जगत् में ही जिसका शरीर है। जगदाश्रयभूता शक्ति:। ततम्-तनु विस्तारे धातु का क्तप्रत्ययान्त रूप अर्थ होता है विस्तार और व्याप्ति कोश के अनुसार- ततं व्याप्तं विस्तृतं च त्रिलिंगकम् तत्समुत्पत्ति:- उसकी सम्यक उत्पत्ति। बहुधा- अनेक प्रकार से, मम- प्रथम श्लोक में आया था विस्तराद्वदतो मम, यहां आया है श्रूयताम् मम। ऐसा प्रतीत होता है कि षष्ठी के स्थान पर पंचमी विभक्ति का रूप मत् होता है, उसके स्थान पर मम कहना ही पुराणकार को अधिक प्रिय है। किसी के मत से मम को अव्यय माना है।

जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्- की गीता के इस कथन से तुलना कीजिए-

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।। गीता ९/४

व्याख्या- राजा का प्रश्न था कि उस महामाया की उत्पत्ति कैसे कहां से हुई- सा कथमुत्पन्ना और यदुद्भवा। उसका उत्तर देते हैं कि महामाया तो नित्या है, अनादि और अनन्त है, उसकी उत्पत्ति का प्रश्न ही नहीं। काहि सा देवी और यस्वरूपा के संबंध में कहते हैं कि वह जगन्मूर्ति है। वह संसारमय है संसार ही उसका शरीर है। यह सब जो कुछ दृश्यमान जगत है सब उसी का बनाया हुआ है उसी का विस्तार है। वह इस सबमें व्याप्त है। इस प्रकार अस्या: कर्म किम् इसका उत्तर हो गया। यत्प्रभावा का प्रश्न रह गया है। उसके लिए कहते हैं कि यद्यपि वह नित्या है तथापि अनेक रूपों में अवतरित होती है, उसकी उत्पत्ति के अनेक प्रकार हैं जिन्हें मुझसे सुनिए।

देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते।४८

अन्वय- सा देवी देवानां कार्यसिद्धयर्थं यदा आविर्भवति तदा सा नित्या अपि लोके उत्पन्ना इति अभिधीयते।

शब्दार्थ- आविर्भवति, प्रकट होती है अथवा स्वयं प्रकाश करती है कोश के अनुसार- प्रकाशे प्रादुराविः स्यात्। देवकार्यसिद्धि के लिए आविर्भाव कहकर कथमुत्पन्ना का भी उत्तर हो गया। इसी प्रकार यत्प्रभावा के उत्तर में आगे अध्याय समाप्ति तक कहा गया है।

व्याख्या- देवताओं के प्रार्थना करने पर उनके कार्य साधन के लिए जब उस शक्ति महामाया का आविर्भाव होता है, वह प्रकट होती है तो जनसाधारण की भाषा में उसे उत्पन्न होना कह दिया जाता है यद्यपि वह सदा सब काल सब देश में वर्तमान होने से नित्या है।

योगनिद्रां यदाविष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते।
आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पान्ते भगवान्प्रभुः।४९

इसके लिए श्रीमद्भागवत में कहा गया है

तमोमात्रामुपादाय प्रतिसंरुद्धविक्रमः
कालेनानुगताशेष आस्ते तृष्णीं दिनात्यये।। ३-११-२७

अन्वय- यदा कल्पान्ते भगवान प्रभुः विष्णुः जगति एकार्णवीकृते शेषं आस्तीर्य योगनिद्रां अभजत्। तदेत्यग्रिमेण श्लोकेन संबंधः।

शब्दार्थ- योगनिद्रा-वाचस्पत्यं के अनुसार योग रूपा निद्रा, अथवा वास्तविक निद्रा न होकर स्वेच्छानुसार निद्रा, ध्याननिद्रा, अथवा तामसी शक्ति, उत्पत्ति के समय राजसी शक्ति काम करती है। पालन के समय सात्विकी शक्ति काम करती है और संहार के समय तामसी शक्ति का प्रावल्य होता है। देवी भागवत में कहा गया है-

ब्रह्मा सृजति लोकान्वै विष्णुः पात्यखिलं जगत्।
रुद्रः संहरते काले त्रय एतेऽत्रकारणम्।
एका मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
रजः सत्वतमोभिश्च संयुताः कार्यकारकाः

देवी भागवत १/८/३-४

यह योग निद्रा सामान्य मनुष्य की निद्रा की भांति मोह पर वश कर सुलाने वाली नहीं। यह तो उसी क्रीड़ा के समान है जैसे कोई सहेली दूसरी के पीछे आकर उसकी आंख मूंद ले। हरिवंश पुराण में कहा गया है-

सखी सर्वसहस्यैषा मायाविष्णोः शरीरजा।

विष्णुः व्यापक, नारायण, भगवान- उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामगतिं गतिम्। वेत्ति

विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति। प्रभुः अप्रतिहत जिसकी इच्छा हो। जगत्- जंगम्यते जगत् जो सदा ही चलता रहे गतिशील रहे। एकार्णवीकृते- इस पृथ्वी पर पुराणों के अनुसार सात समुद्र माने गए हैं। प्रलय काल में जब पृथ्वी जलमग्न होती है तो सर्वत्र जल ही जल रह जाता है। सातों समुद्र मिलकर एक हो जाते हैं, उस प्रलय काल में जब सातों समुद्र एक हो गए। शेष पौराणिक कथा के अनुसार भगवान विष्णु क्षीर सागर में शेष शैया में शयन करते हैं। यहां शेषनाग के साथ कुछ दूसरा अर्थ भी अभिप्रेत है पुरुषसूक्त में आया है-

एतावनस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।

भूत भविष्य वर्तमान में जो कुछ भी है यह सभी कुछ इस पुरुष की महिमा है। स्वकीय सामर्थ्यविशेष की विभूति है। पुरुष तो इससे भी महान है। तीनों कालों में जो सचर और अचर प्राणी हैं वे इसके एक पाद-चतुर्थांश मात्र हैं। इसके अवशिष्ट तीन पाद अमृत अविनाशी हैं और द्योतनात्मक स्वप्रकाश में स्थित हैं। इस प्रकार जिस विश्व विभूति चतुर्थांश से यह जगत् है उसके तीन पाद कहां हैं वास्तव में उस अवशिष्ट विभूति का ही नाम शेष है शेषं अभजत् से तात्पर्य यही है कि उस त्रिपादविभूति के साथ प्रभु शेषशायी हैं गुप्तवती के टीकाकार श्री भास्करराय ने अपनी व्याख्या में संकेत किया है कि- शेषं सर्पविशेषं कल्पान्तसमये आस्तीर्य

तावन्मात्रस्यैवावशिष्ट- त्वध्वननाय शेषपदेन निर्देशः।

विष्णु का शेष-शयन-सृष्टि के तीन कार्य सृजन, पालन और संहार निरन्तर चलते रहते हैं। मन्वन्तर का अर्थ होता है एक मनु का युग समाप्त होकर दूसरे मनु के युग का आरंभ एक कल्प में चौदह मनु हो जाते हैं। बहत्तर चतुर्युगी बीत जाने पर कल्पान्त होता है। कहा गया है-

युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते।
कृताब्दसंख्यस्तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः।

यहां जिस कल्पान्त की बात की जा रही है, उसके लिए कहा गया है-

पुरा कल्पक्षये वृत्ते जातं जलमयं जगत्।

जब जगत् एकार्णव के रूप में परिवर्तित हो जाता है उस समय क्रियाशून्यता की स्थिति हो जाती है। श्रुति का कथन है- ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः रात्रि का होना तमः प्रधानावस्था का सूचक है। पालनकर्ता सत्वप्रधान विष्णु यदि क्रियाशील रहते हैं तो संसार का व्यापार चलेगा ही, इसलिए कहा गया है कि वे- योगनिन्द्रामभजत्। योगरूपी निद्रा में मग्न हैं। कल्प का अन्त होकर सन्धिकाल समाप्त होने को है इसलिए

विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा का प्राकट्य हो रहा है। ऐसी स्थिति में यह शेष कौन हैं और विष्णुशयन के लिए इनकी उपस्थिति किस प्रकार संभव है। शेष का एक नाम अनन्त भी आता है अत: कह सकते हैं कि कल्पान्त में भी उनका रहना संभव है। ऊपर पुरुषसूक्त के मन्त्र में- एतावानस्य महिताऽतोज्यायांश्च पूरुष: में कहा गया है कि पादोऽस्य विश्वाभूतानि सम्पूर्ण जगत् इनका एकपाद शक्ति का चतुर्थांश से स्थित है। उस त्रिपाद के लिए कहा गया है-

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुष: योऽयं त्रिपात्पुरुष: संसारस्पर्शरहित ब्रह्मरूप: अयमूर्ध्व उदैत् अस्मादज्ञानकार्यात् संसाराद् बहिर्भूतोऽत्रत्यैर्गुणदोषैरस्पृष्ट: उत्कर्षेणस्थितवान्।

वह त्रिपाद पुरुष संसारस्पर्शरहित ब्रह्म स्वरूप है अथवा कर्मबन्धनग्रस्त स्थावर जंगम आदि से बहिर्भूत है। क्योंकि गीता में भी कहा गया है-

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।

मैं अपने एक अंश से ही- चतुर्थांश से- इस समस्त जगत् को विशेष रूप से धारण करके स्थित हूं। भगवान् की जो शेष तीन पाद विभूति उसी का कथन शेषनाग के रूप में किया गया है। यही भगवान् का शेष शक्ति का आस्तरण करके शयन है। यह शक्ति अनन्त होने के कारण शेष का एक नाम अनन्त है। स्वामी विष्णुतीर्थ जी ने अपने देवात्मशक्ति नामक ग्रन्थ में इसके लिए कहा है-

The sesha serpent the lord of all serperts and the support of the universe is called sesha because of the residual aspect. He is also called the Ananta, the infinite. This is an allegorical description of the infinite residual power of visargabhava left over after the creation is complete, which then Rests coiled upon a support of universe ..... in the case of all living beings. The residual power takes the individualized form of kundalini shakti....... As residual the power represented as sesha or Kundalini is in the potential state and not a spent up force after the creative cycle is complete. A force that has been exhausted in affecting its perpose cannot without a potential residual serve a support of its product.

शेष के फनों पर पृथ्वी स्थित है, इसके कहने का भी तात्पर्य इतना ही है कि भगवान की जगत निर्माण के पश्चात शेष रही शक्ति के आधार पर इस जगत् की स्थिति है। तन्त्रों के अनुसार योगनिद्रा को आवरण शक्ति कह सकते हैं। आवरण जिसमें सब कुछ आच्छादित होकर तिरोहित हो जाता है। दूसरी विक्षेप शक्ति से विसर्ग भाव को

प्राप्त होकर सृष्टि का प्रारंभ होता है। शिव संहिता में कहा गया है-

विक्षेपावरणाशक्तिर्दुरन्ता विश्वरूपिणी।
जड़रूपा महामाया रजः सत्वतमोगुणा।
सा मायावरणाशक्त्यावृताविज्ञानरूपिणी।
दर्शयेज्जगदाकारं तं विक्षेप स्वभावतः।
तमोगुणात्मिका विद्या या सा दुर्गा भवेत्स्वयम्।
ईश्वरं तदुपहितं चैतन्यं तदभूदध्रुवम्।
सत्वाधिका च या विद्या लक्ष्मीः स्याद्दिव्यरूपिणी।
चैतन्यं तदुपहितं विष्णुर्भवति नान्यथा।
रजोगुणाधिका विद्या ज्ञेया सा वैसरस्वती।
या चित्स्वरूपो भवति ब्रह्मा तदुपधारकः।

- शिव संहिता पटल १/८६-९०

"संसार में जो कुछ भी दृष्टिगोचर हो रहा है, वह सभी कुछ इस आवरण और विक्षेप-शक्ति के कारण ही है। इसका पार पाना अत्यन्त कठिन है। इसी को जड़रूपा, महामाया भी कहा गया है। यह त्रिगुणमयी है। सत्व, रजस् और तमस् तीनों गुण इसी में हैं। वही माया आवरण शक्ति के साथ विज्ञानरूपिणी होकर इस जगत् को अपने विशेष स्वभाव से इस रूप में प्रकट करती है। हमारे दृष्टिपथ में इसे इस रूप में लाती है। गुणों के अनुसार ही इसके तीन नाम हो सकते हैं।- तमोगुणात्मक होकर यह दुर्गा है इसी को काली भी कहा गया है। उसमें निहित चैतन्य को ही ईश्वर अथवा रुद्र शिव कहा गया है सत्वगुण की अधिकता वाली देवी को लक्ष्मी कहते हैं। इसमें निहित चैतन्य ही विष्णु है। रजोगुणाधिक्य वाली विद्या सरस्वती के नाम से जानने योग्य है। वही चित्स्वरूपा है। ब्रह्मा इस शक्ति के उपधारक हैं।"

रजोगुण ही क्रियाशक्ति है जिससे संसार का प्राकट्य होता है। अतः कल्पान्त के समय तमोगुण का साम्राज्य है। योगनिद्रा के वशीभूत पालनकर्ता निद्रा मग्न हैं। पर सृष्टि का आरंभ हो रहा है जिससे विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा प्रकट होते हैं।

तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ।
विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ। ५०

अन्वय- तदा विष्णुकर्णमलोद्भूतौ घोरौ मधुकैटभौ इति विख्यातौ द्वौ असुरौ ब्रह्माणं हन्तुम् उद्यतौ।

शब्दार्थ- तदा- उस योगनिद्रा प्रधान समय में, विष्णुकर्णमलोद्भूतौ-विष्णु के कान

के मैल से उत्पन्न, घोर- भयंकर, ब्रह्माणं-विष्णु के नामिकमल पर स्थित ब्रह्मा को हन्तुम्-मारने के लिए, उद्यतौ-तैयार हो गये।

व्याख्या- जब भगवान विष्णु योगनिद्रा में मग्न थे, उस समय उनके कान के मैल से दो असुर उत्पन्न हुए जिनका नाम मधु और कैटभ था। वे विष्णु के नाभिकमल से उदीयमान ब्रह्मा को मारने के लिए तैयार हो गए।

रहस्य- कर्णमलोद्भूतौ- कर्णमल का सामान्य अर्थ होता है कान का मैल। इसकी उत्पत्ति के संबंध में भावप्रकाश में बताया गया है- ततो मांसाग्निना पुन: पच्यमान: पंचाहो-रात्रात् यावन्मांसेष्वेव तिष्ठति। तत: पच्यमानात्तस्मात् निर्गच्छति व्यानवायुना क्षिप्रं कर्णौं आगत्य कर्णविड् भवति। यह सामान्य जन के कान के मैल की बात हुई। मधु और कैटभ तो विष्णु के कान के मैल से उत्पन्न हुए। अत: विष्णु कर्ण से क्या तात्पर्य हो सकता है, इसके संबंध में देश और काल ही दो विष्णु के कान बताये हैं। अत: मधु कैटभ को देश और काल की विकृति माना जा सकता है।

पुरुष सूक्त में आया है-

चन्द्रमा मनसो जात: चक्षो: सूर्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत।
नाभ्या आसीदन्तरिक्ष: शीर्ष्णो: द्यौ: समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिश: श्रोत्रात्तथा लोकानकल्पयन्।

इसके अनुसार इस विराट पुरुष के श्रोत्र-कर्ण से वायु और प्राण की उत्पत्ति हुई और उसी श्रोत्र से दिशाओं की उत्पत्ति हुई। ऋग्वेद के अनुसार प्राणाद्वायुरजायत कहा गया है। जिसका आशय होता है कि प्राण से वायु की उत्पत्ति हुई। उसका उच्छ्वास और नि:स्वास ही पवन है। वास्तव में दिशाओं की कल्पना देश पर आश्रित है और वह आकाश से संबंधित है, उसी को लक्ष्य कर दिशाओं का निर्देश संभव होता है। और आकाश का गुण शब्द है। और शब्द श्रोत्रग्राह्य होता है। अत: कर्णमल का आशय शब्द से ही हो सकता है।

कर्ण-श्रोत्र-दिश:-आकाश-शब्द

अन्य विचार के अनुसार कर्णमल स्थूल सृष्टि का बोधक है उससे उत्पन्न विकार तम: प्रधान मधु और कैटभ। एक टीकाकार के अनुसार मन्यते अहमेव शूर: इति मधु: और कीटस्य इन्द्रगोपस्याभा प्रभा यस्य तत्कीटभं कर्णमलं तत्रभव: कैटभ सत्तामद का प्रतीक है।

ब्रह्मा- बृंहति ब्रह्मा- जो वृद्धि को प्राप्त होता रहे। सृजन का क्रम अनवरत चालू रखने वाला सृष्टिविस्तारकारी ब्रह्मा।

ब्रह्माणं हन्तुं उद्यतौ-ब्रह्मा सत्वगुण का प्रतीक मधु और कैटभ जिनकी उत्पत्ति मल से है तामसी प्रकृति के प्रतिनिधि। कल्पान्त की तामसी सृष्टि के ये दोनों अवशेष उस सत्व को ही नष्ट कर देना चाहते हैं जिससे सृष्टि का विकास संभव होता है। हन्तुं उद्यतौ- हन् हिंसा गत्योः इस प्रकार तमस् की उग्रता ब्रह्मा की गति अवरुद्ध करना चाहती है। गीता में भी कहा है-

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोहएव च।

तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन। गीता-१४/१३

सृष्टिकर्म में प्रवृत्ति ही ब्रह्मा का व्यापार तमःप्रधान मधु कैटभ उसमें अप्रवृत्ति के कारण बनने को उद्यत हैं।

स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः।

दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम्। ५१

तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः।

विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम्। ५२

अन्वय- विष्णोः नाभिकमले स्थितः स ब्रह्मा प्रजापतिः तौ असुरौ च उग्रौ दृष्ट्वा जनार्दनं च प्रसुप्तं दृष्ट्वा हरेः विबोधनार्थाय एकाग्रहृदयस्थितः सन् हरिनेत्रकृतालयां तां योगनिद्रां तुष्टाव।

शब्दार्थ- विष्लृ व्यापने धातु से निष्पन्न व्यापनशील अथवा सर्वव्यापी, अथवा विश प्रवेशने धातु से -

यस्मात् विश्वमिदं सर्वं तस्य शक्त्या महात्मनः।

तस्मादेवोच्यते विष्णुः विशधातोः प्रवेशनात्।

"जो सब विश्व में प्रवेश करके अपनी शक्ति के साथ स्थित है उसे विष्णु कहते हैं। नाभिकमल-नाभिःएव कमलं तत्र नाभि ही कमल है उसमें नाभिकमले, अथवा नाभिः कमलम् इव-नाभि जिसकी कमल के समान है, अथवा-नाभौ कमलं नाभि में जो कमल उसमें प्रजापतिः प्रजानां पाता रक्षिता-प्रजा का पालन या रक्षण करने वाला, उग्र-उत्कृष्ट, भयंकर। जनार्दन-विष्णु का एक नाम जनो जन्म तं अर्दयति इति जनार्दनः, अतः जन्मबन्ध को ध्वस्त करने वाले जनार्दन अथवा जनैः अर्दते याचते इति जनार्दन, मनुष्य जिनसे अभीष्ट पाने की याचना करते हैं। यहां यही अर्थ अभिप्रेत हैं क्योंकि ब्रह्मा उनसे स्वरक्षा की याचना कर रहे हैं। अतः यहां साभिप्राय विशेषण होने के कारण परिकरांकुर अलंकार हुआ। विबोधनार्थाय-विबोधन जगाना ही प्रयोजन है जिसका, एकाग्रहृदयस्थितः-एकाग्रेण हृदयेन स्थितः सन्-एकाग्र चित्त से स्थित होकर अथवा-एकाग्रं अनवच्छिन्नं

हृदयं यस्य तादृशः सन् स्थितः- अथवा-एकं अद्वितीयं अग्रं प्रमुखंहृदयं यस्य सः एकाग्रहृदयः अनन्यमनस्कः स्थितः निष्कम्पः, जिनका मन अन्य कहीं नहीं है और जो निश्चल होकर खड़ा है, वास्तव में सच्चे हृदय से प्रार्थना इसी प्रकार करने पर सफल होती है। हरिनेत्रकृतालयां-हरेर्नेत्रे कृतः आलयो यया सा हरिनेत्रकृतालया, जिसने भगवान के नेत्रों में स्थान बनाया है, अथवा हरिणानेत्राभ्यां कृत आलयो गृहं यस्याः हरि ने नेत्रों से जिसका आलय बनाया है, निद्रा सर्वांग में प्रभाव डालती है, परन्तु यहां हरिनेत्रकृतालयां कहकर यह संकेत किया गया है हरि ने योगनिद्रा के कारण केवल नेत्र ही बन्द किए हैं। योगनिद्रा का प्रभाव सामान्य मनुष्य की निद्रा के समान सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त नहीं है। केवल इसी के कारण पालन व्यवहार के प्रति अप्रवृत्ति हो रही है। जैसा कि ऊपर कह आये हैं कि तमस् के कारण अप्रकाश और अप्रवृत्ति होती है।

व्याख्या- प्रजापति ब्रह्मा जो विष्णु के नाभिकमल में विराजमान हैं, उन्होंने देखा कि दो भयंकर उत्कट असुर उन्हें मारने के लिए उद्यत हैं और उनकी रक्षा करने वाले भगवान् सो रहे हैं तो उन्होंने भगवान को जगाने के लिए उन तामसी देवी योग निद्रा की एकाग्रचित्त से स्तुति प्रारंभ की जो हरि के नेत्रों पर निद्रा रूप में आसीन थीं कि वे हरि को जगा दें।

रहस्य- किसी भी चक्र में नाभि उस केंद्र बिन्दु को कहते हैं जहां से उसके अरा परिधि की ओर विस्तृत होते हुये फैलते हैं। विष्णु की नाभि सृष्टि का वह केंद्र बिन्दु है जहां से निरन्तर परिधि की ओर शक्ति का अनवरत प्रसरण होता रहता है जिससे क्षय का क्रम चलते रहने पर भी विश्व की इयत्ता बनी रहती है। जिसके लिए कहा गया है कि-

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।

"वह ब्रह्म-परब्रह्म पूर्ण है, यह विश्व भी पूर्ण है क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण से ही उत्पन्न हुआ है- पूर्ण से पूर्ण ही उत्पन्न होता है। और पूर्ण में से पूर्ण के- इस विश्व के निकाल लेने पर भी वह पूर्ण ही रहता है।"

इस पूर्ण को ही शून्य भी कह सकते हैं। जिस प्रकार शून्य में से चाहे जितने शून्य निकाल लिए जायं अथवा जोड़ दिए जायं शून्य यथावत् ही रहता है। इसीलिए शून्य की परिभाषा करते हुए कहा गया है-

अशून्यं शून्यमित्याहुः शून्यं चाभाव उच्यते।
अभावः स तु विज्ञेयः यत्र भावाः लयं गताः।

अशून्य को ही शून्य कहते हैं, शून्य का अर्थ अभाव होता है। अभाव वह है

जहां सभी भावों का लय हो।

कल्पान्त के समय यही भावाभाव की स्थिति होती है। तन्त्र की परिभाषा के अनुसार विष्णु की नाभि को बिन्दु कह सकते हैं। गणित के अनुसार बिन्दु में आयतन नहीं होता- लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई नहीं होती। इसी से सृष्टि का क्रम चलता है। शारदातिलक के अनुसार-

सच्चिदानन्दविभवात्सकलात्परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद्बिन्दुरजायत।

"सच्चिदानन्द रूप उस ब्रह्म से जो सम्पूर्ण कलाओं से युक्त है, परमेश्वर है, उससे शक्ति हुई, उस शक्ति से नाद और नाद से बिन्दु की उत्पत्ति हुई।"

आगे कहा है- **भिदयमानात्पराद्बिन्दोरव्यक्तात्मा रवो भवत्।**

"उस पर बिन्दु से जिसे महाबिन्दु भी कह सकते हैं- अव्यक्त रव की उत्पत्ति हुई।

इसी रव को शब्दब्रह्म कहा गया जो सभी प्राणियों में चेतना का बोध है इस प्रकार इस जगत् की धुरी विष्णु की नाभि ही है जहां से ब्रह्म का प्राकट्य हो रहा है- वातुलशुदधाख्यतन्त्र के अनुसार ब्रह्मा की परिभाषा इस प्रकार की गई है-

बृहत्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्मेति परिकीर्तितः।

बृहत् और वर्धनशील होने के कारण ब्रह्म कहते हैं।

इस विष्णुनाभि से देश और काल की उत्पत्ति यही व्यक्त और अव्यक्त का मिलन बिन्दु है। बिन्दु का किसी भी ओर विस्तार करने पर रेखा बनती है जो दिशा की बोधक है। इस प्रकार दिशा की उत्पत्ति। अव्यक्त और व्यक्त का संगम होने के कारण इसी से व्यक्तावस्था का संभव। सत्य देश और काल से अनवच्छिन्न होने के कारण बिन्दु ही इसका बोधक हो सकता है।

According to Sir James Jeans- All space is reduced ultimately to the mathamatical ideal point. All time is reduced ultimately to the point of time.

और यह लय की स्थिति में ही संभव है कि जब देश की सत्ता बिन्दु में समाहित होती है और काल की सत्ता भी बिन्दु में समाहित हो जाती है।

आगे सप्तशती में ही कहा गया है-

त्वं वैष्णवीशक्तिरनन्तवीर्या विश्वस्य बीजं परमासि माया।

"हे देवि अनन्तशक्तिसम्पन्न वैष्णवी शक्ति आप ही हैं। विश्व की उत्पत्ति में बीज

रूप आप ही हैं और परमा माया आप ही हैं। अतः ब्रह्म का इस परमा माया की सहायता के लिए योगनिद्रा की स्तुति करना उचित ही है। और जो दैत्य मधु और कैटभ इस विश्व के केन्द्र बिन्दु-विष्णु की नाभि से उद्भूत होने वाली सृजन शक्ति के प्रतिबन्धक हैं। वास्तव में यह केन्द्रबिन्दु ही तो माया और सत्य का संगमस्थल है। यही बिन्दु व्यक्ति में मन और चेतना का मिलन स्थल है, बिन्दु के एक ओर अव्यक्त चित् और दूसरी ओर माया का व्यक्त संसार है। अतः बिन्दु पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता। कमल विकास का प्रतीक माना जाता है, इसलिए नाभिकमल से उद्भूत ब्रह्मा।

विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम्।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः। ५३

अन्वय- प्रभुः विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीं तेजसः विष्णोः अतुलां भगवतीं निद्रां तुष्टाव इति पूर्वश्लोकेन अन्वयः। अथवा तेजसः अतुलां अथवा तेजसः प्रभुः ब्रह्मा विष्णोः निद्रां तुष्टाव। अथवा

निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलतेजसः प्रभु इति पाठं मत्वा अतुलतेजसः प्रभुः ब्रह्मा अथवा अतुलतेजसः विष्णो अथवा

स्तौमि निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलतेजसः इति पाठं मत्वा

अन्वय- विश्वेश्वरीं जगदधात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् अतुलतेजसः विष्णोः भगवतीं निद्रां स्तौमि।

शब्दार्थ- विश्वेश्वरी- विश्व की ईश्वरी व्यापिका अथवा जननी, जगद्धात्री- 'जगतां' धात्री-धारणपोषण करने वाली, जननी भी, स्थितिसंहारकारिणीम्-स्थितिर्जन्म संहारो, नाशश्च तत्कारिणी-संसार की उत्पत्ति और नाश करने वाली, अतुलतेजसः-अतुलं असदृशं तेजो यस्य सः- जिसका तेज अतुलनीय है, तेजसः अतुलाम्-तेज में जो अतुलनीय है, प्रभुः-प्रकर्षेण भवतीति प्रभुः-ब्रह्मा का विशेषण, भगवतीम्-षडैश्वर्य सम्पन्न अथवा भगवान् का स्त्रीलिंग मानकर-

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतनामगतिं गतिम्।
वेत्ति विद्याविद्यांच स वाच्यो भगवानिति।

निद्रा- विरतेन्द्रियप्रदेशे मनोलयो निद्रा जहां इन्द्रियों की गति न हो ऐसे प्रदेश में मन का लीन होना ही निद्रा है।

व्याख्या- ब्रह्मा ने अथवा अतुलनीय तेज से परिपूर्ण ब्रह्म ने विश्व की नियामिका शक्ति संसार का धारण पोषण करने वाली, स्थिति और संहार करने वाली, दुर्धर्ष तेज से अतुलनीय विष्णुसंबंधी अथवा विष्णुरूपा भगवती निद्रा की स्तुति की।

अथवा स्तौति निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलतेजस: ऐसा पाठ मानकर अर्थ होगा-

अतुलनीय तेजस्वी विष्णु की निद्रा की स्तुति करते हुए कहा कि मैं विष्णु भगवान की उस निद्रा की स्तुति करता हूं जो संसार की नियामिका, धारण पोषण करने वाली और संसार की स्थिति और लय करने वाली है।

गुप्तवती टीकाकार महामति भास्करराय ने - स्तौमि निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलतेजस: पाठ मानकर उपोद्घात में ही इसी आधार पर इसके रात्रिसूक्त माने जाने पर अपनी असहमति व्यक्ति की है कि यहां तो स्तुति के बीच में ब्रह्मोवाच आया है जबकि स्तुति का प्रारंभ तो विश्वेश्वरींजगद्धात्रीं से ही हो चुका है। वे ऋग्वेदीय रात्रिसूक्त और देवीसूक्त को ही मानने के पक्ष में हैं।

ब्रह्मोवाच- त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कार: स्वरात्मिका।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधामात्रात्मिका स्थिता:। ५४

अन्वय- हे अक्षरे हे नित्ये त्वं स्वाहा, त्वं स्वधा, त्वं वषट्कार: स्वरात्मिका हि, त्वं सुधा त्रिधामात्रात्मिका स्थिता।

विशेष- वषट्कारस्वरात्मिका ऐसा समस्त पद भी पाठ मिलता है। त्रिधामात्रात्मिकास्थिता ऐसा समस्त पद भी पाठ है। त्रिधामात्रात्मिका का पदच्छेद भी अनेक प्रकार से किया गया है, यथा-त्रिधा, त्रिधामा, त्रिधा, मात्रात्मिका, त्रिधामात्रा, आत्मिका आदि।

अथवा-नित्ये अक्षरे त्रिधामात्रात्मिका स्थिता ऐसा भी अन्वय किया जा सकता है। इसके अनुसार अक्षरे और नित्ये संबोधन न होकर अक्षरे सप्तम्यन्त होगा और नित्ये अक्षरे के विशेषण रूप में होगा। सभी अर्थ अभिप्रेत हैं।

शब्दार्थ- स्वाहा-देवताओं को तृप्ति करने वाली, स्वाहा और स्वधा मन्त्ररूपा भी आप हैं अत: स्वाहा-देव अग्नि रूप और स्वधा पितृ-सोमरूप इस प्रकार इस अग्निषोमात्मकं जगत् की सर्वव्यापिका शक्ति आप ही हैं।

वषट्कार- षट् क्रियते यत्र स वषट्कारो यज्ञ: यज्ञदेवाह्वानमन्त्रश्च। जिस यज्ञ में वषडिन्द्राय कहकर इन्द्र के लिए आहुति दी जाती है। वह इन्द्र की शक्ति आप ही हैं अथवा जिसमें वषट्कार किया जाता है, वह यज्ञरूपा आप ही हैं अथवा वषट् मन्त्ररूप आप ही हैं अथवा आप ही वषट्कार यजमान और ऋत्विज आप ही हैं। वषट्कारस्वरात्मिका इसे एक पद मानकर अर्थ होगा- वषट्कारं स्व: फलस्वरूपं तप: प्रयोजनं आत्मा यस्या:- वषट्कार प्रवर्तक स्वर्गरूप फल देने वाली आप ही हैं। स्वरात्मिका-स्वर सोलह है। यथा- अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अ:। इन सोलह स्वरों की आत्मा आप ही हैं। कहा गया है कि शक्ति स्वर रूपा है और व्यंजन शिव रूप है। शक्ति के बिना शिव गतिशील नहीं का भाव भी यही है कि स्वरों की

सहायता के बिना व्यंजनों का उच्चारण नहीं हो सकता। अतः यहां शक्ति को स्वरात्मिका कहा गया है।

विना स्वरैस्तु नान्येषां जायते व्यक्तिरंजसा।
शिवशक्तिमयान्त्राहुस्तस्माद्‌वर्णान्मनीषिणः।
ककारादिक्षकारान्ता वर्णास्ते शिवरूपिणः।
समस्तव्यस्तरूपेण षट्त्रिंशत्तत्वविग्रहाः।
अकारादिविसर्गान्ताः स्वराः षोडशशक्तयः।
नित्याषोडशिकात्मानः परस्परसमायुताः।
शिवशक्तिमयावर्णाः शब्दार्थप्रतिपादिकाः।
शिवः स्वरपराधीनो न स्वतंत्रः कथंचन।
स्वराः स्वतंत्राः जायन्ते न शिवस्तु कदाचन।

- सौन्दर्यलहरी पर गोपालसुन्दरी भाष्य

अथवा उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ये तीन प्रकार की आत्मा आप ही हैं। अथवा रागों के सप्त स्वर षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद- इन स्वरों की आत्मा आप ही हैं। स्वरात्मिका का सन्धिविच्छेद दो प्रकार से होता है। स्वर् आत्मिका और स्वर आत्मिक, कोश के अनुसार स्वर्- स्वःप्रेत्य व्योम्नि नाके च "और स्वर्गे परे च लोके स्वः" अतः स्वर् आत्मिक का अर्थ होगा- स्वः स्वर्ग आत्मा यस्याः सा स्वर्गरूपा आप स्वर्गरूपा है। व्योमरूपासि च आप व्योमरूपा व्यापक हैं। जहां स्वर मानकर सन्धिविच्छेद किया जायेगा वहां स्वर कोश के अनुसार-स्वरो नासासमीरे स्यात् मध्यमादित्रिकस्वरे। उदात्तादावकारादौ षड्जादौ च ध्वनौ पुमान्"

अतः स्वरात्मिका का अर्थ- उदात्तानुदात्तस्वरित रूपा अथवा ह्रस्व दीर्घ प्लुत रूपा सुधा-अमृतरूपा, सुधा देवान्नं तद्रूपा वा, अथवा सुधा मोक्षो ज्ञानफलं सा त्वमेव मोक्षफल देने वाली ज्ञानरूपा आप ही हैं, अक्षरे प्रणवे अतः ओंकाररूपा, अथवा क्षरति संचलति क्षरं न क्षरं अक्षरं ध्रुवं अतः अक्षरा ध्रुवा, नित्ये-जन्मविनाशरहित, शाश्वति, त्रिधा-अकारोकारमकारात्मना- ओम् के अकार, उकार और मकार के रूप में त्रिधा, अथवा तीन लोक, तीन वेद, तीन देव इन्हें धारण करने वाली त्रिधा, त्रिधामा,-त्रीणि, धामानि यस्याः सा, सोमसूर्याग्निरूपा, कोश के अनुसार-धाम शक्तौ प्रभावे च तेजो मन्दिरजन्मसु यहां धाम का अर्थ तेजोरूपा और त्रीणि धामानि गृहानि, भुवनानित्रयो देहा यस्याः सा ब्रह्माविष्णुशिवात्मिका, त्रिधामात्रात्मिका-त्रिधा त्रिभिः प्रकारैः एकमात्र, द्विमात्र, त्रिमात्ररूपा स्वरापरपर्याया, स्वरवर्णरूपा असि अथवा स्थिता असि, अथवा त्रिभिः प्रकारैः ब्राह्मीमाहेश्वरीवैष्णवी, रूपा मातरः आत्मा स्वरूपं यस्या सा ब्राह्मी, माहेश्वरी और वैष्णवी

माता के रूप वाली हो, त्रिधामात्रात्मिका- ह्रस्व दीर्घ प्लुत रूपा, अथवा अकारोकारमकाररूप ओंकाररूपा हो। नित्ये अक्षरे आस्थिता-ओंकार में प्रतिष्ठित हो।

व्याख्या-ब्रह्मा जी ने भगवान विष्णु को जगाने के लिए उनकी योगनिद्रा की स्तुति इस प्रकार की कि हे देवि आप सनातनी हैं, शाश्वत हैं जन्ममरण से रहित हैं आप सदा रहने वाली अक्षरा हैं। आप स्वाहा हैं जिसके द्वारा देवताओं को हवि देने पर उनकी तृप्ति होती है। स्वाहा मन्त्ररूप आप ही हैं, देवताओं की तृप्ति करने वाली आप ही हैं, आपके द्वारा ही देवताओं का आवाहन किया जाता है, आप जिन्हें अपना लेती हैं उनके समीप सदा रक्षार्थ रहती हैं, जाती हैं पहुंचती हैं। आप ही पितरों के लिए अन्न पहुंचाने वाली स्वधा हैं, आप स्वधा मन्त्ररूपा हैं आप जिन्हें अपना लेती हैं, उनका धारण पोषण आप ही करती हैं, आप वषट्कार रूपा मन्त्र हैं, यज्ञरूपा हैं, यजमानरूपा भी हैं। आप यज्ञ में देवताओं का आवाहन करने वाली मन्त्र वषट्कार रूपा हैं। आप ही अमृतरूपा है, अथवा वषट्कार प्रवर्तक स्वर्ग प्राप्ति के फलस्वरूप आप ही हैं। सोलह स्वरों के रूप में आप ही हैं, आप आत्मरूपा हैं आप सर्वव्यापक आकाशरूपा है, स्वर्ग रूपा व स्वर्ग को प्राप्त कराने वाली हैं। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित रूपा भी आप हैं, संगीत के सप्त स्वर रूपा हैं, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुतरूपा हैं। आप त्रिधा-सत्व, रजस् और तमोरूपा हैं। वामा, ज्येष्ठा और रौद्री रूपा हैं, ब्रह्मविष्णुशिवात्मक हैं, आप सत्, चित् और आनन्दरूपा हैं, काली, लक्ष्मी और सरस्वती रूपा हैं, ऋक्, यजुष् और सामरूपा भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल रूपा हैं, आप शरीर में शक्ति कुण्डलिनी रूप में इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा आप ही हैं आप त्रिधामा हैं- सोम, सूर्य और अग्निरूपा हैं, प्रभाव, उत्साह और मन्त्रशक्ति रूपा हैं, त्रिधामात्रा स्थिता इस प्रकार ब्राह्मी, माहेश्वरी और वैष्णवी तीनों मातृरूपा हैं। त्रिधामात्रात्मिका- प्रणव जो तीन मात्रा का है, उसमें तीन मात्रा अकार, उकार और मकार रूपा हैं।

रहस्य- यज्ञ में हवि छोड़ते समय वषट् कहा जाता है जैसे- वषडिन्द्राय, वषट् पौष्णे इसी प्रकार वौषट् और श्रौषट् का भी उच्चारण किया जाता है। विचारणीय यह है कि इन तीनों में षट् लगा है जिसका अर्थ छः होता है। वषट्कार का अर्थ षट्कोणात्मक होता है। मन और पंच महाभूत मिलाकर छः होता है। यही षट्कोण हैं। पंचमहाभूत से पंचतन्मात्रा और पंचेन्द्रियों के व्यापार चलते हैं। इन षट्कोणों में मन और पांच ज्ञानेन्द्रियों के अंश सक्रिय रहते हैं। जिसका प्रकार यह है- मध्यवर्ती मन के तीन अंश-मन, हृदय और अक्षर, आकाश में मन, हृदय और अक्षर के एक एक अंश और ब्रह्मा, विष्णु, महेश के एक-एक अंश मिलकर तीन और छः नव हो जाते हैं। वायु में इन नव के अतिरिक्त छः अंश और मिलकर १५ होते हैं। तेजस् में छः और मिलाने से २१ और जल में छः जोड़ने से २७ तथा पृथ्वी में छः जोड़ने से ३३ होते हैं। यही

तैंतीस कोटि देवता है। ३, ९, १५, २१, २७ और तैतीस मिलाकर १०८ होते हैं। यही सृष्टि की माला है। इसे स्तोमविद्या अथवा वषट्कार विद्या कहा गया है। गुप्तवती टीका के अनुसार इससे क्रीं कालीबीज वं सुधाबीज और त्रिधामात्रात्मक ओम के साथ विशेषत: अनुच्चार्या नाद का संकेत दिया गया है। अर्ध मात्रा अनुस्वार का बोधक है।

अर्धमात्रा स्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषत:।

त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा। ५५

अन्वय- या नित्या विशेषत: अनुच्चार्या अर्धमात्रा स्थिता सा त्वं एव हे देवि त्वं सावित्री त्वं जननी परा च। कहीं वेदजननी पाठ भी है।

शब्दार्थ- अर्धमात्रा-परार्ध और अवरार्ध, परार्ध-अव्यक्त-अमात्रा, नामात्रे विद्यते गति: अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं क्व तदबभूव। उस सृष्टिकर्ता का आधा अंश परार्ध नाम से जाना जाता है, जो अव्यक्त है। अर्ध में इस विश्व ब्रह्माण्ड की स्थिति है। पहिले त्रिधामात्रात्मिका कहा गया है जो प्रणवरूपा है। प्रणव की तीन मात्राएं अकार, उकार और मकार हैं प्रणव को तार भी कहते हैं इसका जब कांस्य घण्टा निनादवत् उच्चारण होता है तो जो ध्वनि गूंजती है, उसे अर्धमात्रा कहा जाता है। तन्त्र के अनुसार मन्त्र की तीन मात्रा के आगे जो द्वादशान्त उच्चारण है, उसमें बिन्दु से लेकर उन्मना तक अर्धमात्रा कहा जाता है। शारदातिलक के अनुसार ओंकार के उच्चारण में- तारस्य सप्तविभवै: परिचीयमानं जिसे कहा गया है उसमें ओंकार के उच्चारण की बिन्दु, नाद, शक्ति और शान्त को मिलाकर अर्धमात्रा कहा जाता है। यह केवल ओंकार के लिए ही नहीं जिन बीजाक्षरों का त्रिधामात्रात्मक उच्चारण किया जाता है उन सबमें बिन्दु के उच्चारण से लेकर आगे तक की ध्वनि को अर्धमात्रा कहा जाता है।

वरिवस्यारहस्य में ह्रीं बीज के संबंध में कहा गया है-

हल्लेखाया: स्वरूपं तु व्योमाग्निर्वामलोचना।

बिन्द्वर्धचन्द्ररोधिन्यो नादनादान्तशक्तय:

व्यापिका समनोन्मन्य इति द्वादशसंहति:।

बिन्द्वादीनां नवानान्तु समष्टिर्नाद उच्यते।

व्योम हकार, अग्नि रकार वामलोचना ईकार ह्रीं में इन तीनों की एक एक मात्रा मानकर त्रिधामात्रत्मिका और अनुस्वार की नवनादात्मक ध्वनि को समष्टिनाद अथवा अर्धमात्रा कहा जाता है। इसी प्रकार क्लीं, श्रीं आदि बीजाक्षरों के विषय में समझना चाहिए। द्वादशान्त उच्चारण की विधि गुरुमुख से ही जानने योग्य है। मुण्डकोपनिषद् में इसी के लिए कहा है-

''तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छते।''

अर्धमात्रा का विषय अत्यन्त गूढ और दुरूह है इसलिए इसके विषय में आगे भी कहा जायगा। सामान्य अर्थ में तो व्यंजनंचार्धमात्रकम् के अनुसार अर्धमात्रा का अर्थ व्यंजन होता है। जिसका उच्चारण बिना स्वर की सहायता के नहीं किया जा सकता। कोश के अनुसार मात्रा का अर्थ होता है- मात्रं त्ववधृतौ स्वार्थे कात्स्र्न्ये मात्रा परिच्छदे। अक्षरावयवे द्रव्ये मानेल्पे कर्णभूषणे। काले वृत्ते च तथा- ''मात्रा परिच्छदे अल्पे च परिमाणे स्यान्मात्रं कृत्स्नेऽअवधारणे। तथा-मात्रा कर्णविभूषायां वित्ते माने परिच्छदे। अक्षरावयवे त्वल्पे क्लीबं कार्त्स्न्येऽवधारणे।

अक्षरावयवे के अर्थ में तो उ की मात्रा, ए की मात्रा ओ की मात्रा आदि जो अक्षरों में लगाई जाती है जिसे फारसी में जेर, जबर, पेश आदि कहा जाता है। माङ् माने धातु से जो मात्रा शब्द बनता है, वह देश काल, स्थान, वस्तु की माप का बोधक है। अर्धमात्रा का अर्थ काल की उस माप से है, उस कालमान से है जिसके उच्चारण में आधी मात्रा का समय लगता है। एकमात्रो भवेद् ह्रस्व के अनुसार ह्रस्व अ के उच्चारण में जितना समय लगता है, उससे आधे समय को अर्धमात्रा काल कहा जाता है। योगशास्त्र में जिसे क्षण कहा जाता है, उसी कालपरिमाण को तन्त्र की भाषा में अर्धमात्रा कहा जाता है। वहां इसकी गति के लिए क्रम शब्द का प्रयोग किया जाता है, यहां उसके लिए उच्चारण का प्रयोग किया गया है। नित्या-काल के परिणाम से अप्रभावित, विशेषतः अनुच्चार्या-विशेष रूप से जिसका उच्चारण न किया जा सके।

सावित्री-बिना व्याहृति का गायत्री मन्त्र, कुछ टीकाकारों के अनुसार व्याहृतिसहित को गायत्री और बिना व्याहृति के उसी को सावित्री कहा जाता है। सविता की विशेष शक्ति, षूञ्, प्राणिप्रसवे धातु से सविता शब्द बनता है। इसी अर्थ में संसार को उत्पन्न करने वाली सवितृशक्ति, आगे इसी के लिए जननी आया है। जिसका अर्थ जन्म देने वाली होता है। हे देवि, द्योतनशीला-प्रकाशस्वरूपा, वेदजननी पाठ मान कर वेदों को प्रकट करने वाली, सरस्वतीरूपा, परा-उत्कृष्ट, अथवा पराप्रकृतिरूपा जिसके विषय में गीता में कहा गया है-

भूमिरापोऽनलोवायुः खं मनोबुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।
अपरेयमितिस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्। गीता ७/४-५

यहां जीवभूता प्रकृति को परा कहा गया है। मूलप्रकृति अथवा परावाक्।

व्याख्या- ओंकार की साढेतीन मात्रा में आप तीन मात्रात्मक हैं, यह पहिले कहा

जा चुका हे, उसमें नादात्मक अर्धमात्रा आप ही हैं। तीन मात्रा से जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति का भी अर्थ होता है। आप इनसे परे तुरीया हैं। त्रिगुणात्मक तीन मात्रा इनसे परे गुणातीत परा आप ही हैं। अथवा- .

व्यक्ता तु प्रथमा मात्रा द्वितीयाव्यक्तसंज्ञिता।
मात्रा तृतीया चिच्छक्तिरर्धमात्रा परं पदम्।

प्रथम मात्रा व्यक्त जगत की बोधक है, दूसरी मात्रा अव्यक्त जो दृष्टिगोचर नहीं उसकी बोधक है। तृतीय मात्रा ही चिति शक्ति है जिसके लिए कहा गया है- ''चितिः स्वतंत्रा विश्वसिद्धिहेतुः'' अर्धमात्रा उससे परे है। अथवा-

अकारश्च तथोकारो मकारश्चाक्षरत्रयम्।
एता एव त्रयो मात्रा सत्वराजसतामसाः।
निर्गुणा योगिगम्या च सार्धमात्रा च संस्थिता।

अकार, उकार और मकार ये तीनों मात्रा क्रम से सत्व, रजस् और तमस् इस प्रकार त्रिगुणात्मक हैं। इनसे साकार का बोध होता है। सगुण का बोध होता है। चौथी जो अर्धमात्रा है उसका ज्ञान केवल योग साधना करने वालों को ही होता है, पर सभी को नहीं यह निर्गुण ध्यान का विषय है। तीन अवस्थाओं से परे जब योगी को तुरीयावस्था का अभ्यास सिद्ध हो जाता है, तभी इस नादात्मक अथवा द्वादशान्त उन्मनी अवस्था का अनुभव हो पाता है। यह अर्धमात्रा अनुच्चार्या है क्योंकि वह बैखरी वाणी का विषय नहीं है। आप ही सविता की शक्ति सावित्री हैं। अथवा तीनों वेदों में वर्णित गायत्रीरूपा आप ही हैं। आप वेदजननी हैं। आप परा वाक् रूपा हैं। देवजननी पाठ मानकार आप ही देवमाता अदिति हैं। कहीं त्वमेव सन्ध्या सावित्री ऐसा पाठ मानकर अर्थ किया गया है। तदनुसार यहां सन्ध्या की परिभाषा दे देना आवश्यक प्रतीत होता है-

त्रयाणां चैव देवानां ब्रह्मादीनां समागमः।
सन्धिः सर्वसुराणांच तेन सन्ध्या प्रकीर्तिता।

'जहां ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवों का समागम हो तथा सभी देवताओं की भी सन्धि हो मिलन हो उसे सन्ध्या कहते हैं वह आप ही हैं अथवा जिस शक्ति के प्रभाव से जीव और शिव का योग होता है उसे सन्ध्या शक्ति कहते हैं। आगे के कथानक में इस प्रकार का एक अवसर आया है।

रहस्य- मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत आने वाले इस दुर्गामाहात्म्य में तीन चरित हैं। सामान्य दृष्टि से यह पौराणिक आख्यान मात्र है। भौतिक दृष्टि से विकासवाद का सिदधान्तमानने वालों के अनुसार इसमें आदिम मानव से प्रारम्भ कर उसके विकास का

संकेत है। आधिभौतिक दृष्टि से चर गतौ धातु गति की बोधक है। जिससे चरित अथवा चरित्र शब्द बनता है। इसके अनुसार तीन चरितों में समष्टि और व्यष्टि दोनों स्तरों पर साधन मार्ग के तीन सोपानों का वर्णन आया है। कल्पान्त के पश्चात् सृष्टि के विस्तार का वर्णन है। तो साधनपथ का अनुसरण करने वालों के लिए योगमार्ग और तान्त्रिक वैदिक दोनों पद्धतियों का समन्वय करते हुए साधना के संकेत दिए गये हैं।

इस प्रकार आलंकारिक भाषा में यह एक रूपक है तो प्रतीकात्मक भाषा में साधना के लिए दिशा निर्देश करने वाला। आधिदैविक स्तर पर इसमें दैवी और आसुरी शक्तियों के संघर्ष का वर्णन और दैवी शक्तियों के द्वारा आसुरी शक्तियों के पराभव के साथ सत्य के विजयाभियान और उसकी सनातन प्रतिष्ठा-पुन: स्थापना की कथा है। इस स्तर पर- इत्थं यदायदा बाधा दानवोत्था भविष्यति। तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्। के अनुसार विश्व में जब तमोगुणी शक्तियों के प्राबल्य के कारण सामंजस्य बिगड़ने लगता है तो परमशक्ति का उदय उस सामंजस्य की स्थापना के लिए होता है। व्यष्टि जगत् में कामक्रोधलोभ मोहमदमत्सर के प्राबल्य से जब सत्य दब जाता है तो उनके पुनरुत्थान और जीवन में सत्व की प्रतिष्ठा का प्रयत्न संभव होता है। इस स्तर पर मन्त्र-शक्ति और सामूहिक शक्ति के प्रभाव का स्पष्ट वर्णन किया गया है। इस प्रकार भौतिक आधिभौतिक, आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा व्यष्टि और समष्टि की प्रगति का एक साथ इतना स्पष्ट और विशद विवेचन किसी दूसरे ग्रन्थ में कदाचित् ही उपलब्ध हो। यहां ब्रह्मा के द्वारा जो स्तुति की गई है, उसमें शक्ति की महिमा का वर्णन विश्वस्तर पर और व्यक्ति स्तर पर एक साथ आलंकारिक, प्रतीकात्मक और सामान्य-जन के लिए एक साथ प्रदर्शित किया गया है यही इस स्तुति की विशेषता है यहां स्वरात्मिका, त्रिधामात्रत्मिका और, अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषत:। त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा। के गूढ़ इंगित को स्पष्ट करने का स्वमतिपरिणामावधिगृणन् के अनुसार यथामति वर्णन करने की चेष्टा की जा रही है।

स्वरात्मिका- स्वरों को शक्त्यात्मक और व्यंजनों को शिवात्मक माना जाता है। स्वरं बिना येषामभिव्यक्तिरंजसा न भवन्तीति व्यंजनानि। स्वरों की सहायता के बिना जिनका उच्चारण सरलता से सम्भव नहीं होता। इसलिए व्यंजन अथवा पदार्थों के व्यंजक बोधक होने के कारण व्यंजन। स्वरात्मिका के लिये मतंग मुनि की वृहद्देशी में जो विवरण मिलता है, वह दृष्टव्य है-

यथानुभूतदेशाच्च ध्वने: स्थानानुगादपि।
ततो बिन्दुस्ततो नादस्ततो मात्रास्त्वनुक्रमात्।
वर्णास्तु मात्रकोद्भूता मात्रका द्विविधा मता
स्वरव्यंजनरूपेण जगज्योतिरिहोच्यते।

स्वर्यते देशभाषायामादिक्षान्तं यथाविधि।
तेन स्वराः समाख्याता अन्ये षड्जादयः स्वराः।
व्यंजनत्वं तु सर्वेषां कादिवर्गेषु संस्थितम्।
शक्त्यभिव्यक्तिमात्रेण व्यंजनं शिवतां गतम्।

"मतंगमुनि के अनुसार वर्णों के उच्चरित होने का क्रम इस प्रकार है कि प्रथम ध्वनि फिरबिन्दुफिर नाद फिर मात्रा और मातृका से वर्ण। यहां ध्वनि को स्पन्द अथवा स्फोट के अर्थ में प्रयुक्त मान सकते हैं। मातृका के दो भेद-स्वर और व्यंजन हो जाते हैं। स्वरों की निष्पत्ति स्वृ धातु से मानकर अर्थ किया है। स्वर और व्यंजन मिलकर जो वर्ण और शब्द बनते हैं, उनसे ही पदार्थमात्र का बोध होता है अतः भौतिक पदार्थों के प्रकाशक होने के कारण उन्हें जगज्योति कहा गया है। अ से लेकर क्ष तक मातृकावर्ण जिनसे प्रकाशित होते हैं। इसलिए इन्हें स्वर कहा गया। इस प्रकार स्वर शक्तिरूप हैं और व्यंजन स्वर-शक्ति से ही व्यंजित होने के कारण शिवरूप हैं।" श्रीमच्छंकराचार्य ने भी सौन्दर्यलहरी में कहा है-

शिवःशक्त्यायुक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।

संगीत के अनुसार स्वर और मात्रा का यह वर्णन है। व्यंजनम् चार्धमात्रकम् जो कहा गया है वह लोक व्यवहार में भी स्पष्ट देखा जाता है, जैसे कि मन्द्र के उच्चारण में हलन्त द का जो उच्चारण है उसमें सामान्य ह्रस्व स्वर के उच्चारण से आधा समय लगता है। इसी प्रकार कृत्स्न में हलन्त स के उच्चारण में आधा समय लगता है। वास्तव में लोक व्यवहार में मात्रा का आशय उस समय के माप के लिए आता है जो अक्षरों के उच्चारण में लगता है। इसे अधिक स्पष्ट करने के लिए मात्राकाल कहा जा सकता है।

इसी प्रकार अनुच्चार्या का अर्थ होता है जो उच्चारण के योग्य न हो अथवा जिसका उच्चारण न किया जा सके। शब्दों का उच्चारण कैसे होता है, इसके संबंध में सारंगदेव ने संगीतरत्नाकार में बताया है-

आत्मा विवक्षमाणोऽयं मनः प्रेरयते मनः।
देहस्थं वन्हिमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्।
ब्रह्मग्रन्थिस्थितः सोऽथक्रमादूर्ध्वपथे चरन्।
नाभिहृत्कण्ठमूर्धास्येष्वाविर्भावयति ध्वनिम्।
नादोऽतिसूक्ष्मः सूक्ष्मश्च पुष्टोऽपुष्टश्च कृत्रिमः।
इति पंचाभिधां धत्ते पंचस्थानस्थितः क्रमात्।

नकारं प्राणनामानं दकारमनलं विदु:।

जात: प्राणाग्निसंयोगात्तेन नादोऽभिधीयते।

शारदातिलक आदि ग्रन्थों से यहां नाद का प्रयोग भिन्न अर्थ में किया गया है। ना का अर्थ प्राणवायु और दकार का अर्थ अग्नि किया है। शब्द के उच्चारण के क्रम में कहा गया है कि मूलाधार से परा वाक् किस प्रकार ऊर्ध्व गमन करती है। आत्मा को बोलने की इच्छा होने पर मन को प्रेरणा होती है जो शरीरस्थ वन्हि से वायु को प्रेरित करता है। वही वायु मूलाधार से उत्थित होकर जब मणिपुर में पहुंचती है तो पश्यन्ती के नाम से अतिसूक्ष्म ध्वनि के रूप में जानी जाती है। फिर अनाहत में वही मध्यमा के रूप में सूक्ष्म होती है, विशुद्धिचक्र में पहुंच कर उसे पुष्ट कहा गया है, मूर्धा में अपुष्ट और अष्ट स्थान प्रयत्न से उच्चारित होकर कृत्रिम कही जाती है। लक्ष्मीतन्त्र के अनुसार परा वाक् को नाद, पश्यन्ती को बिन्दु मध्यमा को शक्ति और वैखरी को शान्त कहा गया है।

अनुच्चार्या का सामान्य अर्थ जिसका उच्चारण न किया जा सके।

आध्यात्मिक पक्ष में त्रिधामात्रात्मिका के अर्थ के लिए योगिनी हृदय में मात्त्रयात्मिका पर भास्करराय की सेतुबन्ध टीका दृष्टव्य है। उसके अनुसार "मातरो विश्वजनन्य इच्छाज्ञानक्रियात्मिका देव्यस्तत्रितयसमष्टिरेवात्मा स्वरूपं यस्य तत् मातृपदेनैव इच्छादिपरामर्शस्तु वामादित्रयसमष्टिरूपत्या: श्लेषेण पश्यन्त्यादिमातृकात्रयसमष्टितायाश्च ध्वननार्थम्। मातृरूपत्वादेव विश्वलहरी स्थानं च विश्वं षटित्रंशत्तत्वात्मकमेव लहर्यस्तरंगा स्तेषां स्थानमाधार:। विश्वस्यलहरीत्वोक्त्वा तादृशवृत्तेः समुद्रतुल्यता ध्वनिता। तादृशविश्वोद्गमोत्वमेव क्रमेण सर्वसृष्टीनां जायमानत्वाद्विश्वजनकत्वम्।"

"माता का आशय विश्व को उत्पन्न करने वाली माताओं से है, इच्छाज्ञान और क्रिया स्वरूप तीन शक्तियां ही माता कही गई हैं। मातृ पद से ही इच्छाज्ञानक्रियारूप का बोध होने पर भी इसी से वामा, ज्येष्ठा रौद्री और पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी की भी ध्वनि स्पष्ट है। वामा नाम विश्व को वमन करने के कारण हुआ यहां वमन से आशय गर्भ में स्थित विश्व को बाहर करने मात्र से है। ज्येष्ठा विष्णुरूपा पालनकर्त्री और इस विश्व को-संहार-समेट लेने वाली शक्ति को रौद्री कहा गया है। विश्वलहरी कहने का आशय यही है कि विश्व लहर के ही समान दृष्टिगोचर होता है जिस प्रकार समुद्र में लहर उठती और विलीन होती रहती है, उसी प्रकार समष्टिमातृ से छत्तीस तत्वों की लहरों वाले विश्व का उद्गिरण और लय होता है। जिनसे इस प्रकार विश्व का उद्गम होता है सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति होती है, इसीलिए प्रसृतं विश्वलहरी स्थान मातृत्रयात्मकम् कहा गया है। उनका मातृत्व विश्व को उत्पन्न करने के कारण ही है। अन्यत्र कहा गया है। वैखरी विश्व विग्रहा-यह सारा शब्द और अर्थजात प्रपंच वैखरीरूपा ही है अत: उसका यह विश्व ही

विग्रह-शरीर है।

वाणी परा में अव्यक्त रहती है, पश्यन्ती में स्फुरण रूप में व्यक्त होकर मध्यमा में आकर अनाहत ध्वनि के रूप में और कण्ठ में विशुद्धि चक्र में आकर स्पष्टपदाक्षरमयी होकर पदार्थों की बोधक बनती है। इसलिए पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी को मातृत्रयात्मक अथवा त्रिधा-मातृ आत्मिका कहा गया है। समष्टिजगत में यह जगज्योति शब्दार्थरूपा और व्यष्टि प्राणी में उच्चारण से व्यक्तरूपा है।

आगे जो जननी परा कहा गया है उसका आशय यही है कि परा वाक् ही जननी परा है। पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी को त्रिधामात्रात्मिका कह कर परा वाक् जो मूलाधार में अव्यक्त रूप में स्थित है, वही इन तीनों की जननी होने के कारण परा-उत्कृष्टा है।

अब रह जाती है अनुच्चार्या विशेषण की बात। इसे अनुच्चार्या क्यों कहा गया है। तन्त्र साहित्य में उच्चारण शब्द का प्रयोग विशेष अर्थ में किया जाता है, यह एक टेक्नीकल-पारिभाषिक शब्द है। तन्त्रालोक में कहा गया है-

उक्तो य एष उच्चारस्तत्र योऽसौ स्फुरन्स्थितः।

अव्यक्तानुकृतिप्रायो ध्वनिर्वर्णः स उच्यते। तन्त्रालोक ५/१३१

उच्चारण का सन्धिविच्छेद होगा-उत्-चार चर गतौ धातु से चार बनता है। उत् उपसर्ग सदैव अति के अर्थ में और ऊर्ध्व के अर्थ में प्रयुक्त होता है जैसे- उद्घोष का अर्थ उच्च स्वर से घोषणा करना उत्क्षिप्य ऊपर को उछालना। इसी प्रकार उच्चार का अर्थ हुआ- ऊपर को गति। शब्दों के उच्चारण के संबंध में इसका आशय यही है कि मणिपूरस्थ अग्नि से आहत वायु जब उत्थित होकर ऊपर को चलती है और हृदय, कण्ठ, मुख, ओठ, तालु, मूर्धा, नासिका और जिहवा के द्वारा बाहर निकलती है वाणी रूप में तो उसे उच्चारण कहा जाता है। उच्चारण की प्राथमिक स्फुरणा को ही अभिनव गुप्तपाद ने उच्चार कहा हैं। विज्ञानभैरव की टीका में श्री जयदेवसिंह ने कहा है- उच्चार प्राण की वह विशेषता है-

Which means expression in the form of NADA sound subtle inarticulate or unmanifest and moving upward known as varna.

स्वच्छन्द तन्त्र में कहा गया है-

नास्योच्चारयिता कश्चित् प्रतिहन्ता न विदयते।

स्वयमुच्चरते देवः प्राणिनामुरसिस्थितः/स्व. तन्त्र ५/५०

इसके अनुसार अजपा जाप की ओर संकेत किया गया है कि इस उच्चारण का कोई प्रेरक नहीं है न इसे प्रतिहत करने वाला है। प्राणियों के हृदय में स्थित विभु ही स्वयं इस रूप में उच्चार दशा को प्राप्त होते हैं- दिन में २१६०० श्वासोच्छ्वास के

रूप में सोहं हंस: के रूप में अनाहत नाद के रूप में। अनाहत का शाब्दिक अर्थ होता है जो ध्वनि आहत हुए बिना स्वयं उत्पन्न हो। तन्त्रालोक के अनुसार इसकी परिभाषा इस प्रकार है।

एको नादात्मको वर्ण: सर्ववर्णविभागवान्।

सोऽनस्तमितरूपत्वात् अनाहत इहोदित:। तन्त्रालोक ६/२१७

"एक ही नादात्मक वर्ण से सभी वर्णों का विभाजन अष्ट प्रयत्न से होता है। उस नाद का कभी अवसान नहीं होने के कारण उसे अनाहत कहा जाता है। वास्तव में केन्द्र से परिधि की ओर गति का ही नाम प्रसार, सृष्टिविस्तार शब्दब्रह्म का उद्भव आदि कहा जाता है। व्यक्ति के शरीर में केन्द्रस्थानीय नाभि होती है जहां से पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी की शब्दसृष्टि होती है। विश्वसृष्टि में उसे विष्णु की नाभि कहा गया है। जहां नाभिकमल से ब्रह्म-वृंहणशील की उत्पत्ति होती है। चक्र में नाभि वह स्थान होता है जिसमें आबद्ध अरा उसके आधार होते हैं श्रुति का कथन अरा इव रथनाभौ-इसी की ओर संकेत करता है। अत: इससे-स नाभिकमले विष्णो: स्थितो ब्रह्मा प्रजापति:- का रहस्य स्पष्ट हो जाता है। 'मनीषी की लोकयात्रा' में महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने कहीं स्पष्ट किया है कि उच्चारण की अनुलोम और प्रतिलोम दो गतियां होती है। अभी तक इसकी अनुलोम गति के संबंध में कहा गया है। प्रतिलोम गति योगाभ्यास के द्वारा विरले व्यक्तियों को ही सिद्ध हो पाती है। यहां क्रम उलटा हो जाता है। वैखरी से मध्यमा, पश्यन्ती फिर परा वाक् तक का अभ्यास करना होता है। जिस प्रकार जप वाचिक से उपांशु फिर मानसिक उसके पश्चात् अजपा की स्थिति आती है, उसी प्रकार प्राणवायु के निरोध से वृत्तियां जब अन्तर्मुखी होने लगती हैं तो मन की चंचलता कम होने लगती है। चित्त स्थिर होने लगता है। जिसके संबंध में कहा गया है-

वासनाक्षये समीरणचित्ते क्षीणे भवत:

समीरणे क्षीणे चित्तवासने क्षीणे भवत:

चित्ते क्षीणे समीरणवासने क्षीणे भवत:

राधा स्वामी सत्संग वालों के अनुसार धारा को उलटा करने से ही राधा बनता है इस प्रकार आत्मा से माया का आवरण हटने लगता है और हम स्थूल से सूक्ष्म की ओर उन्मुख होते अथवा परिधि से केन्द्र की ओर उन्मुख होते हैं। इसी के लिए उच्चार रहित होना-अनुच्चार्या कहा गया है। तुलसीदास जी ने भी कहा है-

जिहि पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुंक पावहीं।

साधना के क्रम में प्राणशक्ति इस प्रकार इड़ा और पिंगला के निरोध करने पर सुषुम्णा में प्रविष्ट होकर ऊर्ध्वगमन करती है, यही कुण्डलिनी जागरण कहा जाता है

जिसके संबंध में षट्चक्र निरूपण में विस्तार से वर्णन किया गया है। योग के अनुसार इस साधना से भूतजय होकर अलौकिक सिद्धयों का वर्णन विभूतिपाद में किया गया है। अत: व्यक्ति के स्तर पर त्रिधामात्रात्मिका और अर्धमात्रा स्थितानित्या कुण्डलिनी ही है। इसके संबंध में आगे भी संकेत किया जायगा। इसी के लिए शारदा तिलक में कहा गया है-

प्रकाशमाना प्रथमप्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमाना।

नाद ही प्रकाश के रूप में परिणत हो जाता है तथा अवरोहक्रम में सहस्रार से अमृतस्राव से अमृतायमाना कहा गया है।

त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत्।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा। ५६

अन्वय- हे देवि त्वया एतज्जगत् सृज्यते त्वया एतज्जगत् पाल्यते त्वम् अन्ते च एतत् अत्सि एवं त्वया सर्वदा एतत् विश्वं धार्यते।

शब्दार्थ- सृज्यते-उत्पन्न किया जाता है, पाल्यते-रक्षा की जाती है, पालन किया जाता है, अत्सि-भक्षण करती हो, यहां अर्थ आत्मसात् करने से है, अन्ते कल्पान्ते वा प्रलयकाल में, धार्यसे-धारण किया जाता है।

व्याख्या- हे देवि आप ब्राह्मी, वैष्णवी और रौद्री शक्ति के रूप में इस जगत का सृजन करती हो, पालन करती हो और अन्त में इसे अपने में ही लय करती हो। इस प्रकार जगत् की सृष्टि; स्थिति और लय करने वाली आप ही हो अत: जगदधात्री-धारणकर्ता हो। यह क्रम सदा से चलता आ रहा है।

विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये। ५७

अन्वय- हे जगन्मये त्वं अस्य जगत: विसृष्टौ सृष्टिरूपा असि, अस्य जगत: पालने च स्थितिरूपा असि, तथा अस्य जगत: अन्ते संहृतिरूपा असि।

शब्दार्थ- जगन्मये-संबोधन जगन्मया का अर्थ होता है कि आप ही सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं, विसृष्टौ-सृष्टि के सृजन के साथ अन्ते-कल्पान्त अथवा प्रलय के समय, संहृतिरूपा-संहार करने वाली, समेट लेने वाली, संहार का अर्थ विनाश नहीं होता, जिस प्रकार कोई छोटा दूकानदार प्रात:काल सड़क के एक किनारे अपना सामान फैलाकर बेचने केलिए बैठता है और सायंकाल सब वस्तुएं समेट कर रख लेता है। सृजन, पालन, संहार उसी प्रकार की तीन क्रियाएं हैं। सृजन के साथ सृष्टि का विकास होता है, स्थिति के समय विमर्श की अवस्था होती है और संहार के समय संकोच की अवस्था होती है। तत्वों का जिस प्रकार विस्तार हुआ था, उसी प्रकार क्रमश: विलय होने लगता है।

विकास का क्रम सूक्ष्म से स्थूल की ओर होता है, लय का क्रम स्थूल का सूक्ष्म मेंलय सूक्ष्म का कारण में लय होता जाता है।

व्याख्या- शक्ति के तीन रूप हैं-इच्छाज्ञानक्रियात्मक। श्रुति का कथन है-सोऽकामयत एकोऽहं बहुस्याम प्रजायेय। सृष्टि इसी इच्छाशक्ति का परिणाम है। क्रिया शक्ति पालन में प्रवृत्त रहती है और ज्ञानशक्ति सबका स्वयं में संकोच कर रौद्री कही जाती है। इस प्रकार हे जगन्मये आप तो सृजन, पालन और संहार रूप में सदा रहती हैं।

महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः।
महामोहा चभवती महादेवी महासुरी। ५८

अन्वय- महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः महामोहा महादेवी महासुरी च भवती एव। कहीं पाठान्तरहै-महामोहा भगवती महादेवी महेश्वरी।

व्याख्या-आप ही महाविद्या हैं। दशमहाविद्या इस प्रकार बताई गई हैं-

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा।
बगला सिद्धविद्या च मातंगी कमलात्मिका।
एताः दश महाविद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिताः।

दश महाविद्या-काली, तारा, छिन्नमस्ता, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, धूमावती, मातंगी, कमला, बगलामुखी। इन महाविद्याओं के रूप में आप ही हैं। अथवा महाविद्या परब्रह्मगोचरज्ञानरूपा आप ही हैं। अथवा-

विद्येति परमाद्वैतसंप्रवेदनरूपिणी

विश्व और विश्वात्मा की एकरूपता का अनुभव ही विद्या है। महती च सा विद्या च महाविद्यामहत्वंच अप्रमेयतासूचकम्। अथवा मह पूजायां धातु से पूजनीया विद्या। महामाया-माया का अर्थ होता है अन्यस्मिन् अन्यधर्मावभासो हि माया जिस वस्तु का जो गुण है उसमें उससे अन्यथात्व का आभास ही माया है। महती च सा माया महामाया अथवा ब्रह्मादिकों तक को जो मोह में डाल दे वह महामाया-ब्रह्मादीनामपि मोहकत्वान्महामाया। अथवा-

विचित्रकार्यकरणा अचिन्तितफलप्रदा।
स्वप्नेन्द्रजालवल्लोके माया तेन प्रकीर्तिता।

जो मोहवश मनुष्य से विचित्र कार्य कराती है और अनुमान से अन्यथा अथवा सम्भावना से अन्यथा फल देने वाली है, स्वप्न में जैसे कोई जादू का खेल देखता हो उसी के समान होने के कारण इसे माया कहते हैं। अथवा-

आमोदयुक्तं व्यसनासक्तं जन्तुं करोति या।
महामायेति सम्प्रोक्ता तेन सा जगदीश्वरी।

जो प्राणियों को आमोद में मग्न करने और व्यसनों के प्रति आसक्ति उत्पन्न करने वाली है, इसीलिये उस नियामिका शक्ति को महामाया कहा गया है।

अथवा-अनात्मनि आत्मा इति बुद्धिः आत्मनि अपि अनात्मा इति बुद्धिः माया। साधना के स्तर पर अनात्मभाव में आत्मा का भ्रम और आत्मा के प्रति अनात्मभाव जिससे हो वही माया और सर्वजगन्मूलत्वात्तस्य महत्वम् सभी संसार के कारण वह माया ही महामाया। और अविद्या ही उसका अधिष्ठान है- जगत्कारणभूतायामविद्यायाम् तदधिष्ठात्र्याम् अथवा-सच्चिदानन्दे आत्मनि संसारित्वरूप अनर्थावभासहेतुमूला अविद्या शुद्ध आत्मा का स्वरूप सत् चेतन और आनन्दमय है। सांसरिकता के कारण हम सभी आनन्द की खोज बाह्य जगत् में करते हुए भटकते और दुःख उठाते फिरते हैं यह सब जिस अविद्या के कारण है उसी को महामाया कहते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है- ईश्वर अंश जीव अविनाशी-चेतन अमल सहज सुखरासी। स्वयं सहज सुखराशि होकर भी जो सुख की खोज में इधर उधर दौड़ रहा है, उसकी स्थिति उसी प्रकार है जैसे कि कस्तूरी मृग अपनी ही नाभि में स्थित कस्तूरी की गन्ध से मोहित होकर उसके लिए चारों ओर दौड़े। महामेधा-धीर्धारणावती मेधा हे देवि महती धारणावती बुद्धि आप ही हैं। आगे कहा गया है-

मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा। अर्थात् सर्वज्ञत्वशक्ति आप ही हैं। इसी प्रकार महास्मृति का अर्थ ध्यानरूपा और स्मृति को शास्त्रपरक मानकर अर्थ किया गया तो स्मृतियों से भी महती अर्थात् वेदप्रतिपाद्या आप ही हैं। महास्मृति का यह भी अर्थ किया गया है कि सामान्य जन की स्मरणशक्ति का संबंध केवल इस जन्म तक ही सीमित रहता है, परन्तु सृष्टि के अनुकूल बीते हुए कल्पों की भी स्मृति आप में समाहित है। महामोहा-इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति को मोह कहा जाता है-शब्दादिविषयेष्वासक्तिर्मोहः। भ्रान्ति का जो कारण है और वास्तव में जो अनिष्टकर है उसके प्रति भी राग होना मोह है। कहा भी गया है-

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।

वास्तव में याचक जिससे जो वस्तु मांगता है, तदनुसार ही उसका वर्णन करने का सामान्य नियम ही है। जैसे याचक यदि धन मांगने जायेगा तो कहेगा आपके पास तो ईश्वर ने कुबेर का खजाना दे रखा है और आप ऐसे उदार हैं आदि। इसी प्रकार ब्रह्मा जी देवी की स्तुति करते हुए उन्हें महामोहा कह रहे हैं क्योंकि आगे उन्हें यही तो मांगना है कि इन दोनों दुराधर्ष असुरों-मधु और कैटभ-को मोह में डाल दीजिये। मोहयैतौ

दुराधर्षौ असुरौ मधुकैटभौ। महादेवी- दिवु क्रीडार्थक धातु से देवी शब्द की निष्पत्ति करते हुए कहा गया है- जगदुत्पत्तिस्थितिलयादिना क्रीडन्ती और मोद के अर्थ में उसे जगन्निर्माणरसिका कहा गया है। अथवा महादेव की शक्तिरूपा-महादेवी अथवा सकलदेव शक्तिरूपा होने से महादेवी, अथवा महती पालनरूपा देवशक्ति:। अथवा देवीपुराण के अनुसार-

बृहदस्य शरीरं यदप्रमेयं प्रमाणत:।
धातुर्महेति पूजायां महादेवी तत:स्मृता।

आकार से अप्रमेय होने के कारण महा और मह पूजायां धातु से निष्पन्न होने से सभी देवताओं से पूज्य अत: महादेवी। महासुरी-महा और सुरी तथा महा और असुरी इस प्रकार सन्धिविच्छेद के अनुसार दो अर्थ होते हैं- असुरों में शक्तिरूप में आप ही हैं अथवा देवताओं में शक्तिरूप में आप ही हैं। अथवा महेश्वरी पाठ मानकर अर्थ होगामहतां इन्द्रादिदेवानां ईश्वरी नियामिका अथवा ईश्वरो महादेव: तस्य शक्ति: महेश्वरी। च भवती के स्थान पर भगवती पाठ मानकर अर्थ होगा

पूज्यते या सुरै:सर्वै: तांश्चैव भजते यत:।
सेवायां भजतिर्धातुर्भगवत्येव सा स्मृता।

जो सभी देवताओं से पूजित होकर उनके कार्यसाधन में तत्पर रहती है वह और भज धातु से निष्पन्न होने के कारण भगवती अथवा षडैश्वर्य सम्पन्न होने के कारण भगवती।

वास्तव में यहां पर देवी के लिए जिन विशेषणों का प्रयोग किया जाता है जैसे महामाया, महामोहा और महासुरी। उनके विषय में विचार करने के साथ छत्तीस तत्वों के अंतर्गत-कला, विद्या, राग, काल और नियति की विशेषताओं पर भी ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। देवी सर्वकलामयी है। परन्तु लोक व्यवहार में कलातत्व से जागतिक धरातल पर उस जगन्नियन्ता का सर्वकर्तृत्व जीव में आकर किंचित्कर्तृत्व में सीमित होकर रह गया है।

विद्या से सर्वज्ञत्व अल्पज्ञत्व में सीमित होकर रह गया है।

राग से पूर्णत्व समय सीमा में आबद्ध होकर रह गया है।

नियति से व्यापकत्व और स्वातन्त्र्य देश और काल में सीमित हो गया है। महत् का अर्थ होता है जो देशकाल आकार आदि की सीमा में न बांधा जा सके इसीलिए देवी के विशेषणों में महामाया, महामोहा, महासुरी, महाविद्या, महाकाली और महेश्वरी आये हैं क्योंकि इसी महत्व महनीयता के कारण वह अखर्वसर्वमंगला और कलाकदम्बमंजरी है, महाविद्या है, इच्छा मात्र न होकर शक्तित्रय सम्पन्न है। काल की कलना का कारण

महाकाली है जिससे अखण्डकाल जगत् में मात्रा के रूप में अमेय से मेय हो गया है। वह देवी राग, काल, कला, नियति और विद्या के द्वारा मेय न होकर मान, माता, मेय और ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय स्वयं ही है। गीता में भगवान् ने कहा है- कालः कलयतामहम्- यहां वह स्वयं महाकाली है। इस प्रकार वही देश और काल की नियामिका है ईश्वरी है- महेश्वरी है।

प्रकृतिस्त्वं हि सर्वस्य गुणत्रयविभावनी।
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा। ५९

अन्वय- हे देवि त्वं हि सर्वस्य प्रकृतिः गुणत्रयविभावनी, कालरात्रिः, महारात्रिः दारुणा मोहरात्रिः च त्वमेव।

अन्यथा अन्वय- गुणत्रयविभावनी सर्वस्य प्रकृतिः त्वं एव। कालरात्रिः महारात्रिः मोहरात्रिः दारुणारात्रिः च त्वं एव।

शब्दार्थ- प्रकृतिः-प्रकृष्टा कृतिः प्रकृतिः, प्रकरोतीति प्रकृतिः इस प्रकार समासविग्रह करने पर इसके दो अर्थ हुए-जो सर्वोत्ततम कृति है-इसके लिए गीता का उदाहरण जहां भगवान् कृष्ण ने कहा है- अपरेयमितिस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। यहां मे शब्द से स्पष्ट है कि परा और अपरा दोनों प्रकृति उनकी ही प्रकृष्ट कृतियां हैं। शाक्त मत इससे पृथक है अतः उसके अनुसार प्रकरोतीति प्रकृतिः जो सब कुछ करती है वही प्रकृति है। सांख्य के अनुसार प्रकृति और विकृति दो हैं जिसमें मूलप्रकृति अविकृति है वह किसी से उत्पन्न नहीं है। उससे जिन तत्वों का प्रादुर्भाव होता है उनमें से सात प्रकृति विकृति दोनों हैं और सोलह-मन, पांच कमेन्द्रियां पांच ज्ञानेन्द्रियां और पंचमहाभूत केवल विकृति हैं।

मूलप्रकृतिरविकृतिः महदाद्याः प्रकृति विकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः। सांख्यकारिका

यत्र कर्तव्यं सर्व प्रकर्षेण कर्मान्तरनैरपेक्ष्येणोपदिश्यते सा प्रकृतिः जहां बिना किसी अन्य कर्म की अपेक्षा किए सभी कार्य प्रकर्षपूर्वक सम्पन्न होते हैं वही प्रकृति है। अतः मूलप्रकृति सर्वात्मना कर्मान्तरनिरपेक्षा है। गुणत्रयविभावनी-सत, रज और तम ये तीनों गुण जब साम्यावस्था में रहते हैं तो प्रकृति निश्चेष्ट रहती है। जहां किसी गुण का प्रकर्ष तथा दूसरे का अभिभव होता है वहीं गुणों का विभावन कहा जाता है

सत्वंरजस्तमश्चैव गुणत्रयमुदाहृतम्।
सा यावस्थितिरेतेषां प्रकृतिः परिकीर्तिता।

अतः सायावस्था का अर्थ हुआ अकार्यावस्था

प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः
सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता।

प्र का अर्थ प्रकृष्ट और कृति का अर्थ सृष्टि होता है। अतः सृजन में जो देवी प्रकृष्टा वही प्रकृति। अथवा

प्रथमे वर्तते प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः।
सृष्टेराद्या च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता।

प्र प्रथम का वाचक है और कृति सृष्टि का। सृष्टि की जो आद्याशक्ति है वही प्रकृति। अथवा-विश्वस्य कार्यसंघातस्य मूलं इति मूलप्रकृतिः न तस्याः मूलान्तरं अस्ति। कार्यरूप विश्व का जो मूल है वही मूलप्रकृति क्योंकि उसका अन्य कोई मूल नहीं है। वही गुणत्रयविभावनी है। जैसा कि गीता में कहा गया है-

प्रकृतेर्गुणसम्मूढा सज्जन्ते गुणकर्मसु।

यह संसार प्रकृति के गुणों-सत, रज, तम से सम्मोहित होकर त्रिगुणात्मक कार्यों में प्रवृत्त होता है। गुणों का विभावन क्या है, यह भी गीता के अनुसार-कभी और कहीं किसी स्थिति में किसी काल में अथवा किसी अवस्था विशेष में किसी एक गुण का प्राबल्य होता है तब अन्य दो गुण दबे रहते हैं। जैसे कि असुरों में तमोगुण का प्राबल्य, मनुष्यों में रजोगुण की प्रबलता और ऋषि मुनि और तपस्वी साधकों में सत्व गुण की प्रबलता रहती है। गीता के अनुसार-

रजस्तमश्चाभिभूय सत्वं भवति भारत।
तमः सत्वं रजश्चैव रजःसत्वं तमस्तथा। १४/१०

रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्वगुण का उत्कर्ष होता है। इसी प्रकार तमोगुण और सत्व को दबाकर रजोगुण का उत्कर्ष होता है और रजोगुण और सतोगुण को दबा कर तमोगुण का प्राबल्य होता है।

इन गुणात्रय के विभावन और उसके कार्य तथा लक्षण जानने के लिए गीता का चौदहवां अध्याय अवलोकनीय है। यह पहिले ही बताया जा चुका है कि इन तीनों गुणों का विभावन करने वाली प्रकृतिरूपा शक्ति ही है।

कालरात्रि-रा दाने धातु से रात्रि शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ देना है। शब्दकोश के अनुसार तमिस्त्रा तामसी रात्रिः रात्रि का नाम तामसी आया है। अतः जिस काल में तमोगुण का एकाधिपत्य हो अतः जागतिक कार्यों का उपरम हो उसी को यहां रात्रि कहा गया है। गुप्तवती टीका के अनुसार दिवसावसान होने पर सभी चेतनाचेतन जगत निश्चेष्ट होकर निद्रामग्न होता है। अतः यही प्रतिदिन का लय मानकर इसे कालरात्रि कहा गया है। इसी प्रकार ब्रह्म के दिवसावसान को महारात्रि और महाप्रलय को ब्रह्मा के अपनी गणना के अनुसार सौ वर्ष पूर्ण होने पर जो महाप्रलय होता है, उसे महारात्रि कहा जाता है। दारुणा को जहां मोहरात्रि का विशेषण मान कर अर्थ किया जाय वहां इसका अर्थ होगा-कठोर, निष्ठुर अति भयंकर। और जहां दारुणा रात्रि माना जाये वहां

शक्तिसंगमतन्त्र के अनुसार-

दीपोत्सवचतुर्दश्यां त्वमायायोग एव तु।
कालरात्रिर्महेशानि ताराकालीप्रियंकरी।
जन्माष्टमी महेशानि मोहरात्रि:प्रकीर्तिता।

नवरात्र में आश्विनशुक्लाष्टमी को महारात्रि कहा गया है।

संक्रमो ग्रहणं देवि भौमतत्करसंयुतम्।
दारुणातिथिराख्याता त्रैलोक्यरक्षिणी परा।

संक्रमण काल में सूर्य के एक राशि से दूसरी राशि पर जाते समय यदि मंगलवार और हस्त नक्षत्र हो तो इस योग को दारुणा तिथि कहते हैं। जो तीनों लोकों का रक्षण करने वाली पराशक्ति है यह उसी का काल माना जाता है।

व्याख्या- हे देवि मूलप्रकृतिरूपा आप ही हैं। आप ही सतरज और तम इन तीनों गुणों को विभाजित करके जगत के रूप में अवस्थापन करने वाली हो, क्योंकि गुणों को प्रकृति का धर्म कहा जाता है, गुणा:प्रकृतिधर्मा: आप ही जगत का लय करने वाली कालरात्रि हो, ब्रह्म का लय करने वाली महारात्रि भी आप ही हो और अति कठोर भयंकर मोहरात्रि भी आप ही हो जिसके द्वारा कि ममतागर्ते निपातिता: कहा गया है। अथवा महामाया रूपा संस्सृति करने वाली हो मोह के कारण मनुष्य अर्कतव्य को भी कर्तव्य मानकर करने लगता है, इस प्रकार का मोह रात्रि के समान है उस मोह का अत्यन्त भयंकर परिणाम कर्ता को ही भोगना पड़ता है अत: उसे दारुणा कहा गया है।

दूसरे अन्वय के अनुसार अर्थ होगा- कि हे देवि तीनों गुणों के विभावन के द्वारा सम्पूर्ण चेतन और अचेतन प्राणियों और जडवर्ग की मूलप्रकृति आप ही हैं। जिसे सांख्य प्रधान तत्व कहता है वह आप ही हैं। कालीरूप में काल की कलना करने वाली कालरात्रि आप ही हैं जिसके लिए महाभारत में कहा गया है- काल:पचति भूतानि महाविद्यासूत्र में इसीके लिए कहा गया है- सर्वाणि भूतानि पचत्यजस्रमेषा और यही क्रिया शक्ति भी है। यहां जो सर्वस्य प्रकृति कहा गया है उसके लिए संसार में जो कुछ भी परिणाम-परिवर्तन दिखाई देता है वह इसी शक्ति का कार्य है अत: कहा गया

एषा परिणमयित्री समष्टिशक्ति: भूतान्याविश्य व्यष्टिशक्तिश्च भवति
-महाविद्यासूत्र १/२३

तुलसी दास जी ने भी कहा है- मोहनिशा सब सोवनहारा। इस मोहरात्रि को दारुणा इसलिए भी कहा गया क्योंकि इस मोह की निवृत्ति बिना ब्रह्मज्ञान के नहीं होती। जिस जगत को यह शक्ति उत्पन्न करती है उसी को आत्मसात करने के कारण भी इसे दारुणा कहा गया-

दंष्ट्राकरालकालाग्निरुद्रकल्पातिदारुणा।
मोहरात्रिर्मोहतनुः जगत्सूते जगत्करी।

मोहरात्रि जिसका मोह ही शरीर है वह कालाग्निरुद्र के समान अत्यन्त दारुण है- क्रूर है, निष्ठुर है, भयंकर है- क्योंकि यही इस जगत को उत्पन्न करने वाली है संसार का परिचालन भी यही करती है इसी ने प्राणियों को मोह में डाल रखा है।

त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्वोधलक्षणा।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिः त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च। ६०

अन्वय- हे देवि त्वं श्रीः त्वं ह्रीः त्वं बुद्धिः बोध लक्षणा च अथवा बोधलक्षणा बुद्धिः लज्जा, पुष्टिः, तुष्टिः क्षान्तिः च त्वं एव।

शब्दार्थ- श्रीः कोश के अनुसार

लक्ष्मी सरस्वती धात्रिर्वर्गसम्पद्विभूतिशोभासु।
उपकरणवेशरचनाविधानेषु च श्रीरिति प्रथिता।

यहां शोभा और धर्म अर्थ और काम इन त्रिवर्ग के संबंध में

ह्रीः- लज्जा, ह्री और लज्जा समानार्थक होने से पुनरुक्त हैं इसके लिए भेद किया गया है कि ह्री का तात्पर्य जो कार्य करणीय नहीं, उससे विमुख अथवा विरल हो जाना ह्री है और लज्जा जो करने योग्य है, उसे न करने के कारण अज्ञान की आशंका का दुख है। अथवा अकरणीय काम से अपने आप रुक जाना ह्री और लोकशंका के भय से न करना लज्जा है। परन्तु जब श्रुति का कथन कि ह्रिया देयम् वहाँ एक भी अर्थ समुचित नहीं लगता। वहां केवल यही अर्थ होता है कि मांगने वाले के लिहाज वश देने की इच्छा न होते हुए भी देना चाहिए। न देने पर लोक क्या कहेंगे इस लोकलज्जा से भी देना चाहिए। अतः ह्री और लज्जा अकार्य से विरत करने और करणीय के प्रति करने के अर्थ में भी लेना चाहिए। बुद्धि-समझ किन्तु अन्तःकरण की वह वृत्ति जिससे सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम का ज्ञान हो, सार और असार के विवेक की सामर्थ्य, निश्चयात्मक वृत्ति, सांख्य के अनुसार बुद्धितत्व, गीता के अनुसार तीन प्रकार की बुद्धि- सात्विक, राजस और तामस। बोधलक्षणा-अध्यवसाय अथवा व्यवसाय में प्रवृत्ति कराने वाली, अथवा विविध प्रपंचरूपा होकर पदार्थों का बोध कराने वाली, जागृति लाने वाली क्योंकि यहां ब्रह्मा का आशय विष्णु के जागरण से है जैसा कि कालिका पुराण में कहा गया है-

रात्रावेवमहामाया ब्रह्मणा बोधिता पुरा।
तथैव च नराःकुर्युः प्रतिसंवत्सरं नृप।

ब्रह्मा ने आश्विन शुक्ल पक्ष में देवी का प्रबोध किया था, जगाया था। इसलिए मनुष्य उसी काल में देवी की आराधना करते हैं। यह समय सूर्य के दक्षिणायन का होने

के कारण देवताओं की रात्रि होती है उत्तरायण उनका दिवस होता है। यहाँ सामान्य रात्रि का आशय नहीं है। बोध का अर्थ निर्णयात्मक ज्ञान भी है। पुष्टि-वृद्धि, उपचय, तुष्टि-सन्तोष शान्ति-विषयों के प्रति अनासक्ति होकर शम क्षान्ति-सहनशीलता, तितिक्षा, शक्ति होने पर भी अपराध को क्षमा करने की शक्ति।

व्याख्या- हे देवि लोक में अथवा व्यक्ति में आप श्री हैं- शोभा हैं, धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग सम्पत्ति-समृद्धि की देने वाली हैं, मनुष्यों को अकरणीय कृत्य से विरत करने वाली ह्री संकोच आप ही हैं। आप षडैश्वर्य सम्पन्न है। -नियामिका हैं, निश्चयात्मक विवेक कराने वाली बुद्धि हैं। मनुष्यों में चैतन्यरूपा हैं, तुलसीदास ने कहा है- मोहनिशा सब सोवनहारा- उस स्थिति से निकाल कर ज्ञान का अथवा सत्यसाक्षात्कार रूपी जागरण कराने वाली बुद्धि आप ही हैं। लज्जा-लोक में कार्याकार्य के प्रति संकोच रूपा आप ही हैं, आप ही पोषण करने वाली हैं, तृष्णा से निवृत्त करने वाली संतोष की वृत्ति हैं। इन्द्रियों की विषयों के प्रति आसक्ति और आकर्षण को रोककर शम उत्पन्न करने वाली हैं अपकार करने वाले के प्रति शक्ति-सामर्थ्य होते हुए भी प्रतिकार न करने वाली क्षान्ति-तितिक्षा आप ही हैं।

रहस्य- कोश के अनुसार- मन्दाक्षं ह्रीस्त्रपा व्रीडा लज्जा ह्री के पर्याय में मन्दाक्ष शब्द आया है जिसका अर्थ होता है-अक्ष-इन्द्रियों के व्यापार का मन्द होना, क्षीण होना। शक्ति को ह्रीरूपा कहने का तात्पर्य यही है कि जो श्रीरूपा वैष्णवी शक्ति के रूप में जगत् का पालन करने वाली है, वही अपनीइस प्रसरण की लीला का संकोच-समेटने में समर्थ-ईश्वरी-रौद्री शक्ति है। सरस्वती रूपा भी वही है, माया की विक्षेप शक्ति से भासमान संसार से उपरम-विरतिशम कराने वाली बोधलक्षणा बुद्धि वही है। दूसरा आशय यहां यह भी है कि ब्रह्मा यहां योगनिद्रा से भगवान को जगाने के लिए स्तुति कर रहे हैं अतः बोध-जागरण कराने वाली शक्ति का संबोधन उचित ही है। साथ ही इसमें लक्ष्मी, सरस्वती और काली तीनों के ही बीज मन्त्र सांकेतिक रूप से आ गए हैं। लक्ष्मी बीज श्री का उल्लेख प्रारंभ में ही है। ईश्वरी का सन्धि-विच्छेद करने पर ई-ईश्वरी होता है ईकार कामकला का तथा ईश्वरी नियामिका तथा ह्रीं संहार करने वाली संकोच शक्ति का वाचक है। बोधलक्षणा बुद्धि से सरस्वती का संकेत किया गया है। वामकेश्वरतन्त्र के अनुसार-ईकारद्विश्चकत्रीयं माया तुर्यात्मिका प्रिया और ज्ञानार्णव के अनुसार-ईकारः स मनुर्ज्ञेयो रक्तवर्णः प्रतापवान्। मनु मन्त्र को कहते हैं। सौन्दर्यलहरी में भी भगवत्पाद शंकराचार्य ने कहा है-

मुखं, बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो
हरार्धं ध्यायेद्यो हरमहिषि ते मन्मथकलाम्।

पुष्टि के संबंध मेंललितासहस्त्रनाममें सौभाग्य भास्कर-भाष्य के अनुसार-

षटत्रिंशत्तत्वविग्रहशीलत्वात्पुष्टा-छत्तीस तत्वों का ही जिसका विग्रह-शरीर है अत: पुष्टा, उसी के लिए त्वं पुष्टि: कहा गया है।

साधना के क्षेत्र में शान्ति: से शान्तिकला का अभिप्राय है जिसके लिए कहा गया है-

मलमायाविकारौधशान्ति:पुंस: पुनर्यथा।
सा कला शान्तिरित्युक्ता साधिकारा पदं पदम्।

इसी प्रकार ह्री के लिए कहा गया है- ह्रीं कारो वै प्राण: अत: ह्रीं का आशय प्राणशक्ति से भी है।

खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा।
शंखिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिधायुधा। (६१)

अन्वय- हे देवि त्वं खड्गिनी, शूलिनी, घोरा, गदिनी, चक्रिणी, शंखिनी, चापिनी, तथा बाणभुशुण्डीपरिधायुधा असि। कहीं बाणा और भुशुण्डी को पृथक् मान कर अन्वय किया गया है-

खड्गिनी, शूलिनी, गदिनी, चक्रिणी, शंखिनी, चापिनी, बाणा, परिधायुधा घोरा भुशुण्डी असि।

शब्दार्थ- खड्गिनी-खड्ग धारण करने वाली, शूलिनी-शूल अथवा त्रिशूल धारण करने वाली, इसी प्रकार गदिनी, चक्रिणी, शंखिनी, चापिनी का अर्थ इन अस्त्रों को धारण करने वाली, भुशुण्डी और परिघ जिसके आयुध हैं वह शक्ति। परिध को लोकभाषा में लुहांगी कहते हैं। जिसमें लाठी के निचले भाग में लोहा बांधा अथवा लपेटा रहता है। परिध द्वारावरोधक अर्गला को भी कहते हैं, परन्तु उसे अस्त्र नहीं माना जा सकता। परिध शब्द की व्याख्या के अनुसार - परितों हन्यते अनेन जिससे चारों और वार किया जा सके। कोश के अनुसार-

परिघोऽस्त्रो योगभेदे परिघातेऽर्गलेपिच। तथा
परिघो योगभेदेऽस्त्रविशेषेऽर्गलधातयो:।-मेदिनो कोश

भुशुण्डी का अर्थ कोश के अनुसार-पाषाणक्षेपनार्थे चर्ममययन्त्ररूपे अस्त्र भेदे, महाभारत की नीलण्ठी टीका में इसका प्रयोग दिया है- भुशुण्ड्युद्धतवाहव: बोलचाल की भाषा में इसे गोफना कहते हैं। खेतों की रखवाली करने वाले किसान चिड़ियों को भगाने के लिए इसका उपयोग करते हैं। अस्त्र के रूप में इसका प्रयोग होना सम्भव है- इसे आज विवाद का विषय माना जाता है, परन्तु इन पंक्तियों के लेखक ने उसका अस्त्र के रूप में प्रयोग देखा है। जिसमें आदमी मर भी सकता है। वर्तमान जिला दतिया के अंतर्गत सेंवढ् में इमलीवाले बाबा के नाम से प्रसिद्ध एक योगसिद्ध उदासी महात्मा

रहा करते थे। सिन्धु नदी के उस पार स्थित अपने आश्रम में ऊचे टीले से वे गोफन में लगभग २००, २५० ग्राम भार का पत्थर रखकर जब फेंकते थे तो नदी के दूसरी ओर एक मील की दूरी तक उनका निशाना अचूक होता था। बाणा को यहाँ पृथक् शब्द माना गया वहां अर्थ होगा - वाणावती बाणाः सन्ति अस्याः। घोरा का सामान्य अर्थ तो भयंकर होता है परन्तु काली के लिए इसका प्रयोग - घोररावां महारौद्रीम् और करालवदनां घोराम् आदि ध्यान में मिलता है। अत्युग्राकृति चण्डिका का विशेषण भी। जहां काली की दशभुजा ध्यान मानकर व्याख्या की गई है, वहां इसका अर्थ - एक हस्त स्थशिरसा भयंकरी किया गया है और आयुध गणना में नरमुण्ड की गिनती की गई है जो कि वैकृतिक रहस्य के इस वर्णन के अनुरूप है-

योगनिद्रा हरेरुक्ता महाकाली तमोगुणा।
मधुकैटभनाशार्थं यां तुष्टावाम्बुजासनः।
दशवक्त्रा दशभुजा दशपादांजनप्रभा।
विशालया राजमाना त्रिंशल्लोचनमालया।
स्फुरद्दशनदंष्ट्रा सा भीमरूपापि भूमिप।
रूपसौभाग्यकान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियः।
खड्गबाणगदाशूलचक्रशंखभुशुण्डितभृत्।
परिधं कार्मुकं शीर्षं निश्च्योतद्रुधिरं दधौ।

गुप्तवती के टीकाकार ने भी इसे दशभुजा देवी का ही ध्यान माना है। उक्त अनुसार खड्ग, शूल, गदा, शंख, चक्र, भुशुण्डी, परिध ये नव आयुध हो जाते हैं अतः घोरा से नृकपाल धारण का अर्थ लेने पर ही दश होते हैं। जो टीकाकार इसे अष्टभुजा और अष्टायुधा मानते हैं उनके अनुसार बाणभुशुण्डीपरिधायुधा समस्त पद न होकर बाणा भुशुण्डी परिधायुधा ये तीन पद हैं। घोरा और भुशुण्डी देवी के नाम हैं। भुशुण्डी की परिभाषा इस प्रकार है-

भुजाभिरष्टभिः शत्रूनष्टावष्टाभिरायुधैः।
मुण्डयत्युग्रचण्डीभिर्भुशुण्डी चण्डिका स्मृता।

"जो चण्डी अपनी आठ भुजाओं में आठ आयुध धारण कर एक साथ आठ शत्रुओं का शिरच्छेद करती है, उसे भुशुण्डी कहा गया है।" तथा

उड्डीयोड्डीय च प्राप्य नदन्ती दशकर्तिका।
क्रमते या नतांगी वा सा भुशुण्डी निगद्यते।

यहाँ अष्टायुध की गिनती इस प्रकार है- खड्ग, शूल, गदा, शंख, चक्र, धनुष

बाण और परिघ। घोरा और भुशुण्डी देवी के विशेष नाम माने गए।

व्याख्या- हे देवि आप दशभुजाओं में दश आयुध धारण करने वाली हैं, वे आयुध इस प्रकार हैं- खड्ग, शूल, शंख, चक्र, धनुष बाण, गदा, परिघ भुशुण्डी और एक हाथ में नरमुण्ड। अथवा

हे अत्युग्ररूपा चण्डिके आप आठ हाथों में आठ आयुध धारण करने वाली हैं खड्ग, शूल, गदा, चक्र, शंख, चाप, बाण और परिघ। एक साथ आठ-आठ शत्रुओं का शिरच्छेद करने के कारण आप भुशुण्डी हैं।

सौम्यासौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी।
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी। ६२

अन्वय- सौम्या सौम्यतरा अशेषसौम्येभ्य: तु अतिसुन्दरी त्वम् एव परापराणां परमा परमेश्वरी असि।

शब्दार्थ- सौम्या सौम्यतरा अथवा सौम्यासौम्यतरा का सन्धिविच्छेद करने पर सौम्या असौम्यतरा अशेषसौम्येभ्य: अति सुन्दरी, परा, पराणां परमा अथवा परापराणां पराणां अपराणां परमा परमेश्वरी त्वमेव। अथवा अपराणां परा पर ब्रह्मा आदि, अपराइन्द्र आदि, अपराणां परा- यहाँ अपराणां से पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी तथा परा से परा वाक्, सौम्या-सौम्य आकृति वाली आह्लादकारिणी होने के कारण अशेषसौम्येभ्य: अति सुन्दरी-आह्लाद कारक सभी हेतु से अधिक सुन्दर, परा-पर जो ब्रह्मादिक हैं, उन सबकी आयु भोग के पश्चात भी रहने वाली अत: परा, परमेश्वरी-इन्द्र आदि की भी नियामिका, अथवा सौम्या - जो क्रूर न हो, शान्त हो, असौम्या- क्रूरा, कठोर, पराणां परमा- जो उत्कृष्ट हैं उनमें भी सर्वोत्कृष्ट कोश के अनुसार सौम्य का अर्थ-सौम्यो बुधे मनोज्ञे स्यात् अनुग्रे सोमदेवते। और- सौम्य: सोमात्मजेऽनुग्रेमनोज्ञे सोमदेवते। अत: सौम्य और सौम्यतरा का अर्थ मनोज्ञ सुन्दर और अतिसुन्दर अधिक समीचीन हैं। इसीलिए कहा गया है- अशेषसौभ्येभ्य: अतिसुन्दरी जितनी भी सुन्दर वस्तुएं हो सकती हैं उन सबमें भी अतिसुन्दर। परा-सा पराययाक्षरमधिगम्यते। अथवा परावागनपायिनी।

व्याख्या- हे देवि आप सौम्यरूपा हैं, मनोज्ञा हैं उग्र नहीं हैं आप। भक्तों के प्रति कोमल हृदय वाली हैं। परन्तु दुष्टों के प्रति अधिक कठोर भी हैं, क्रूर हैं, उग्र हैं, चण्डी हैं। संसार में जो कुछ भी सुन्दर है, मनोज्ञ है उस सबसे आप कहीं सुन्दर हैं। जैसा कि तुलसीदास ने कहा है - सुन्दरता कंह सुन्दर करई। आप परा हैं श्रेष्ठा हैं उत्कृष्ट में भी परम उत्कृष्ट हैं। परमा का आशय वास्तव में यहां पर - परब्रह्म माति परिच्छनत्ति इति परमा-ऐसा मानना अधिक ठीक हैं क्योंकि ब्रह्म यहां स्वयं देवी की स्तुति कर रहे हैं। अपरा जो पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी वाणी है उसमें आप परावाणी हैं। ललितासहस्रनाम के अनुसार परब्रह्मणोरूपचतुष्क मस्ति तस्मात् परमा उत्कृष्टा-ब्रह्मा के जो चार रूप हैं उनमें आप उत्कृष्टाईश्वरी-आप उत्कृष्टा जगत की नियामिका हैं अत:

परमेश्वरी हैं।

रहस्य-तांत्रिक सिद्धान्त के अनुसार-

सच्चिदानन्दविभवात् सकलात्परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद्बिन्दुरजायत।

शारदातिलक १/७

सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा से शक्ति का आविर्भाव होकर उससे नाद की उत्पत्ति हुई और उस नाद से बिन्दु की उत्पत्ति हुई। वास्तव में परमेश्वर और शक्ति उसी प्रकार अभिन्न रहते हैं जिस प्रकार तिलों में तेल रहता है। यहां जिस बिन्दु का उल्लेख किया गया है, वही धनीभूत ब्रह्म से आदिस्फुरण की अवस्था का सूचक है। उस अव्यक्त के त्रिधा विभाग होकर नाद, बिन्दु और बीज का आविर्भाव हुआ। यहां जिस बिन्दु का उल्लेख हुआ है वह अव्यक्त अथवा कारण बिन्दु है। जिसके संबंध में कहा गया है-

तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम।

इस प्रकार इस अव्यक्त को ही कारण बिन्दु कहा गया है जिस प्रकार कन्द से अंकुर निकल कर वृक्ष जन्म लेता है उसी प्रकार इसे - जगदंकुरकन्दरूपत्वात्कारण- बिन्दु पदेन व्यवह्रियते। जगत का अंकुर रूप होने के कारण कारणबिन्दु कहा गया। प्रपंचसार में भी कहा गया है-

कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा।
स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन तस्य त्रैविध्यमिष्यते।
स नादबिन्दुबीजत्वं भेदेन च निगद्यते।

प्रपंचसार १/४३-४४

इस कारण बिन्दु, नाद बीज और बिन्दु को आधिदैविक स्तर पर क्रम से अव्यक्त, ईश्वर, हिरण्यगर्भ और विराट् कहते हैं। स्त्रीलिंग के विचार से इन्हीं को शान्ता वामा, ज्येष्ठा और रौद्री कहा गया है। इन्हीं को अम्बिका, इच्छा, ज्ञान और क्रियारूपा कहा गया है। आध्यात्मिक स्तर पर इसी कारण बिन्दु को शक्ति, कुण्डलिनी कहा जाता है, जो कि मूलाधार में स्थित है। इसी के लिए कहा गया है-

शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमां -लघु स्तुति

पिण्डाण्ड में यही कारणबिन्दुरूपा कुण्डलिनी शक्ति जब कार्यबिन्दु में परिणत होती है तो इसी की अव्यक्त रव और शब्दब्रह्म संज्ञा होती है। यद्यपि यह शब्दब्रह्म सर्वव्यापी होने पर भी शरीर में मूलाधार से ही रव के रूप में उत्थित होकर विवक्षा शक्ति से पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी के रूप में श्रवण-गोचर होता है। इस प्रकार कारण बिन्दु

को कुण्डलिनी और पर कहा गया है। जैसा कि कहा गया है-

बिन्दोस्तस्माद्भिद्यमानादव्यक्तात्मा रवो भवत्।
स रवः श्रुतिसम्पन्नैः शब्दब्रह्मेतिगीयते।

-प्रपंचसार-१/४५

यही परावाक् बोलने वाले की इच्छा से पवनप्रेरित होकर ऊर्ध्वगमन करता है जिसके लिए कहा गया है-

देहेऽपि मूलाधारेऽस्मिन्समुदेति समीरणः
विवक्षोरिच्छयोत्थेन प्रयासेन सुसंस्कृतः।

यहां उदेति क्रिया और समीरण शब्द अपना अर्थ स्वयं ही स्पष्ट कर रहे हैं। उदेति का अर्थ ऊर्ध्वगमन और ईर गतीकम्पने च अथवा ईर क्षेपे धातु से सम् उपसर्ग लगने से प्रेरित करना और ऊपर को फेंकना दोनों ही अर्थ यहाँ सांकेतिक हैं।

इस प्रकार परावाक् व्यक्तावस्था को प्राप्त होकर स्वाधिष्ठान और मणिपुर में पश्यन्ती कही जाती है। यही कारण बिन्दु से भिद्यमान कार्यबिन्दु पश्यन्ती नामवाच्य होता है। परावाक् का प्रकाश से विमर्शरूप होना भी यही है। यही प्रथम रूप स्पन्द है। परावाक् शुद्ध चिदंश है और पश्यन्ती चिदचिदंशात्मक है। इसी क्रम से मणिपुर की अग्नि से ऊर्ध्वगामी पवन हृदय में मध्यमा वाक् के रूप में उत्थित होता है, निश्चयात्मिका बुद्धि से युक्त विशेषस्पन्दरूप वही शब्दब्रह्म मध्यमा कहा जाता है। व्यक्त और अव्यक्त के मध्य की स्थिति के कारण इसका मध्यमा नाम सार्थक है। इसके लिए कहा गया है-

पश्यन्तीव न केवलमुत्तीर्णा नापि बैखरीव बहिः।
स्फुटतरनिखिलावयवा वाग्रूपा मध्यमा तयोरस्मात्।

जो न तो पश्यन्ती के समान इन्द्रियों से परे है और न वैखरी के समान प्रत्यक्षावयवा है अतः इसका मध्यमा नाम हुआ।

इससे आगे कण्ठदेश विशुद्धिचक्र में वैखरी का स्थान है। विशेष रूप से खरी होने के कारण बैखरी अथवा वै-निश्चयपूर्वक, खं-आकाश अथवा कर्णविवर, राति गच्छति इति वैखरी। इसके लिए वाक्यपदीय में कहा गया है-

नादैराहितबीजायामन्त्येन ध्वनिना सह।
आवृत्तिपरिपाकायां बुद्धौ शब्दोऽभिधीयते।

यही स्थूल रूपा वाक् है। अतः अपराणां परा कहने का तात्पर्य यही है कि पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी ये तीनों ही अपरा वाक् हैं इनमें आप उत्कृष्टा परावाक् हैं।

अथवा परापराणां परमा-परा और अपरावाक् इन दोनों से उत्कृष्ट शक्ति कुण्डलिनी रूपा हैं। इस प्रकार अतिशेष शक्ति के रूप में परमेश्वरी-परमा ईश्वरी सबकी नियामिका हैं। कोश के अनुसार भी-

''ईश्वरी स्वामिनी दुर्गा लोकानां व्यापिका चसा''

लोकों में व्यापिका भी आप ही हैं।

यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा। ६३

अन्वय- हे अखिलात्मिके क्वचित् सत् असत् वा यच्च किंचित् वस्तु अस्ति तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वम् एव तदा मया किं स्तूयसे।

शब्दार्थ- अखिलात्मिके-नास्ति खिलं अवशिष्टंयस्य तदखिलम् अखिलं आत्मरूपा यस्या सा अखिलात्मिका तत्संबुद्धौ अखिलात्मिके-सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड अथवा सृष्टि ही जिसका अपना रूप है। क्वचित्- कहीं भी किंचित् कुछ भी सत्- जो वर्तमान है, जो नित्य है जैसे आकाश परमाणु आदि ब्रह्मवर्ग असत्- जड़वर्ग, जो वर्तमान नहीं भूतकालीन अथवा भविष्य कालीन, अथवा नाशवान् वस्तु-पदार्थ जो भी नामरूपात्मक है, तस्य सर्वस्य-उस जड़ चेतन, सत् असत् संबंधी सभी की, या जो, शक्तिः सामर्थ्य, स्तूयसे-स्तुति की जाय।

व्याख्या- हे अखिलत्मिके सर्वमयी देवी इस विश्व ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी कहीं भी वर्तमान है अथवा भूतकाल में रहा और भविष्य में आने वाला है जो नश्वर है अथवा नित्य है वह सब आपका ही रूप है। उस सबमें आप की ही सामर्थ्य निहित है। अथवा वह आपका ही स्वरूप है तब फिर आपकी स्तुति किस प्रकार की जाय। पद और पदार्थ, इनके द्वारा वर्ण्य स्तुति, स्तोता और स्तुत्य सब आप ही हैं अतः अभेदनिबन्धना आपकी स्तुति कैसे की जाय क्योंकि स्तुति तो पर और अपर के भेद होने पर ही होती है। जिसकी स्तुति की जाती है उसके लिए उससे श्रेष्ठ उपमान का प्रयोग करना ही स्तुति कहा जाता है। जब आप ही परापराणां परमा हैं और आप ही सर्वमयी हैं तब आपसे श्रेष्ठ अथवा आपसे अन्यथा किसी वस्तु के अभाव में आपकी किस प्रकार स्तुति की जाय।

रहस्य - पहले यह देखना है कि स्तुति कहते किसे हैं-

१. स्तुति और स्तुत्य के पृथक होने पर ही स्तुति होती है।

२. अन्य गुणों का अन्यत्र आरोप करने से स्तुति होती है।

३. जिसकी स्तुति की जा रही है, उनके न्यून होने पर उससे उत्कृष्ट वस्तु की तुल्यता बताना ही स्तुति है।

४. न्यून को अधिक करके वर्णन करना ही स्तुति है।

५. जिसकी स्तुति की जा रही है उसमें जो गुण नहीं हैं उनका आरोप ही स्तुति है।

६. परमोक्तिः स्तुतिः परमा श्रेष्ठा उक्तिर्वणनं स्तुतिः इति स्तुति लक्षणम्।

किसी के प्रति श्रेष्ठ उक्ति कथन ही स्तुति है।

अब देखना है कि देवी का सर्वव्यापी स्वरूप क्या है-

पद और पदार्थवोधक वर्ण देवी का ही स्वरूप है अतः देवी मातृकावर्णरूपिणी है। जहां तक शब्दब्रह्म और नादब्रह्म का संबंध है देवी उभयरूपा है। देश में व्याप्ति के संबंध में श्रुति का कथन है- सा काष्ठा सा परागतिः। काल में व्याप्ति के लिए आगे कहा ही गया है- कलाकाष्ठादिरूपेणपरिणामप्रदायिनि। अतः काल में सर्वत्र देवी व्याप्त है। शिव से लेकर पृथ्वी पर्यन्त छत्तीस तत्वों में देवी की व्याप्ति के संबंध में ललितासहस्रनाम में उसे तत्वमयी कहा ही गया है अतः अखिलात्मिका होने के कारण उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है तब उससे भिन्न अथवा उससे पृथक् न्यूनाधिक न होने से स्तुति, स्तोता और स्तोतव्य जब अभिन्न हैं तो कैसी स्तुति किसकी स्तुति और परापरात्मक का अभेद होने के कारण भी स्तुति सम्भव नहीं। इसके संबंध में एक गजल का स्मरण आता है जिसके अनुसार इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त किया गया है-

अजब हैरान हूँ भगवन् तुम्हें कैसे रिझाऊं मैं।
न कोई वस्तु है ऐसी जिसे पूजा में लाऊं मैं।
करूं किस तौर आवाहन कि तुम मौजूद हो हर जा।
निरादर है बुलाने में अगर घंटी बजाऊं में।
न सीना है न गर्दन है न पेशानी।
तू है निर्लेप नारायण कहां चन्दन लगाऊं मैं। आदि।
ययात्वया जगत्सृष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत्।
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः। ६४

अन्वय हे- देवि यया त्वया जगत्सृष्टा जगत्पाति यः जगत् अत्ति सः अपि निद्रा वशं नीतः अतः इहत्वां कः स्तोतुं ईश्वरः।

अन्यथा पाठ- जगत्पातात्ति यो जगत् ऐसा भी है। तब अन्वय होगा-यया त्वया जगत्सृष्टा जगत्पाता योजगत् अत्ति सः अपि निद्रावशं नीतः।

शब्दार्थ-यया-जिस मायाशक्ति ने, जगत्सृष्टा-जो जगत् का सृजन करने वाला है, जगत्पाता- जो जगत् का पालन करने वाले है, यः जगत्पाति- जो जगत की रक्षा और

पालन करता है, अत्ति-भक्षण करता है यहां लय करने से तात्पर्य है। इह-यहां इस स्थान पर, इस दशा में, ईश्वर: समर्थ।

व्याख्या- हे देवि, जो जगत् की सृष्टि करने वाला है, जिसे जगत् का सृजन करना है, जिसे जगत का रक्षण और पालन करना है और जो इस कल्पान्त में जगत को अपने में लय कर चुका है उस विष्णु को भी निद्रा के वश में कर रखा है तब आपकी स्तुति अन्य कौन करने में समर्थ हो सकता है।

विशेष- यहां जगत्सृष्टा से भावी सृष्टि का संकेत दिया गया है। इसी प्रकार जगत्पाता से अथवा जगत्पाति से संसार के रक्षण पालन का संकेत किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिसे संसार का सृजन करना है जिसे उसका पालन करना है और जो सृष्टि को अपने में लय किए हुए हैं उसी को आपने निद्रा वश कर दिया है जिसे कार्यतत्पर होना चाहिए था, वही विष्णु आपके योगनिद्रा के प्रभाव से-तामसी शक्ति से अभिभूत होकर सो रहा है- तब कौन और किस प्रकार आपकी स्तुति करे। आपका प्रभाव तो प्रत्यक्ष ही दिख रहा है।

विष्णु: शरीरग्रहणमहमीशानमेवच।

कारिता स्ते यतोऽतस्त्वां क: स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्। ६५

अन्वय- हे देवी यतस्त्वया अहं विष्णु: ईशान: च शरीरग्रहणं कारिता: अत: त्वां क: स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्।

शब्दार्थ- विष्णु-विश्व के पालन और रक्षणकर्ता, अहम्-सृष्टिकर्ता ब्रह्मा का स्वयं के लिए प्रयोग, ईशान-रुद्र सृष्टि के संहरणकर्ता, शरीरग्रहण-शृ-हिंसायाम् धातु से शीर्यत इति शरीरम् जो जीर्णशीर्ण होने वाला हो उसे शरीर कहते हैं। यहां शरीरग्रहणं कारिता से तात्पर्य यही है कि हम-ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र जो सृष्टि के सृजन, पालन और संहारकर्ता दिव्य तेजोमय वपुधारण करने वाले हैं, उन्हें भी आपने अपनी माया के प्रभाव से किसी न किसी रूप में शरीरधारण करने हेतु विवश कर दिया जो कि केवल मरणधर्मा मनुष्य के लिए है। इस प्रकार हमें भी जन्ममरण के चक्र में डालकर मरणधर्मा बना दिया। जब हम सरीखे आपकी माया से विवश हैं तब आपकी स्तुति अन्य कौन करने में समर्थ हो सकता है। यहाँ आशय यही है कि इस समय मैं मधुकैटभ असुरों से त्रस्त हूँ और विष्णु सामान्य जन की भांति योगनिद्रा में मग्न होकर सो रहे हैं।

व्याख्या- हे देवि आपने हम-ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र को भी सामान्य शरीरधारियों के समान विवश कर रखा है, ममता से आवृत कर रखा है। यह भी अर्थ है कि जो कोई भी शरीरी है, वह आपकी स्तुति करने में असमर्थ ही है और जो मुक्त है वह आपका ही स्वरूप होने के कारण भेदनिबन्धना स्तुति कर ही कैसे सकता है। अत: आपकी स्तुति कैसे संभव हो। यहां ब्रह्मा जैसे शक्ति को उपालम्भ देते हुए प्रतीत होते

हैं कि हम स्वयं ही आपकी तामसी शक्ति के वशीभूत हो रहे हैं फिर आप ही जैसा उचित हो वही करें। इससे पूर्व में जो कहा गया है- तस्य सर्वस्य या शक्तिः सात्वं किं स्तूयसे तदा-इसकी टीका करते हुए किसी टीकाकार ने कहा भी है कि - इयमेव च परमावधि स्तुतिः अपि का नाम स्तुतिः आपकी यही तो परम स्तुति है इससे आगे और क्या स्तुति की जाये। इसी से मिलती जुलती उक्ति एक हिन्दी कवि की यहां स्मरणीय है- जो क्षीरसागर के शेषशायी - भगवान के प्रति है

मेरी नाव के संग विरद भी तुम्हारा संभालो, नहीं, डूबने जा रहा है।
न फिर दोष देना कि कातर स्वरों में विवश हो पतित ने पुकारा नहीं था।
न फिर दोष देना प्रिया चंचला के प्रणयपाश में मैं अवश सो रहा था।
मेरी स्वास के संग सुयश भी तुम्हारा संभालो, नहीं डूबने जा रहा है।

सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता।
मोहयैतौ दुराधर्षौ असुरौ मधुकैटभौ। ६६

अन्वय- हे देवि सा त्वं इत्थं स्वैः उदारैः प्रभावैः संस्तुता एतौ दुराधर्षौ मधुकैटभौ असुरौ मोहय।

अन्यथा अन्वय- हे देवि त्वं इत्थं संस्तुता सती स्वैः उदारैः प्रभावैः एतौ दुराधर्षौ मधुकैटभौ असुरौ मोहय। अथवा एतौ मधुकैटभौ असुरौ मोहय यतः तौदुराधर्षौ अतः स्वैः उदारैः प्रभावैः मोहय।

शब्दार्थ- इत्थं-इस प्रकार, स्वैः-अपने, उदारैः-उत् आ और राति आददाति अथवा ऋगतौ धातु से उदार शब्द बनता है। समान्तादूर्ध्वं नयति इति अर्थः जो सबओर से उत्थान कराये। प्रभावैः असाधारणशक्ति, अथवा बल, संस्तुता-स्तुति की जाने पर दुराधर्षौ-जिन्हें कठिनाई से वश में अथवा पराजित किया जा सके, मधुकैटभौ-सृष्टिक्रम के अनुसार शब्दब्रह्म से ही पद और पदार्थ की सृष्टि होती है-उसमें कर्णमल बाधक विष्णु जो व्यापनशील है उसका कर्णमल ये दोनों असुर। सामान्यतया देखा जाता है कि कान में मैल जमने पर कर्णगूथ से श्रवणेन्द्रिय में बाधा होती है। श्रवण शक्ति दुर्बल हो जाती है। इसलिए इन्हें कर्णमलोद्भूत कहा गया। मधु से मधुर का भी बोध होता है जो सुखद प्रतीत होता है जिसे तुलसीदास जी ने माहुर कहा है जो विषरूप है। जिसके लिए गीता में कहा गया है-दुःखान्तं च निगच्छति। कैटभ को बहुत्व अथवा सत्तामद कहा है। अतः यहां व्यष्टिस्तर पर ब्रह्मग्रन्थिभेद का प्रसंग है। जिसमें बाधक काम और क्रोध रूपी मधुकैटभ का वध मोहनिद्रा त्यागने पर ही सम्भव है। यह कुण्डलिनी जागरण की प्रारम्भिक अवस्था का संकेत है। इसी सन्दर्भ में यहां जो प्रभाव शब्द आया है उसके विषय में तन्त्रालोक में स्पष्ट किया गया है कि निष्कल ब्रह्म या शक्ति ही तत्वरूपा है

और ब्रह्म मूर्तिरूप है। इसीलिए पहिले शरीरग्रहणं कारिता कहा गया। प्रभाव का अर्थ होता है प्रकर्षेण भवनम् अत: हे देवि अपने सकल और निष्कल दोनों रूपों के द्वारा यही प्रभाव का अर्थ है। यहां जो देवी से मोहय-कहकर प्रार्थना की गई वह उनके उस भाव के अनुरूप ही है जिसमें कहा गया है-ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा। बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति। मोहने के लिए उदार, मनोज्ञ, सुन्दर रूप चाहिए अत: पूर्व में-सौम्यासौम्य-तराशेषसौम्येभ्येस्त्वतिसुन्दरी कहा गया है। दैत्यों को मोहने के लिए विष्णु का मोहनी रूप धारण करना प्रसिद्ध ही है। अत: स्वै: उदारै:प्रभावै: कहा गया है। टीकाकारों ने जो स्वै: उदारै: प्रभावै: संस्तुता मानकर व्याख्या की है उसके अनुसार तो यह सारा कथन ही निरर्थक सा हो जाता है। अत: इत्थं संस्तुता स्वै: उदारै:प्रभावै एतौ दुराधर्षौमधुकैटभौ मोहय-अधिक सार्थक प्रतीत होता है।

व्याख्या- है देवि आपके लिए ऊपर कथन किए के अनुसार इससे अधिक कोई स्तुति हो ही नहीं सकती इसलिए अब आप इसे ही पर्याप्त मानकर अपने मनोज्ञ सुन्दरतम स्वरूप से तथा असाधारण मोहक प्रभाव से इन दोनों असुरों को मोह में डाल दीजिए क्योंकि बिना मोहाविष्ट हुए इनको पराजित करना अत्यन्त कठिन है ये दुर्धर्ष शत्रु हैं।

प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु।
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ।६७

अन्वय- जगत्स्वामी अच्युत: च लघु प्रबोधं नीयताम्, एतौ महासुरौ हन्तुं अस्य बोध: च क्रियताम्।

शब्दार्थ- प्रबोध-निद्रापगम, नींद से जगाना, बोध-ज्ञान करा देना, समझाना, लघु-कोश के अनुसार लघु क्षिप्रमरं द्रुतम्। यहां तुरन्त के अर्थ में, अच्युत-नास्ति च्युतं स्खलनं स्वपदाद्यस्य अच्युत भगवान का पर्याय है जिसका अर्थ होता है कभी भी अपने कार्य में प्रमाद स्खलन फिसलन न आने दें। यहां विष्णु के लिए इस सार्थक विशेषण से परिकरांकुर अलंकार है। जो अपने कर्तव्य से कभी नहीं चूके उन्हें यह स्मरण कराइये कि सोने के कारण आप कर्तव्यच्युत न हो जायं इसीलिए आगे जगा देने के पश्चात् भी बोध कराने के लिए कहा गया है।

व्याख्या- हे देवि, आपके तामसी प्रभाव के कारण भगवान विष्णु सोये हुए हैं इधर ये मधुकैटभ मुझे मारने पर आंमदा हैं। हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ-जिससे सृजन की प्रक्रिया बृंहण का व्यापार ही विनष्ट हो जायगा। अत: आप बिना विलम्ब किए विष्णु को निद्रारहित कर दें और उन्हें इन दोनों महाअसुरों को मारने के लिये भी समझा दें क्योंकि अधूरी नींद से जगाये जाने पर व्यक्ति कुछ क्षणों के लिए जागरण और स्वप्न के मध्य की अवस्था में रहकर ठीक से नहीं समझ पाता कि करना क्या है। अत: बोध का प्रयोग

किया गया कि उन्हें चैतन्य कर कर्तव्य के प्रति सचेत कर दें। क्योंकि इस जगत् के स्वामी वे ही हैं और इसके पालन रक्षण का दायित्व भी उनका है।

ऋषिरुवाच- एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा।
विष्णोःप्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ।६८
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः
निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।६९

अन्वय- तदा तत्र वेधसा एवं स्तुता तामसी देवी मधुकैटभौ निहन्तुं विष्णोः प्रबोधनार्थाय तस्यनेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यः तथा उरसः निर्गम्य अव्यक्तजन्मनः ब्रह्मणः दर्शने तस्थौ।

शब्दार्थ-तदा-तस्मिन्समये, तत्र-विष्णोः नाभिकमले वेधसा-ब्रह्मणा एवं स्तुता-इस प्रकार स्तुति किये जाने पर तामसी-तमोगुणप्रधाना निहन्तुं-वधार्थम् प्रबोधनार्थाय जगाने के लिये नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यः-नेत्रे च आस्यं चनासिका च बाहवः च हृदयं च तेभ्यः उरसः वक्ष से निर्गम्य-निकलकर दर्शने तस्थौ-सामने दिखाई दी अव्यक्तजन्मनः- अव्यक्तात् ईश्वरात् जन्म यस्य सः अव्यक्तजन्मा तस्य अव्यक्तजन्मनः।

व्याख्या- सुमेधा ऋषि ने कहा कि ब्रह्मा के द्वारा उन तमोगुणप्रधान योगनिद्रा की जब इस प्रकार स्तुति की गई और विष्णु को जगाकर मधुकैटभ के वध के लिए उन्हें प्रेरित करने के लिए निवेदन किया गया तो योगनिद्रा ने विष्णु का आश्रय छोड़ दिया। इससे विष्णु ने आंखें खोली। मुख खोला। नाक से स्वाभाविक सांस लेने लगे। बाहुओं-भुजाओं में मन में और सीने में नवीन चेतना का अनुभव किया।

उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः।
एकार्णवेऽहिशयनात्ततः स ददृशे हि तौ।७०

अन्वय- तया मुक्तः जगन्नाथः जनार्दनः एकार्णवे अहिशयनात् उत्तस्थौ ततः सःतौ ददृशे। (तौ च तं ददृशाते)

शब्दार्थ- जनार्दनः अमरकोश की रामाश्रमी टीका के अनुसार जनार्दन की निष्पत्ति जना (समुद्रस्थ दैत्यभेदा) तेषामर्दनः। गुप्तवती के टीकाकार ने भी संकेत किया है- प्रकृतकर्मानुगुणं विशेषणं आह-जनार्दन इति। अतः यह सार्थक विशेषण साभिप्राय विशेष्यत्त्वात् परिकरांकुरालंकारः। अर्द हिंसायां धातु के अनुसार-जनो जन्म तमर्दयतीति जनार्दनः अर्दगतौ याचने च इस धातु से निष्पन्न मानकर जनैःअर्दते याचते। इति जनार्दनः। अहिशयनात्-शेषशयनात् उत्तस्थौ-उठ बैठे, एकार्णवे-श्रुति के अनुसार ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः। सृष्टि के प्रारम्भ में रात्रिरूपा देवी का आविर्भाव फिर शब्द करते हुए समुद्र का प्राकट्य अतः सब कुछ जल मय होने के कारण एकार्णव

सः तौ ददृशे-विष्णु ने उन दोनों दैत्यों को देखा और तौ तं ददृशाते-उन दोनों ने भी विष्णु को देखा। भागवत में इसी के लिए कहा है-

यन्नाभिपद्मभवनादहमासमीड्ये लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण।
तस्मै नमस्त उदरस्थभवाय योगनिद्रावसानविकसन्नलिनेक्षणाय।

-श्रीमद्भागवत-३/९/२१

व्याख्या- उस योगनिद्रा से मुक्त होने पर जगत के स्वामी जनार्दन शेषनाग की शैया त्याग कर उस सर्वव्यापी समुद्र में ही उठकर खड़े हो गये। वहां पर उन्होंने मधु और कैटभ दोनों असुरों को देखा। आगे मधुकैटभ के विषय में कहते हैं-

मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ।
क्रोधरक्तेक्षणौ हन्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ। ७१

कहीं क्रोधरक्तेक्षणावत्तुम् ऐसा पाठ है।

इस अनुष्टुभ् छन्द के प्रथम पाद में नव अक्षर हो जाते हैं और इस प्रकार पंचम वर्ण जो ह्रस्व होना चाहिए वह दीर्घ-भौ ऐसा होता है। इसलिए टीकाकार का मत है कि इसमें भौ का उच्चारण न करने से छन्द के वर्ण ठीक हो जाते हैं।

अन्वय- यहां कर्ता और क्रिया दोनों ही पूर्व श्लोक से लेकर विवक्षा पूरी होगी अथवा तौ ददृशे इस क्रिया से पूरा वाक्य कीदृशौ तौ ददृशे इस तौ के विशेषण रूप में है-

दुरात्मानौ अतिवीर्यपराक्रमौ क्रोधरक्तेक्षणौ मधुकैटभो ब्रह्माणं हन्तु जनितोद्यमौ ददृशे। अथवा-ब्रह्माणं अत्तुं जनितोद्यमौ ददृशे।

शब्दार्थ- दुरात्मानौ-दुर्बुद्धि वाले, दुष्ठ स्वभाव वाले, अतिवीर्यपराक्रमौ-वीर्य के लिए कोश के अनुसार-वीर्यं बलं प्रभावश्चशक्तयुद्योगौ पराक्रमौ। अत्यन्त बल और प्रभाव वाले अथवा उत्साह वाले, पराक्रमी-शक्तिसम्पन्न। क्रोधरक्तेक्षणौ-क्रोध के कारण लाल नेत्रों वाले, हन्तुम्-मारने के लिए, अत्तुम्-खा डालने के लिए, चबा जाने के लिए जनितोद्यमौ-प्रयत्नशील।

व्याख्या- भगवान विष्णु ने शेषशयन से उठकर देखा कि दोनों मधु और कैटभ अत्यन्त उत्साह और बल से युक्त हैं, शक्तिशाली हैं, क्रोध से उनकी आंखें लाल हो रही थी और वे ब्रह्मा को मारने अथवा खा डालने के लिए जैसे प्रयत्नशील थे।

रहस्य- पूर्व में बताया जा चुका है कि ये दोनों मधु और कैटभ काम और क्रोध के प्रतीक हैं जिनके विषय में गीता में कहा गया है-

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।

यह रजोगुण से उत्पन्न होने वाला काम और क्रोध ही है। रजोगुण से उत्पन्न होने के कारण ही उन्हें दुरात्मानौ-महापाप्मा कहा गया और अतिवीर्यपराक्रमौ कहा गया। जो ब्रह्मा को खा जाना चाहते हैं क्योंकि महाशनः हैं। अत्यन्त बुभुक्षा वाले हैं जैसे सबको खा जायेंगे। इन श्लोकों में व्यष्टि रूप में कुण्डलिनी जागरण का ही सांकेतिक वर्णन किया गया है। यह कुण्डलिनी के मूलाधार से उत्थित होने का उपक्रम है। मूलाधार में धराबीज लं के अन्तर्गत ब्रह्मा की स्थिति के विषय में कहा जा चुका है। मूलाधार सेआगे स्वाधिष्ठान चक्र है। जिसके देवता वरुण हैं जो जलमय हैं यहीं विष्णु का वास कहा गया है। स्वाधिष्ठानं विष्णुगेहं प्रदिष्टम्। यह जलमण्डल है जैसा कि शारदातिलक में कहा गया है-

अम्भोजमम्भसो भूमेश्चतुरस्रंतु वज्रकम्।

षट्चक्रनिरूपण में कहा गया है- तस्यांकदेशकलितो हरिरेव पायात् नीलप्रकाशरुचिरश्रियमादधानः। षट्चक्रनिरूपण-१६

यहां तस्य की टीका करते हुए कालीचरणकृत टीका में बताया गया है-तस्य-जलाधिष्ठातृत्वेन प्रसिद्धस्य अहिशयन ही कुण्डलिनी है जिसके लिए कहा गया है-

शंखावर्तनिभा नवीनचपलामालाविलासास्पदा
सुप्ता सर्पसमा शिवोपरि लसत्सार्धत्रिवृत्ताकृतिः।

इसी के लिए पहिले कहा गया है, त्रिधामात्रात्मिका स्थिता। अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः यहां अनुच्चार्या का सन्धिविच्छेद करने पर होगा-अन-उत् च आ आर्या उत् वद धातु का संप्रसारण का रूप मानकर जो कहने योग्य नहीं-वर्णन से परे हैं और आर्या ऋगतो धातु से-गतिशील है। अन्यत्र कहा गया है-

येन द्वारेण गन्तव्यं ब्रह्मद्वारं मनोमयम्।
मुखेनाच्छादय तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी।

और भी- **मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं कुण्डलीशक्तिरूज्जवला।**
निद्रावशगता देवी प्रसुप्तभुजगोपमा।

मूलाधार में ही काम की स्थिति बताई गई है- षट्चक्रनिरूपण छन्द संख्या ८ में कहा गया है-कामरूपम्। कन्दर्पो नाम वायुनिर्वसति इसकी टीका में कहा गया है-

कामरूपम् कामं निरूप्यते अनुभूयते येन तादृशं, मदनागारात्मकं इत्यर्थः। और कन्दर्पो नाम वायुनिर्वसति का अर्थ करते हुए कहा गया है-काम एव वायुभूतोऽत्रास्तीति। यहां संकेत यही है कि काम और क्रोध को पराजित करके ही ब्रह्मग्रन्थि भेद सम्भव होता है। क्रोधरक्तेक्षणौ कहकर क्रोध का प्राबल्य भी सूचित कर दिया गया है। अतः प्रथम चरित में मूलाधार और स्वाधिष्ठान से कुण्डलिनी जागरण का प्रतीकात्मक भाषा में वर्णन किया गया है।

समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः।
पंचवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः। ७२

अन्वय- ततः समुत्थाय विभुः भगवान् हरिः ताभ्यां सह बाहुप्रहरणः सन् पंचवर्षसहस्राणि युयुधे।

शब्दार्थ- ततः उसके पश्चात उन दोनों असुरों को देखने के पश्चात्, समुत्थाय-उठकर मल्लयुद्ध के लिए प्रस्तुत होकर, विभुः सर्वव्यापक, भगवान्-षडैश्वर्य से सम्पन्न ताभ्यां-उन दोनों के साथ, बाहुप्रकरणः-बाहु ही जिनके आयुध हैं अर्थात बाहुओं के द्वारा मल्लयुद्ध पंचवर्षसहस्राणि-पांच हजार वर्ष तक

व्याख्या- जब विष्णु भगवान ने देखा कि वे दोनों असुर ब्रह्मा को मारने के लिए उद्यत हैं तो उन्होंने उठकर उन दोनों के साथ पांच हजार वर्ष तक मल्लयुद्ध किया।

तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ।
उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम्। ७३

अन्वय- अतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ तौ अपि केशवं उक्तवन्तौ यत् अस्मत्तः वरं व्रियताम् इति।

शब्दार्थ- अतिबलोन्मत्तौ-वे दोनों अत्यंत बल के मद में भरे हुए थे- महामायाविमोहितौ पांच हजार वर्ष तक युद्ध करने पर भी जब जय पराजय का निर्णय न हो सका तो ब्रह्मा जी की प्रार्थना के अनुसार-मोहयैतो दुराधर्षो असुरौ मधुकैटभो-महामाया ने उन दोनों को मोह के वशीभूत कर दिया। अपि-भी, केशव-विष्णु, उक्तवन्तौ-दोनों ने कहा, अस्मत्तः-हमसे, वरं-वरदान, अभीष्ट वस्तु जो भी आप श्रेष्ठ समझें, व्रियताम्-मांग लें।

व्याख्या- तब उन दोनों मद से मत्त असुरों ने महामाया के द्वारा मोहित किए जाने के कारण विष्णु भगवान से कह दिया कि तुम्हीं हमसे वर मांग लो। यहां अपि शब्द से ऐसा प्रतीत होता है कि बीच में जैसे कुछ कथानक छूट गया हो। इसके संबंध में गुप्तवती के टीकाकार के अनुसार ही श्लोक और थे जो वर्तमान प्रतियों में नहीं पाये जाते। वे इस प्रकार है- ये दो श्लोक बाहुप्रहरणौ विभुः के पश्चात् आते हैं-

नच तौ युद्धवैमुख्यं शमं वा उपजग्मतुः
ततो विद्यामुखालोकसमुदभूतमहोत्सवः।
हरिरूचेवरोऽस्मत्तो युवाभ्यां व्रियतामिति।
निशम्यैतद्विभोर्वाक्यमवलोक्य परस्परम्।

अर्थ इस प्रकार है- पांच हजार वर्ष तक युद्धरत रहने पर भी वे दोनों न तो युद्ध से विमुख हुए और न सन्धि करने के लिए ही कहा। उस समय भगवान ने देवी भगवती की ओर देखा और उधर से संकेत पाकर अति उत्साह में प्रसन्नता के साथ उन दोनों

से कहा कि तुम दोनों को मुझसे जो भी वरदान मांगना हो वह मांग लो। इस पर विष्णु का यह कथन सुनकर उन दोनों ने परस्पर एक दूसरे की ओर देखा और कहा- इसके आगे तावप्यतिमदोन्मत्तौ आदि। तब उन्होंने भगवान से कहा कि अरे तुम्हीं हम से जो चाहो वरदान मांग लो। इससे ठीक संगति बैठ जाती है।

श्रीभगवानुवाच- भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि।
किमन्येन वरेणात्रएतावद्धि वृतं मया। ७४

अन्वय- श्री भगवान् उवाच-अद्य यदि मे तुष्टौ तदा उभौ अपि मम वध्यौ भवेताम् अत्र अत: अन्येन वरेण किम् मया एतावत् वृतं हि।

व्याख्या- यदि आप दोनों मुझसे संतुष्ट होकर वर देना चाहते हैं तो दोनों ही मेरे द्वारा मारे जायं अन्य वर से मुझे क्या प्रयोजन। इसलिए मैं यही वर मांगता हूँ।

विशेष- व्याकरण के नियमानुसार-वरेणात्र और एतावद्धि में सन्धि होना चाहिए जो नहीं की गई। इसलिए यदि अत्र के स्थान पर अत: पाठ मान लिया जाय तो वरेणात एतावद्धि इस प्रकार सन्धि कार्य भी हो जायगा और अत्र के स्थान पर अत: पाठ से अर्थ भी स्पष्ट हो जाता है।

ऋषिरुवाच- वंचिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत्।
विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षण:। ७५

अन्वय- तदामहामायया वंचिताभ्यां ताभ्यां सर्व जगत् आपोमयं विलोक्य भगवान् कमलेक्षण: इति गदित:

शब्दार्थ- तदा उस समय वंचिताभ्यां-उन दोनों के प्रति वरयाचना का छल किए जाने पर, आपोमयं-जलमय, जल से पूर्ण, इति- इस प्रकार, गदित:-कहा गया।

व्याख्या- ऋषि ने कहा कि जब उन दोनों असुरों ने समझ लिया कि वरदान के नाम से उनसे इस प्रकार छल किया गया है तो उन्होंने विचार किया कि यहां सर्वत्र जल ही जल है। तब कमलनयन भगवान से उन्होंने इस प्रकार कहा-

प्रीतौ स्वस्तव युद्धेन श्लाध्यस्त्वं मृत्युरावयो:
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता। ७६

अन्वय- तव युद्धेन प्रीतौ स्व: त्वं आवयो: श्लाध्य: मृत्यु: यत्र उर्वी सलिलेन परिप्लुता न तत्र आवां जहि।

सप्तशती के वर्तमान पाठों में इस श्लोक का केवल उत्तरार्ध ही मिलता है। किन्तु चतुर्धरी, शान्तनवी और दंशोद्धार टीकाओं में पूरे श्लोक की ही व्याख्या की गई है। कहीं-श्लाध्यस्तन्मृत्युरावयो: ऐसा पाठ भी है। वहां अर्थ होगा त्वत्त: आवयो: मृत्यु: श्लाध्य:-

शब्दार्थ- तव युद्धेन-तुम्हारे युद्ध से, प्रीतौ स्व: हम दोनों प्रसन्न हैं, श्लाध्य:- सराहनीय, प्रशंसनीय, यत्र-जहां उर्वी-पृथ्वी, उरू का स्त्रीलिंग भी उर्वी ही होता है, सलिलेन-जल से, परिप्लुता-लबालब भरी हुई।

व्याख्या- तुम्हारे इस युद्ध से हम दोनों प्रसन्न हैं, तुम्हारे द्वारा हमारी मृत्यु होना भी सराहनीय ही है। परन्तु एक शर्त है कि हम लोगों को ऐसे स्थान पर मारना, वध करना, जहां पृथ्वी पर जल न हो। जो भूमि जल से आप्लावित न हो।

विशेष- 'मधुकैटभ ने सोचा कि भगवान ने हमसे छल करके वरदान तो मांग लिया है, क्यों न हम भी इनके साथ छल करके ऐसी शर्त लगा दें जिससे ये हमें मार ही न सकें। उस समय सर्वत्र जल ही जल था, इसलिये उन्होंने सोचा कि यहां कोई भी स्थान जल से रहित नहीं है। इसलिए उन्होंने वर देते हुए भी कह दिया कि हम दोनों को ऐसे स्थान पर मार डालो जहां पृथ्वी पर जल न हो।

ऋषिरुवाच- तथेत्युक्त्वा भगवता शंखचक्रगदाभृता।
कृत्वा चक्रेण वै छिन्ने जघने शिरसी तयो:। ७७

अन्वय- शंखचक्रगदाभृता भगवता तथा इति उक्त्वा तयो: शिरसी जघने कृत्वा वै चक्रेण छिन्ने।

शब्दार्थ- शंखचक्रगदाभृता-शंख चक्र और गदा धारण करने वाले, भगवता-भगवान विष्णु के द्वारा, तयो:- उन दोनों मधुकैटभ के शिरसी-दो शिर, जघने-उपस्थ और नाभि के मध्य भाग पर कृत्वा-स्थापयित्या-रखकर, चक्रेण-सुदर्शन चक्र के द्वारा, छिन्ने घड़ से पृथक कर दिए। छिदिर् द्वैधी करणे धातु का क्तप्रत्ययान्त रूप।

रहस्य- यहां यह प्रश्न उठता है कि जघन तक का जल नहीं था। उसका एक समाधान तो यह दिया गया है कि भगवान् का वह मायिक वपु पांचभौतिक नहीं अत: जल से असंस्पृष्ट और असंपृक्त, दूसरा समाधान यह कि उस समय सृष्टि के आरम्भ काल में पृथ्वी का तो निर्माण हो ही रहा था, जल भी था, परन्तु उस विराट पुरुष के जांघों तक ही था-जानुदघ्नं नराधिप-इत्योक्ते:। तीसरा समाधान यह कि उरु और उरू दोनों ही शब्द ऊर्णुञ् आच्छादने धातु से निष्पन्न हैं। यत्रोर्वी का सन्धि-विच्छेद करने पर भी यत्र उर्वी और ऊर्वी दोनों ही प्रकार होते हैं। अत: उर्वी जघन का संकेत भी देता है। चौथा और सबसे महत्वपूर्ण समाधान यह है कि-

कुण्डलिनी जागृत होने पर व्यापिनी विष्णु शक्ति के द्वारा त्रिवेणी के संगम स्थल पर जिसे जघन कहा गया है, इन दोनों काम और क्रोध रूपी दैत्यों का वध किया गया है। पहिले बताया जा चुका है कि कामरूप कन्दर्प का वासस्थान स्वाधिष्ठान चक्र है जो जल के देवता वरुण का अधिष्ठान होने के कारण जलरूप ही है। इसकी अन्त:कर्णिका में ही सुषुम्णा का मुख खुलता है और यही इड़ा, पिंगला और सुषुणा का संगमस्थल होने के कारण त्रिवेणी कहा गया है। जैसा कि कहा गया है-

गंगायमुनयोर्मध्ये पृथिव्यां जघनं स्मृतम्।
प्रयागं जघनस्थानमुपस्थमृषयो विदु:।

गंगा और यमुना के मध्य में स्थित प्रयाग को जघन कहा जाता है। ये गंगा और यमुना क्या हैं, जिनके संबंध में कहा गया है-

इडायां यमुना देवी पिंगलायां सरस्वती
सुषुम्णायां वसेद्गंगा तासां योगस्त्रिधा भवेत्।
संगता ध्वजमूले तु विमुक्ता भूवियोगत:।
त्रिवेणीयोग: स प्रोक्त: तत्र स्नानं महाफलम्।

हठयोग प्रदीपिका के अनुसार इडाको गंगा और पिंगला को यमुना कहा गया है। शिव संहिता के अनुसार यही विष्णु की शक्ति है- सुप्तनागोपमाह्येषास्फुरन्तीप्रभयास्वया। अहिवत्सन्धिसंस्थाना वाग्देवी वीजसंज्ञिका ज्ञेयाशक्तिरियंविष्णो: निर्मला स्वर्णभास्वरा

इडा नाडी में यमुना का निवास है, पिंगला में सरस्वती है और सुषुम्णा में गंगा का निवास है उनका मिलन तीन प्रकार से होता है। लिंग के मूल में ये तीनों मिली हुई हैं आदि आदि।

यही संगमस्थल जघन कहा जाता है जहां कुण्डलिनी जागरण से काम को वश में किया जा सकता है यही मधुकैटभ का वध और ब्रह्मग्रन्धि भेदन है। ठीक कामरूप शब्द का ही प्रयोग गीता में भी किया गया है-

जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।

हठयोगप्रदीपिका में भी कहा गया है-

गंगायमुनयोर्मध्ये बालरण्डां तपस्विनीं।
बलात्कारेण गृहणीयात्तद्विष्णो: परमं पदम्।

इसे आगे इस प्रकार स्पष्ट किया है-

इड़ाभगवती गंगा पिंगला यमुनानदी।
इडापिंगलयोर्मध्येवालरण्डा चकुंडली।

यही विष्णु का परम पद है जहां उनके द्वारा मधुकैटभ का वध किया गया।

एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम्।
प्रभावमस्या देव्यास्तु भूय:श्रणु वदामि ते। ७८

अन्वय- एवं ब्रह्मणा स्वयं संस्तुता एषा समुत्पन्ना अस्या:देव्या:प्रभावं श्रणु भूय: ते वदामि।

शब्दार्थ- समुत्पन्ना-सम्यक् प्रकट हुई, एवम्-इस प्रकार, ब्रह्मणा संस्तुता-ब्रह्मा के द्वारा स्तुति किये जाने पर अस्या: देव्या: इस देवी का, प्रभावम्-प्रकर्षेण भवनम् प्रादुर्भाव, स्वेच्छाकृत जन्म और सामर्थ्य, भूय:-पुन: भूय:प्रभावं मानकर अर्थ होगा, इस देवी की पुन: उत्पत्ति। यहां प्रथम चरित में केवलतमोगुणाधिष्ठाना देवी के प्रभाव

का वर्णन किया गया है। जबकि तीनों चरितों में क्रमशः तामसी, राजसी और सात्विकी स्वरूपों के प्रभाव का वर्णन किया गया है। इसीलिए आगे कथा के उपक्रम के लिए कहा गया- भूयः प्रभावं, कथयामि। लक्ष्मीतन्त्र में इसके संबंध में कहा गया है-

योगनिद्रा हरेरुक्ता या सा देवी दुरत्यया।
ममकाल्यास्तुनुं विद्धि तां मां देवीं सनातनीम्।
मधुकैटभनाशार्थंमोहितौ च तदा तया।
जघ्नाते वरलाभेन देवदेवेन विष्णुना
एषा सा वैष्णवी माया महाकाली दुरत्यया।
स्तुत्या वशीकृता कुर्याद्वशे स्तोतुश्चराचरम्। -लक्ष्मीतन्त्र ८/१५-१८

"जिस अनुल्लंघनीया देवी की विष्णु को योगनिद्रा कहा गया है उसे मेरा ही महाकाली का रूप जानिए। मधु और कैटभ का वध करने के लिए उनसे वर प्राप्त कर विष्णु ने उन दोनों का वध किया। यही महाकाली दुर्जेय वैष्णवी माया है जो स्तुति के द्वारा वश में कर लिए जाने पर स्तुति करने वाले के वश में सम्पूर्ण चराचर को कर देती है।"

व्याख्या- इस प्रकार ब्रह्मा के द्वारा स्तुति किए जाने पर यह देवी स्वयं ही प्रकट हुई इसके अन्य प्रादुर्भाव के संबंध में अब आगे कहता हूं उसे सुनिए।

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे देवी माहात्म्ये सावर्णिके मन्वन्तरे
मधुकैटभवधो नाम प्रथमोऽध्यायः।

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत सावर्णिकमन्वन्तर के देवीमाहात्म्य के वर्णन में मधुकैटभवध नामक प्रथम-अध्याय पूरा हुआ।

द्वितीय चरित

मध्यम चरितकी कथा का वर्णन द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ इन तीन अध्यायों में किया गया है। इस चरित की प्रधान देवी महालक्ष्मी है। प्रथम चरित की महाकाली तामसी थी, जिसका वर्ण तदनुरूप इन्द्रनीलमणि के समान बताया गया। महालक्ष्मी रजोगुण-क्रियाशक्ति प्रधान है, विकास के प्रतीक कमल पर वह विराजमान है। महिषासुर का वध करने वाली अठारह भुजाओं में अठारह आयुध धारण किये हुए हैं।

शरीरान्तर्वर्ति अष्टादश स्थान इस प्रकार हैं-

१.	पादांगुष्ठ से गुल्फ-	४-१/२ अंगुल
२.	गुल्फ से जंघा-	१० अंगुल
३.	जंघा से घुटना-	११ अंगुल
४.	घुटना से जानु-	२ अंगुल
५.	जानु से ऊरू-	९ अंगुल
६.	ऊरू से पायुमूल-	९ अंगुल
७.	पायुमूल से देहमध्य-	२-१/२ अंगुल

देहमध्य तक आठ खंड ४८ अंगुल

मेढ्र	२-१/२ अंगुल
नाभि	११-१/२ अंगुल
हृदय	१३ अंगुल
कंठकूप	६ अंगुल
जिह्वामूल	४ अंगुल
नासामूल	४ अंगुल
नेत्रस्थान	१/२ अंगुल
भ्रूमध्य	१/२ अंगुल
ललाट	३ अंगुल
व्योमसहस्रार	३ अंगुल

योग १० खण्ड ४८ अंगुल

देश के क्रम से अष्टादश-चार दिशाएं और चार उपदिशाएं तथा आठ इनके सन्धिस्थान ऊपर और नीचे मिलकर अष्टादश यही अष्टादश भुजाएं।

इनके अठारह अस्त्रों के संबंध में आगे प्रतीकार्थ पर विचार किया जायेगा। यहां इतना ही उल्लेख किया जाता है कि दशों दिक्पालों की शक्तिस्वरूपा होने के कारण दश दिक्पालों के आयुध धारण करना बताया गया है। इसीलिए आगे कहा गया है- दिशो

भुजसहस्रेण समन्ताद्व्याप्य संस्थिताम्। सभी दिशाओं में सब ओर देवी अपने हाथ फैलाकर स्थित है।

पूर्वकाल में देवताओं और असुरों का संग्राम सौ वर्ष तक चलता रहा। महिषासुर और इन्द्र के मध्य चलने वाले इस संग्राम में देवसेना की हार के पश्चात् महिषासुर इन्द्र बन बैठा। देवता पराजित होकर प्रजापति ब्रह्मा को आगे करके भगवान विष्णु और शिव के पास गए। अपनी दुर्दशा का वर्णन करते हुए उनसे प्रार्थना की कि महिषासुर के मारने का उपाय सोचिये। तब क्रोधयुक्त शंकर और विष्णु के मुख से एक महान तेज निकला। ब्रह्मा और अन्य सभी देवताओं के शरीर से इस प्रकार जो तेज निकला वह सब मिलकर एक होकर तेज का जलता हुआ पहाड़ सा था। जो एक तेजोमय नारी के रूप में परिवर्तित हो गया। वह अपने उस तेज से तीनों लोकों को प्रकाशमान कर रही थी। किस देवता के तेजसे देवी का कौन सा अंग बना यह भी रहस्य से खाली नहीं है। उसकी भुजाएं विष्णु के तेज से बनी। विष्णु जो व्यापनशील है, अत: आगे भुजसहस्रेण कहा गया। विष्णु पालन और सुरक्षा करने वाले देवता हैं, अतः बाहवो विष्णुतेजसा। पावक ज्वाला रूप है जिससे देवी के तीन नेत्र और श्रवण वायु से ही अपना सुनने का कार्य सम्पादन करते हैं अत: वायु के तेज से श्रवण पादांगुलि को सूर्य के तेज से बताया गया है जिसका रहस्य यही है कि साधना में पादांगुष्ठ का नख विशेष महत्वपूर्ण होता है- इसी पर ध्यान केन्द्रित करने से अनेक सिद्धियों के द्वार खुलते हैं। रामचरितमानस में इसीलिए कहा गया है-श्रीगुरुपदनखमनिगनजोती। सुमिरत दिव्य। देवी के आयुध भी क्रियाशक्ति के प्रतीक हैं जो भिन्न भिन्न देवताओं से तत्संबंधी आयुधों से निकाल कर दिए गये। देवी के ध्यान में जो आयुध बताये गये उनके प्राप्त होने का क्रम भी देखिये।

१. शिव ने अपने शूल से निकाल कर देवी को शूल दिया। २. विष्णु ने अपने चक्र से उत्पन्न करके चक्र दिया। ३. वरुण ने शंख दिया।

४. अग्नि ने शक्ति दी ५, ६ वायु-मरुत देवता ने धनुष और बाणों से भरे हुए दो तूणीर दिये। ७ इन्द्र ने वज्र से उत्पन्न करके वज्र दिया। ८ ऐरावत हाथी से घण्टा दिया। ९ यमने अपने कालदण्ड से निकाल कर दण्ड दिया। १० वरुण ने पाश दिया। ११ प्रजापति ने अक्षमाला दी। (यह अक्षमाला सामान्य स्फटिक या रुद्राक्ष की माला न होकर विशेष है। जिसके संबंध में इस मन्त्र की टीका में बताया गया है।) १२ ब्रह्मा ने कमण्डलु (कुण्डिका) दी। १३-१४ काल ने ढाल और तलवार दी। १५- विश्वकर्मा ने परशु दिया। १६- समुद्र ने शंख दिया। १७-कुबेर ने पानपात्र दिया। इस द्वितीय अध्याय में केवल सत्तरह आयुधों का नाम आया है। जबकि देवी भागवत के अनुसार त्वष्टा-विश्वकर्मा ने गदा दी। इस प्रकार देवी के अठारह हाथों में ध्यान के अनुसार बताये हुए अठारह आयुध पूरे हो जाते हैं।

यहां विशेष ध्यान देने की बात यह है कि देवताओं ने जो जो आयुध अपने सदृश आयुध से निकाल कर देना कहा है, उसे लाक्षणिक ही समझना चाहिए। आयुध, वाहन वर्ण, परिवार, आवरण देवता आदि सभी तत्तद्देवता की शक्तियां ही होती हैं जिस प्रकार देवी सभी देवताओं की तेजोमूर्ति हैं, उसी प्रकार उन देवताओं की शक्ति से भी समन्वित की गई हैं। कहा भी गया है-आयुधाख्या पराशक्तिः। आवरणदेवता के विषय में सौन्दर्यलहरी के डिण्डिमभाष्य में कहा गया है-

ततएव समुत्पन्ना तस्यामेव कृतालयाः।

तत्स्वरूपा तत्प्रतापा सर्वावरण देवताः।

आयुध वाहन, आवरण देवता आदि सभी कर्तव्यशक्ति के ही प्रतीक हैं। इसीलिए आगे के अध्यायों में जो जिस देवता की शक्ति समरभूमि में आती हैं, उसके आयुध भी वही होते हैं।

इस प्रकार देवताओं से शस्त्रों और आभूषणों से सम्मानित होकर देवी ने उच्चस्वर से अट्टहास किया जिसकी प्रतिध्वनि से सभी लोक क्षुब्ध हुए, समुद्र में कम्पन्न हुआ। पृथ्वी डोलने लगी और पर्वत हिलने लगे। जब देवी के इस प्रकार ठठाकर हंसने से दैत्यों ने तीनों लोकों को क्षुब्ध होते देखा तो वे अस्त्रशस्त्रों से सुसज्जित हुए। स्वयं महिषासुर-अरे यह क्या है-ऐसा कहता हुआ उसी ओर दौड़ा जिधर से शब्द हुआ था। उसने देखा कि देवी के रूप में एक ऐसा प्रकाश पुंज खड़ा है, जिसकी प्रभा से तीनों लोक व्याप्त हैं, जिसकी पदचाप से पृथ्वी झुकी जा रही है, मुकुट से आकाश में रेखा सी खिंच गई है जो अपने धनुष की टंकार से पाताल के सातों लोकों को क्षुब्ध कर रही हैं जो अपनी हजारों भुजाओं को सभी दिशाओं में फैलाकर खड़ी हैं।

इस शरीर रूपी ब्रह्माण्ड में साधना के इस स्तर पर जब शक्ति का संचार होता है तो अन्तर्हित नाद के द्वारा शरीर के नाडीजाल में झनझनाहट और कम्पन का अनुभव होता है। बसुधा-मूलाधार से लेकर चेतना के समस्त केन्द्र क्षुब्ध होने लगते हैं। मूलाधार से नीचे के सप्त आधार-सातों पाताल में टंकार सी भर जाती है। सर्वत्र विलक्षण प्रकाश का अनुभव होता है। शक्ति जागरण की इस स्थिति में कभी कभी साधक संज्ञाशून्य होकर गिर पड़ता है यही आसुरिक प्रवृत्तियों के साथ संघर्ष की अवस्था होती है। लाखों करोड़ों की संख्या वाले दैत्य ही मन के असंख्य-मनोवृत्तियों के द्योतक हैं। नाद की इस स्थिति में आसुरी वृत्तियों के शमन के सूचक-पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान् कहा गया है। आगे कहा गया है-

निरन्तराःशरौघेन कृताःकेचिद्रणाजिरे।

श्येनानुकारिणः प्राणान् मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः।

इसके विशेष अर्थ व्याख्या में दिये गये हैं। मन्त्रशक्ति का चमत्कार तो पूरे अध्याय में ही प्रकट है यथा-देवी के श्वास बाहर निकालने से सहस्रों गणों का प्रकट होना, घण्टानिनाद से असुरों का पतन। देवी के वाहन सिंह के द्वारा दैत्यों के प्राणहरण के साथ देवी के गणों के युद्ध से देवताओं को सन्तोष होकर पुष्पवृष्टि के साथ अध्याय की समाप्ति होती है।

लाखों करोड़ों की दैत्यों की इस महासेना को देवी ने क्षणभर में नष्ट कर दिया इसका सामान्य अर्थ तो यही है कि थोड़े समय में नष्ट कर दिया किन्तु क्षणेन शब्द का कुछ गूढार्थ भी है जिसे आगे स्पष्ट किया गया है।

महिषासुर के सेनानियों के साथ अभी यह संग्राम चल ही रहा है जिसकी समाप्ति अगले तीसरे अध्याय में महिषासुर के वध के साथ होती है।

तृतीय अध्याय के प्रारम्भ में देवी का सौम्य ध्यान दिया गया है। जिसमें उनके चार हाथों में माला, पुस्तक, वर और अभय मुद्रा है। वे अरविन्दासन पर विराजमान हैं, उनकी शोभा उदयकालीन सहस्र सूर्य के समान है, अरुण वस्त्र धारण किए हैं, हिमांशु चन्द्रमा का मुकुट धारण किये हैं। यह जगदम्बा के सौम्य रजोगुणात्मक-क्रियाशील रूप का ध्यान है। महिष जो महत् का प्रतीक है, उसके वध के साथ ही देवी के इस रूप का सामंजस्य होता है। वामन पुराण में महिषासुर का वध करने वाली देवी को कात्यायनी कहा गया है।

दैत्यों की सेना का इस प्रकार संहार होते देखकर चिक्षुर नामा सेनापति क्रोधित होकर अम्बिका के साथ युद्ध करने के लिए आया। जब वह देवी के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगा तो देवी ने उसके बाणों को काटते हुए रथ के घोड़ों, सारथि और धनुष को काट डाला। इस प्रकार रथ विहीन होने पर वह हाथ में ढाल तलवार लेकर सिंह को मारने के लिए आया, सिंह पर वार करके उसने उसी तलवार से देवी की बायीं भुजा पर प्रहार किया। किन्तु देवी के बाहु पर पड़ते ही उसकी तलवार के टुकड़े हो गये। तब उसने देवी की ओर लक्ष्य कर अपना शूल चलाया तो देवी ने भी अपने शूल से उस दैत्य के शूल को छिन्न-भिन्न करने के साथ महासुर चिक्षुर के भी टुकड़े कर दिये। जब चामर देवी से लड़ने के लिए आया तो उसने शक्ति छोड़ी जिसे देवी ने हुंकार से ही-हुं-मन्त्र कहकर गिरा दिया। शक्ति को भग्न होकर भूमि पर गिरते देखकर चामर ने शूल फेंका जिसे देवी ने बाणों से काट डाला। इतने में देवी के वाहन सिंह ने हाथी पर सवार चामर से लड़ने के लिए हाथी के मस्तक पर झपट्टा मारकर मल्लयुद्ध में उस दैत्य को नीचे गिरा दिया। यहां पर युद्ध करते हुए सिंह ने आकाश में उछल कर पंजों से चामर का सिर पृथक कर दिया। इसी प्रकार जब उदग्र, कराल, वाष्कल, ताम्र, अन्धक आदि अनेक दैत्यों को अपने आयुधों के प्रहार और मुक्के मार मार कर मार डाला। तब

महिषासुर ने अपनी सेना का इस प्रकार बिनाश होते हुए देखा तो भैंसे के रूप में युद्ध करने लगा। उसने देवी के गणों को दुलत्ती झाड़कर, पूंछ फटकार कर, सीगों से फाड़कर, जोर से रंभा कर, चक्कर खिला कर और अपने श्वास जोर से बाहर फेंकते हुए मारकर गिरा दिया। इस प्रकार गणों की सेना को धराशायी करके वह देवी के वाहन सिंह को मारने के लिये दौड़ा। वह क्रोध से धरती को खुरों से चकनाचूर कर रहा था, सींगों पर ऊंचे पहाड़ों को उठाकर फेंकते हुए गर्ज रहा था, उसके बड़े वेग से घूमने के कारण धरती फट गई, पूंछ फटकारने से समुद्र का पानी उछलने से बाढ़ आ गई, हिलते हुए सींगों से बादल छिन्न भिन्न हो गये, उसके तेज श्वास से उखड़े हुए पहाड़ आकाश में उड़कर पृथ्वी पर गिरने लगे। इस प्रकार महिषासुर को आक्रमण करते देख देवी को क्रोध आया और उन्होंने उसे मारने का निश्चय कर लिया। देवी ने जब पाश फेंक कर उसे बांध लिया तो वह सिंह बन गया। जब तक देवी ने उसका सिर काटना चाहा तो वह खड्गधारी पुरुष बन गया। उस पर बाणवर्षा करने पर वह महागज का रूप धारण कर देवी के सिंह को अपनी सूंड से खींच कर चिंघाड़ने लगा। तब देवी ने उसकी सूंड को तलवार से काट डाला तो वह फिर महिष के रूप में होकर तीनों लोकों को क्षुब्ध करने लगा।

देवी के आयुधों के साथ पान पात्र का भी नाम आया है। उसका उपयोग यहां दिखाया गया है कि जगदम्बा ने कुपित होकर उत्तम पान किया-अमृतपान किया। साधना के क्षेत्र में सहस्त्रार से स्रवित होने वाला अमृत है जिसे शरीरस्थ पद्मों के दल अविकसित रहने के कारण अनाहतस्थ रवि शोषण करता रहता है। कुण्डलिनी जागरण से वे दल विकसित होकर ऊर्ध्वमुख हो जाते हैं जिससे वह अमृत शरीर का पोषक बन जाता है।

महिषासुर भी बल, उत्साह और गर्व से भरकर जोर से आवाज करता हुआ सीगों से पर्वतों को देवी के ऊपर फेंकने लगा। देवी ने उन सबको वाणवर्षा से चूर चूर कर डाला और हर्ष तथा उत्साह से मुख को अरुणाभ करते हुए अकुल-हं-उच्चारण किया। उवाच तं मदोदधूतमुखरागाकुलाक्षरम् और अगले श्लोक का निहितार्थ व्याख्या में स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार कहते हुए देवी उस महिष पर चढ़ बैठी और शूल से उस पर आक्रमण किया। महिष ने तब अपने मायावी रूप से उस महिष के मुख से निकलने का प्रयत्न किया। यह आधा ही बाहर निकला था कि देवी ने उसे बलपूर्वक रोक लिया। वह आधा निकला होने पर भी देवी से युद्ध करने लगा। तब देवी ने महाखड्ग से उसका सिर काट कर उसका वध किया। उसके मरते ही दैत्य सेना हाहाकार करती हुई भाग खड़ी हुई और सभी देवता, दिव्य महर्षि प्रसन्न होकर देवी की स्तुति करने लगे। इस सुन्दर और सारगर्भित गूढरहस्य से भरी हुई स्तुति का वर्णन चतुर्थ अध्याय में किया गया है।

प्रकृति में विक्षोभ उत्पन्न करने वाले, मेधों को छिन्न-भिन्न कर देने वाले, समुद्र में ज्वार लाने वाले और पृथ्वी को कम्पित करने वाले इस महिष को कुछ विद्वानों ने महत् बताया है। इसकी महत्ता प्रतिपादित करते हुए वैकृतिक रहस्य में भी कहा गया है- वामभागेऽग्रतो देव्याश्छिन्नशीर्ष महासुरम्। पूजयेन्महिषं येन प्राप्तं सायुज्यमीशया। वह मरकर भी, छिन्नशीर्ष होकर भी पूजनीय हुआ। उसने देवी का सायुज्य पाया। महिष वास्तव में तमस् का प्रतीक है। तमोगुण की विशालता अज्ञान, अन्धकार, अभिमान से गर्वोन्मत्त और मूढता का प्रतीक भी उसे माना गया है। देवताओं ने देवी को अपनी आन्तरिक समष्टि शक्ति के रूप से प्रकट किया है। इसका तात्पर्य यही है कि जो देवता पृथक् रहते हुए अपनी सम्पूर्ण शक्ति का उपयोग करते हुए दैत्यों से हार कर अधिकारच्युत कर दिये गये, उन्हीं की समष्टि शक्ति उनकी विजय का कारण बनती है। शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य और समुत्पाट्य स्वचक्रत: के विषय में आक्षेप हो सकता है कि अस्त्र से तत्सदृश अस्त्र निकालना कैसा। वास्तव में ये अस्त्र भौतिक अस्त्र नहीं हैं मन्त्रशक्ति ही आयुध रूप में कार्य करती है। इसलिए वामन पुराण में सीधे शब्दों में कहा गया है- ददौ त्रिशूलं वरदस्त्रिशूली चक्रं मुरारिर्वरुणश्च शंखम्। वरद का संकेत यही है कि उन उन देवताओं ने अपने अपने आयुधों की मन्त्रशक्ति दी। इसीलिए आगे के वर्णन में बताया गया है कि महिषासुर के सामने देवताओं के ये सभी आयुध विफल हो गये-

ततोऽस्य शूलं व्यसृजन्मृडानी स शीर्णमूलो न्यपतत् पृथिव्याम्।
शक्तिं प्रचिक्षेप हुताशदत्तां सा कुण्ठिताग्रा न्यपतन्महर्षे।
चक्रं हरेर्दानवचक्रहन्तु: क्षिप्तं त्वचक्रमुपागतं हि।
गदां समाविध्य धनेश्वरस्य क्षिप्ता तु भग्ना न्यपतत्पृथिव्याम्।
जलेशपाशोऽपि महासुरेण विषाणतुण्डाग्रखुरप्रणुन्न:।
निरस्य तत्कोपितया च मुक्तो दण्डस्तु याम्यो बहुखण्डतां गत:।

-वामन पुराण अध्याय २१/४३-४५

महिषासुर वध का आख्यान वराह पुराण, शिवपुराण, वामन पुराण, स्कन्दपुराण और देवी भागवत में भी आया है। देवी भागवत के आख्यान को देखने से प्रतीत होता है कि सप्तशती का मन्त्रभाग जैसे उसमें से ही उदधृत किया गया हो।

समाज व्यवस्था के विचार से महिषासुर का शासन एक यूजर्परका शासन है जो एक एक अधिकारी को पदच्युत करके प्राप्त किया गया है। यह तानाशाही का शासन है। जिसमें सदाचारी और सत्वप्रकृतिप्रधान पुरुषों को पीड़ित होना पड़ता है। इसका प्रतिकार भी तभी सम्भव होता है जबकि लोगों में सामूहिक चेतना जागृत हो। सामूहिक

शक्ति मिलकर उस अत्याचारी निरकुंश से संघर्ष करे।

व्यक्ति के स्तर पर साधना के द्वितीय सोपान का इसमें निरूपण किया गया है। एक विद्वान के अनुसार प्रथम चरित्र सत्य की प्रतिष्ठा है तो मध्यम चरित्र चैतन्य की प्रतिष्ठा है। उत्तरचरित में आनन्द प्रतिष्ठा है।

कुण्डलिनी जागरण के विचार से प्रथम चरित का क्षेत्र मूलाधार तक संबंधित था। यहां आकर स्वाधिष्ठान और मणिपुर तक शक्ति के उन्नयन का आख्यान है। अहं रूपी महिष का वध होकर उसके सहायक रूप मन के विकार पलायन कर जाते हैं, जिनके लिए उत्तर चरित में विस्तार से वर्णन किया गया है। मधुकैटभ का युद्ध सृष्टि के प्रारम्भ काल का पांच हजार वर्ष चलता रहा। वह विकास की प्रथम अवस्था की कहानी है। ब्रह्मा के शैशव के कुछ क्षणों की कहानी है। महिषासुरवध में संग्राम सौ वर्ष तक चलता है- पूर्णमब्दशतं पुरा। मानवजीवन के सौ वर्ष तक के संघर्ष की कहानी है।

मन्त्रशास्त्र की दृष्टि से यहां फूंक मारने से समर करने वाले गण उत्पन्न होते हैं-

निःश्वासान् मुमुचे यांश्च युद्धमाना रणेऽम्बिका।

त एवं सद्यःसम्भूता गणाःशतसहस्रशः।

घण्टा के शब्द से मूर्च्छित होकर असुर गिरते और मरते हैं-

पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान्।

क्षणेन क्षण के द्वारा असुरों की महासेना का क्षय होता है। क्षण और क्रम का ज्ञान होने पर अखण्डकालसत्ता में साधक की स्थिति होकर देश और काल की सीमाएं उसके लिए नहीं रह जाती।

हुंकार मात्र से हुं मन्त्र के उच्चारण से शक्ति प्रभावहीन होकर गिर जाती है।

आगे चतुर्थ अध्याय में इन्द्र आदि देवता जगदम्बा की स्तुति करते हैं जिसका वर्णन आगे किया जा रहा है।

द्वितीयोऽध्याय:

ऋषिरुवाच- देवासुरमभूद् युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा
महिषेऽसुराणामधिपे देवानांच पुरन्दरे।। १

अन्वय- पुरा महिषे असुराणामधिपे सति देवानां च पुरन्दरे अधिपे सति देवासुरयुद्धं पूर्णं अब्दशतं अभूत्। महिषे सुराणामधिपे- यहां एक वर्ण अधिक हो गया है।

शब्दार्थ- पुरा-पूर्व काल में अथवा पहिले के युग अथवा कल्प में, महिषे-महिषासुर के, असुराणां अधिपे सति-असुरों के स्वामी होते हुए, पुरन्दरे-इन्द्र के अधिपति होने पर। देवासुरम्-देवता और असुर जिसमें परस्पर लड़ने वाले हों।

व्याख्या-ऋषि ने प्रथम अध्याय के अन्त में कहा था कि देवी के चरित्र के संबंध में आपसे और भी कहता हूँ, सुनिये। उसी क्रम में आगे की कथा प्रारंभ करते हुए कहते हैं कि पूर्व युग में अथवा पूर्व कल्प में जिस समय असुरों का स्वामी महिषासुर हुआ और देवताओं के स्वामी पुरन्दर-इन्द्र थे, उस समय देवता और असुरों के बीच सौ वर्ष तक युद्ध हुआ जिसे देवासुरसंग्राम कहा जाता है।

तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं पराजितम्।
जित्वा च सकलान्देवानिन्द्रो भून्महिषासुरः। २

अन्वय- तत्र महावीर्यैः असुरैः देवसैन्यं पराजितम् ततः महिषासुरः सकलान् देवान् जित्वा इन्द्रः अभूत्।

शब्दार्थ- तत्र-उस युद्ध में महावीर्यैः-अत्यन्त बलवान, पराजितम्-पराजित हो गई, देवान्-देवताओं को, सकलान्-सभी को और कला सहित देवताओं को, इन्द्रः अभूत्-इन्द्र बन बेठा।

व्याख्या- उस युद्ध में महाबली असुरों के द्वारा सभी देवता पराजित हुए और उन सबको जीतकर महिषासुर इन्द्र बन गया।

रहस्य-सामान्य अर्थ तो ऊपर दिया जा चुका है, परन्तु यहां पुरन्दर और इन्द्र विशेषण साभिप्राय आये हैं। पुरम् दारयतीति पुरन्दरः इस व्याख्या के अनुसार पुर को बरबाद करने वाला पुरन्दर। और कोश के अनुसार-पुरं शरीरमित्याहुः यह शरीर ही पुर है जिसके सभी देवस्वरूप इन्द्रियों का स्वामी-इन्द्र अर्थात् पुरन्दर इन्द्र था। इन्द्रियों का स्वामी ही जब पुर-शरीर को बर्बाद करने वाला हो तो आसुरी प्रवृत्तियां तो हावी होंगी ही। मनुष्य की आयु सौ वर्ष है, इसलिए ऐसी स्थिति में जब इन्द्रियों पर शासन तामसी वृत्ति वाले महिषासुर का हो जाय तो सौ वर्ष तक का जीवन नारकीय बन जाता है। सात्विकी वृत्तियां ही तो आनन्द का कारण होती हैं, जब उन्हें तमोगुण पराजित कर दे

तो इस पुर पर प्रमाद, आलस्य और निंद्रा का आधिपत्य तो होगा ही।

ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम्।

पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजौ।। ३

अन्वय- ततः पराजिताः देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिं पुरस्कृत्य तत्र गताः यत्र ईशगरुड़ध्वजौ आस्ते।

शब्दार्थ- ततः इसके पश्चात्, पद्मयोनिं- विष्णु के नाभिकमल से जन्म लेने वाले प्रजापति-ब्रह्मा, पुरस्कृत्य-आगे करके, ईशगरुड़ध्वजौ-ईशश्च गरुड़ध्वजश्च-ईश-शिव और गरुड़ध्वज-विष्णु।

व्याख्या- तब इस प्रकार हार जाने पर देवता प्रजापति ब्रह्मा को आगे करके वहां गए जहां शिव और विष्णु थे।

विशेष- प्रजा के सृष्टिकर्ता होने के कारण देवताओं का पहिले उनके पास जाना और उन्हें आगे करके पालन और संहारकर्ता के पास जाना उचित ही है।

रहस्य- पद्मयोनि ब्रह्मा का स्थान मूलाधार में है जैसा कि कहा गया है-

मूलाधारे धराबीजं तद्बिन्दौ ब्रह्मणः स्थितिः।

तदंके शिशरूपस्य गजारूढोऽमराधिपः।

प्रथम अध्याय में मधुकैटभवध से ब्रह्मग्रन्थि-भेद हो चुका है, उससे आगे विष्णु ग्रन्थि भेद की प्रस्तावना प्रारंभ होती है, इसीलिए कहा गया है कि ब्रह्मा को आगे करके रुद्र और विष्णु के स्थान को प्रस्थान किया।

यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम्।

त्रिदशाः कथयामासुः देवाभिभवविस्तरम्। ४

अन्वय - त्रिदशाः तयोः अग्रे यथावृत्तं महिषासुरचेष्टितम् तद्वत् देवाभिभवविस्तरम् च कथयामासुः।

शब्दार्थ- त्रिदशाः-देवतागण, तृतीय यौवनाख्या दशा सदा येषाम्-सदैव यौवन अवस्था वाले, अथवा मनुष्य के अर्थ में जन्मसत्ता विनाशाख्यास्तिस्रो दशा येषाम्, जन्म, जीवन और विनाश ये तीन अवस्था वाले, अथवा त्रीन्तापान्दशन्ति त्रिदशाः, अथवा मनुष्य के अर्थ में- तिस्रो दशा वृद्धि परिणामक्षया यस्य सः अथवा तिस्रो दशा जागृतस्वप्न सुषुप्त्यवस्था यस्य, अथवा त्रयाधिकास्त्रिरावृत्ताश्च दश परिमाणमेवम् दश के तीनगुने और तीन-तैतीस है संख्या जिनकी, तदनुसार-बारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रूद्र और दो अश्विनी कुमार- इस प्रकार तैंतीस कोटि देवता, तयोः अग्रे-उन शिव और विष्णु के सामने, यथावृत्तं- जो कुछ घटित हुआ था, महिषासुरचेष्टितम्-महिषासुर की

करतूत, तद् वत्- उसी प्रकार, देवाभिभवविस्तरम्- देवताओं के पराभव का शब्दों में वर्णन।

व्याख्या- देवताओं ने उन शिव और विष्णु के आगे जाकर महिषासुर की करतूत और देवताओं के पराजय का वृत्तान्त उन्हें सुनाया।

सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च।
अन्येषां चाधिकारान्सः स्वयमेवाधितिष्ठति। ५

अन्वय- सः सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च अन्येषां देवानां अधिकारान् स्वयम् एव अधितिष्ठति।

शब्दार्थ- सः-महिषासुर, सूर्य, इन्द्र, अग्नि, अनिल, इन्दु के- सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वायु और चन्द्रमा के, अन्येषाम् तथा अन्य देवताओं के अधिकार भी, अधिकारान् अधितिष्ठति-अधिकारों पर स्वयं ही अधिष्ठित है।

व्याख्या- उसने सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र, अग्नि, वायु, यम, वरुण और अन्य सभी देवताओं के अधिकार छीन लिए हैं और स्वयं ही मनमाने ढंग से उनका उपयोग कर रहा है। देवताओं में सबका पृथक-पृथक् अधिकार का जो विभाजन था, उसे मेटकर उसने सभी के अधिकार छीनकर उनका स्वयं ही एकाधिकार पूर्वक उपयोग करना प्रारंभ कर दिया है।

स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणाः भुवि।
विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना। ६

अन्वय- दुरात्मना तेन महिषेण स्वर्गात् निराकृता सर्वे देवगणाः मर्त्या इव भुवि विचरन्ति।

शब्दार्थ-दुरात्मा-दुष्टात्मा, निराकृता-निकाल बाहर किया, मर्त्या यथा-मनुष्यों के समान।

व्याख्या- उस दुष्ट महिषासुर ने सभी देवताओं को स्वर्ग से निकाल बाहर कर दिया है जो कि अब मनुष्यों की भांति पृथ्वी पर इधर-उधर भटक रहे हैं।

एतद्वः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम्।
शरणं च प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम्। ७

अन्वय- अस्माभिः देवैः एतत् सर्वं अमरारिविचेष्टितम् वः कथितम्, शरणं च प्रपन्नाः स्मः तस्य वधः विचिन्त्यताम्।

शब्दार्थ- अमरारिविचेष्टितम्-देवताओं के शत्रु महिषासुर के द्वारा देवताओं के विरुद्ध किए गए दुष्कर्म, वः-आप सबसे, यहां शिव और विष्णु दो के सामने भी

बहुवचन का प्रयोग किया गया है, अत: उनकी यह विनय ब्रह्मा के प्रति भी है, अथवा उन दोनों की अधिष्ठात्री शक्तियों को लक्ष्य कर बहुवचन का प्रयोग क्योंकि आगे कार्य तो उनकी शक्तियों से ही सम्पन्न हुआ है अथवा सम्मान प्रदर्शन के लिए बहुवचन का प्रयोग, वयं व: शरणं प्रपन्नास्म: हम सब आपके शरण में आये हैं, तस्य-महिषासुर का वध: विचिन्त्यताम्- वह जिस प्रकार मारा जाय इसके संबंध में विचार कीजिए।

व्याख्या- हम इन्द्रादि देवताओं ने उस दुष्ट महिषासुर के द्वारा की गई कुचेष्टाओं को आपसे कह सुनाया है, हम आपकी शरण में है, उसके मारे जाने के लिए उपाय सोचिए।

इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदन:।
चकार कोपं शम्भुश्च भ्रकुटीकुटिलाननौ। ८

अन्वय- इत्थं देवानां वचांसि निशम्य मधुसूदन: शम्भु: च भ्रकुटीकुटिलाननौ कोपं चकार।

शब्दार्थ- इत्थम्- इस प्रकार, देवानाम्- देवताओं की, वचांसि-कथन, निशम्य-सुनकर, मधुसूदन:- मधु कैटभ को मारने वाले विष्णु, भ्रकुटीकुटिलानौ- भ्रूकुटिलत्वेन कुटिलौ आननौ ययो:- भौंह तिरछी होने के कारण जिनके मुखाकृति क्रोध से कुटिल दिखाई देने लगी। चकार को समुच्चय के अर्थ में मानकर ब्रह्मा ने भी क्रोध से भौंह मुख टेढ़ा कर लिया यह अर्थ ध्वनित होता है जिसका अगले श्लोक से समर्थन होता है।

व्याख्या- इस प्रकार देवताओं का कथन सुनकर विष्णु और शिव की क्रोध से भौंहें तन गई और तिरछी दृष्टिवाली मुखाकृति हो गई। यहां च से और का, अर्थ लेते हुए और ब्रह्मा की भी भौंहे तन गई।

ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणोवदनात्तत:।
निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मण: शंकरस्य च। ९

अन्वय- तत: अतिकोपपूर्णस्य चक्रिण: ब्रह्मण: शंकरस्य च तत: वदनात् महत्तेज: निश्चक्राम।

शब्दार्थ- तत: तब, अतिकोपपूर्णस्य- अत्यन्त क्रोधित होने वाले, चक्रिण:-विष्णु के ब्रह्मण: ब्रह्मा के, शंकरस्य-शंकर के, वदनात्-मुख से, तत: विस्तृत हुए तनु विस्तारे इति धातो: क्तप्रत्यान्तरूपं तत: विस्तृत: तस्मात् मुखात् महत्-महत्वंच देशकालाकौररनवच्छिन्नत्वम् महच्च इदं तेज: महत्तेज: ऐसा महान् तेज जो देश और काल की सीमा में न समा सके, निश्चक्राम-निकला। तत: का दो बार प्रयोग तत:-तत्र वहां और तत: तक के अर्थ में तीसरा अर्थ ऊपर दिया ही है।

व्याख्या- अत्यन्त क्रोधित हुए विष्णु, ब्रह्मा और शिव के मुख से उस समय महान्

तेज निकल कर प्रकट हुआ।

रहस्य- ब्रह्मा सृजन के कारण रजोगुण प्रधान हैं, विष्णु पालनकर्ता होने से सत्वप्रधान, और शिव संहारकर्ता होने से तमः प्रधान इन तीनों के तेज से जिस देवी का आविर्भाव हुआ वह त्रिगुणात्मिका है। इसीलिए वैकृतिकरहस्य में कहा गया है-

सर्वदेवशरीरेभ्यो याविर्भूतामितप्रभा।
त्रिगुणा सा महालक्ष्मी साक्षान्महिषमर्दिनी।

सब देवताओं के शरीर से निकलने वाले तेज से जिस अत्यन्त प्रभाभास्वारा देवी का आविर्भाव हुआ, वह महिषासुर का वध करने वाली साक्षात् महालक्ष्मी त्रिगुणात्मिका हैं। देव तेज से उत्पन्न होने के कारण यह सत्व और रजः प्रधान होना चाहिए किन्तु संहारकार्य के लिए क्रोध से उत्पन्न होने के कारण तमोगुण की उल्वणता स्वाभाविक ही है।

अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः
निर्गतं सुमहत्तेजः तच्चैक्यं समगच्छत। १०

अन्वय- अन्येषाम् शक्रादीनां च देवानां शरीरतः सुमहत्तेजः निर्गतम् तच्च तेजः ऐक्यं समगच्छत।

शब्दार्थ- अन्येषाम्- अन्य दूसरे शक्रादीनाम्-इन्द्र आदि के शरीरतः शरीर से, सुमहत्तेजः अत्यन्त महान् तेज, निर्गतम्-बाहर निकला, तच्च-यत्तेजः निर्गतम् ब्रह्मादीनां तेजश्च-जो तेज इन्द्रादि अन्य देवताओं के शरीर से निकला और वह जो पहिले ब्रह्मादि के मुख से निकला वे दोनों तेज, ऐक्यम्- एक होकर, समगच्छत- मिल गए।

व्याख्या- इन्द्र आदि अन्य देवताओं के शरीर से भी महान तेज निकला। तब ब्रह्मा आदि के भ्रूमध्य से निकला हुआ वह तेज और इन्द्र आदि देवताओं के शरीर से निकला हुआ तेज मिलकर एक हो गया।

अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम्।
ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम्।। ११

अन्वय- ते सुराः तत्र ज्वलन्तं पर्वतम् इव ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् अतीव तेजसः कूटं ददृशुः।

शब्दार्थ- तत्र देवसभा में, अथवा अन्य पौराणिक कथा के अनुसार कात्यायन ऋषि के आश्रम में, वास्तव में तत्र यहां देश और काल दोनों का ही संकेत करता है जो अगले श्लोक की व्याख्या में स्पष्ट किया जा रहा है। ज्वलन्तं पर्वतं इव-जलते हुए पर्वत के समान, ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम्- ज्वालाभिः व्याप्तं दिशः अन्तरं येन जिस तेज ने

अपनी लपटों से दिशाओं के अन्तराल को प्रकाशित कर रखा है, अतीव-अत्यन्त बहुत अधिक, कूट-पुंज, ढेर, समूह, राशि।

व्याख्या- उस समय वहां पर देवताओं ने देखा कि तेज का एक ऐसा पुंज हो गया है जिसे देखकर लगता है कि मानो जलते हुए पर्वत की लपटें हों और उनकी ज्वाला से भू नभ से लेकर सभी दिशाओं में ज्योति के प्रकाश का इतना अधिक विस्तार हो गया है कि दिशाओं का अन्तर ही मिट गया है। उस ज्वाला के पुंज से देश, दिशा और काल का अंतर ही समाप्त हो गया है।

अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम्।
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा।। १२

अन्वय- तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजं तेजश्च अतुलं त्विषा व्याप्तलोकत्रयं एकस्थं नारी अभूत्।

शब्दार्थ- तत्र- वहां तत्तेजः- ब्रह्मादि से उत्पन्न तेज और सर्वदेवशरीरजं- सभी देवताओं के शरीर से उत्पन्न हुआ तेज, त्विषा-प्रभा से, व्याप्तलोकत्रयम् - जिसने तीनों लोकों को प्रकाश से भर दिया है, एकस्थं-एकाकार हो जाने पर, नारी अभूत्-नारी रूप में परिणत हो गया। अतुलं-अतुलनीय, जिसकी किसी से भी समानता न की जा सके।

व्याख्या- ब्रह्मादि के भूमध्य से निकला हुआ तेज और सब देवताओं के शरीर से निकला हुआ वह तेज जिसने अपने आलोक से तीनों लोकों को प्रकाशित कर रखा था मिलकर एकाकार होकर एक नारी के रूप में प्रकट हुआ।

रहस्य- यहां सामान्य अर्थ तो यही है कि वह शक्ति जिसने महिषासुर को पराजित किया, देवताओं की सामूहिक शक्ति का रूपक है। संघबद्ध और उत्साहित होकर प्रयत्न करने से सफलता मिलती है, इतना ही इसका फलितार्थ समझा जा सकता है। परन्तु यहां कुछ शब्द विशेष अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं जिन्हें समझ लेना आवश्यक है। पर्वत- पर्वाणि सन्ति अस्मिन् इति पर्वतः यह अभरकोश की रामाश्रमी टीका के अनुसार पर्वत की निष्पत्ति या व्युत्पत्ति है। मेरुदण्ड में अनेक केशरुका होते हैं जिन्हें पर्व कहा जाता है अतः यहां पर्वत से आशय पर्वयुक्त मेरुदण्ड से है। कुण्डलिनी जागरण के समय उसके ऊर्ध्व गमन का मार्ग यही है। कुण्डलिनी जागरण के समय ऐसा प्रतीत होता है, मानो मेरुदण्ड जल रहा हो। यही यहां ज्वलन्तमिव पर्वतम् है। कोप यहां उद्यम के प्रति उत्साह का कारण है। भृकुटि का अर्थ ललाटसंकोचन होता है। आज्ञाचक्र भ्रूमध्य में स्थित है। इसके लिए कहा गया है तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिधरम्- कोटि-कोटि सूर्य और चन्द्रमा के समान यहां प्रकाश है। यही स्थान है जहां श्रुति के अनुसार आवृत्तचक्षु होकर ज्योति का दर्शन होता है-

परांचि खानि व्यतृणत्स्वयम्भूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीर: प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्।।

भ्रुकुटीकुटिलाननौ- इसमें कुटिला कुण्डलिनी का वाचक है।

यथा- **दाक्षायणीति कुटिलेति कुहारिणीति कात्यायनीति कमलेति कलावतीति।**
एकासती भगवती परमार्थतोऽपि संदृश्यसे बहुविधा ननु नर्तकीव।
अम्बास्तव - १८

कुण्डलिनी का ही नाम शक्ति भी है-

माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कलामालिनी
मातंगी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी
लघुस्तव-१८

और- **त्वं व्यापिनीति सुमना इति कुण्डलीति।**
त्वं कामिनीति कमलेति कलावतीति। चर्चास्तव-२३

ज्वाला व्याप्तदिगन्तरम् कहा है यही त्रैपुरम् मह: है जिसे तीन देवों-ब्रह्मा, विष्णु, महेश के आनन से निर्गत कहा गया है। वास्तव में शक्ति तो केवल तेजोरूपा ही है-

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये।
स्वानुभूत्येकमानाय नम: शान्ताय तेजसे- भर्तृहरि

सौभाग्यहृदय में भी कहा गया है- तन्मह: परमं नौमि। अत: वह केवल प्रकाशरूपा है। इस प्रकाश के दर्शन भ्रूमध्य में ही होते है। जिसके संबंध में सकलजननीस्तव में कहा गया है-

''तडित्कोटिज्योतिर्द्युतिदलितषड्ग्रन्थिगहनम्''
''चतुष्पत्रान्ताष्षड्दलपुटभगान्तास्त्रिवलय-
स्फुरद्विद्युद्वन्हिद्युमणिनियुताभद्युतिलते।''
''कणास्त्वद्दीप्तीनां रविशशिकृशानुप्रभृतय:'' आदि।

ऊपर जिसे चिन्मात्रमूर्ति और स्वानुभूत्येकमानाय कहा गया है, उसके विषय में यहां बताया गया है जिसमें मेरु के पर्वों में ही उसकी अनुभूति होती है-

''श्रिते शाक्ते पर्वण्यनुकलितचिन्मात्रगहनां
स्वसंवित्तिं योगी रसयति शिवाख्यां भगवतीम्।''

यही कुण्डलिनी जागरण की स्थिति है जिसमें मेरुपर्वों में चित्सत्ता के रूप में उसका अनुभव होता है और त्रिलोक प्रकाश से भर जाता है- व्याप्तलोकत्रयं त्विषा इसी

के लिए गीता में कहा गया है-

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भा: सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मन:।।११/१२

यही शक्ति-जागरण की उन्मेष अवस्था है जिसके विषय में कहा गया है-

प्रकाशमाना प्रथमप्रयाणे और
मूलोन्निद्रभुजंगराजमहिषीं यान्तीं सुषुम्नान्तरम्।
भित्वाधारसमूहमाशु विलसत्सौदामिनीसन्निभाम्।

शारदातिलक-२५/६५

प्रथम चरित के अनुसार ब्रह्मग्रन्थिभेद होकर इस मध्यम चरित में विष्णुग्रंथिभेद का संकेत है।

भ्रुकुटीकुटिलाननौ-यहां आनन का आशय प्राणन क्रिया से है जिसे सामान्यतया नि:श्वास कहा जाता है। परन्तु देवताओं की प्राणनक्रिया से जो तेज उत्पन्न हुआ वही तो प्रकाशपुंज शक्ति में परिणत हो गया। यह प्राणशक्ति प्रत्येक में है। इसी से जीवन है। ब्रह्मा की आयु के संबंध में कहीं आया है- तवायुर्ममनि:श्वास "ब्रह्मा की आयु इस परब्रह्मा का एक नि:श्वास मात्र है। इसी प्रकार अन्य इन्द्र आदि देवताओं की उस प्राणन क्रिया से जो शक्ति उत्पन्न हुई-बहिर्गत हुई- वही तेज ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् स्थित हुआ। आगे भी कहा गया है-

नि:श्वासान् मुमुचे यांश्चयुध्यमाना रणेऽम्बिका।
त एव सद्य:सम्भूता गणा: शतसहस्रश:।"

अम्बिका के नि:श्वास सैकड़ों हजारों गणों के रूप में दिखाई देने लगे। यह शक्ति प्राण के आयाम-प्राणायाम से संभव होती है। केवल सांस बाहर भीतर करने से नहीं। व्यष्टिप्राण का समष्टिप्राण से जब एकाकार होता है, तभी तो उस अजेय शक्ति का सृजन-उद्भव होता है। हमारे ऋषि मुनि इसी शक्ति से समन्वित होने के कारण शाप और अनुग्रहदान में सक्षम थे- समर्थ थे। आगे जो वर्णन किया जा रहा है, उसे समझने में इस संदर्भ से सरलता होगी।

यदभूच्छाम्भवं तेज: तेनाजायत तन्मुखम्।
याम्येन चाभवन्केशा: बाहवो विष्णुतेजसा। १३

अन्वय- यत् शाम्भवं तेज: तन्मुखम् अजायत याम्येन तेजसा तस्या केशा: अभवन् विष्णुतेजसा बाहव: अभवन्।

शब्दार्थ- शाम्भवम्-शिव का, याम्येन-यम के, तन्मुखम्-तस्या मुखम्-उस शक्ति

का मुख, विष्णुतेजसा-विष्णु के तेज से, बाहव: भुजाएं।

व्याख्या- ऊपर कहा गया है कि वह तेज नारी रूप में परिणत हो गया। अब उसके अंगों का वर्णन करते हैं कि किस देवता के तेज से क्या बना। शंकर के तेज से उसका मुख हुआ, यम के तेज से केश हुए, विष्णु के तेज से उसकी भुजाएं हुई। वैकृतिक रहस्य में इस संबंध में कहा गया है-

सर्वदेवशरीरेभ्यो याविर्भूतामितप्रभा।

त्रिगुणा सा महालक्ष्मी साक्षान्महिषमर्दिनी।

श्वेतानना नीलभुजा सुश्वेतस्तनमण्डला।

इस मध्यम चरित की देवता महालक्ष्मी है। जिनका ध्यान अष्टादश भुजा के रूप में किया जाता है। शंकर के तेज से मुख बना, इसलिए मुख श्वेत हैं। भुजाएं विष्णुतेज से बनने के कारण नील है। श्वेतानना नीलभुजा।

सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यमैन्द्रेण चाभवत्।

वारुणेन च जंधोरू नितम्बस्तेजसा भुव:। १४

अन्वय- सौम्येन तेजसा तस्या स्तनयोर्युग्मं, इन्द्रेण मध्यं वारुणेन जंघोरू, च भुव: तेजसा नितम्ब: अभवत्।

शब्दार्थ- सौम्येन-सोम-चन्द्रमा के तेज से स्तनयो: युग्मम्- दोनों स्तन, ऐन्द्रेण-इन्द्र संबंधी मध्यम्-शरीर का मध्य भाग, वारुणेन-वरुण के तेज से जंघोरू- जंघे च उरू च जंघोरू, जंघा सहितो उरू जंघोरू, भुव:-भूमि के, नितम्ब:-कटिप्रदेश का पीछे का भाग।

व्याख्या- चन्द्रमा के तेज से दोनों स्तन हुए- इसीलिए कहा गया है- सुश्वेतस्तन मण्डला क्योंकि चन्द्रमा का वर्ण श्वेत होने के कारण उसके तेज से उत्पन्न स्तन भी श्वेत, वारुणेन वरुण के तेज से दोनों जंघा और दोनों उरू, तथा भूमि के तेज से नितम्ब हुए। यहां भू को भी देवता मानकर उसके तेज का वर्णन किया गया है।

ब्रह्मणस्तेजसा पादौतदंगुल्योऽर्कतेजसा।

वसूनां च करांगुल्य: कौबेरेण च नासिका। १५

अन्वय- ब्रह्मणस्तेजसा तस्या पादौ अभवताम्, अर्कतेजसा तदंगुल्य:, वसूनां तेजसा च करांगुल्य: कौबेरेण च तेजसा नासिका अभवत्।

शब्दार्थ- ब्रह्मण: ब्रह्मा के, पादौ- दोनों चरण, अर्कतेजसा- सूर्य के तेज से, तदंगुल्य: पैरों की उंगलियां, वसूनां-आठ वसुओं के तेज से, करांगुल्य:- हाथों की उंगलियां, कौबेरेण-कुबेर के तेज से।

व्याख्या- ब्रह्मा के तेज से उसके दोनों चरण, सूर्य के तेज से पैरों की उंगलियां, आठ वसुओं के तेज से हाथों की उंगलियां और कुबेर के तेज से नासिका बनी।

रहस्य- इन्द्र के तेज से मध्यभाग और ब्रह्मा के तेज से पाद होने के कारण उक्त दोनों ही रक्तवर्ण बताये गये हैं। रक्तमध्या रक्तपादा नीलजंघोरुरुन्मदा। वरुण जल के देवता, जल का वर्ण नीलाभ होने के कारण जंधा और उरू को नीलवर्ण कहा है। इस प्रकार रूप से भी वह देवी त्रिगुणमयी है। शरीरस्थ कुण्डलिनी के वर्ण से साम्य तुलनीय है क्योंकि सांकेतिक रूप में आधिभौतिक के साथ आध्यात्मिक का भी विषय चल रहा है, यह पूर्व में ही कहा जा चुका है। वैकृतिकरहस्य में वर्ण के संबंध में आगे कहा गया है-

सुचित्रजघना चित्रमाल्याम्बरविभूषणा। चित्रानुलेपना कान्तिरूपसौभाग्य शालिनी।

चित्र का अर्थ होता है- अनेक रंग वाले, विभिन्न वर्णवाले, कोश के अनुसार- चित्रं किर्मीरकल्माषशबलैताश्च कुर्बुरे और आलेखाश्चर्ययोश्चित्रम् और भी- चित्राखुपर्णोगोडुम्बासुभद्रादन्तिकासु च। मायायां सर्पनक्षत्रनदीभेदेषु च स्त्रियाम्। तिलकालख्ययो: क्लीबंकर्बुराद्धुतयोरपि। अत: चित्र का अर्थ हुआ- अद्भुत, अनेक वर्णों का, मायामयी और आलेख अथवा प्रतिकृति। अब इसी के अनुसार व्यष्टि रूप में कुण्डलिनी के संबंध में भी देखिए-

ऐन्द्रस्येव शरासनस्य दधती मध्ये ललाटप्रभां
शौक्लीं कान्तिमनुष्णगोरपिशिरस्यातन्वती सर्वत:
एषासौ त्रिपुरा हृदिद्युतिरिवोष्णांशो स्सदाहस्थिता
छिन्द्यान्न: सहसा पदैस्त्रिभिरघं ज्योतिर्मयी वाङ्मयी।

लघुस्तुति।

इसमें ललाटमध्य में इन्द्र धनुषी बहुरंगी प्रभा बताई गई है। शिर में चन्द्र की शुक्लकान्ति का वर्णन किया गया है। हृदय में सूर्य की प्रभा और सम्पूर्ण रूप में उसे ज्योतिर्मय कहा गया है। यही सब देवताओं का तेज है जो उनके गुण के अनुसार नील, पीत, अरुण और आश्चर्यजनक रूप से विविध रंगों वाला हो गया है। और भी-

ये संस्मरन्ति तरलां सहसोल्लसन्तीं
त्वां ग्रन्थिपंचकभिदं तरुणार्कशोणाम्।
लाक्षारसस्नपितपंकजतन्तुतन्वी-
मन्त:स्मरत्यनुदिनं भवतीं भवानि।

-घटस्तव

यहां अरुण वर्ण का ध्यान कहा गया है। सप्तशती के अगले ध्यान में भी अरुणां करुणातरंगिताक्षीं कहकर अरुण वर्ण का ध्यान बताया गया है। चर्चास्तुति में और भी

स्पष्ट रूप से बताया गया है-

मूर्ध्निस्फुरत्तुहिनदीधितिकान्तिमित्रं
मध्ये ललाटममरायुधरश्मिचित्रम्।
हृच्चक्रचुम्बिहुतभुक्कणिकानुरूपं
ज्योतिर्यदेतदिदमम्ब तव स्वरूपम्।

"मूर्धा में चन्द्रमा की कान्ति के समान श्वेत, आज्ञाचक्र में इन्द्रधनुष की बहुरंगी आभा, अनाहत चक्र में अग्नि स्फुलिंग के समान अरुणाभ, यही तो आपका ज्योतिर्मय रूप है।" अरुण वर्ण जिसके लिए कहा गया है रक्तमध्या रक्तपादा जो कि इन्द्र और ब्रह्मा के तेज से उद्भूत होने के कारण अरुण वर्ण है, उसका ध्यान-

सिन्दूरपांसुपटलच्छुरितामिव द्यां
त्वत्तेजसा जतुरसस्नपितामिवोर्वीम्।

और- आधारमारुतनिरोधवशेन येषां सिन्दूररंजितसरोजगुणानुकारि।
तीव्रं हृदि स्फुरति देवि महस्त्वदीयम्

"मूलाधार में ध्यान कर केवली कुम्भक के द्वारा शक्ति जागरण होने पर सिन्दूर से रंजित कोकनद की छवि के समान जो प्रकाश हृदय में उद्भूत होता है, हे देवि वह आपका ही तेज तो है" आदि। नीलजंघोरुरुन्मदा जो कहा गया है, उस नीलाभा का कुण्डलिनी रूप में वर्णन-

तडित्कोटिज्योतिद्युतिदलितषड्ग्रन्थिगहनं
प्रविष्टं स्वाधारे पुनरपि सुधावृष्टिवपुषा
किमप्यष्टाविंशत्किरणशकलीभूतमनिशम्।
भजे धाम श्यामं कुचभरनतं बर्बरकचम्।

-सकलजननीस्त्व

ऊपर मध्यमैन्द्रेण चाभवत् जो कहा गया है उसी को यहां श्याम धाम नीलाभ तेज कहा गया है। अतः आधिभौतिक और आध्यात्मिक स्तर दोनों का ही साम्य यहां स्पष्ट चल रहा है।

तस्यास्तु दन्ताः सम्भूता प्राजापत्येन तेजसा।
नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा। १६

अन्वय- तस्या दन्ताः तु प्राजापत्येन तेजसा संभूताः, तथा नयनत्रितयं पावकतेजसा जज्ञे।

शब्दार्थ- प्राजापत्येन-प्रजापति संबंधी, यहां प्रजापति से आशय ब्रह्मा से न होकर

दक्ष प्रजापति से हो सकता है, क्योंकि ब्रह्मा के तेज का वर्णन अभी किया जा चुका है नयनत्रितयं-तीन नेत्र, पावकतेजसा-अग्नि के तेज से जज्ञे-उत्पन्न हुए।

व्याख्या- दक्ष प्रजापति के तेज से उसके दांत हुए, उसी प्रकार अग्नि के तेज से तीनों नेत्र हुए।

रहस्य- शिव के तीन नेत्र होना प्राय: सभी श्रुतिस्मृति और पुराणों में कहा गया है। पुरुषसूक्त के अनुसार उस जगत्सृष्टा परब्रह्मा को- सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात् कहा गया है। परन्तु तन्त्रशास्त्र के अनुसार अधिकांश देवी-देवताओं के ध्यान में तीन नेत्र बताये गये हैं। इसे आज के युग में कल्पना मात्र कहने वालों की कमी नहीं क्योंकि जो हम नहीं जानते, उसे हम नहीं मानते- वाली उक्ति सर्वत्र चरितार्थ हो रही है। वास्तव में हम सबके पास यह तीसरा नेत्र है जो खुला नहीं है। बिरले गुरु ही इसके उन्मीलन की विधि जानते हैं। गुरु की स्तुति में कहा जाता है- चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम:। उन गुरु को नमस्कार जिन्होंने अज्ञान रूपी रतौंधी वाले के नेत्र खोल दिए। चक्षुरुन्मीलन कर दिया। गीता में इस ज्ञानचक्षु के विषय में कहा गया है-

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुंजानं वा गुणान्वितम्।

विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुष:। गीता- १५/१०

हम सबके भ्रूमध्य में आज्ञाचक्र में इस तृतीय नेत्र की स्थिति है। गुरुकृपा से इसकी विधि ज्ञात होने पर अभ्यास के द्वारा यहां उस ज्योति के दर्शन किए जाते हैं जिसे ज्ञान का तीसरा नेत्र कहा गया है। जिसके लिए तुलसीदास ने कहा है-

श्रीगुरुपदनखमनिगन जोती। सुमिरत दिव्यदृष्टि हिय होती।

इसकी विशद व्याख्या पृथक् लेख का विषय है। पाठक चाहें तो लेखक के "मानस-रहस्य" ग्रन्थ का अवलोकन कर सकते हैं।

भ्रुवौ च सन्ध्ययोस्तेज: श्रवणावनिलस्य च।

अन्येषां चैव देवानां संभवस्तेजसां शिवा॥१७

अन्वय- सन्ध्ययो: तेज: भ्रुवौ, अनिलस्य तेज: श्रवणौ, अन्येषां देवानां तेजसां संभव: शिवा एव

अन्यथाअन्वय-यत् सन्ध्ययो: तेज: तत् तस्या भ्रुवौ, अनिलस्य यत्तेज: तौ तस्य श्रवणौ या शिवा सा देवानां तेजसां संभव:

विशेष- श्रवण शब्द कोश के अनुसार नपुंसक लिंग है। अत: यह पाठ भी हो सकता है-

श्रवणे अनिलस्य च। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि सप्तशती में वाक्य-

विन्यास विलक्षण होनें के साथ ही पाणिनीय व्याकरण के नियम ही सर्वत्र लागू नहीं होते हैं। लिंगानुशासन और छन्द: शास्त्र के संबंध में भी यही बात कही जा सकती है किन्तु इन नियमों में बांधने के प्रयास न तो अपेक्षित हैं और न प्रयोजनीय। आप चाहें तो इन प्रयोगों को अपवाद कह लें अथवा छान्दस प्रयोग कहें। आर्षग्रन्थ इन नियमों से बंधा नहीं होता। अत: टीकाकारों के द्वारा प्रदत्त इसके संबंध के सभी समाधान अनपेक्षित समझे जाना ही अच्छा है। देवी भागवत में भी श्रवण शब्द का कान के अर्थ में प्रयोग पुलिंग में ही किया गया है।

व्याख्या- सन्ध्या के तेज से उस शक्ति की भौंहें हुई। वायु के तेज से कान हुए, इस प्रकार अन्य देवताओं के तेज का नारी रूप ही यह शिवा-सर्वमंगला है। सन्ध्ययो: तेज: भ्रुवौ जज्ञे इस प्रकार मानकर अर्थ होगा कि सन्ध्या के तेज ने उसकी भौंहों को उत्पन्न किया। अथवा सन्ध्या का जो तेज है, वही उसकी भौंह हैं, वायु का तेज ही उसके कान हैं अन्य देवताओं के तेज का परिणत नारी रूप ही यह शक्ति है।

रहस्य- सन्ध्या से यहां सन्ध्याकाल का आशय न होकर सन्ध्या की अधिष्ठात्री देवी से हैं, क्योंकि पूर्व में ही कहा जा चुका है कि देवताओं के तेज से ही इसका प्रादुर्भाव हुआ है। वाचस्पत्य कोश के अनुसार सन्ध्यामुपासीत का आशय सन्ध्या देवी की उपासना से भी है। अथवा सन्ध्या का अर्थ-

त्रयाणां चैव देवानां ब्रह्मादीनां समागम:।
सन्धि: सर्वसुराणांच तेन सन्ध्या प्रकीर्तिता।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवताओं का जहां समागम हो और सभी देवता जहां उपस्थित हों, उसे सन्ध्या कहते हैं। इस अर्थ में भी सन्ध्या। अथवा कालिदास ने मेघदूत में कहा है- सान्ध्यं तेज: जपापुष्परक्तं दधान:। जपा कुसुम के समान रक्तवर्ण सन्ध्या के तेज को धारण किए हुए। अत: सन्ध्या के तेज से भ्रू की उत्पत्ति। अथवा देश रूप में उस तेज की व्याप्ति के साथ कालरूप में व्याप्ति नमानें तो दिन रात्रि के सन्धिकाल की आभा कुछ श्याम और कुछ रक्ताभ होती है, इसलिए भौंह का तेज कहा गया। अथवा विविध वर्ण वाली सन्ध्या की आभा जो ललाट के मध्य में प्रकट होती है-

''ऐन्द्रस्येव शरासनस्य दधती मध्येललाटप्रभा''

जिस-जिस देवता के तेज से देवी के जिस अंग का प्रकट होना कहा गया है, उस देवता के अनुसार ही उस अंग का वर्ण देवी भागवत में वर्णन किया गया है। जैसे कि

''नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा''

तीन नेत्रों की उत्पत्ति अग्नि के तेज से बताई गई है। अग्नि का वर्ण भी कभी धूमाभ, कभी रक्ताभ और कभी नीलाभ होता है। नेत्रों के लिए भी- श्वेत, श्याम रतनार

कहा गया है। उसे देवी भागवत में स्पष्ट किया गया है-

नयनत्रितयं तस्या जज्ञे पावकतेजसा।

कृष्णं रक्तं तथा श्वेतं वर्णत्रयविभूषितम्। देवी भा. ५/८/६४

सप्तशती की अपेक्षा वहां पर आभूषण और आयुधों का भी विस्तार से वर्णन किया गया है।

ऊपर कहा गया है- ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदंगुल्योऽर्कतेजसा- सूर्य के तेज से पैरों की उंगलियों का होना कहा गया है। यह विशेष रहस्यमय है। नेत्रों की उत्पत्ति तो पावक तेज से कही गई और पैरों की उंगलियों में सूर्य का तेज बताया गया। जबकि अन्यत्र सूर्य, चन्द्र और अग्नि ही उसके तीन नेत्र बताये गये हैं। इन्द्वर्काग्निविलोचनम् और वन्हीन्द्वर्कनेत्रं कहा गया है। शांडिल्य उपनिषद में शरीर के अठारह मर्मस्थान बताये गये हैं-

पदतल, पादांगुष्ठ, गुल्फ, जंघा, जानु उरू, पायु, मेढ्र, नाभि, हृदय, कण्ठ, कण्ठकूप, तालु, नासा, अक्षि, भूमध्य, ललाट और मूर्धा। इन अठारह स्थानों में प्राण विद्युत का प्रवाह अन्य अंगों की अपेक्षा तीव्रतर रहता है। पादांगुष्ठ में भी नख की दीप्ति कुछ अधिक होती है। लोक व्यवहार में भी देखा जाता है कि आंख, कान और नाक के कुछ विशेष रोगों की अवस्था में पादांगुष्ठ के नख पर औषधि लगाने से उक्त अंग नीरोग हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि दाहिनी आंख का अभिष्यन्द हो तो बांयें पैर के अंगूठे पर लाल मिर्च पीसकर लेप कर रात को सो जाने पर प्रात: नेत्राभिष्यन्द ठीक होकर आंख की लाली दूर हो जाती है। इसे आयुर्वेद में व्याधि-विपर्यास्तकारी चिकित्सा कहा जाता है। उसी प्रकार जैसे कि मदात्यय के रोगी को थोड़ी मद्य और पिलाना हेतु-विपर्यास्तकारी चिकित्सा के अंतर्गत आता है। तो यह पादांगुष्ठ साधना के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मूलाधार से कुण्डलिनी जागरण करने में अनेक कठिनाइयां आती हैं जबकि पादांगुष्ठ के नख पर से इसका अभ्यास करने पर यह प्रक्रिया सुलभ और साधक को अपनी प्रगति को अनुभवगम्य बनाकर चलने वाली होती है। इसमें मूलाधार से कुण्डलिनी जागरण के खतरे भी नहीं होते। पर यह समझना भूल होगी कि इसकी प्रक्रिया बिना गुरु के निर्देशन में की जा सकती है। इसीलिए इस पादांगुष्ठ के महत्व को ध्यान में रखते हुए यहां- पादांगुल्योऽर्कतेजसा कहा गया है। विज्ञान भैरव में इस पादांगुष्ठ धारणा का इस प्रकार उल्लेख किया गया है-

कालाग्निना कालपदादुत्थितेन स्वकंपुरम्।

भ्रष्टं विचिन्तयेदेतत्शान्तायासस्तदाभवेत्।।

यहां कालपदा का अर्थ- दक्षिण पादांगुष्ठात् किया गया है। जय सिंह देव की

अंग्रेजी व्याख्या के अनुसार भी Toe of The Right foot. वि.भै. ५१

ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम्।
तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः।।१८

अन्वय- ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवां तां विलोक्यअमराः महिषार्दिता अपि मुदं प्रापुः।

शब्दार्थ- समस्तदेवानाम्- सभी देवताओं के, तेजोराशिसमुद्भवाम्- तेजःपुंजात्समुद्भूताम् तेज पुंज से आविर्भूत, अमराः-देवता, महिषार्दिता-महिषासुर से सताये हुए,मुदम्-प्रसन्नता।

व्याख्या- सम्पूर्ण देवताओं के सामूहिक तेज से जिस शक्ति का नारी रूप में आविर्भाव हुआ, उसे देखकर सभी देवता यद्यपि महिषासुर के सताये हुए होने के कारण कष्ट में थे, फिर भी उन्हें देवी के तेजोरूप के दर्शन कर अत्यन्त आनन्द हुआ।

शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक्।
चक्रं च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाट्य स्वचक्रतः।।१९

अन्वय- पिनाकधृक् शूलाद्विनिष्कृष्य तस्यै शूलं ददौ, कृष्णः स्वचक्रतः समुत्पाट्य चक्रं च दत्तवान्।

शब्दार्थ- पिनाकधृक्-पिनाक धारण करने वाले शिव, विनिष्कृष्य-सारभाग के रूप में लेकर, कृष्ण-यहां विष्णु के लिए प्रयुक्त, समुत्पाट्य-आहरण कर, स्वचक्रतः-अपने सुदर्शन चक्र से।

अन्वय- पिनाक धारण करने वाले शिव ने अपने आयुध शूल से उसके सारभाग के रूप में उदधृत कर देवी को शूल अर्पण किया। विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से आहरण कर देवी को चक्र दिया।

रहस्य- देवताओं के द्वारा बिना किसी उपक्रम के इस प्रकार आयुध और आभूषण देना कुछ अटपटा सा लगता है। इसलिए इस श्लोक के पहिले किसी ने आधा श्लोक और किसी ने पूरा श्लोक इसके पूर्व में लिखा है, परन्तु सप्तशती के वर्तमान पाठ में वह नहीं पाया जाता। मन्त्र गणना के क्रम में भी उसका समावेश संभव नहीं। वह केवल प्रसंगवश यहां उदधृत किया जा रहा है- ततो देवा ददुस्तस्यै स्वानिस्वान्यायुधानि च ऊचुर्जयजयेत्युच्चैर्जयन्तीं ते जयैषिणः। अर्थ इतना ही है कि तब उस देवी जयन्ती को देवताओं ने अपने-अपने आयुध दिए और उसका जय-जयकार करने लगे। देवी अष्टादश भुजा है और अठारह ही आयुध होना चाहिए जो कि आगे की गणना से सत्तरह ही होते हैं इसलिए यहां चक्रं च-यहां चकार से गदा का भी ग्रहण करना उचित है जिससे आयुध पूरे हो जाते हैं।

देवताओं के संबंध में आयुध और भुजाओं के संबंध में उनका वास्तविक रहस्य न जानने के कारण भ्रम की स्थिति बनी हुई है जिसके संबंध में यहां कुछ कहना आवश्यक है। अष्टादश भुजा पूज्या सा सहस्त्रभुजा सती-यहां देवी की अठारह भुजाएं और हजार भुजाएं कह दी गई हैं। पर वास्तव में न अठारह भुजाएं हैं और न सहस्त्र भुजाएं। पुरुष-सूक्त में जिस प्रकार कहा गया है- सहस्त्रशीर्षापुरुष: सहस्त्राक्ष: सहस्त्रपात्- इसका आशय इतना ही है कि उस विराट की दृष्टि देश और काल की सीमाओं में आबद्ध नहीं है, उसका चिन्तन भूत, भविष्य और वर्तमान तक सीमित नहीं है, उसकी गति एक ही क्षण में सर्वत्र है अत: सहस्त्रशीर्षा, सहस्त्राक्ष और सहस्त्रपात् विशेषण सार्थक हैं। इसी प्रकार मुखों के संबंध में भी न चार मुख हैं न पांच मुख और न छ: मुख। इसके संबंध में केवल एक ही उदाहरण श्रीमद्भागवत से देना पर्याप्त होगा जहां बताया गया है कि-

तस्यां स चाम्भोरुहकर्णिकायामवस्थितो लोकमपश्यमान:।
परिक्रमन् व्योम्नि विवृत्तनेत्र: चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि।

भागवत-३/९/१६

यहां स्पष्ट संकेत दिया गया है कि जब ब्रह्मा जी कमलकर्णिका में से लोकों को न देख सके तो उन्होंने चारों दिशाओं में आकाश की ओर देखा, वही उनके चारमुख प्राप्त करना कहा गया। इसी प्रकार गायत्री को पांच मुख होना कहा जाता है-

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायै मुर्खैस्त्रीक्षणै:- यहां पंच भूतों के पांच वर्ण ही गायत्री के मुखों के पांच वर्ण कहे गये हैं। इसी प्रकार जहां भी देवी के चार मुख बताये गये वहां चारों दिशाओं में दृष्टि होने का संकेत है। जहां दिशाओं की गणना आठ या दस की गई, वहां उसकी आठ या दश भुजाएं मान ली गई। बहुसंख्यक हाथ, मुख और चक्षु आदि शक्तिविशेष सहित कर्तत्व के प्रतीक ही हैं। जैसे गायत्री के पांच मुखों को ज्ञान के प्रतीक मानकर कहा गया है-

"व्याकरणमस्या प्रथमशीर्षं भवति, शिक्षा द्वितीयम्, कल्पतृतीयम्, निरुक्तं चतुर्थं ज्योति: शास्त्रं पंचमं च।"

"व्याकरण, शिक्षा, कल्प, निरुक्त और ज्योतिष ही इनके पांच शीर्ष है।" इसी प्रकार ब्रह्मा के लिए भी-

ऋग्वेदादिप्रभेदेन कृतादियुगभेदत:।
विप्रादिर्वर्णभेदेन चतुर्वक्त्रं चतुर्मुखम्।

"चार वेद, चार युग और चार वर्ण ही ब्रह्मा के चार मुख और चार भुजा है।"

कहने का तात्पर्य यही है कि यहां जो कहा गया है कि शिव ने अपने शूल से

निकालकर शूल दिया, कृष्ण ने अपने चक्र से निकाल कर चक्र दिया। इनका अर्थ वही नहीं है जो लोक व्यवहार में समझा जा सकता है। ये आयुध देवताओं की कर्त्तृत्व शक्ति के बोधक मात्र हैं। कहा भी गया है- आयुधाख्या पराशिक्त:- वह परा शक्ति जिसे आयुध कहा जाता है। देवताओं ने जिस प्रकार अपना तेज एकत्र किया, उसी प्रकार अपने-अपने आयुध रूपी शक्ति से उसे समन्वित किया। इसके लिए कहा गया है- देवायुधानि मन्त्रध्यानवंशवद देवता कृतीन्यद्भुतशक्तीनि "देवताओं के आयुध मन्त्र और ध्यान से वश में होने वाले देवाकृति विशेष शक्तियां ही हैं। विनिष्कृष्य और समुत्पाट्य का अर्थ भी इस संदर्भ में- आयुधाधिदेवतासामर्ध्यात् स्वसदृशं आयुधं सूते आयुध के अधिदेवता की सामर्थ्य से समान आयुध हो जाते हैं।" वास्तव में जिस प्रकार परिवारार्चन में आवरण देवता उसी की शक्ति के रूप होते हैं-

तत एव समुद्भूता तस्यामेव कृतालया:।

तत्स्वरूपा तत्प्रतापा सर्वावरण देवता।।

आगे इसका प्रमाण भी मिलता है, जहां देवी अपनी विभूतियों को जो युद्धस्थल में लड़ रही थी, अपने में लीन कर लेती है। इसी प्रकार आयुधाख्या पराशक्ति को जो देवता धारण करता है, उसके एक से अधिक रूप भी उसकी इच्छामात्र से संभव हैं।

शंखं च वरुण: शक्तिं ददौ तस्यै हुताशन:।

मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी।।२०

अन्वय:-वरुण: च तस्यै शंखं ददौ, हुताशन: तस्यै शक्तिं ददौ मारुत: चापं तथा बाणपूर्णे इषुधी दत्तवान्।

शब्दार्थ- शक्ति-प्रक्षेप कर चलाने योग्य आयुध विशेष हुताशन:-हुतं अश्नातीति हुताशन:, अग्नि जो हवन किये हुए को भक्षण करता है। मारुत:-मरुत एवं मारुत:- वायु, इषुधी-इषव: धीयन्तेऽत्र, जिसमें बाण रखे जाते हैं। तूणीर, तरकस।

व्याख्या- वरुण-जल के देवता ने शंख दिया, अग्नि ने शक्ति नामक अस्त्र दिया, वायु ने धनुष और बाणों से भरे हुए दो तरसक दिये। दो इसलिए कि एक दांये कन्धे के पीछे दूसरा बांये कन्धे के पीछे लटकाकर दाहिने बांयें दोनों हाथों से बाण निकाले जा सकें।

वज्रमिन्द्र:समुत्पाट्य कुलिशादमराधिप:

ददौ तस्यै सहस्राक्षो घण्टामैरावताद्गजात्। २१

अन्वय- अमराधिप: सहस्राक्ष: इन्द्र: कुलिशात् समुत्पाट्य वज्रं ददौ, ऐरावताद्गजाद् समुत्पाट्य तस्यै घण्टां ददौ।

शब्दार्थ- अमराधिप: देवताओं के अधिपति, सहस्राक्ष:-हजार नेत्र वाले, कुलिश-वज्र,

व्याख्या- देवताओं के अधिपति सहस्राक्ष इन्द्र ने अपने वज्र से आहरित कर वज्र और ऐरावत हाथी से आहरित कर उदधृत कर निकाल कर उस तेजोमयी शक्ति को घण्टा दिया।

कालदण्डाद्यमो दण्डं पाशं चाम्बुपतिर्ददौ।
प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम्। २२

अन्वय- यम: कालदण्डात् आकृष्य तस्यै दण्डं ददौ, प्रजापति: अक्षमालां ब्रह्मा च कमण्डलुं ददौ। अथवा प्रजापति: ब्रह्मा अक्षमालां कमण्डलुं च ददौ।

शब्दार्थ- कालदण्ड-यम का आयुध, अम्बुपति-वरुण, पाश-बन्धनकारक आयुध, प्रजापति-दक्ष अथवा ब्रह्मा का विशेषण, अक्षमाला-सामान्य अर्थ में तो रुद्राक्ष की माला और विशेष रूप से अ से लेकर क्ष तक इक्यावन वर्णों की माला, इसके विषय में आगे विस्तार से बताया जायगा, कमण्डलु-ब्रह्मा का जलपात्र।

व्याख्या- यम ने अपने कालदण्ड से निकाल कर दण्ड दिया, वरुण ने पाश दिया, प्रजापति ब्रह्मा ने अक्षमाला और कमण्डलु दिया।

समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन् दिवाकर:।
कालश्च दत्तवान् खड्गं तस्याश्चर्म च निर्मलम्। २३

अन्वय- दिवाकर: तस्या समन्तरोमकूपेषु निजरश्मीन् ददौ काल: खड्गं निर्मलं चर्म च दत्तवान्

शब्दार्थ- दिवाकर:-सूर्य, समस्तरोमकूपेषु-रोम रोम में, निजरश्मीन्-अपनी किरणें, काल-कालाभिमानिनी देवता, चर्म-ढाल।

व्याख्या- सूर्य ने उसके रोम-रोम में अपनी किरणों की प्रतिष्ठा की, उसका रोम रोम सूर्यरश्मियों से तेजोमय है, काल ने उसे खड्ग और निर्मल ढाल दी। यहां काल का अर्थ संहारकर्ता है और यम नियामक। ये दोनों पर्याय नहीं है। गीता में कहा गया है- यम: संयमतामहम् और काल:कलयतामहम्। महाभारत में कहा गया है-

काल: पचति भूतानि, जो अपनी गति से अपनी कलना से प्राणिमात्र के दशा परिणति का कारण है वह काल। यम केवल कर्मविपाक के अनुसार दण्ड का निर्णय करने वाले हैं जबकि काल के लिए कहा गया है-

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिहप्रवृत्त:

गीता-११/३२

क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे।
चूडामणिं तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च।
अर्धचन्द्रं तथा दिव्यं केयूरान्सर्वबाहुषु।
नूपुरौ विमलौ तदवद्ग्रैवेयकमनुत्तमम्।
अंगुलीयकरलानि समस्ताष्वंगुलीषु च।
विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चाति निर्मलम्। २६
अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यं च दंशनम्।

अन्वय- क्षीरोद: च अमलं हारं तथा अजरे अम्बरे च दत्तवान्। विश्वकर्मा चूड़ामणिं तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि चतथा दिव्यं अर्धचन्द्रं सर्वबाहुषु केयूरान्, विमलौ नूपुरौ तद्वत् अनुत्तमं ग्रैवेयकं समस्तासु अंगुलीषु च अंगुलीयकरत्नानि अतिनिर्मलं परशुं अनेकरूपाणि अस्त्राणि तथा अमेद्यं दंशनं च तस्यै ददौ।

शब्दार्थ- क्षीरोद:- क्षीरसागर, अमलं-उज्जवल, निर्मल, हारं-गले में पहिनने का आभूषण, अजरे-जो कभी जीर्ण-शीर्ण न हों अम्बरे-दो वस्त्र, दत्तवान्-दिए। विश्वकर्मा-देवशिल्पी, चूड़ामणिं-सिर पर पहिनने का आभूषण, जिसे लोकभाषा में सीसफूल कहते हैं, कुण्डले- दोनों कानों में पहिने जाने वाले कुण्डल, कटकानि-पैरों में पहिने जाने वाले कड़े, दिव्यं-चमकदार, अद्भुत, अर्धचन्द्र-गले का आभूषण जिसे अर्धचन्द्राकार होने का कारण यह नाम लोकभाषा में इसे खंगोलिया कहा जाता है, सर्वबाहुषु- सभी भुजाओं के लिए, केयूरान्-भुजबन्द, बाजूबन्द, विमलौ-निर्मल, नूपुरौ-पैर की उंगलियों में धारण किया जाने वाला आभूषण लोकभाषा में जिसे बिछिया कहते हैं। कर्पूरमंजरी में आया है- "रणन्तमणिणेवरो" और भी- "अप्सरोनूपुररवै: प्रनृत्यद्वरबर्हिण:" बुन्देलखण्ड में स्त्रियां विवाह के समय गीत गाती हैं- बाजें नेवरा घने, अनुत्तमं-सर्वोत्तम, श्रेष्ठ, ग्रैवेयक-ग्रीवा में धारण किया जाने वाला आभूषण, अंगुलीयकरत्नानि-अंगुलीषु भवानि अंगुलीयकानि- अंगुलीय और अंगुरीय दोनों ही सवार्थे कन् से अंगुलीयक-अंगूठीअंगुलीयकानां रत्नानि-रत्नजटित अंगूठियां अथवा- अंगुलीयकान्येव रत्नानि-श्रेष्ठ अंगूठियां वा अंगुलीयकानि च रत्नानि च अंगुलीयकरत्नानि अंगूठी और रत्न, वैसे रत्न शब्द श्रेष्ठत्व का वाचक है- जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमभिधीयते। सामान्यतया रत्नजटित अंगूठियां ही अधिक ठीक है, परशुं-फरसा, अनेकरूपाणि अस्त्राणि-अनेक प्रकार के अस्त्र, दंशनं-कवच, अभेद्य-जिसका भेदन न किया जा सके।

व्याख्या- क्षीरसमुद्र ने उस दिव्यतेजोमूर्ति को निर्मल हार और दो ऐसे वस्त्र दिये जो कभी जीर्ण शीर्ण न हों। देवशिल्पी विश्वकर्मा ने शिरका आभूषण, दोनों कानों के कुण्डल, पैरों में पहिनने के कड़े, दिव्य अर्धचन्द्र, बाहुओं में पहिनने के लिए भुजबन्द,

पैरों के लिए नूपुर, गले के लिए ग्रैवेयक, और सभी उंगलियों में धारण करने योग्य श्रेष्ठ रत्नजटित अंगूठियां दीं। विश्वकर्मा ने ही उज्ज्वल फरसा, अभेद्य कवच प्रदान किया।

अम्लानपंकजां मालां शिरस्युरसि चापराम्। २७
अददज्जलधिस्तस्यै पंकजं चातिशोभनम्।
हिमवान् वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च। २८

अन्वय- जलधि: तस्यै शिरिस उरसि च अपरां अम्लानपंकजां मालां अतिशोभनं पंकजं च अददत्। हिमवान् सिंहं वाहनं विविधानि रत्नानि च अददत्।

शब्दार्थ- जलधि-समुद्र, शिरसि उरसि च-शिर और हृदय से, अपराम्-देवीत: न परा अपरा अपृथग्भूता सदैव संलग्ना तां अपरां, देवी के शिर और हृदय से जो कभी पृथक् न हो, सदैव संलग्न रहे वह अपरा, अम्लानपंकजां-जिसके कमल कभी मुरझायें नहीं, पंकजं-कमल। हिमवान्-हिमालय, वाहनं-वहत्यनेन वा वाहयत्यनेन-जिससे एक स्थान से अन्यत्र जाया जा सके। वा उह्यते अनेन इति वाहनम्। वह प्रापणे धातु से अत: उह्यते प्राप्यते अनेनेति। विविधानि नाना प्रकार के।

व्याख्या- समुद्र ने देवी को ऐसी माला दी जो उनके हृदय और सिर से कभी भी पृथक न हो, सदा संलग्न रहे और अतिसुन्दर कमल का पुष्प दिया। हिमालय ने उनके वाहन के लिये सिंह दिया और अनेक प्रकार के रत्न दिए।

रहस्य- अपरां यहां अम्लानपंकजां माला के विशेषण के रूप में आया है जिसका अर्थ किया गया है देवीत: अपरा न परा अभिन्ना सदैव संलग्ना। यह शान्तनवी टीका के अनुसार है। परन्तु इसमें अत्यन्त गूढ रहस्य निहित है। यह अम्लानपंकजा माला क्या है वे कौन से पंकज हैं जो कभी मुरझाते नहीं तथा जो सिर और हृदय दोनों के लिए माला का काम देते हैं। हम सभी इस माला को धारण किए हैं। हमारे शरीर में मूलाधार से लेकर आज्ञाचक्र तक छ: पंकज हैं। मूलाधार का पंकज चार दलों का है और उन दलों पर स, ष, श और व अक्षर हैं। स्वाधिष्ठान चक्र छ: दलों का है जिस के दलों पर ल, र, य, म, भ और ब ये छ: वर्ण हैं। मणिपुर में दशदल वाला पंकज है। उसके दलों पर फ, प, न, ध, द, थ, ल, ण, ढ और ड वर्ण हैं। हृदय में अनाहत चक्र द्वादश दलों का है। जिसके दलों पर क से लेकर ठ तक बारह वर्ण हैं। कण्ठ में विशुद्धि चक्र सोलह दल का है जिस पर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अ: ये सोलह स्वर हैं। आज्ञाचक्र का कमल भ्रूमध्य में दो दल का है जिस पर ह और क्ष वर्ण हैं। इस प्रकार इन कमलों के ४, ६, १०, १२, १६ और दो दल मिलाकर कुल पचास दल होते हैं जिन पर पचास वर्ण वाली मातृका अधिष्ठित है। यही अम्लानपंकजा माला है जो सिर और हृदय में एक साथ धारण की

गई है। इसके अनुलोम विलोम क्रम से सौ वर्ण हो जाते हैं, जिनमें अ, क, च, ट, त, प, य और श ये आठ वर्ग के प्रथमाक्षर जोड़ने से १०८ दानों की यह माला है। इसका अनुस्वारान्त और अनुस्वार विसर्गान्ति जप होने से प्रत्येक मन्त्र सिद्ध होता है क्रिया गुरुमुख से जानना चाहिए।

ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः।
शेषश्च सर्वनागेशो महामणि विभूषितम्। २९
नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम्।

अन्वय- धनाधिपः तस्यै सुरया अशून्यं पानपात्रं ददौ, सर्वनागेशो शेष यः इमां पृथिवीं धत्ते तस्यै महामणिविभूषितं नागहारं ददौ।

शब्दार्थ- धनाधिपः-कुबेर, सुरया-अमृत से, अशून्यं-पूर्ण, भरा हुआ, पानपात्रं-अमृत पीने का पात्र, सर्वनागेशः सम्पूर्ण नागों के अधिपति, धत्ते-धारण करता है, महामणिविभूषितम्-जिसमें महा मणियां पिरोई गई हैं, जो महामणियों से भूषित है नागहार-नागलोकोद्भवं हारं वा नागरूपं हारं वा नाग एव हारत्वमापन्नः नागलोक में निर्मित हार, वा नागरूपी हार, वा नाग ही हार रूप को प्राप्त,

व्याख्या- कुबेर ने अमृत से भरा हुआ चषक देवी को अर्पण किया। शेष जो सभी नागों के अधिपति हैं और अपने फणों पर इस पृथ्वी को धारण किए हुए हैं, उन्होंने नागहार दिया जिसमें महार्घ मणियां पिरोई हुई थी अथवा जो नागों की महामणियों से विभूषित था।

अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा।
संमानिता ननादोच्चैःसाट्टहासं मुहुर्मुहुः। ३०

अन्वय- देवी अन्यैः सुरैः अपि भूषणैः तथा आयुधैः संमानिता सती मुहुः मुहुः उच्चैः साट्टहासं ननाद।

शब्दार्थ- अन्यैः सुरैः अपि-दूसरे देवताओं के द्वारा भी, भूषणैः-आभूषण देकर, आयुधैः-आयुध देकर, संमानिता-सम्मानित किए जाने पर मुहुः-बार-बार, साट्टहासं-ठठाकर, उच्चैः बड़े जोर से, ननाद-गर्जने लगी।

व्याख्या- इसी प्रकार अन्य देवताओं ने भी देवी को आभूषणों और आयुधों से सम्मानित किया। तब देवी ने प्रसन्न होकर बार-बार ऊंचे स्वर से अट्टहास करते हुए गर्जना प्रारम्भ किया।

तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः। ३१
अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत्।।

अन्वय- तस्याः घोरेण नादेन कृत्स्नं नभः आपूरितम्। अतिमहता अमायता तेन

नादेन महान् प्रतिशब्द: अभूत्।

शब्दार्थ- घोरेण-भयंकर नाद से, कृत्स्नं-सम्पूर्ण, नभ:-आकाश, आपूरितम्-भर गया, अतिमहता-अत्यन्त महान, अमायता-जो समा न सके, जिसका कोई माप नहीं, असीम, वास्तव में उस नाद के पूरे अन्तरिक्ष में भर जाने पर भी न समा सकने के कारण उसे अमायता कहा गया है, प्रतिशब्द-प्रतिध्वनि, अनुगूंज,

व्याख्या- उस भयंकर नाद से सारा आकाश भर गया, वह नाद सारे आकाश में व्याप्त होकर भी समा न सका, अत: उसे अमायता कहा गया। उस नाद की प्रतिध्वनि-अनुगूंज भी बड़ी विकट हुई।

रहस्य- ज्योति के विविध वर्णों के कारण पहिले उस दिव्य ज्योति को ज्योतिर्मयी बताया गया। अम्लानपंकजामाला के संबंध में उसे वर्णमयी, वाङ्मयी कहा गया। उसके पश्चात् नादश्रवण का वर्णन यहां किया गया है। वह आदि नाद है जिससे शब्द ब्रह्म का आविर्भाव होता है। व्यष्टि में यह अनाहत ध्वनि का सुनना है जिसे नवनादात्मक कहा गया है। यही नादब्रह्म है ब्रह्म का अर्थ होता है-बृंहणशील, जो निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो अत: अमायता इसका विशेषण। यह नाद शान्त नहीं होता निरन्तर श्रवण योग्य है। बाह्य वृत्तियों को अन्तर्लीन करने पर ही इस नाद को सुना जा सकता है। खेचरी मुद्रा अथवा निरालम्बा मुद्रा के अभ्यास से भी इस नाद की साधना होती है। हठयोगप्रदीपिका में बताया गया है कि कुण्डलिनी जागरण से जब ब्रह्मग्रंथिभेद हो जाता है, तब शून्यावस्था को प्राप्त हो जाने पर देह में अनाहतनाद की ध्वनि सुनाई देती है-

ब्रह्मग्रन्थेर्भवेद्भेदो ह्यानन्द: शून्यसंभव:।
विचित्र: क्वणको देहेऽनाहत: श्रूयते ध्वनि:।।

हठयोगप्रदीपिका-४/७०

यह नाद दश प्रकार का होता है जो क्रम से मधुर से मधुरतर होता जाता है। इसके विषय में त्रिपुरासारसमुच्चय में कहा गया है-

आदौमत्तालिमाला जनितरवसमस्तारझंकारकारी
नादोऽसौ वांशिकस्यानिलभरितलसद्वंशनि:स्वानतुल्य:।
धंटानादानुकारी तदनु च जलधिध्वानधीरो गभीरो
गर्जत्पर्जन्यघोष: पर इह कुहरे वर्तते ब्रह्मनाड्या।

हंसोपनिषद में दशविध नाद का वर्णन इस प्रकार किया गया है जिसमें अजपा जप के अभ्यास से नादसिद्धि बताई गई है-

"अस्यैव जपकोट्या नादमनुभवति। सच दशविधो जायते। चिणिति प्रथम: चिणचिणीति द्वितीय:, घण्टानादस्तृतीय:, शंखनादश्चतुर्थ:, पंचमतन्त्रीनाद:, षष्ठस्तालनाद:,

सप्तमो वेणुनादः, अष्टमो भेरीनादः नवमो मृदंगनादः, दशमो मेघनादः आगे कहा गया है कि-नवमं परित्यज्यदशममेवाभ्यसेत्। नवम नाद को छोड़कर दशम का ही अभ्यास करना चाहिए। इसी की उपनिषद्ब्रह्मयोगिन् की टीका में बताया गया है कि नवम नाद छोड़कर केवल दशम का ही अभ्यास करे। नादबिन्दूपनिषद् में इस नादश्रवण का फल बताया गया है-

नादमेवानुसंदध्यान्नादे चित्तं विलीयते।''

नाद का ही अनुसंधान करना चाहिए इससे चित्त का लय होता है। इससे मनोलय भी होता है-विचार तरंगे उठना बन्द हो जाता है-

नादोऽन्तरंगसारंगबन्धने वागुरायते।
अन्तरंगतरंगस्य रोधे वेलायतेऽपि च।

-नादबिन्दूपनिषद् ४५-४६

मन रूपी मृग को वश में करने के लिए उसे फंसाने के लिए नाद जाल का काम करता है। जिस प्रकार समुद्र की तरंगें वेला-तट तक आकर शान्त हो जाती हैं उसी प्रकार नाद मन की तरंगों के लिए वेला का काम करता है।

कर्णकुहर में कस्तूरी आदि से निर्मित वटिका रखकर नाद श्रवण की विधि बगलामुखी रहस्य में बताई गई है।

विशेष- यहां यह उल्लेखनीय है कि सभी देवताओं के तेज से आविर्भूत यह देवी अष्टादश भुजा और उनमें अठारह आयुध धारण किए हुए बताई गई है। इसी रूप में इसका ध्यान भी बताया गया है-

अक्षस्त्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकाम्
दण्डं शक्तिमसिंच चर्म जलजं घंटां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रवालप्रभां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्।

"अक्षमाला, परशु, गदा, वाण, वज्र, कमल, धनुष, कमण्डलु, दण्ड, शक्ति, खड्ग, ढाल, शंख, घण्टा, पानपात्र, शूल, पाश और चक्र धारण किये हुए हैं जिनका वर्ण नवीन किसलय के समान है, जो कमल पर स्थित हैं, महिषासुर का वध करने वाली हैं, उन महालक्ष्मी का मैं ध्यान करता हूँ, भक्ति करता हूँ। आराधना करता हूँ।

ऊपर के वर्णन में केवल सत्तरह आयुधों के नाम आये हैं जो इस प्रकार हैं- शिव से-शूल, कृष्ण से चक्र, इन्द्र से वज्र, वरुण से शंख, अग्नि से शक्ति, मरुत् से धनुष और वाण, ब्रह्मा से अक्षमाला और कमण्डलु, यम से दण्ड, काल से खड्ग और चर्म, विश्वकर्मा से परशु कुबेर से पानपात्र और जलधि से कमल-इस प्रकार सत्तरह आयुध होते

हैं। गुप्तवती टीका के अनुसार-चक्रं च दत्तवान् कृष्ण: समुत्पाट्य स्वचक्रत:-यहां चकार समुच्चयार्थवाची है, उससे गदा समझना चाहिए। देवी भागवत के अनुसार-

गदां कौमोदकीं त्वष्टा घंटाशतनिनादनीम् अदात्तस्यै प्रसन्नात्मा''

इसके अनुसार कौमोदकी गदा त्वष्टा-विश्वकर्मा ने दी। परन्तु कौमोदकी गदा का नाम प्राय: विष्णु के आयुधों में ही आता है, अत: गदा की प्राप्ति उन्हीं से मानी जाना चाहिए। यह भी हो सकता है कि विश्वकर्मा देवताओं के शिल्पी हैं, अत: गदा का निर्माण उनके द्वारा किए जाने के कारण उनके द्वारा देना कहा गया। किस हाथ में कौन-सा अस्त्र है, इसका वर्णन अन्यत्र किया गया है। यहां मुख्य रूप से विचार करना है कि देवी की ये भुजा क्या हैं। क्योंकि वैकृतिक रहस्य में कहा गया है-अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती। उनके अठारह भुजाएं हैं हजार भुजाएं अथवा असंख्य भुजाएं भी हैं। वास्तविकता यह है कि ज्योति का कोई रूप नहीं होता, जिस प्रकार लोक व्यवहार में विद्युत को स्त्रीलिंग मान लिया गया, उसी प्रकार शक्ति में लिंगभेद न होते हुए भी उसे नारी कह दिया गया है। महानिर्वाण तन्त्र में कहा गया है-

अरूपाया: कालिकाया: कालमातुर्महाद्युते:
गुणक्रियानुसारेण क्रियते रूपकल्पना।

कालिका का कोई रूप नहीं है अखण्डकाल को खण्डकाल में परिमित करने वाली इस प्रकाशरूपा की उसके गुण और क्रिया के अनुसार रूप की कल्पना कर ली जाती है। अन्यत्र कहा गया है-

पुरुषं वा स्मरेद्देवि स्त्रीरूपं वा विचिन्तयेत्।
अथवा निष्कलं ध्यायेत्

"उस देवी का पुरुषरूप में ध्यान करे अथवा स्त्रीरूप में अथवा निष्कल-निर्गुण के रूप में ध्यान किया जा सकता है।"

इसी प्रकार अन्यत्र भी कहा गया है-

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तु:

इसीलिए पहिले कहा गया है-

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्।

वह शक्ति तो नित्या है और इस समस्त विश्व में व्याप्त है।

फिर उसके अठारह हाथों अथवा हजार हाथों की कल्पना कैसे। इसके संबंध में कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। जिस प्रकार काल का विभाजन लव, निमिष, क्षण, दिन, मास, वर्ष आदि में किया गया है, उसी प्रकार देश का विभाजन दिशाओं में किया गया है। दाहिने, बांयें, आगे और पीछे इस प्रकार चार दिशाएं मानी गई। फिर प्रत्येक

के मध्य में उपदिशा मानकर उनकी संख्या आठ होती है। यदि एक केन्द्र बिन्दु का इस प्रकार विभाजन किया जाय तो उस बिन्दु से आठ रेखा निःसृत होंगी और उस बिन्दु से संलग्न आठ ही कोण होंगे। इसे नीचे के चक्र से समझा जा सकता है।

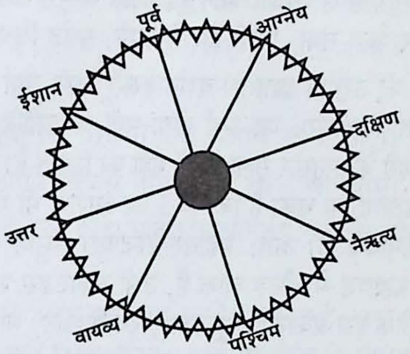

इसमें आठ रेखाएं आठ दिशाओं की बोधक हैं। बिन्दु पर आठ कोणों को मिलाकर यह संख्या सोलह होती है। ऊर्ध्व और अधः दो मिलाने से अठारह होते हैं। गोल चक्र विश्व ब्रह्माण्ड का द्योतक है। यही देवी की अठारह भुजाएं हैं। परिधि पर जो बिन्दु दर्शाये गये हैं, उनके विषय में-समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन् दिवाकरः कहा गया है। ज्योतिर्मय दिव्य देह के आभामण्डल ही रोमकूप हैं। यहाँ से प्रकाश की किरणें विकीर्ण हो रही हैं, यही देवी की सहस्र और असंख्य भुजाएं हैं। जैसा कि कहा गया है-

खमेव तस्याः सम्पन्नं कबरीमण्डलं वृहत्।
पातालं चरणौ भूमिरुदरं बाहवो दिशः।

आकाश ही उस देवी का केशपाश है, पाताल चरण, भूमि उदर और दिशाएं ही भुजाएं हैं। पुरुषरूप में तो शिव का नाम ही व्योमकेश है-व्योमकेशो भवो भीमः स्थाणूरुद्र उमापतिः।

चुक्षुभुःसकला लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे। ३२
चचाल वसुधा चेलुःसकलाश्च महीधराः।

अन्वय- तेन प्रतिशब्देन सकला लोकाः चुक्षुभुः, समुद्राश्च चकम्पिरे, वसुधा चचाल, सकलाः महीधराः च चेलुः।

शब्दार्थ- सकला-कलेन कलया सह-तात्पर्य सम्पूर्ण, महीधराः-पर्वत, चेलुः-हिल गये, लोकाः- चौदहों लोक सात ऊर्ध्व लोक सात अधः लोक-पृथ्वी से ऊपर के क्रमशः भू, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यलोक, सातअधः लोक-अतल, वितल,

सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल। चुक्षुभुः-क्षोभित हुए, चकम्पिरे-कपि चलने धातु के अनुसार अर्थ होगा विचलित हो गए, वेला का उल्लंघन करने से सर्वत्र जल फैल गया। चचाल-चंचल हो उठी।

व्याख्या- देवी के अट्टहास से जो प्रतिध्वनि हुई उससे सम्पूर्ण लोक क्षुब्ध हो उठे, समुद्रों का जल इधर उधर फैल गया, पृथ्वी हिलने लगी, पर्वत विचलित हो उठे।

रहस्य- कुण्डलिनी की उत्थान दशा का वर्णन इसमें किया गया है। समुद्राः का अर्थ होगा-मुद्राभिः सहिता, महीधराः का अर्थ होगा-महीं धारयतीति महीधरः, महीं मूलाधारे आदि सौन्दर्य लहरी के अनुसार मूलाधार में मही की स्थिति है। उसे धारण करने वाला मेरुदण्ड, पूर्व में बताया जा चुका है कि पर्वत का आशय भी मेरुदण्ड से ही है जो कि महीधर का समानार्थक है। अतः महीधर-मेरुदण्ड। वसुधा ही मूलाधार है। लोकाः-जिस प्रकार इस ब्रह्माण्ड में चौदह लोक हैं, उसी प्रकार इस शरीर में भी सात ऊर्ध्व और सात अधः लोक इस प्रकार हैं- मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्रार ये सात ऊर्ध्व लोक, तथा-पादतल, चरण, गुल्फ, जंघा, जानु, ऊरू और जघन।

कुण्डलिनी जागरण के पूर्व मुद्रा का अभ्यास किया जाता है, हठयोग के सभी ग्रन्थों में दशमुद्राओं का उल्लेख मिलता है। जिसमें शक्तिचालन मुद्रा का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। जब कुण्डली सुषुम्णा के द्वारा ऊपर को गमन करती है तो सारे शरीर में क्षोभ उत्पन्न होता है यही चुक्षुभुः सकला लोकाः कहा गया है। मुद्रा और बन्ध शिथिल होने लगते हैं, यही समुद्राश्च चकम्पिरे से संकेत किया गया है। मूलाधार में अस्थिरता का बोध होता है, यही वसुधा चचाल है। गोरखसंहिता में कहा गया है-

प्रबुद्धा बुद्धियोगेन मनसा मरुता सह।
सूचीव गुणमादाय ब्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्णया। गोरक्ष संहिता-१/४८

वह कुण्डलिनी बुद्धियोग से अर्थात् गुरु के द्वारा निर्दिष्ट विशेष क्रिया से मन और प्राण के साथ ऊपर को उठती है, उस समय मेरुदण्ड में ऐसा आभास होता है, जैसे कि सुई में धागा पिरोकर ऊपर को ले जाया जा रहा हो। प्रत्येक पर्व में चींटी रेंगने जैसा अनुभव होता है, यही-चेलुः सकलाः महीधराः कहकर संकेत किया गया है।

जयेति-देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम्। ३३
तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्तयः।

अन्वय- देवाः च तां सिंहवाहिनीं मुदा जय इति ऊचुः, मुनयः च एनां भक्तिनम्रात्ममूर्तयः सन्तः तुष्टुवुः।

शब्दार्थ- सिंहवाहिनी- सिंह पर सवारी करने वाली, ऊचुः-उक्तवन्तः-कहा, मुदा-

प्रसन्न होकर, जयेति-जय इति और जया इति। जय को क्रिया मानकर अर्थ होगा सर्वोत्कर्षेण वर्तस्व-आपकी जय हो, सब पर विजय पायें। जया का अर्थ किया गया हे-जयः कल्याणवचन आकारो दातृवाचकः।

जयं ददाति सा नित्यं सा जया परिकीर्तिता। ब्रह्मवैवर्तपुराण

जो नित्य जय दिलाये, उसे जया कहते हैं अतः जया देवी का नाम, महाभारत विराट पर्व में भी देवी की स्तुति में जया नाम आया है-

जया त्वं विजया चैव संग्रामे च जयप्रदा।

ममापि विजयं देहि वरदा त्वंच साम्प्रतम्।

तुष्टुवुः-स्तुति करने लगे। भक्तिनम्रात्ममूर्तयः-आत्मा और शरीर से भक्तिपूर्वक विनययुक्त।

विशेष- जयेति देवाश्च मुदा-यहां छन्दोभंग होता है। छन्दःशास्त्र के नियमानुसार-पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः। षष्ठं गुरु विजानीयादेतत्पद्यस्य लक्षणम्। इस लक्षण के अनुसार अनुष्टप् का पंचम वर्ण लघु और षष्ठ वर्ण गुरू होना चाहिए। यहां पंचम वर्ण गुरू और षष्ठ लघु है। इसलिए किसी टीकाकार ने जयेति च मुदा देवा ऐसा पाठ माना है। इसी प्रकार सिंहवाहिनी के स्थान पर व्याकरण के नियमानुसार सिंहवाहना होता। पर यहां सिंहवाहिनी लिखा गया है। वास्तव में इन सब प्रयोगों को आर्ष मानकर यथावत् रहने देना ही ठीक है। मन्त्रशास्त्र के अनुसार भी यही अपेक्षा की जाती है। मन्त्र व्याकरण के नियमों में बंधे नहीं होते।

व्याख्या- देवताओं ने प्रसन्नतापूर्वक जय हो जय हो कहते हुए उस सिंहवाहिनी से प्रार्थना की कि आप जया हैं, जय दिलाने वाली हैं, हमें भी दैत्यों पर विजय दिलाइये। आप सब दैत्यों पर विजय प्राप्त कर सर्वोत्कृष्ट हों। मुनियों ने भक्ति-पूर्वक सिर झुकाकर और विनय पूर्वक देवी की स्तुति की।

दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः। ३४

सन्नद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः।

अन्वय- अमरारयः समस्तं त्रैलोक्यं संक्षुब्धं दृष्ट्वा ते सन्नद्धाखिलसैन्याः उदायुधाः समुत्तस्थुः।

शब्दार्थ- अमरारयः अमराणां अरयः देवताओं के शत्रु अथवा अमराः अरयो येषां ते देवता हैं शत्रु जिनके वे दैत्य, महिषासुर आदि, समस्तं-सम्पूर्ण, त्रैलोक्य-तीनों लोक, संक्षुब्ध-आकुल, व्याकुल, क्षोभ को प्राप्त, विचलित, वास्तव में दैत्य अत्यन्त क्षुब्ध हो उठे यह अर्थ है। सन्नद्धा अखिलसैन्या सुसज्जितसमस्तसैन्याः, सन्नद्धाः-धृतकवचाः सन्नद्ध के दो अर्थ-सुसज्जित और कवच धारण किए हुए और व्यूहबद्ध सन्नद्धाः

धृतकवचाः सुसज्जिताः व्यूहबद्धाः अखिलाःसमस्ताःसेना येषां ते सन्नद्धाखिलसैन्या- जिनकी सारी सेना कवच धारण कर व्यूहबद्ध-मोर्चा संभालकर सुसज्जित होकर युद्ध के लिये प्रस्तुत हो, उदायुधाः-ऊर्ध्वीकृतानि आयुधानि यैस्ते जिन्होंने वार करने के लिए शस्त्र ऊपर को तान लिए हैं।

व्याख्या- देवी के अट्टहास की प्रतिध्वनि से जब दैत्यों ने समस्त लोकों को घबड़ाया हुआ देखा तो वे स्वयं भी विचलित होकर सम्पूर्ण सेना को कवच आदि से युद्ध के लिए सुसज्जित और व्यूहबद्ध करके किसी भावी अनिष्ट की या युद्ध की आशंका से अपने-अपने हथियारों से लैस होकर खड़े हो गए।

आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः। ३५
अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः।

अन्वय- महिषासुरः तं प्रतिध्वनिं श्रुत्वा-क्रोधात् आः एतत् किम् इति आभाष्य अशेषै असुरैः वृतः तं शब्दं प्रति अभ्यधावत।

शब्दार्थ- आः-अरे, एतत् किम्-यह क्या है, आभाष्य-कहकर, अशेषैः-सभी, असुरैः-दैत्यों से वृतःघिरा हुआ, तं शब्दं प्रति-उस ओर जिधर से अट्टहास सुनाई दिया, अभ्यधावत-दौड़ पड़ा।

व्याख्या- महिषासुर ने जब वह घोर निनाद सुना तो क्रोध में भरकर बोला-अरे यह क्या है, और अपने साथ सभी दैत्यों को लेकर जिधर से शब्द हुआ था उस ओर दौड़ पड़ा।

स ददर्श ततो देवीं व्याप्त लोकत्रयं त्विषा। ३६
पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम्।
क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिः स्वनेन ताम्। ३७
दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद्व्याप्य संस्थिताम्।

अन्वय-ततः सःत्विषा व्याप्तलोकत्रयां पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम् धनुर्ज्यानिःस्वनेन क्षोभिताशेषपातालाम् भुजसहस्रेण समन्तात् दिशः व्याप्य संस्थिताम् ताम् देवीं ददर्श।

शब्दार्थ- ततः उसके पश्चात् त्विषा-दीप्ति से, तेज से आभा से, व्याप्तलोकत्रयाम्- त्रयाणां लोकानां समाहारः लोकत्रयम्, व्याप्तं लोकत्रयं यया सा व्याप्तलोकत्रया तां व्याप्तलोकत्रयाम्-जिसने तीनों लोकों को व्याप्त कर रखा है, पदाक्रान्त्या-चरणों की चपेट से नतभुवं-नमितवसुन्धराम्-जिससे पृथ्वी झुक गई है, किरीटोल्लिखिताम्बराम्- किरीटेन उल्लिखितं अम्बरं यया तां-जिनके मुकुट की खरोंच आकाश में हो, आकाश तक पहुंचने वाले मुकुट को धारण किए हुए, क्षोभिताशेष-पातालाम्-क्षोभितानि अशेषानि

पातालानि यया तां-जिसने सम्पूर्ण पाताल को क्षुब्ध-विचलित कर दिया है, धनुर्ज्यानिःस्वनेन-धनुषः ज्या प्रत्यंचायाः निःस्वनेन-टंकारेण, भुजसहस्रेण-हजार भुजाओं से समन्तात्-चारों ओर से, दिशः व्याप्यदशों दिशाओं में व्याप्त होकर, संस्थिताम्-जो स्थित है।

व्याख्या- दौड़कर शब्द की ओर जाने पर महिषासुर ने देवी को देखा जो अपने तेज से तीनों लोकों को दीप्त कर रही है, जिसकी चरणचाप से पृथ्वी डगमगा रही है, जिसका मुकुट आकाश को छू रहा है, उसके धनुष की डोरी की टंकार से समस्त पाताल क्षुब्ध हो रहा है, और जो हजारों भुजाओं से दशों दिशाओं में छाई होकर स्थित है। कुण्डलिनी के मूलाधार से उत्थित-जागृतहोने का संकेत-क्षोभिताशेषपातालाम्।

ततः प्रववृते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम्। ३८

शस्त्रास्त्रैर्बहुधामुक्तैरादीपितदिगन्तरम्।

अन्वय- ततः तया देव्या सह सुरद्विषाम् बहुधा मुक्तैःशस्त्रास्त्रैः आदीपितदिगन्तरं युद्धं प्रववृते।

शब्दार्थ- ततः-महिषासुर ने जब देवी को बार-बार भयंकर अट्टहास करते हुए देखा तब, देव्या-देवी के साथ, सुरद्विषाम्-देवताओं से द्वेष करने वाले दैत्यों का, बहुधा-अनेक प्रकार से, मुक्तैः-छोड़े गए, शस्त्रास्त्रैः-शस्त्रैः अस्त्रैश्च-शस्त्र उन हथियारों को कहते हैं जिन्हें हाथ में लेकर युद्ध किया जाय, जैसे खड्ग, परशु, भुशुण्डी गदा आदि। अस्त्र कहते हैं जिन्हें दूर से फेंककर शत्रु पर वार किया जाय, जैसे-वाण, शूल, शक्ति, भिन्दिपाल, मन्त्रपूत ब्रह्मास्त्र कृत्यास्त्र आदि आदीपितदिगन्तरम्-आ समन्ताद्दीपिता दिगन्तरा दिशां अन्तराला येन तत् जिससे दिशाओं में प्रकाश फैल गया।

व्याख्या-तब यहां पर देवी के साथ उन देवताओं के द्रोही असुरों का युद्ध प्रारम्भ हुआ जिसमें अनेक प्रकार से छोड़े जाने वाले आयुधों अस्त्र-शस्त्रों से समस्त दिशाओं में चकाचौंध होने लगी।

महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्यो महासुरः। ३९

युयुधुश्चामरैश्चान्यैश्चतुरंगबलान्वितः।

रथानामयुतैःषड्भिः उदग्राख्यो महासुरः। ४०

अयुध्यतायुतानांच सहस्रेण महाहनुः।

पंचाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः। ४१

अन्वय- महिषासुरसेनानी चिक्षुराख्यः महासुरः चामरः च अन्यैः सहितः चतुरंगबलान्वितः सन् युयुधे। रथानां षड्भिः अयुतैः अन्वितः उदाग्राख्यः महासुरः युयुधे, अयुतानां सहस्रेण महाहनुः अयुध्यत, असिलोमा महासुरःरथानां पंचाशद्भिः

नियुतैः अयुध्यत।

शब्दार्थ- सेनानी-सेनां नयतीति सेनानी-सेनापति, चिक्षुराख्यः-चिक्षुर नाम का, महासुरः महा असुर दैत्य, चामरै-चामर नामक दैत्य सहित, अन्यैः दूसरे दैत्यों सहित, चतुरंगबलान्वितः-सेना के चार अंग-रथ, हाथी, घोड़े और पैदल। बल-सेना जिनके साथ रथ, हाथी-घोड़े और पैदलों की चतुरंगिणी सेना थी, युयुधुः-युद्ध किया, अयुत-दस हजार, षड्भिः अयुतैः-छः अयुत अर्थात् साठ हजार सेना रथों के साथ, उदग्राख्यः-उदग्र नाम का, महाहनुः-दैत्य का नाम, अयुतानां सहस्रेण-हजार अयुत एक करोड़, असिसोमा-असय इव लोमानि यस्य सः वा असय एव लोमानि यस्य सः तलवार के सदृश पैने जिसके रोम हों, वा तलवार ही जिसके रोम हैं, नियुत-दस लाख पंचाशद्भिः नियुतैः-पांच करोड़। गिनती का क्रम इस प्रकार है-एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, नियुत, कोटि, अर्बुद, वृन्द, खर्व, निखर्व, शंख, पद्म, सागर, अन्त्य, मध्य और परार्ध इन संख्याओं का मान क्रमशः दसगुना होता है। एक पर एक शून्य बढ़ाते जाने से अगली संख्या होती है। इस प्रकार एक पर सत्तरह शून्य रखने पर परार्ध होगा।

व्याख्या- महिषासुर के चिक्षुर नाम के सेनापति ने चामर और अन्य दैत्यों के साथ मिलकर चतुरंगिणी सेना लेकर देवी से युद्ध किया। उदग्र नामक महादैत्य ने साठ हजार रथों सहित देवी के साथ युद्ध किया। महाहनु ने एक करोड़ रथों को लेकर युद्ध किया। जिसके रोम ही तलवार की भांति चलते थे उस असिलोमा दैत्य ने पांच करोड़ योद्धाओं को साथ लेकर देवी से युद्ध किया।

अयुतानां शतैः षड्भिःवाष्कलो युयुधे रणे।
गजवाजिसहस्त्रौघैरनेकैः परिवारितः। ४२
वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत।

अन्वय- रणे वाष्कलः रथानां षड्भिः शतैः अयुतानां युयुधे। परिवारितः अनेकैः गजबाजिसहस्त्रौधेः रथानां कोट्या च वृतः तस्मिन् युद्धे अयुध्यत।

शब्दार्थ- वाष्कलः दैत्य का नाम, अयुतानां शतैः षड्भिः-दस हजार गुणित छः सौ, साठ लाख, परिवारितः परिवारित नामा दैत्य, अनेकैः गजवाजिसहस्त्रोधैः सहस्त्रों हाथी घोड़ों के अनेक समूहों के साथ, रथानां कोट्या-करोड़ रथ, वृतः परिवेष्टितः, घिरा हुआ।

विशेष- गजवाजिसहस्त्रौधेः परिवारितः के स्थान पर गजवाजिसहस्त्रौघैरने-कैरुग्रदर्शनः ऐसा पाठ मिलता है जिसके अनुसार कर्ता उग्रदर्शन मानकर अर्थ अधिक स्पष्ट होता है।

व्याख्या- साठ लाख रथों के साथ वाष्कल असुर ने युद्ध किया, परिवारित अथवा

उग्रदर्शन नामक असुर ने हजारों हाथी घोड़ों के समूहों के साथ करोड़ रथों से परिवेष्टित होकर देवी के साथ युद्ध किया।

बिडालाख्योऽयुतानां च पंचाशद्भिरथायुतैः। ४३
युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः।

अन्वय- बिडालाख्यः बिडालाक्षः अयुतानां पंचाशद्भिः अयुतै रथानां परिवारितः तत्र संयुगे युयुधे।

शब्दार्थ- बिडालाख्यः बिडाल नाम का वा बिडालाक्षः पाठ मानकर बिडलाक्ष नाम दस हजार गुणित पचास हजार-पचास करोड़संयुगे-संग्राम में, परिवारितः-घिरकर

व्याख्या- बिडाल वा बिडालाक्ष दैत्य ने पचास करोड़ रथों के साथ उस संग्राम में युद्ध किया।

अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृता। ४४
युयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः।

अन्वय- तत्र अन्ये महासुराः च अयुतशः रथनागहयैःवृता तत्र संयुगे देव्या सह युयुधे।

शब्दार्थ- अन्ये-दूसरे अयुतशः-दस हजार की संख्या में, रथनागहयैः-रथ, हाथी और घोड़ों से वृताः-घिरे हुए, अन्ये च तत्र महासुराः-दूसरों में जो महादैत्य थे, देव्या सह-देवी के साथ।

व्याख्या- महिषासुर की सेना में जो और भी असुर थे वे दस दस हजार रथ, हाथी और अश्वारोहियों के साथ लेकर उस संग्राम भूमि में युद्ध करने लगे।

कोटिकोटिससहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा। ४५
हयानां च वृतो युद्धेतत्राभून्महिषासुरः।

अन्वय- महिषासुरः तत्र युद्धे रथानां दन्तिनां हयानांच कोटिकोटिसहस्रैः वृतः अभूत्।

शब्दार्थ- दन्तिनाम्-हाथियों की, हयानाम्-अश्वारोहियों की, वृतः-घिरा हुआ कोटिकोटिसहस्रैः-करोड़ गुणित एक हजार-एक एक खर्व

व्याख्या- उस युद्ध में महिषासुर खर्वों रथों, हाथियों और अश्वारोहियों से घिरा हुआ उपस्थित था।

तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा। ४६
युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैःपरशुपट्टिशैः
केचिच्च चिक्षिपुः शक्तिः केचित्पाशां स्तथापरे। ४७
देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुंप्रचक्रमुः।

अन्वय- तेदेव्या सह संयुगे तोमरै:भिन्दिपालै: शक्तिभि: मुसलै: खड्गै: तथा परशुभि: युयुधे। केचित् च शक्ति: चिक्षिपु: केचित् पाशान् तथा अपरे ते तां देवीं खड्गप्रहारै: हन्तुं प्रचक्रमे।

शब्दार्थ-तोमर-गंडासा, भिन्दिपाल-गोफन, शक्ति-भाला, मुसल-ऊपर पतला नीचे की ओर मोटा काष्ठदण्ड जिसमें नीचे लोहा जड़ा रहता है, मूसल जो धान आदि कूटने के काम आता है, खड्ग-तलवार, परशु-फरसा, कुठार, पाश-रस्सी जिसमें शत्रु को फंसाकर बांधा जा सके, पट्टिश-तीन हाथ वा साढ़े तीन हाथ अथवा चार हाथ लम्बाई का मोटा डंडा जिसमें नीचे की ओर गोलाकार लोहा जड़ा रहता है, उस लोहे में कमल पत्र जैसे उभरे हुए आरा के समान दांते होते हैं, ये दांते लम्बाई में छ: अंगुल तक और कमरख की फांकों के समान तेज धार वाले होते हैं। इससे शत्रु की तत्काल मृत्यु हो जाती है, साथ ही यह पाश बन्धन को काटने वाला एकमात्र शस्त्र है।

व्याख्या- वे दैत्य देवी के साथ संग्राम में गंडासा, गोफन, भाला, मुशल, खड्ग और पट्टिश लेकर युद्ध करने लगे। कोई भाला फेंककर वार करते थे, कोई पाश फेंक रहे थे तो कोई तलवार से देवी पर वार करने का उद्योग कर रहे थे।

सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका। ४८

लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी।

अन्वय- सा चण्डिका देवी अपि निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी सतीलीलयैव तानि शस्त्राण्यस्त्राणि प्रचिच्छेद।

शब्दार्थ-चण्डिका-चण्डस्त्वत्यन्त कोपने इसके अनुसार अत्यन्त कुपित होकर, अथवा रणचण्डी का रूप धारण कर लीलया एव कोश के अनुसार-लीलां विदु: केलिविलासखेला श्रंगारभाव प्रभवक्रियासु। हंसी खेल में ही, निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी-निजानि आत्मीयानि शस्त्राणि अस्त्रणि च वर्षति-प्रवर्तयति तच्छीला इति तथोक्ता सती-अपने अस्त्र, शस्त्रों की वर्षा करते हुए, प्रचिच्छेद-छिन्न-भिन्न कर दिये। देवी-जिगीषमाणा-जयाभिलाषिणी।

व्याख्या- तब देवी ने भी रणचण्डी का रूण धारण कर अपने अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करते हुए मानो हंसीखेल में ही उन दैत्यों के द्वारा चलाये हुए उन सभी अस्त्र-शस्त्रों को छिन्न-भिन्न कर डाला।

अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभि:। ४९

मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी।

अन्वय- अनायस्तानना सती सा देवी ईश्वरी सुरर्षिभि: स्तूयमाना असुरदेहेषु शस्त्राणि अस्त्राणि च मुमोच।

शब्दार्थ- अनायस्तानना-अनायस्तं अखिन्नं अम्लानं आननं मुखं यस्याः सा अनायस्तानना आयासजन्यविकारं अप्राप्नुवाना-जिसके मुख पर परिश्रम वा थकान का चिन्ह तक न हो, स्तूयमाना-जिसका स्तवन किया जा रहा हो, सुरर्षिभिः सुरैः ऋषिभिः च वा सुरर्षिःनारदादयः तैः-देवता और ऋषियों के द्वारा वा देवर्षियों के द्वारा असुरदेहेषु-असुराणां शरीरेषु-दैत्यों के शरीर पर, ईश्वरी-विश्वव्यापिका

व्याख्या- इस प्रकार दैत्यों से युद्ध करते हुए जब देवी ने उनके द्वारा छोड़े गये सभी शस्त्रास्त्रों को अनायास ही अपनी अस्त्रवर्षा से छिन्न-भिन्न कर दिया तो सभी देवता और ऋषिगण देवी की स्तुति करने लगे। उस समय उस विश्वव्यापी शक्ति ने दैत्यों के शरीरों को लक्ष्य कर अस्त्रशस्त्र छोड़े।

सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेसरी। ५०
चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः।

अन्वय- सः देव्या वाहनकेसरी क्रुद्धः धुतसटः सन् असुरसैन्येषु हुताशन इव चचार।

शब्दार्थ- वाहनकेसरी-वाहनीभूतः केसरी-सिंहः देवी का वाहन सिंह, धुतसटः-धूञ् कम्पने जटासटाकेसरयोः धुत-क्तान्तरूप धुताःकम्पिताःसटाः येन-जिसने अपने अयालों को कन्धे हिलाकर झाड़ दिया हुताशनः-हुतं अश्नातीति हुताशनः अग्नि चचार-विचरण करने लगा।

व्याख्या- देवी का वह वाहन सिंह भी अत्यन्त क्रोध से अपने अयाल झाड़कर असुरों की सेना पर इस प्रकार टूट पड़ा जिस प्रकार कि वन में दावानल फैल रहा हो।

निःश्वासान्मुमुचे यांश्च युद्धमाना रणेऽम्बिका। ५१
त एव सद्यः सम्भूताः गणाः शतसहस्रशः।

अन्वय- अम्बिका रणे युद्धमाना यान् निःश्वासान् मुमुचे त एव सद्यः शतसहस्रशः गणाः सम्भूता।

शब्दार्थ- निःश्वास-सांस बाहर निकालना, अम्बिका-चण्डिका, युद्धमाना-युद्ध करते हुए, मुमुचे-सांस बाहर छोड़ी, सद्यः-तत्काल ही, सम्भूताः-उत्पन्न हो गए, शतसहस्रशः-शत गुणित सहस्र-एक लाख लाखों की संख्या में,

व्याख्या- असुर युद्ध करने वाले कोटि-कोटि संख्या में थे और देवी अकेली थी, अतः देवी ने अपने निःश्वस से लाखों गण उत्पन्न कर दिए उनके एक-एक श्वास से लाखों ही देवी के गण पैदा होकर असुरों के साथ युद्ध करने लगे।

रहस्य- देवी-भागवत के वर्णन के अनुसार ये सभी दैत्य देवी से पृथक्-पृथक एक-एक कर युद्ध करते हुए मारे गए हैं। वहां प्रत्येक के साथ अरबों खरबों की सेना का

भी उल्लेख नहीं मिलता। वास्तव में वह सामान्य कथानक है जिसका अन्य प्रतीकात्मक कोई अर्थ ग्रन्थिनिर्माणकर्ता के ध्यान में कदाचित् ही रहा हो। परन्तु सप्तशती में तो वही वर्णन अतिसंक्षिप्त और नपे तुले शब्दों में किया गया है, जिसमें एक-एक शब्द अपने स्थान पर रत्नों के समान जड़ा हुआ है। मन्त्रशास्त्र की यह विशेषता होती है कि उसमें एक भी शब्द अनावश्यक नहीं होता। अत: यहां उसी दृष्टि से विचार करना होगा। सामान्य झाड़फूंक करने वाला भी जब मन्त्र पढ़कर फूंक मार देता है तो उसका प्रभाव होता है, उस शक्ति के नि:श्वास तो स्वयं ही मन्त्ररूप हैं, जैसा कि कहा गया है-मन्त्राणां मातृका देवी-और अमन्त्रमक्षरो नास्ति- इस प्रकार यह गणों का प्रादुर्भाव भी मन्त्रों की शक्ति से ही सम्भव है। आध्यात्मिक स्तर पर तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर इन षड्रिपुओं का नाश ध्यानस्थ होकर मन्त्र-जप के द्वारा ही होता है, वहां मन्त्र शक्ति से उदभूत तरंगें ही गण हैं। जिनसे अनिष्टकारी शक्तियों को जागृत करना सम्भव होता है। असुर इन मन्त्रशक्तियों-मन्त्र-जाप के बल पर उन्हें सहायक के रूप में प्रयुक्त करने में समर्थ रहे जिस महासुर के पास जितना जपसंख्या में मन्त्र बल रहा, उतनी ही संख्या उसके रथनागहयादि की दी गई है जो असम्भव नहीं है। पहिले कहा जा चुका है कि आयुध देवताओं की तत्तत् क्रिया शक्ति के ही सूचक हैं अत: यहां भी वैसा ही समझना चाहिए। देवी-भागवत में चण्डमुण्ड से देवी के साथ युद्ध वर्णन में आया है कि उन्हें वाण-पाश में आबद्ध किया गया था। यहां नीलकण्ठी टीका के अनुसार पाश का अर्थ शक्ति से अभिमन्त्रित बाण से ही लिया गया है।

युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशै:।५२
नाशयन्तोऽसुरगणान्देवीशक्त्युपबृंहित:।

अन्वय- देवीशक्त्युबृंहिता: ते गणा: परशुभि: भिन्दिपालासिपट्टिशै: असुरगणान् नाशयन्त: युयुधे।

शब्दार्थ- ते-वे देवी के नि:श्वास से उत्पन्न गण, देवीशक्त्युपबृंहिता:-देव्या शक्ति: देवीशक्ति: तया उपबृंहिता:वर्धिता:देवीशक्त्युपबृंहिता:-देवी की शक्ति पाकर बढ़े हुए, देवी की शक्ति से उत्साहित, देवी की शक्ति से गरजते हुए, असुरगणान्-असुरों के समूह को, नाशयन्त:-नष्ट करते हुए, परशुभि:-फरसों से, भिन्दिपालासिपट्टिशै:गोफन, तलवार और लोहे के अरों वाली गदाओं से।

व्याख्या- देवी के नि:श्वासों से उत्पन्न वे गण देवी के ही प्रभाव से प्रबल होकर असुर समूहों को नाश करते हुए फरसों, गोफनों, तलवारों और पट्टिशों से युद्ध करने लगे।

अवादयन्त पटहान् गणा: शंखास्तथापरे।५३
मृदंगांश्च तथैवान्ये तस्मिन्युद्धमहोत्सवे।

अन्वय- गणाः तस्मिन् युद्धमहोत्सवे पटहान् अवादयन्त अपरेशंखान् अन्ये च मृदंगान् च अवादयन्त।

शब्दार्थ- युद्धमहोत्सवे-युद्धे महोत्सवे इव युद्धमहोत्सवे-युद्ध रूपी महोत्सव में युद्ध जिनके लिए महान् उत्सव जैसा था, पटह-ढोल, अपरे-दूसरे, अन्ये-तथा और भी।

व्याख्या- उन गणों के लिए युद्ध जैसे महान् उत्सव के समान हो, इस प्रकार वे वहां पर ढोल, नगाड़े, शंख और मृदंग बजाते हुए घूमने लगे।

ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिवृष्टिभिः।

खड्गादिभिश्च शतशो निजधान महासुरान्। ५४

अन्वय- ततः देवी त्रिशूलेन, गदया, शक्तिवृष्टिभिः खड्गादिभिः च महासुरान् निजधान।

शब्दार्थ- ततः तब, देवी-चण्डिका शक्तिवृष्टिभिः-भालों की वर्षा सी करके, शतशः-सैकड़ों की संख्या में, निजधान-मार डाले।

व्याख्या- तब देवी ने त्रिशूल, गदा, खड्ग और शक्ति के प्रहारों से सैकड़ों ही बड़े-बड़े असुरों को मार डाला। गणों ने सामान्य असुर सैनिकों का वध किया और देवी ने महासुरों को स्वयं अपने आयुधों से मार डाला।

पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान्।५५

असुरान् भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत्।

अन्वय- देवी अन्यान् असुरान् घण्टास्वनविमोहितान् भुवि पातयामास, अन्यान् च पाशेन बद्ध्वा भुवि अकर्षयत्।

शब्दार्थ- घण्टास्वनविमोहितान्-घण्टायाः स्वनेन रवेण निर्घोषेण विमोहितान् विमूढान् मूर्छितान्-घंटा का शब्द सुनकर जो मूर्छित हो गये, भुवि-पृथ्वी पर, अकर्षयत्-घसीटा।

व्याख्या- देवी ने कुछ असुरों को अपने घंटानाद से मूर्छित होने पर भूमि पर गिरा दिया, कुछ अन्य असुरों को पाश से बांधकर धरती पर घसीटा।

रहस्य- पूर्व में दशविध नाद के संबंध में कहा जा चुका है, उसके अन्तर्गत घण्टानाद भी आता है। नाद से मोहित मन के आसुरी भावों के शमन का यहां संकेत किया गया है जिसके संबंध में कहा गया है-

बद्धः सुनादगन्धेन सद्यःसन्त्यक्तचापलम्।
नादग्रहणतश्चित्तमन्तारंगभुजंगमः।
विस्मृत्य विश्वमेकाग्रं कुत्रचिन्नहि धावति।

नादबिन्दूपनिषद् ४३-४४

व्याख्या- युद्धभूमि में लगातार वाणों की झड़ी से अनेक असुरों की कमर टूट गई अनेक उस वाणवर्षा से विदीर्ण हो गए उनके शरीर छिन्न-भिन्न हो गए। सेना के अग्रभाग में चलने वाले अनेकों दैत्य उस वाणवर्षा से कटकर निष्प्राण हो गए। उन दैत्यों के रोम-रोम में इतने बाण बिंधे हुए थे कि वे बाज पक्षी के समान अथवा सेही के समान जान पड़ते थे। जिस प्रकार बाज शरविद्ध होकर नीचे गिरे उसी प्रकार वे दैत्य निष्प्राण होकर भूमि पर गिर रहे थे।

केषांचिद्बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे। ५९
शिरांसि पेतुरन्येषां अन्ये मध्ये विदारिता:।
विच्छिन्नजंघास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुरा:। ६०

अन्वय- देव्या तस्मिन् रणाजिरे केषांचित् असुराणां बाहव: छिन्ना: अपरे छिन्नग्रीवा कृता अन्येषां शिरांसि पेतु: अन्ये मध्ये विदारिता: अपरे महासुरा: विच्छिन्नजंघा: सन्त: उर्व्यां पेतु:।

शब्दार्थ- केषांचित्-कोश के अनुसार- असाकल्येषु चिच्चन चित् लगने से कुछ का अर्थ किन्हीं किन्हीं के, बाहव: भुजा:, छिन्ना: छिदिर् द्वैधी करणे धातु का क्त-प्रत्ययान्त रूप, छिन्नग्रीवा:-छिन्ना:ग्रीवा: येषान्ते, जिनकी गर्दन उड़ा दी गई, परे-दूसरे, अपरे-अन्य, मध्ये शरीरस्य मध्यभागे शरीर के बीच से विदारिता: खण्डिता: विदीर्ण कर दिये गये, विच्छिन्नजंघा: विच्छिन्ना: जंघा: येषान्ते जिनकी जांघें कट गई, उर्व्या पृथ्वी पर, पेतु:- गिर पड़े।

व्याख्या- देवी के द्वारा उस समरभूमि में युद्ध करने वाले महान असुरों में से किन्हीं के बाहु-भुजायें काट डाली गई, किन्हीं की गर्दन उड़ा दी गई, किन्हीं के सिर काटकर धरती पर गिरा दिए, किन्हीं के बीच से दो टुकड़े कर डाले और कोई जांघें कट जाने से धराशायी हो गए।

एकबाह्वक्षिचरणा: केचिद्देव्या द्विधा कृता:
छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिता: पुनरुत्थिता:।६१

अन्वय- केचित् एकबाह्वक्षिचरणा: सन्त: देव्या द्विधा कृता: अन्ये शिरसि छिन्ने पतिता: अपि पुन: उत्थिता:।

शब्दार्थ- केचित्-कोई कोई, एकबाह्वक्षिचरणा:-बाहुश्च अक्षि च चरणं च बाह्वक्षिचरणं एकं एव बाह्वक्षिचरणं येषां ते एकबाह्वक्षिचरणा:-जिनके एक ही भुजा, अथवा एक ही आंख वा एक ही पैर रह गया, अन्ये-दूसरे अनेक शिरसि छिन्ने पतिते अपि-सिर कट जाने से गिरकर भी उत्थिता:-उठ कर खड़े हो गए। कबन्ध उठ कर लड़ने लगे।

व्याख्या- युद्ध में देवी ने किसी असुर की एक भुजा काट दी, किसी की एक ही

आंख रह गई किसी का एक पैर काट दिया और किन्हीं के दो टुकड़े कर डाले। किन्हीं के सिर कटकर भूमि में गिर पड़े और कबन्ध-रुण्ड उठकर युद्ध करने लगे।

कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधाः।
ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः।६२

अन्वय- देव्या सह गृहीतपरमायुधाः कबन्धाः युयुधुः युद्धे अपरे तूर्यलयाश्रिताः सन्तः ननृतुः।

शब्दार्थ- कबन्ध-कोश के अनुसार-कबन्धोऽस्त्रीक्रियायुक्तमपमूर्ध्वकलेवरम्। और-कबन्धमुदके रुण्डे कबन्धो राहुरक्षसोः इसके अनुसार बिना सिर का धड़ जो क्रियायुक्त हो और कबन्ध राक्षस विशेष। युद्ध में सिर के कटकर पृथक् हो जाने पर भी किसी विशेष वीर में युद्ध का आवेश रह जाने के कारण कुछ समय के लिए उसका धड़ जिसे रुण्ड कहते हैं सक्रिय रहता है। इसके लिए महाभारत में कहा गया है- मनुष्याणां सहस्त्रेषु शतेषु पतितेषु च। उदतिष्ठन्कवन्धानि बहून्युत्थाय चाद्रवन्। "सैकड़ों हजारों मनुष्यों में किसी एक का रुण्ड उठकर दौड़ने लगता है।" अन्यच्च-युद्धंयोद्धृषु शूरेषु सहस्त्रं कृत्तमूर्धषु। तदावेशात्कबन्धः स्यादेकोऽमूर्धा क्रियान्वितः। युद्ध में लड़ते हुए सिर कटकर गिर जाने पर भी हजारों में से किसी एक योद्धा का युद्धावेश शेष रह जाने के कारण सिररहित कबन्ध सक्रिय रहता है। कबन्ध द्वारा युद्ध का वर्णन पृथ्वीराजरासो में इस प्रकार आया है-

संजोगि मात पुच्छै सु जोइ। आचिज्ज एह यह कवन लोइ।
मुह मुह चमक्कि दामिनि झपट्टि। त्रय लष्ष घटा लीनी लपट्टि।
पृथ्वीराज रासो ६१वां समय १९०-१९१

वीरों के रुण्ड उठने को मात्र कल्पना नहीं माना जा सकता। जिन्हें परीक्षा करनी हो वे एक बड़े से मुर्ग को काट कर देख सकते हैं। उस मुर्ग को अत्यन्त उत्तेजित कर दें। किसी ऊंची छत पर सौ पचास गज की दूरी पर दो व्यक्ति खड़े हो जायं। मुर्ग उड़कर इधर से उधर जाने लगे तब उसे पकड़कर उसकी गर्दन उड़ा कर तुरन्त छोड़ दें वह बिना गर्दन का मुर्गा उड़कर दूसरे स्थान पर पहुँच जायगा। असाधारण वीरों में ऐसा आवेश असम्भव नहीं।

व्याख्या- इकसठवें श्लोक के उत्तरार्ध से अन्वय करते हुये ऐसा होगा-अन्ये शिरसि छिन्ने अपि पतिताः पुनः उत्थिताः सन्तः गृहीतपरमायुधा कबन्धाः देव्या सह युयुधुः। अन्य दैत्य सिर कट जाने पर भी-सिर भूमि में गिर जाने पर भी-हाथों में श्रेष्ठ अस्त्र धारण किए हुए देवी के साथ युद्ध करने लगे। कुछ अन्य असुर रणवाद्यों की ध्वनि पर सम मिलाते हुए नाचने लगे। किसी टीकाकार के अनुसार असुरों के मायावी होने के कारण

सिर कट जाने पर भी शस्त्रास्त्र लेकर युद्धरत रहना सम्भव है।

कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः।

तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः। ६३

अन्वय- छिन्नशिरसः कबन्धाः खड्गशक्त्यृष्टपाणयः युयुधुः। अन्ये महासुराःदेवीं तिष्ठ तिष्ठ इति भाषन्तः देव्याःसमं योद्धुम् आजग्मुः। तिष्ठ तिष्ठेत्यभाषन्त ऐसा पाठ भी है।

शब्दार्थ- छिन्नशिरसःछिन्नानि शिरांसि येषाम् ते-जिनकेसिर पृथक् कर दिये गए हैं वा छिन्नशिरसः-छिन्नानि शिरांसि यैः-जिन्होंने शत्रु के सिर काट डाले हैं। खड्गशक्त्यृष्टपाणयः-खड्गःशक्तिः ऋष्टिः च पाणौ येषाम् ते-जिनके हाथों में तलवार, सांग और तेगा है, तिष्ठ तिष्ठ-ठहर, ठहर इति-इस प्रकार, भाषन्तः-कहते हुए, अभाषन्त-कह रहे थे।

व्याख्या- बासठवें श्लोक के उत्तरार्ध से अन्वय करते हुए-कुछ योद्धा रणवाद्यों के ताल और लय पर नाचने लगे, कुछ कबन्ध हाथों में तलवार, सांग और तेग लिए हुए युद्ध करने लगे। अन्य महादैत्य देवी को युद्ध के लिए ललकारते हुए-ठहर, ठहर ऐसा कहते हुए देखे गए।

पातितै रथनागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा।

अगम्या साभवत्तत्र यत्राभूत्स महारणः।६४

अन्वय- देव्या पातितैः रथनागाश्वैः असुरैः च आकीर्णा सा वसुन्धरा अगम्या अभवत् यत्र सः महारणः अभूत्।

शब्दार्थ- पातितैः-मार कर गिराये गए, रथनागाश्वैः-रथैः नागैःअश्वैः च तैः रथनागाश्वैः, अगम्या-गन्तुं अयोग्या, वसुन्धरा-वसूनि धारयतीति वसुन्धरा-पृथ्वी।

व्याख्या- देवी के द्वारा मार गिराये गये रथ, हाथियों, अश्वारोहियों और पैदलों की लाशों से पट जाने के कारण वह भूमि जहां यह युद्ध हुआ था आने जाने के योग्य न रही। श्लोक ४१ में कह आये हैं कि दैत्यों की चतुरंगिणी सेना लेकर महिषासुर ने देवी पर आक्रमण किया था। उसी प्रकार यहां रथारोहियों, गजारूढ़ों, अश्वारोहियों और पदातियों के मारे जाने का उल्लेख किया गया है।

शोणितौधा महानद्यःसद्यस्तत्र विसुस्त्रुवुः।

मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम्। ६५

अन्वय- तत्र असुरसैन्यस्य मध्ये वारणासुरवाजिनाम् शोणितौधा महानद्यः विसुस्त्रुवुः।

शब्दार्थ- सद्यः-उसी समय तत्काल, वारणासुरवाजिनाम्-वारणश्च असुरश्च वाजिनश्च

वारणासुरवाजिनः तेषाम् वारणासुरवाजिनाम्-हाथी, घोड़ों और असुरों के शोणितौघाः- शोणितस्य ओघः प्रवाहः यासु-जिनमें रक्त की धारा का ही प्रवाह है, नदी का विशेषण, विसुस्त्रुवुः-वि उपसर्गपूर्वक स्रु गतौ धातु का लिट् बहुवचनान्त। विशेष रूप से बहने लगा।

व्याख्या- उस रणभूमि के मध्य दैत्यों की सेना में उसी समय हाथी, घोड़ों और असुरों के रक्त प्रवाह की बड़ी बड़ी नदियां बहने लगी।

क्षणेन तन्महासैन्यं असुराणां तथाम्बिका।

निन्ये क्षयं यथा वन्हिः तृणदारुमहाचयम्। ६६

अन्वय- यथा वन्हिः तृणदारुमहाचयम् तथा अम्बिका असुराणां तत् महासैन्यं क्षणेन क्षयं निन्ये।

शब्दार्थ- यथा-जिस प्रकार, तथा-उसी प्रकार, तत्-वह तृणदारुमहाचयम्-तृणानि च दारुणि च तृणदारुणि तेषाम् महान् चयः-समूहःतृणदारुमहाचयम् तम् तृणदारुमहाचयम्, तिनकों और लकड़ी के ढेर को, क्षणेन-क्षण भर में क्षयंनिन्ये-नष्ट कर दी।

व्याख्या- जिस प्रकार आग तिनकों और लकड़ी के ढेर को क्षण भर में राख में परिणत कर देती है, उसी प्रकार अम्बिका ने असुरों की उस महान सेना को क्षण भर में नष्ट कर दिया।

रहस्य- पहिले कह आये हैं कि कबन्ध हाथों में खड्ग, शक्ति और तेग लेकर मार करने लगे। वास्तव में यहां छिन्नशिरसः शब्द ध्यान देने योग्य है। साधना की उच्चावस्था में साधक जब यह अनुभव करने लगता है कि उसने मन को वश में करके इन्द्रियों पर विजय पा ली है, उस अवस्था में यदा कदा उसके मन के किसी कोने में प्रसुप्त पड़ी हुई वासनाजन्य स्मृतियां प्रबल होकर उसे पूर्ण विवेकशून्य कर देती हैं और वह कर्तव्याकर्तव्य भूल कर साधनमार्ग से पतित हो जाता है। उन्हीं को यहां बिना सिर के अन्धाधुन्ध मारकाट करने वाले कबन्ध कहा गया है। इसी प्रकार यहां क्षणेन शब्द विशेष अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अखण्डकाल को खण्डकाल में परिवर्तित करने वाला क्षण ही होता है। देवी काल की क्रियाशक्ति है। उस क्षणपरिणाम के द्वारा ही संसार में संसरण की क्रिया-गतिशीलता और परिणमन की क्रिया सम्पन्न हो रही है। पातंजल योगसूत्र में क्षण की परिभाषा इस प्रकार दी गई है-

क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम्।

विभूतिपाद सूत्र ५२

इसकी भोजवृत्ति में कहा गया है- क्षणः सर्वान्त्यो कालावयवोयस्य कलाःप्रभवितुं न शक्यन्ते। अतः अभेद्यः कालभागः क्षणः। काल का जिससे छोटा कोई विभाग

सम्भव न हो वह क्षण है। एक क्षण से दूसरे क्षण का बोध ही उसका क्रम है। उसकी परिभाषा इस प्रकार की गई है-

क्षणप्रतियोगीपरिणामापरान्तनिर्ग्राह्य: क्रम:।

कैवल्यपाद सूत्र ३२

यहां क्षणेन से उसी क्षण का तात्पर्य है जिसके द्वारा काल: पचति भूतानि कहा गया है। यह विषय अत्यन्त गहन है। आगे भी इस पर विचार किया जा सकेगा।

स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेसर:।
शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति। ६७

अन्वय- स: सिंह: च महानादं उत्सृजन् धुतकेसर: अमरारीणां शरीरेभ्य:असून् विचिन्वति इव।

वा-स: सिंह: च महानादं उत्सृजन् धुतकेसर: असुराणां सैन्यं क्षयं निन्ये तथा तस्मिन् सिंहे असुराणां शरीरेभ्य: असून् विचिन्वति इव सति देव्या ग णै: युद्ध कृतम् इत्यग्रेण अन्वय:।

शब्दार्थ- महांश्चासौ नादश्च महानाद:, उत्सृजन्-कुर्वन्-करते हुए धुतकेसर:-अयाल झाड़ते हुए अयाल फटकारते हुए, अमरारीणाम्-देवशत्रूणाम्-असुरों के, असून्-प्राणान्-प्राणों को, विचिन्वति-चयन करते हुए, चुन चुनकर खा डाले। विचिन्वति इव-इतस्तत: संहर्तुं गवेषयति इव-प्राणान्त करने के लिए इधर उधर ढूंढते हुए। विचिन्वति सति-चुन चुनकर मार डालने पर, वास्तव में एक संकेत और भी है- जिस प्रकार मृतक के शवदाह के पश्चात् अस्थिचयन का कार्य किया जाता है, उसी प्रकार मानो सिंह उस रक्त की महानदी के तट पर दैत्यों के प्राणों का चयन कर रहा था।

व्याख्या- उस सिंह ने जटा फटकारते हुए महानाद-गर्जन किया और असुरों की सेना को नष्ट कर डाला। क्षयं निन्ये पूर्वश्लोक से लिया गया। फिर सिंह के द्वारा असुरों के शरीर से प्राणों का चयन करने पर देवी के गणों ने अन्य असुरों से युद्ध किया। विचिनोति के अर्थ में विचिन्वति का प्रयोग मानकर अर्थ होगा कि सिंह ने गर्जना करके असुरों के शरीर से प्राणों को ले लिया। विचिन्वति को शतृ प्रत्ययान्त मानकर आगे के श्लोक से जोड़ना पड़ेगा। यदि पूर्वापर श्लोकों का अनुवर्तन छोड़ दिया जाय तो सीधा सा अर्थ होगा कि देवी का वाहन सिंह गर्दन के बालों को फटकारते हुए और घोर गर्जन करते हुए इस प्रकार घूमने लगा मानों असुरों के शरीर से प्राणों का चयन कर रहा हो।

इव शब्द इसी अर्थ में उत्प्रेक्षालंकार का सूचक है। जैसा कि कहा गया है-

मन्ये शंके ध्रुवं नूनं प्राय इत्येवमादिभि:।
उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिव शब्दोऽपि तादृश:।

विचिन्वति इव को विचिनोति इव मानना ही तर्कसंगत है।

देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं तथासुरैः।
यथैषां तुतुषुर्देवाःपुष्पवृष्टिमुचो दिवि। ६८

अन्वय- तत्र देव्याः गणैः तैः असुरैः सह तथा युद्धं कृतं यथा दिवि देवाः पुष्पवृष्टिमुचः सन्तः एषां तुतुषुः तुष्टुवुः वा।

शब्दार्थ- तत्र-उस युद्धभूमि में, देव्यागणैः-देवी के उन गणों ने जिनको अम्बिका ने अपने निःश्वासों से उत्पन्न किया था तैः उन, असुरैः-असुरों के साथ तथा-इस प्रकार यथा-जिससे कि, दिवि-अन्तरिक्ष में पुष्पवृष्टिमुचः-पुष्पाणां वृष्टयः ताः मुचन्तीति पुष्पवृष्टिमुचः-फूलों की वर्षा करने वाले तुतुषुः-सन्तुष्टाबभूवुः। तुष्टुवुः इति पाठे स्तुतिंकृ तवन्तः।

व्याख्या- उस रणभूमि में देवी के निःश्वास से उत्पन्न गणों ने भी उन असुरों के साथ ऐसा युद्ध किया कि अन्तरिक्ष में स्थित देवता भी उस युद्ध से तुष्ट होकर फूल बरसाने लगे।

इतिश्री मार्कण्डेयपुराणे देवी माहात्म्ये महिषासुरसैन्यवधो नाम द्वितीयोऽध्यायः।

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराण के देवी माहात्म्य प्रकरण में महिषासुर की सेना के वध संबंधी दूसरा अध्याय पूरा हुआ।

●●●

तृतीयोऽध्यायः

ऋषिरुवाच- निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः।
सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौ योद्धुमथाम्बिकाम्।। १

अन्वय- ऋषिः उवाच- अथ सेनानी चिक्षुरः महासुरः तत्सैन्यं निहन्यमानं अवलोक्य कोपात् अम्बिकां योद्धुं ययौ।

शब्दार्थ- तत्सैन्यं तस्य महिषासुरस्यसैन्यं निहन्यमानं निःशेषेण हन्यमानं पूरी तरह मारे जाते हुए योद्धुं-युधसंप्रहारे धातु का तुमुन् प्रत्ययान्त रूप लड़ने के लिये ययौ-जगाम गया।

व्याख्या- महिषासुर के सेनानी चिक्षुर नामक महान असुर ने जब देखा कि देवी ने युद्धरत समस्त सेना को मार डाला तो वह क्रोधित होकर देवी से युद्ध करने के लिए जा पहुंचा।

स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः।
यथा मेरुगिरेः श्रृंगं तोयवर्षेण तोयदः।।२

अन्वय- सः असुरः समरे शरवर्षेण तथा देवीं ववर्ष यथा तोयदः तोयवर्षेण मेरुगिरेः श्रृंगम्।

शब्दार्थ- समरे-संग्रामे-युद्ध में, शरवर्षेण-शराणां वर्षा इव शरवर्षा तया शरवर्षेण ववर्ष निरन्तरं शर सन्धानं चकार वाणों की झड़ी लगा दी, तोयदः-मेघः, तोयवर्षेण-जलवर्षणेन-जल वरसा कर, मेरुगिरेः-सुमेरु पर्वत के, श्रृंगम्-शिखरम्-चोटी के समान।

व्याख्या-उस असुर ने युद्धभूमि में देवी पर वाणों की ऐसी वर्षा की कि उन वाणों से देवी उसी प्रकार आच्छादित हो गई जिस प्रकार कि मेघों के जल बरसाने से मेरु के शिखर जलमय हो जाते हैं।

रहस्य- यहां किसी टीकाकार ने मेरुगिरेः श्रृंगं का अर्थ- हिमालय का शिखर किया है, क्योंकि पौराणिक मान्यता के अनुसार मेघ मेरु शिखरों के नीचे ही रहकर जल बरसाते हैं। अन्य टीकाकारों ने इसे अभूतोपमा कहा है। इस प्रकार के प्रयोग कवि न करें इसके लिए आचार्यों का कथन है- नभिन्ने वचने लिंगे न हीनाधिकतापि वा। उपमादूषणायालं यत्रोद्वेगो न धीमताम्।

"उपमा में लिंग, वचन का भेद रहते हुए भी हीनता और अधिकता का दोष होने पर भी तब तक उस उपमा को सदोष नहीं माना जाता जब तक कि उससे विद्वज्जनों को उद्वेग न हो। पर यहां आर्षकथन में दोष ढूंढना ही समीचीन नहीं जान पड़ता। ऋषि का संकेत समझे बिना ही ऐसा कह दिया गया है। पहिले कहा जा चुका है कि सप्तशती

की कथा केवल पौराणिक आख्यान ही नहीं है। उसके कुछ निहितार्थ भी हैं। कथा के साथ-साथ आधिदैविक और आध्यात्मिक स्तर के संकेतों की ओर, प्रतीकों की ओर ध्यान दिए बिना इसका रहस्य समझना साधारण काम नहीं है। यहां मेरुगिरि कहकर मेरुदण्ड का संकेत किया गया है उसका श्रंग जहां भूमध्य में आज्ञाचक्र में इड़ा और पिंगला का मिलन होता है, वही मेरु का शिखर है। अथवा ग्रीवा के पृष्ठवंश के केशरुक को माना जा सकता है। जब कुण्डली जागरण होकर ऊर्ध्वगमन होता है तो षट्चक्रों के म्लान कमल दल ऊर्ध्वमुख हो जाते हैं। प्रकाश की लहरियां अपनी ज्योतिर्मय किरणों से मेरुदण्ड में अकल्पनीय अनिर्वचनीय अनुभव की सृष्टि करती हैं। वही कुण्डलिनी जब सहस्रार स्थित चन्द्र का दर्शन करती है तो समस्त नाड़ियों का अमृतवर्षा से आप्यायन होता है। इसी के लिए कहा गया है- प्रकाशमाना प्रथमप्रयाणे प्रतिप्रयाणे- ऽप्यमृताय-माना "उसी अमृत वर्षा की उपमा देते हुए यहां- यथा मेरुगिरेः श्रंगं तोयवर्षेण तोयदः कहा गया है। रहस्य समझ में आने पर यह साधकों और सुधीजनों को उद्वेगजनक होने के स्थान पर आह्लादकारक ही हो सकती है। तब यह अभूतोपमा न रहकर यथार्थानुभव संवेद्य बन जाती है। इसी के लिए तो-गलितसुधया सिक्तगात्रा प्रकामं कहा गया है।

तस्य छित्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान्।
जधान तुरगान्वाणैर्यन्तारं चैव वाजिनाम्।३

अन्वय- ततो देवी लीलया एव तस्य शरोत्करान् छित्वा वाणैः तुरगान् वाजिनां यन्तारं च जघान।

शब्दार्थ- ततः तभी, लीलया- जैसे खेल खेल में, वाणैः- वाणों से, तस्य-चिक्षुर के शरोत्करान्-शराणां उत्करः समूहः शरोत्करः तान्- शरोत्करान्- वाणों के समूह को छित्वा- काटकर छिन्नभिन्न कर, तुरगान्-अश्वान्-घोड़ों को, कोश के अनुसार- घोटके पीतितुरग तुरंगाश्च तुरंगमाः और- घोटसैन्धवगन्धर्वा हयवाजितुरंगमाः। यन्तारम्-सारथि, कोष के अनुसार- प्राजिता दक्षिणस्थश्च सादी सारथि रुच्यते। सूतः क्षत्ता नियन्ता च यन्ता सव्येष्ठ एव च।

व्याख्या- तभी देवी ने हंसी खेल में ही अपने वाणों से उस असुर के द्वारा की गई वाणवर्षा को छिन्न भिन्न विदीर्ण कर दिया और उसके रथ के घोड़ों तथा सारथि को मार डाला।

चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजं चातिसमुच्छ्रितम्।
विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः।४

अन्वय- देवी आशुगैः सद्यःतस्य धनुः च अतिसमुच्छ्रितं ध्वजं च विच्छेद छिन्नधन्वानं आशुगैः गात्रेषु च विव्याध।

शब्दार्थ- सद्यः तत्काल, उसी क्षण, कोष के अनुसार-सद्यः सपदि तत्क्षणे, आशुगैः-बाणैः, बाणों से कोश के अनुसार- आशुगौ बाणविशिखौ, अतिसमुच्छ्रितम्- सम्यक् उच्छ्रितं उन्नतम् समुच्छ्रितम्- अत्यन्त ऊंचा, कोश के अनुसार- उच्चप्रांशून्नतोदग्रोच्छ्रितास्तुंगे" चिच्छेद-छिन्नं चकार, काट डाला, गात्रेषु-शरीरावयवेषु शरीर भर में, कोश के अनुसार गात्रं वपुः संनहनं शरीरं वर्ष्मविग्रहः, छिन्नधन्वानम्- छिन्नं धनुर्यस्य तं- जिसका धनुष काट दिया गया हो, कोश के अनुसार-धनुश्चापौ धन्वशरासनकोदण्डकार्मुकम्

व्याख्या- देवी ने तत्काल ही उस चिक्षुर के धनुष को काट डाला, उसकी ऊंची ध्वजा को भी काट डाला और उस धनुष रहित को सारे शरीर में अपने बाणों से बींध दिया।

सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः
अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्मधरोऽसुरः। ५

अन्वय- सः असुरः हताश्वः हतसारथिःविरथः छिन्नधन्वा सन् खड्गचर्मधरः देवीं अभ्यधावत।

शब्दार्थ- हताश्वः- हताःअश्वाः यस्य स हताश्वः, हतसारथि-हतः सारथिर्यस्य स हतसारथिः विरथः विगतो रथो यस्य-जो रथहीन हो, छिन्नधन्वा-छिन्नं धन्व धनुर्यस्य जिसका धनुष काट दिया गया। खड्गचर्मधरः खडग और ढाल लेकर, अभ्यधावत- दौड़ा

व्याख्या- जब उस असुर चिक्षुर के रथ के घोड़े मारे गाए, सारथि मारा गया और वह रथहीन हो गया तो हाथ में ढाल तलवार लेकर देवी की ओर दौड़ा।

सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्धनि।
आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान्।६

अन्वय- अतिवेगवान् सः तीक्ष्णधारेण खड्गेन सिंहं मूर्धनि आहत्य देवीं अपि सव्ये भुजे आजधान।

शब्दार्थ- अतिवेगवान्- अत्यन्त शीघ्रता से, तीक्ष्णधारेण-तीव्र धार वाले, मूर्धनि- मस्तक पर, आहत्य-प्रहार करके, सव्ये-वामे-भुजे वायीं भुजा पर आजधान-प्रहार किया।

व्याख्या- अत्यन्त शीघ्रता करने वाले चिक्षुर ने बड़ी तेजी से तेज धार वाली तलवार से सिंह के मस्तक पर वार किया और देवी की भी बांयीं भुजा पर प्रहार किया।

तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन।
ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः।७

अन्वय- हे नृपनन्दन, तस्य खड्गः तस्याः भुजं प्राप्य पफाल ततः सः कोपात्

अरुणलोचनः सन् शूलं जग्राह।

शब्दार्थ- नृपनन्दन-राजपुत्र, सुरथ के लिये ऋषि का संबोधन, तस्याः देवी के, भुजं प्राप्य- भुजस्य स्पर्शानन्तरम्-भुजा का स्पर्श होते ही, पफाल-टूट कर गिर गया, ततः तब अरुणलोचनः- अरुणे नयने यस्य सः अरुणलोचनः-क्रोधसे जिस के नेत्र लाल हो रहे हैं, शूलं-शूल को जग्राह-ग्रहण किया।

व्याख्या- ऋषि ने राजा सुरथ से कहा कि हे राजपुत्र, जब देवी की बाहु से स्पर्श होते ही चिक्षुर का खड्ग उछल कर टुकड़े होकर दूर जा गिरा तो उसने क्रोध से लाल लाल आंखें करते हुए शूल हाथ में लिया।

चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः।

जाज्वल्यमानं तेजोभी रविबिम्बमिवाम्बरात्।८

अन्वय- सः महासुरः ततः तच्छूलम् तु तेजोभिः अम्बरात् जाज्वल्यमानं रविबिम्बम् इव भद्रकाल्यां चिक्षेप।

शब्दार्थ- तेजोभिः-रशिमभिः अपने तेज से सूर्यपक्ष में किरणों से, अम्बरात्- आकाश से, रविबिम्बम् इव-सूर्य के बिम्ब के समान, जाज्वल्यमानम्-देदीप्यमानम्- अत्यन्त दीप्ति सहित, भद्रकाल्याम्-भद्रकाली देवी का नाम, देवी भद्रं मंगलम् सुखं कलयति स्वीकरोति भक्तेभ्यो दातुम् इति भद्रकाली-भद्र का अर्थ होता है- मंगल, सुख, कल्य कल्याण कलयति का अर्थ स्वीकरोति जो भक्तों का कल्याण करने वाली वह भद्रकाली, वा भद्रा च सा कालस्य शक्तिः भद्रकाली, जो कल्याणकारी और काल की कलना में समर्थ शक्ति है वह भद्रकाली।

व्याख्या- उस महासुर चिक्षुर ने यह देदीप्यमान शक्ति काली के ऊपर उसी प्रकार छोड़ी मानो आकाश से सूर्य का बिम्ब ही गिर रहा हो।

दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुंचत।

तेन तच्छतधा नीतं शूलं सच महासुरः। ९

अन्वय- तत् आपतत् शूलं दृष्ट्वा देवी शूलं अमुंचत तेन तत् शूलं शतधा नीतम् स च महासुरः च शतधाः नीतः। तच्छूलं शतधा तेन नीतं-ऐसा भी पाठ है।

शब्दार्थ- उस चिक्षुर के द्वारा प्रयुक्त वह शूल आपतत्-आगच्छत्-आते हुए अमुंचत-छोड़ा प्रयोग किया, तेन-उस देवी द्वारा प्रयुक्त शूल से, तत्- चिक्षुर के द्वारा प्रयुक्त शूल, शतधा-सौ प्रकार, यहां अर्थ सौ-सौ टुकड़ें, स च और वह महासुरः। महा असुर चिक्षुर भी उस शूल से सौ टुकड़े हो गया।

व्याख्या- जब देवी ने उस चिक्षुर दैत्य के द्वारा प्रयुक्त शूल को अपनी ओर आते देखा तो उन्होंने भी उस शस्त्र के प्रतीकार के लिए शूल का प्रयोग किया, उस देवी के

द्वारा प्रयुक्त शूल से उस असुर के फेंके गए शूल के सैकड़ों टुकड़े हो गये तथा उस असुर के भी खंड-खंड हो गये।

हते तस्मिन् महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ।

आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः। १०

अन्वय- तस्मिन् महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ हते सति त्रिदशार्दनः चामरः गजारूढ़ः सन् आजगाम।

शब्दार्थ- तस्मन्- सति सप्तमी के अनुसार उस, महावीर्ये-अतिबलिष्ठे, अत्यन्त बलवान चमूपतौ-चमूनां पतिः चमूपति-सेना का स्वामी, एक चमू में ७२९ रथ, ७२९ हाथी, २१८७ सवार और ३६४५ पैदल सैनिक होते हैं। त्रिदशार्दनः-अमरशत्रुः-देवताओं को पीड़ित करने वाला, गजारूढ़ः गजे आरूढ़ः सन्- हाथी पर सवार होकर, आजगाम-रणभूमि में आया।

व्याख्या- महिषासुर के अति बलशाली सेनानायक चिक्षुर के मारे जाने पर चामर नाम का देवशत्रु हाथी पर आरूढ़ होकर युद्ध करने के लिए आया।

सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिका द्रुतम्।

हुंकाराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम्।। ११

अन्वय- सः अपि देव्याः, देव्यै के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग वा देव्याः प्रतिधातनाय शक्तिं मुमोच। अथ अम्बिका द्रुतं ताम् हुंकाराभिहतां अतः निष्प्रभाम् कृत्वा भूमौ पातयामास।

शब्दार्थ- देव्याः देवी को लक्ष्य कर, देव्यै के स्थान पर षष्ठी विभक्ति शेषे षष्ठी के अनुसार है, मुमोच-प्रयोग किया, अथ-तदनन्तरम्- उसके तत्काल बाद ही, द्रुतम्-शीघ्रं कोश के अनुसार-लघुक्षिप्रमरं द्रुतम्, हुंकाराभिहताम्-हुंकारेण अभिहतां पराभूताम् हुंकार से प्रतिहत, निष्प्रभाम्-प्रभावरहिताम् प्रभाव रहित वा तेजरहित तीव्रतारहित

व्याख्या- उस चामर दैत्य ने भी देवी पर शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रहार किया। तब अम्बिका ने शीघ्रता से उस शक्ति को हुंकार मात्र से पराभूत करते हुए निष्प्रभाव करके भूमि पर गिरा दिया।

रहस्य- ऊपर युद्ध का जो वर्णन किया गया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि युद्ध सामान्य अस्त्रों से नहीं, मन्त्र-शक्तियों के द्वारा लड़ा जा रहा है-

ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः। चिक्षेपच ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः। जाज्वल्यामानं तेजोभिः रविविम्बमिवाम्बरात्। दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुंचत। तेन तच्छतधा नीतं शूलं स च महासुरः। इन पंक्तियों के ध्यान से पढ़ने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि चिक्षुर ने जो शूल छोड़ा वह कोई लौहनिर्मित बरछी अथवा भाला नहीं

है। वह अस्त्र की मन्त्रशक्ति है जो आकाश में सूर्यबिम्ब के समान देदीप्यमान हो रही है। उस शूल का प्रतिकार यदि साधारण शूल से होता तो उसके दो टुकड़े हो जाते और देवी का अस्त्र भी लक्ष्य पर पहुंच कर शान्त हो जाता। पर यहां ऐसा नहीं है। देवी के मन्त्र से असुर के शूल के सैकड़ों टुकड़े होते हैं। इतना ही नहीं, उसी शूल से उसके प्रयुक्त अस्त्र के छिन्न-भिन्न हो जाने पर वह असुर भी मारा जाता है और इस श्लोक में तो और भी स्पष्ट कर दिया गया है कि चामर के द्वारा प्रेरित शूल हुंकार से प्रत्याख्यात होता है निष्प्रभाव होता है। तलवार कमलकोमल गात के स्पर्श से टूट कर गिर जाती है। अतः जो स्वयं मन्त्रमयी है जिसकी शक्ति से मन्त्र प्रभाव सहित होते हैं उसके सामने असुरों की प्रभावोत्साहमन्त्रजाः शक्ति व्यर्थ तो होगी ही, निष्प्रभाव तो होगी ही वाचस्पत्यं के अनुसार हुम् प्रतिरोध परक है। हुम् के संबंध में बीजनिघण्टु में कहा गया है-

व्योमास्यः कालरात्र्याढ्यो वर्म बिन्दीन्दुसंयुतः।
कथितं कवचं बीजं कुलाचारप्रियेऽमले।
तथा च-गर्जिनी धूमभैरव्यो दक्षवामपयोधरी।

व्योमास्यः कालव क्त्राढ्यो वर्मबिन्दीन्दुसंयुतः तथा - हुं वर्मबीजं यमः यहां जो यमः कहा गया है, वह मारणमन्त्र का संकेत है। आगे धूम्रलोचन के संबंध में कहा गया है- हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः।

भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः।
चिक्षेप चामरः शूलं वाणैस्तदपि साच्छिनत्।१२

अन्वय- चामरः शक्तिं भग्नां निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः शूलं चिक्षेप सा तत् अपि बाणैः अच्छिनत्।

शब्दार्थ- भग्नाम्- खण्डिताम्, टूटा हुआ, निपतिताम्-बेकार होकर गिर जाना, क्रोधसमन्वितः- क्रोधोन्मत्तः, क्रोध से भरकर, चिक्षेप- फेंका, प्रयोग किया, सा-चण्डिका, तत्- उस शूल को अपि-भी अच्छिनत्- छिन्नभिन्न कर दिया।

व्याख्या- जब असुर चामर ने देखा कि उसकी फेंकी हुई शक्ति को देवी ने खंड खंड करके पृथ्वी पर गिरा दिया है तो उसने अत्यंन्त क्रोध के आवेश में शूल का प्रयोग किया। देवी ने बाणों से उस शूल को भी छिन्नभिन्न कर दिया।

ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरस्थितः।
बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा। १३

अन्वय- ततः सिंहः उच्चैः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरस्थितः सन् तेन त्रिदशारिणा बाहुयुद्धेन युयुधे।

शब्दार्थ- समुत्पत्य- उछल कर, गजकुम्भान्तरे-हाथी के कपोलों पर स्थित होकर तेन- उस चामर नाम के त्रिदशारिणा-देवशत्रु के साथ बाहुयुद्धेन-बाहुभ्यां प्रवर्तितेन युद्धेन भुजाओं से युयुधे युद्ध करने लगा। उच्चैः बाहुयुद्धेन का भी विशेषण हो सकता है और समुत्पत्य का भी। अर्थ वही तीव्रतर वेग से है।

व्याख्या- तब देवी के वाहन सिंह ने उछल कर उस हाथी के गण्डस्थल पर स्थित होकर उस चामर से बाहुयुद्ध प्रारंभ कर दिया जिस पर वह चक्षुर बैठा हुआ था।

युद्ध्यमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ।
युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः।१४

अन्वय- ततः तु तौ युद्धमानौ तस्मात् नागात् महीं गतौ सन्तौ अतिदारुणैः प्रहारैः अतिसंरब्धौ युयुधाते।

शब्दार्थ- ततः- बाहुयुद्ध में प्रवृत्त हो जाने पर तौ-चामर और सिंह, युद्धमानौ-युद्ध करते हुए, तस्मात नागात्- उसी हाथी से महीं गतौ-धरती पर आ गए। अतिसंरब्धौ- रभ राभस्ये धातु से सन् उपसर्ग लगने परक्त प्रत्ययान्त रूप संरब्ध उसका द्विवचन संरब्धौ सम् उपसर्ग से त्वरा के स्थान पर उत्साह और क्रोध के अर्थ में प्रयुक्त जैसा कि कहा है- उपसर्गेण धात्वर्थों बलादन्यत्र नीयते। अतिसंरब्धौ का अर्थ हुआ- अन्यन्त क्रोधित होकर अथवा उत्साह में भरकर अतिदारुणैः- कोश के अनुसार- दारुणो रसभेदे ना त्रिषु तु स्याद्भयावहे। अत्यंत भयावह घोर, भयंकर, प्रहारैः घात प्रतिघात।

व्याख्या- तब वे दोनों- चामर और सिंह- युदध करते हुए उस हाथी से भूमि पर आ गए और अत्यन्त क्रोधित होकर एक-दूसरे पर अति भयंकर प्रहार करते हुए युद्ध करने लगे।

रहस्य- नागान्महीं गतौ में नाग से सुप्तनागोपमा ह्येषा-कुण्डलिनी शक्ति का संकेत और महीं से मूलाधार का संकेत है। मूलाधार ही धरा का चतुष्कोणचक्र है।

ततो वेगात्खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा।
करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक्कृतम्। १५

अन्वय- ततः वेगात्खम् उत्पत्य निपत्य च मृगारिणा चामरस्य शिरः करप्रहारेण पृथक्कृतम्।

शब्दार्थ- वेगात्-जवात् कोश के अनुसार- वेगो रयप्रवाहयोः शीघ्रता से, खम्-आकाशे-आकाश में, उत्पत्य- उछल कर, निपत्य-नीचे आकर, मृगारिणा- सिंहेन, मृगाणां अरिः शत्रुःतेन मृगारिणा, सिंह ने, करप्रहारेण-करकृतप्रहारेण-हाथ के प्रहार से, पृथककृतम्-दूरीकृतम्-काटकर गिरा दिया।

व्याख्या- तब सिंह ने बड़े वेग से आकाश में उछलकर और फिर नीचे आकर

अपने कर के प्रहार से चामर का सिर उड़ा दिया धड़ से अलग कर दिया।

उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः।
दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः।१६

अन्वय- रणे देव्या शिलावृक्षादिभिः उदग्रः हतः करालश्च दन्तमुष्टितलैः च निपातितः।

शब्दार्थ- रणे- संग्रामे युद्ध में, शिलावृक्षादिभिः- शिलाभिः पाषाणैः तरुभिश्च प्रस्तरप्रहारैः तरुप्रहारैच- पत्थर और पेड़ों से हतः- मारा गया, दन्तमुष्टितलैः-दन्तानां गजदन्तनिर्मितैः मुष्टिभिः कृतैः प्रहारैः मुष्टिभिः कृतैः प्रहारैः तलप्रहारैश्च- दांतों, घूसों और थप्पड़ों की चोट से, निपातितः मारा डाला।

व्याख्या- उदग्र देवी के द्वारा पत्थरों और वृक्षों की मार से युद्ध में मारा गया, और कराल को देवी ने मुक्कों, थप्पड़ों और दांतों के प्रहार से मार डाला।

देवी क्रुद्धा गदापातैः चूर्णयामास चोद्धतम्।
बाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम्। १७

अन्वय- देवी क्रुद्धा गदापातैः उद्धतम् चूर्णयामास तथा बाष्कलं भिन्दिपालेन चूर्णयामास ताम्रं अन्धकं च बाणैः चूर्णयामास।

व्याख्या- देवी ने इसी प्रकार क्रोध में भरकर गदा के प्रहारों से उद्धत नामक असुर को मार डाला, बाष्कल को गोफन की चोटों से और ताम्र और अन्धक को बाणों के प्रहार से मार डाला।

उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम्।
त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी।१८

अन्वय- तथा परमेश्वरी उग्रास्यं उग्रवीर्यं महाहनुं च त्रिनेत्रं च त्रिशूलेन जघान। त्रिनेत्रा पाठ मानकर यह परमेश्वरी का विशेषण होगा।

व्याख्या- इसी प्रकार परम ऐश्वर्य सम्पन्ना देवी ने उग्रास्य, उग्रवीर्य, महाहनु और त्रिनेत्र नामक असुरों को त्रिशूल के आधात से मार डाला। यदि त्रिनेत्रा पाठ मानें तो उस तीन नेत्रों वाली परमेश्वरी ने उग्रास्य, उग्रवीर्य और महाहनु नामक असुरों को त्रिशूल से मार डाला।

बिडालस्यासिना कायात्पातयामास वै शिरः।
दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम्। १९

अन्वय- देवी असिना बिडालस्य शिरः कायात् पातयामास दुर्धरं दुर्मुखं च उभौ शरैः यमक्षयं निन्ये।

शब्दार्थ- यमक्षयं-यमसदनम् कोश के अनुसार- क्षयो रोगान्तरे वेश्म कल्पान्तापचयेषु च तथा क्षयो गेहे च कल्पान्तेऽपचये रुजि।

व्याख्या- देवी ने बिडाल नामक असुर का सिर तलवार से काट डाला। दुर्धर और दुर्मुख दोनों को बाणों से यमलोक को पहुंचा दिया- मार डाला।

एव संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः।
माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान् गणान्।२०

अन्वय- एवं स्वसैन्ये संक्षीयमाणे सति महिषासुरः माहिषेण स्वरूपेण तान् गणान् त्रासयामास।

शब्दार्थ- एवं- इस प्रकार स्वसैन्ये- अपनी सेना के, संक्षीयमाणे सति- नाश हो जाने पर, माहिषेण-महिष का, त्रासयामास- त्रसी उद्वेगे धातु से त्रासयामास कोश के अनुसार त्रासो भये भय दिखाने लगा, सताने लगा। तान् गणान्-निःश्वासम्भवान् जो देवी के निःश्वास से उत्पन्न हुए थे।

व्याख्या- इस प्रकार अपनी सेना का क्षय होते देखकर महिषासुर ने भैंसे के रूप में ही देवी के गणों को सताना प्रारंभ कर दिया उन्हें भय दिखाने लगा।

रहस्य- महिष तामसी वृत्तियों का प्रतीक है। सात्विक भावों से उत्पन्न सदवृत्तियों को तामसी वृत्तियां प्रबल होकर अभिभूत करने का प्रयत्न करती हैं। जैसा कि गीता में बताया गया है-

रजस्तमश्चाभिभूय सत्वं भवति भारत।
सत्वं रजस्तम इति तमःसत्वं रजस्तथा।

अर्थ पूर्व में दिया जा चुका है।

कांश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान्
लांगूलताडितांश्चान्यान् श्रंगाभ्यां च विदारितान्। २१
वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च।
निःश्वासपवनेनान्यान्पातयामास भूतले।२२

अन्वय- सः महिषासुरः कांश्चित् तुण्डप्रहारेण अपरान् खुरक्षेपैः अन्यान् लांगूलताडितान् अन्यान् च श्रंगाभ्यां विदारितान् कांश्चिद् वेगेन अपरान् नादेन च भ्रमणे नअन्यान् निःश्वासपवनेन भूतले पातयामास।

शब्दार्थ- तुण्डप्रहारेण- कोश के अनुसार- वक्त्रास्ये वंदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्। तुण्डेन वक्त्रेण कृतप्रहारेण आघातेन- थूथुन के प्रहार से, खुरक्षेपैः- क्षिप प्रेरणे धातु से क्षेप खुरों के संचार से, खुरों से कुचल कर, लांगूलताडितैः लांगूलेन पुच्छेन

ताडितैः- पूंछ के फटकारने से, वेगेन जवेन रयेन, नादेन- गर्जन करके, भ्रमणेन- परितः भ्रमणेन चारों ओर चक्कर लगाकर, निःश्वासपवनेन- नथुनों की फुंकार से भूतले- पृथ्वी पर, पातयामास-गिरा दिया।

व्याख्या- ऊपर कह आये हैं कि महिषासुर ने गणों को त्रस्त करना प्रारंभ किया, उसी के संबंध में कहते हैं कि किसी वा किन्हीं गणों को उसने अपनी थुथुनी से, किन्हीं को खुरों से रोंदकर, किन्हीं को पूंछ फटकारते हुए, किन्हीं को दोनों सीगों के प्रहार से विदीर्ण करके, किसी को वेग से, अन्यों को गर्जना से दूसरों को चारों ओर घूमते हुए और किन्हीं को केवल अपनी सांसों से ही भूतल पर गिरा दिया।

रहस्य- देवी के निःश्वासों से उत्पन्न गण मर तो सकते नहीं, इसलिए महिषासुर उन्हें केवल भूमि पर गिरा सका। दूसरे अस्त्रों के स्थान पर असुर के द्वारा भी नादशक्ति और निःश्वास का प्रयोग किया गया है।

निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः।
सिंहं हन्तुं महादेव्याः कोपं चक्रे ततोऽम्बिका।२३

अन्वय- सः असुरः प्रमथानीकं निपात्य महादेव्याः सिंहं हन्तुं अभ्यधावत ततः अम्बिका कोपं चक्रे।

शब्दार्थ- प्रमथानीकम्- प्रमथानां गणानाम् अनीकम् सैन्यं- गणों की सेना को समूह को निपात्य-नितरां पातयित्वा भूमि पर गिराकर अभ्यधावत- दौड़ा, कोपं चक्रे-क्रोधं चकार।

व्याख्या-महिषासुर इस प्रकार उन गणों के समूह को परास्त कर देवी के सिंह को मारने के लिए दौड़ा तब अम्बिका ने अत्यन्त क्रोध किया।

सोऽपि कोपान् महावीर्यः खुरक्षुण्णमहीतलः।
श्रृंगाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च।२४

अन्वय- कोपात् खुरक्षुण्णमहीतलः सः अपि महावीर्यः श्रृंगाभ्याम् उच्चान् पर्वतान् चिक्षेप च ननाद च।

शब्दार्थ- कोपात्-क्रोधात् खुरक्षुण्णमहीतलः- खुरैः क्षुण्णं महीतलं येन सः जिसने अपने खुरों से भूतल को मसल डाला, क्षुदिर् सम्पेषणे धातु का क्तप्रत्ययान्त रूप- क्षुण्णम्। श्रृंगाभ्याम्- दोनों सींगों से, चिक्षेप-क्षिप्तवान् ननाद-नादं कृतवान्।

व्याख्या- वह महिषासुर भी क्रोध से अपने अगले खुरों से भूतल को जैसे पीस डालना चाहता हो इस प्रकार अपने सीगों से ऊंचे-ऊंचे पर्वतों को देवी की ओर फेंक कर गरजने लगा।

महीतल- मूलाधार, पर्वत- मेरुदण्ड और नाद इन शब्दों पर ध्यान देने से अध्यात्म पक्ष में अर्थ स्पष्ट होता चलेगा।

वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत।

लांगूलेनाहतश्चाब्धि: प्लावयामास सर्वत:।२५

अन्वय- तस्य वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही व्यशीर्यत अब्धि: च लांगूलेन आहत: सन् सर्वत: प्लावयामास।

शब्दार्थ- तस्य-उस महिषासुर के, वेगभ्रमणविक्षुण्णा- वेगात् रयात् भ्रमणेन विक्षुण्णा विशेषण सम्पिष्टा सती, व्यशीर्यत- विशीर्णा आहत:-प्रताड़ित: अब्धि:- समुद्र: सर्वत: सर्वत्र प्लावयामास-जलमग्नं चकार।

व्याख्या- उस महिषासुर के द्वारा चारों ओर बड़े वेग से घूमने के कारण स्थान स्थान पर धरती में दरारें हो गई। उसके पूंछ के ताड़न से आहत होकर समुद्र का जल सब ओर भर गया। पृथ्वी जलमय हो गई।

धुतश्रृंगविभिन्नाश्च खण्डं खण्डं ययुर्घना:।

श्वासानिलास्ता:शतशो निपेतुर्नभसोऽचला:।२६

अन्वय- तेन धुतश्रृंगविभिन्ना:च घना: खण्डं खण्डं ययु: श्वासानिलास्ता: शतश: अचला: नभस: निपेतु:।

शब्दार्थ- तेन धुतश्रृंगविभिन्ना:- धुताभ्यां श्रृंगाभ्यां विभिन्ना: विदारिता: सींगों के कम्पन से विदीर्ण होकर, घना: मेघा: संहता: मेघा: खण्डं खण्डं ययु:- खण्ड खण्ड होकर बिखर गए। धूञ कम्पने धातु से धुत, श्वासनिलास्ता:- श्वासवायुना अस्ता: क्षिप्ता: असु क्षेपणे से अस्ता: शतश:- सैकड़ों, अचला: पर्वता: नभस:- आकाशात् निपेतु:- निपतिता:।

व्याख्या- उस महिषासुर का आकार इतना विशाल था कि उसके सींग आकाश को छूते थे। उसने जब अपने सींगों को इधर-उधर हिलाया तो मेघों के समूह खण्ड खण्ड हो होकर बिखर गए। क्रोध से नथुने फुलाकर उसने जो नि:श्वास छोड़े उनसे सैकड़ों पर्वत आकाश में उड़ गए और फिर आकाश से पृथ्वी पर आ गिरे।

इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम्

दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाकरोत्।२७

अन्वय- इति क्रोधसमाध्मातं महासुरं आपतन्तं दृष्ट्वा सा चण्डिका तद्वधाय कोपं अकरोत्।

शब्दार्थ- क्रोधसमाध्मातं- क्रोधेनोद्दीप्तम्, क्रोधाग्नियुक्तम्, क्रोधेन समन्तात् आविष्टम्

क्रोधविजृम्भितम्, ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः धातु से आध्मात बना क्रोधेन आध्मातः समन्ततः आध्मातं समाध्मातम् अतः क्रोधसमाध्मातं के दो अर्थ हुए- क्रोध के कारण धोंकनी के समान फूला हुआ और क्रोध में शेखी बघारता हुआ, यहां दोनों ही अर्थ अभिप्रेत हैं। आपतन्तम्- अभ्यधावन्तम् अपनी ओर तेजी के साथ आते हुए, तद्वधाय तस्य महिषासुरस्य वधाय हन्तुम्- महिषासुर को मारने के लिए।

व्याख्या- इस प्रकार क्रोध से उफनते हुए वा शेखी बघारते हुए देवी ने महिषासुर को अपनी ओर झपटते देखकर क्रोध में भरकर उसके मारने का निश्चय किया।

सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम्।

तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे।२८

अन्वय- सा महामृधे तस्य पाशं क्षिप्त्वा वै महासुरम् बबन्ध सः अपि बद्धः माहिषं रूपं तत्याज।

शब्दार्थ- मृधु हिंसायाम् धातु से मृध-युद्ध के अर्थ में, कोश के अनुसार- युद्धमायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम्। मृधमास्कन्दनं संख्यम् महामृधे-महायुद्धे, महासंग्रामे, तस्य-उसको के अर्थ में, क्षिप्त्वा-क्षिप प्रेरणे धातु का रूप अर्थ-फेंककर,

व्याख्या- तब चण्डिका ने उसे पाश फेंककर बांध लिया। इस प्रकार उस महारण में पाश से बंध जाने पर उसने महिष का रूप त्याग दिया।

ततः सिंहो भवत्सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः।

छिनत्ति तावत् पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत। २९

अन्वय- ततः सद्यः सः सिंहः अभवत् अम्बिका यावत् तस्य शिरः छिनत्ति तावत् सः खडगपाणिः पुरुषः अदृश्यत

शब्दार्थ- ततः- महिष का रूप त्याग करने के पश्चात, सद्यः- उसी समय, यावत्- ज्योंही, छिनत्ति- छेत्स्यति यावत्पुरा निपातयोर्लट् इस नियम के अनुसार भविष्य के लिए यावत् तावत् के संयोग से लट् का प्रयोग किया गया है। तावत्- त्योंही खड्गपाणिः- खड्गः पाणौ यस्य-तलवार धारण किये हुए। छिदिर द्वैधी करणे से छिनत्ति।

व्याख्या- महिष का रूप त्याग कर ज्योंही उसने सिंह का रूप धारण किया तो अम्बिका उसका सिर काटने को हुई कि उसने तत्काल हाथ में तलवार लिए हुए पुरुष का रूप धारण कर लिया और इसी रूप में देखा गया।

तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः।

तं खड्गचर्मणा सार्धं ततः सो भून्महागजः।३०

अन्वय- तत एव देवी आशु तं खड्गचर्मणा सार्धं पुरुषं सायकैः चिच्छेद ततः

सः महागजः अभूत्।

शब्दार्थ- ततः- ज्यों ही महिष खड्गहस्त पुरुष बना त्यों ही आशु- शीघ्र, खड्गचर्मणा सार्ध- तलवार और ढाल लिए हुए उस महिषासुर को, सायकैः- बाणों से चिच्छेद-शरविद्ध किया।

व्याख्या- उस खड्ग और ढाल धारण किए हुए पुरुष को ज्यों ही देवी ने अपने बाणों से बींध दिया त्यों ही वह विशाल हाथी बन गया।

करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च।

कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत।३१

अन्वय- सः महिषः तं महासिंहं करेण चकर्ष जगर्ज च देवी तस्य कर्षतः करं खड्गेन निरकृन्तत।

शब्दार्थ- करेण- शुण्डादण्डेन चकर्ष- आकृष्टवान्, पकड़ कर खींचा, जगर्ज-गर्जनं कृतवान् कर्षतः सिंहस्य कर्षणं कुर्वतः- हाथी जो सिंह को खींच रहा था, निरकृन्तत-चिच्छेद काट डाला।

व्याख्या- महिषासुर ने महागज बनकर उस देवी के सिंह को पकड़ कर खींचा और चिंघाड़ने लगा। तब देवी ने अपने खड्ग से उसकी सूंड काट डाली।

ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः।

तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम्।३२

अन्वय- ततः महासुरः भूयः माहिषं वपुः आस्थितः सन् तथैव त्रैलोक्यं सचराचरम् क्षोभयामास। वा सः चराचरं त्रैलोक्यं क्षोभयामास।

शब्दार्थ- ततः गजरूपं त्यक्त्वा हाथी का रूप त्याग कर, भूयः- पुनः फिर, माहिषम्- महिषस्य इदम्- माहिषम्- भैंसे का, आस्थितः- गृहीतवान्- बन गया, आश्रितः प्राप्तवान् तथैव- पूर्ववदेव, पहिले की ही भांति, सः- उसने, चराचरम्- चराश्च अचराश्च चराचराः तैः सहितं सचराचरम्, क्षोभयामास- क्षोभं प्रापयामास। संक्षुब्धं कृतवान् क्षुब्ध कर दिया।

व्याख्या- उस महिषासुर ने फिर महिष का ही रूप धारण कर तीनों लोकों के जितने भी स्थावर और जंगम प्राणी थे सबको क्षुब्ध क़रना प्रारंभ कर दिया।

ततः क्रुदधा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम्।

पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना।३३

अन्वय- ततः जगन्माता चण्डिका क्रुदधा सती उत्तमं पानं पुनः पुनः पपौ अरुणलोचना च पुनः पुनः जहास।

शब्दार्थ- जगन्माता जगतां जननी- संसार को उत्पन्न करने वाली, क्रुद्धा चण्डिका सती- क्रोध से चण्डिका बनकर रणचंडी बनकर, उत्तमम् पानम्- उत्कृष्ट पेय- अमृत, मधु पपौ- पानं कृतवती, अरुणलोचना- आरक्तनयना, क्रोध के कारण और मदपान से भी जिनके नेत्र लाल हो गए हैं, जहास- हस हसने धातु से लिट् का रूप। वास्तव में देवी ने पान करते हुए महिषासुर का उपहास सा किया। इसके लिए अवहसित और अपहसित प्रयुक्त होते हैं जैसे कि गीता में- यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि किसी की खिल्ली उड़ाना, मजाक उड़ाना, इसके लिए कहा गया है- विकृताकार वाग्वेशचेष्टादेः कुहकाद्भवेत्। तथा- अनुभावोऽक्षिसंकोचः वदन स्मेरतादिकः।

व्याख्या- महिषासुर ने जब अपने उत्पात से त्रैलोक्य को क्षुब्ध कर डाला तब जगदम्बा ने क्रोध से चण्डी का रूप धारण कर लिया उनके दोनों नेत्र लाल हो गए और वे बार-बार मधुपान करने लगी तथा ठठाकर हंसने लगी।

रहस्य- एक टीकाकार के अनुसार-पानात् अरुणलोचना पुनः पुनः जहास-ऐसा अन्वय होना चाहिए। जिसका अर्थ होता है कि मद्यपान से लाल नेत्र होने पर बार-बार हंसने लगी। हंसी का कारण किसी टीकाकार के अनुसार- युद्धं तु न गणयामास-युद्ध को कुछ न गिनते हुए, युद्ध जैसे कोई बड़ी बात न हो। पान का कारण बताया गया है- महिषस्य शिवावतारत्वेन जायमानदयादिविच्छेदाय अत्रमद्यपानम्- महिष शिव के अंश से उत्पन्न होने के कारण, उसके वध के समय कहीं दया का भाव न रह जाये इसलिए मद्यपान। गुप्तवती टीका के अनुसार- तुरीयापि चण्डिका प्रधानहननरूपं कृत्वापिरजोगुणा विर्भावाधिक्येन स्वस्यां महालक्ष्मीत्वममापादितवती इति ध्वननाय मध्ये पानम् आह। ''शक्ति के लिए कहा गया है- तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिस्सीममहिमा- महिषासुर को महत-प्रधान मानकर उसके हनन के लिए रजोगुण का आधिक्य होना चाहिए, इसी को प्रकट करने के लिए अपने में देवी ने महालक्ष्मीत्व की अवतारणा की, इसी का संकेत करने के लिए मद्यपान। देवी भागवत के अनुसार द्राक्षासव पान करना आया है। युद्धकर्ता सामान्यतया मद्यपान करते हैं जिसे वीरपान कहा जाता है- वीरपानं तु यत्पानं वृत्ते भाविनि वा रणे। युद्ध में प्रवृत्त होने के पूर्व जोश बढ़ाने के लिए और युद्ध में विजय के पश्चात आनन्द मनाने के लिए यह पान किया जाता है। सामान्य अर्थ में यह सभी ठीक है।

पहिले कहा गया है कि युद्ध के समय महिषासुर कभी सिंह बन गया तो कभी असिधरपुरुष तो कभी महागज। इसी प्रकार वामन पुराण और देवी भागवत में भी उसके रूपपरिवर्तन के संबंध में आया है। वास्तव में महिषासुर मन में छिपी हुई अतृप्त वासनाओं का ही प्रतीक है। ये इच्छाएं एक रूप में पूरी होने पर दूसरे रूप में प्रकट होती रहती हैं और जीवन में चैन से नहीं बैठने देती। जिनके विषय में कहा गया है-

न जातु कामाः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।

"इच्छाएं जो मन में जन्म लेती हैं, उनकी पूर्ति होते रहने पर उन इच्छाओं- उन कामनाओं का शमन नहीं होता, वरन् जिस प्रकार अग्नि में आहुति देते रहने से अग्नि और वेग से प्रज्ज्वलित होती है, उसी प्रकार कामनापूर्ति होने पर एक के पश्चात दूसरी कामना पैदा हो जाती है। अध्यात्म के क्षेत्र में यही कामनारूपी महिषासुर रूप परिवर्तन कर नये-नये रूपों में समरभूमि में उपस्थित है। उसका नाश आहुति से न होकर मधुवर्षा से ही होता है। अत: देवी के द्वारा मधुपान। इसके लिए एक टीकाकार ने संकेत किया है- उत्तमम् अमृतम् पानं मधु। इसी मधु के विषय में श्रुति का कथन है-

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः।
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता।
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमानस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः।
ऋग्वेद १/६/१८ यजु १३/२७-२९

"ऋत ओर सत्य के मार्ग का अनुसरण करने वाले हम सबके लिए वायु मधुमय हों, प्राण-वायु रसमय हो, अमृतमय हो, सिन्धु-समुद्र हमारे लिए रसमय हो, नदियां हमारे लिए मधुमय हों-शरीरस्थ नाड़ियां हमारे लिए रस बरसाने वाली हों, अमृत से आप्यायन करने वाली हों, औषधियां-वनस्पति अथवा ओष: पाक: आसु धीयत इति औषधय: हमारे अन्न का परिपाक मधुमय हो, जिससे रसादि सप्त धातुओं का पोषण हो। हमारे दिन और रात मधुमय हों-सायण भाष्य के अनुसार उषा से प्रात:काल ही नहीं दिन का भी ग्रहण किया गया है- उतापि चौषस उष:कालोपलक्षितान्यहानि च-हमारे लिए रात्रि मधुकृत् और दिवस मधुवर्षी हों। जैसाकि तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार कहा गया है- या एता: पूर्वपक्षापरपक्षयो रात्रय: ता मधुकृत:, यान्यहानि ते मधुवृषा:-इसी के अनुसार यहां रात्रि पहले और दिन का उल्लेख पीछे से किया गया। यह पृथ्वीलोक हमारे लिए मधुमय हो, वर्षा के द्वारा सबका पालन करने वाला यह अन्तरिक्ष हमारे लिए मधुमय हो। हमारे लिए वन की अधिष्ठात्री देवियां मधुमय हों जिससे कि हमें मधुर रस युक्त फल पुष्पादि उपलब्ध हों, हमें प्राणशक्ति देने वाला सूर्य मधुमय हो, प्राणशक्ति प्रदान करने वाला हो जैसा कि कहा गया है- प्राण: प्रजानामुदयत्येष सूर्य:- अथ च मणिपुरस्थ सूर्य सहस्रार से स्रवति होने वाले मधु का शोषक न बनकर दशदल पदम के विकसित होने से मधुक्षरण करने वाला हो। हमारी इन्द्रियां मधुमय हों अमृतस्रावी हों। हमारी गायें मधुमय दुग्ध देने वाली हों। हमारी गो-वाणी मधुमय हो। हमारी सूर्य नाड़ी पिंगला, चन्द्र नाड़ी इड़ा और मध्यस्थ सुषुम्णा मधुमय हों, मधु अमृत का संचार करने वाली हों।

मधुनक्तमुतोषसोः का किसी ने आंग्ल भाषा में इस प्रकार अनुवाद किया है-

Those joygining day and night

अतः यहां उत्तमं पानं पपौ का अर्थ शान्तनवी टीका के अनुसार- उत्तमं अमृतं पानं मधु ही किया गया है। केवल एक टीकाकार ने पानं-मद्यं अर्थ किया है जो उचित प्रतीत नहीं होता जिसके विषय में आगे कहा जा रहा है।

ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः।

विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान्।३४

अन्वय- बलवीर्यमदोद्धतः सः असुरः अपि ननर्द चण्डिकां प्रति विषणाभ्यां भूधरान् च चिक्षेप।

शब्दार्थ- बलेन वीर्येण मदेन च उद्धतः स च बलवीर्य मदोद्धतः-बल-शारीरिक शक्ति, वीर्य-उत्साह, मद- गर्वइनके कारण उद्धत, अविनीत, ननर्द-जोर से दहाड़ने लगा। विषाणाभ्यां- सीगों से चिक्षेप-फेंके भूधरान्-पर्वत।

व्याख्या- देवी ने इधर मधुपान किया तभी वह असुर महिषासुर अपनी शारीरिक शक्ति और उत्साह की अधिकता से अभिमान में भरकर दहाड़ने लगा और उसने अपने सीगों से उठाकर पर्वतों को देवी को लक्ष्य कर फेंकना प्रारम्भ कर दिया।

सा च तान्प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः।

उवाच तं मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम्। ३५

अन्वय- सा च तेन प्रहितान् तान् शरोत्करैः चूर्णयन्ती सती तं मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरं उवाच। वा-मदोद्धूतमुखरागा सती तं अकुलाक्षरम् उवाच। मदोद्धूत मुखरा तं अगाकुलाक्षरं उवाच मदोद्धूता-च-मुखरागा तं अकुलाक्षरं उवाच।

शब्दार्थ- प्रहितान्-प्रक्षिप्तान्, छोड़े गए, तान्-भूधरान् पर्वतों को, शरोत्करैः-शराणां बाणानां उत्करैः-प्रक्षेपेणन, चूर्णयन्ती-खण्डं खण्डं कुर्वती, टुकड़े टुकड़े करते हुए, तं-महिषासुरम् मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम्-मदेन हर्षेण गर्वेण वा उद्धूतो विवृद्धः मुखस्य रागः अरुणाभा यस्या तेन आकुलानि अक्षराणि यस्मिन्कर्मणि वचने तन्मदोद्धूतमुखरागा- हर्ष और गर्व के कारण जिनके मुख की लालिमा अधिक हो गई है। कोश के अनुसार- मदो रेतसि कस्तूर्यां गर्वे हर्षेभदानयोः। आकुलाक्षरम्-आकुलानि व्यामिश्रितानि अस्पष्टानिअव्यक्तानि अक्षराणि आकुलाक्षराणि यस्मिन्कर्मणि तत् आकुलाक्षरम्। वा मदेन उद्धूतो यो मुखरागस्तेन आकुलानि अक्षराणि यस्यांक्रियायाम् वा मदेन सुराजन्येन उद्धूतः अतिशयितः मुखस्य रागो रक्तिमा यत्र आकुलान्यस्पष्टानि अक्षराणि यस्मिन् कर्मणि तत्- इस प्रकार मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् के निम्न लिखित अर्थ हुए-

१. मदेन का अर्थ मद्यपान से करते हुए- सुरापान के कारण मुख लाल हो जाने के कारण जिसके मुख से ठीक से शब्द नहीं निकल रहे हैं,

२. मधुपान जनित मुख की लाली अधिक हो गई है जिसकी, उस देवी ने लड़खड़ाती हुई वाणी से यह कहा,

३. हर्ष के कारण जिनके मुख की लालिमा बढ़ गई उन देवी ने,

४. गर्व- अभिमान के कारण जिनके मुख की आभा अरुणाभ हो गई है उन देवी ने,

४. मधुरस अमृत के पान से विकसित अरुणाभ मुख वाली देवी ने,

महिषासुर से अकुलाक्षर कहा। अकुलं-हं यही मन्त्र देवी का खड्ग है, इसी के उच्चारण से देवी ने आगे चण्ड का वध किया था। यहां महिषासुर के वध के लिए भी इसी हं का उच्चारण किया है। आर्थर एवलेन के द्वारा सम्पादित तन्त्राभिधान के सन् १९३७ में प्रकाशित वर्णबीज कोश के अनुसार अकुलं हं का वाचक है। अन्य मातृका कोशों के अनुसार अकुल हकार का ही वाचक है। शुक्रश्चाथ हकारोंऽश:प्राण: शान्त: शिवो वियत्। अकुलो नकुलीशश्चहंस: शून्यश्च हाकिनौ- वर्णाभिधान अगाकुला-अग तन्त्रमें रूं कावाचक अकुल ह्कारवाचक अत: ह्रूम्।

व्याख्या- देवी ने महिषासुर के द्वारा सींगों से उठाकर फैंके गए पर्वतों को अपने बाणों के प्रहार से चूर्ण चूर्ण कर डाला और गर्व के साथ उनके मुख पर अरुणिमा आ गई अथवा हर्षातिरेक के कारण मुखमण्डल अरुणाभ हो गया गर्व अथवा हर्ष से उन के मुख पर लाली छा गई और उत्साह में भरकर उन्होंने हं कहा। अथवा गर्व से मुखर होकर उन्होंने ह्रूं कहा। वास्तव में देवी का तो नाम ही अरुणा है- अरुणां करुणातरंगिताक्षीं- आगे अष्टम अध्याय के ध्यान में देवी को अरुणा कहा गया है।

सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार भी ये सात अंग रक्तवर्ण होना भाग्यशाली का लक्षण माना गया है।

-पाणिपादतले रक्ते नेत्रान्तौ च नखस्तथा

तालुजिह्वाधरोष्ठं च सप्तरक्त: सुखी भवेत!

अत: देवी के तालु, जिह्वा नेत्रान्त और नीचे का ओठ तो स्वाभाविक लाली से युक्त होना ही चाहिये। हर्ष और गर्व से उनमें अधिक दीप्ति आ सकती है। संस्कृत के प्राय: सभी टीकाकारों ने मधु का अर्थ मद्य किया है, परन्तु उनसे सहमत होना कठिन है। उसके अनेक कारण हैं जिनमें से कुछ नीचे दिए जा रहे हैं।

-देवी कोई अस्थिचर्ममय शरीरी नहीं हैं वे विद्युददामसमप्रभा हैं, ज्योतिर्मयी हैं। वे तरुणार्कशोणा हैं, नवविद्रुमाभा हैं, बन्धुजीवरुचिरा हैं, सिन्दूरपुंजनिभा हैं, तब भला

मद्यपान से उनके मुख की लालिमा बढ़ेगी। जिन के लिए ऋषि पहले कह आये हैं- विसृष्टौ सृष्टि रूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने तथा संहृतिरूपान्ते-जो सृष्टि स्थिति और लय का कारण हैं, मद्यपान से सामान्य पियक्कड़ की भांति उनकी जीभ लड़खड़ा जायेगी, क्या ऐसा सम्भव है।

२. मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् का सन्धिविच्छेद करते समय टीकाकारों ने मदोद्धूतमुखरागा और आकुलाक्षरम् ही किया है। मदोद्धूतमुखरागा को देवी का विशेषण मान लेने पर भी आकुलाक्षरम् ही माना है। तन्त्रशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों की ओर उनका ध्यान ही नहीं गया जिसके अनुसार अकुलाक्षरम् अपना विशेष अर्थ रखता है।

३. मद का एकमात्र अर्थ मद्य ही नहीं होता। कोश के अनुसार-मदो रेतसि कस्तूयां गर्वे हर्षेभदानयोः-मद का अर्थ वीर्य, कस्तूरी, गर्व, हर्ष और हाथी के मस्तक से झरने वाला मद होता है। उक्त पद में मद के किसी भी अन्य अर्थ की ओर टीकाकारों का ध्यान ही नहीं गया।

४. पहिले देवी के लिए जहासारुणलोचना कहा गया है। महिषासुर के प्रयत्नों और प्रहारों की उपेक्षा करते हुए इस हास का कारण खोजने का किसी टीकाकार ने प्रयत्न ही नहीं किया। यह हंसी क्या उस मद का कारण नहीं बनती जिसे गर्व और हर्ष कहा जाता है। क्या इस हर्ष और अभिमान से मुख की अरुणाभ कान्ति में वृद्धि होना सम्भव नहीं जो केवल मद्यपान को ही अरुणाभा का कारण मानते रहे।

५. वैदिक साहित्य में मधु का अर्थ सरसता, मधुरता और अमृत आया है। वहां मधु सोम और सुरा के साथ उनके विशेषण के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है। जिसे आगे के श्लोक की व्याख्या के साथ अधिक स्पष्ट किया जायेगा।

६. यदि आकुलाक्षरम् ही ऋषि का अभिप्रेत होता तो आकुलाक्षरैः भी तो कहा जा सकता था पर ऐसा नहीं है।

अगले श्लोक की व्याख्या में क्षणम् मूढ़ और मधु के संबंध में विस्तार से विवेचन किया जा रहा है।

देव्युवाच- गर्ज गर्ज क्षणम्मूढ़ मधु यावत्पिवाम्यहम्।
मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः। ३६

अन्वय- मूढ क्षणं गर्ज गर्ज यावत् अहं मधु पिवामि मया त्वयि हते सति अत्र एव आशु देवताः गर्जिष्यन्ति। क्षणम्मूढ गर्ज गर्ज यावत् अहं मधु पिवामि।

शब्दार्थ- पिबामि-पान कर लूं, पूर्व में पपौ कहा यहां पिबामि कहा पहिले भूतकालिक क्रिया फिर वर्तमान कालिक क्रिया का प्रयोग मद के कारण, ऐसा किसी टीकाकार का मत, मधु-क्षौद्र, शहद, अमृत, सुरा, मद्य मूढ-मूर्ख, क्षणम्मूढ-क्षण समय

के उस सूक्ष्मतम भाग को कहते हैं जिसका विभाजन सम्भव न हो। उस क्षण में अखण्डकाल की स्थिति है। एक क्षण से दूसरे क्षण का जो क्रम है, वही हमारे अनुभवगम्य काल का विषय है जिसके लिए कहा गया है- कालः पचति भूतानि। क्षण और उसके क्रम का वास्तविक ज्ञान जिसे हो जाता है, वह परिवर्तनशील काल की परिणमन क्रिया से मुक्त हो जाता है जिसके लिए योगसूत्र में कहा गया है- क्षणतत्क्रमयोः संयमात् विवेकजं ज्ञानम् इसका विषय अत्यन्त दुरूह है इसकी साधना भी गुरूपदिष्ट मार्ग से बिरले संस्कारी व्यक्तियों को सफल होती है।

मया-मेरे द्वारा, किसी के अनुसार लक्ष्मी के द्वारा कोश के अनुसार-इन्दिरा लोकमाता मा क्षीरोदतनया रमा। इस प्रकार मा लक्ष्मी का वाचक उससे तृतीया विभक्ति का रूप मया-लक्ष्मी के द्वारा त्वयि हते सति-तेरे मारे जाने पर देवता:- देवगण, इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता भी, गर्जिष्यन्ति- आनन्दातिरेक से गर्जने लगेंगे। एक ओर सुरथ है जो हृतस्वाम्य: है, दूसरी ओर हृतस्वाम्य: देवता हैं जिन्हें महिषासुर ने अधिकार रहित करके स्वर्ग से निकाल दिया है। एक ओर हमारी इन्द्रियां हैं जिन्हें मन रूपी महिष ने हृतस्वाम्य करके अपनी दासी बना रखा है और उन पर जबरन अधिकार किए बैठा है। अत्र एव-यहीं पर, इसी क्षण

व्याख्या- महिषासुर के द्वारा इस प्रकार रूप बदल बदल कर अपने बल के अभिमान में भरकर दहाड़ने पर देवी ने उससे कहा कि जब तक मैं मधुपान-अमृतपान करती हूं तब तक तू चाहे जितना गर्ज ले, पर यह सब कुछ ही क्षण चलेगा। फिर तो मैं तुझे अभी अभी यहीं पर मारे डालती हूं, तेरे मारे जाने पर फिर देवता हर्षध्वनि के साथ गर्जन करेंगे। क्योंकि उन्हें तेरे आधिपत्य से मुक्ति मिलने के साथ ही अपने अधिकार फिर से प्राप्त हो जायेंगे। उनकी स्वर्ग में वापसी होगी।

विशेष- गुप्तवती टीकाकार ने देवी के मद्यपान के लिए कहा है कि महिषासुर को मारने के लिए देवी में राजसी प्रधान लक्ष्मी का आवेश हुआ और उन्होंने तभी मद्यपान किया। इसी तारतम्य में उन्होंने मया का अर्थ लक्ष्मी के द्वारा- ऐसा किया है।

रहस्य- पहिले कहा जा चुका है कि पान, मधुपान और मदोदधूतमुखरागाकुला और आकुलाक्षरम् के विषय में अन्य टीकाकारों से सहमत होना मेरे लिए कठिन है। उनकी दृष्टि प्रधान रूप से व्याकरण और अभिधा शक्ति पर केन्द्रित रही है। उनकी व्याख्या में तन्त्रशास्त्र और मन्त्रों के रहस्य का उतना ध्यान नहीं रखा गया, जितना कि सप्तशती जैसे मन्त्रशास्त्र के विषय में होना चाहिए था। उन सभी के प्रति अत्यंत श्रद्धा रखते हुए भी उनसे भिन्न मत व्यक्त करने के लिए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि सत्य के उपासक और तथ्यान्वेषी के लिए- शत्रोरपि गुणाः वाच्याः दोषाः वाच्याः गुरोरपि- के सिद्धांत को ही अपनाना पड़ता है। अस्तु

पहिले मधु के संबंध में विचार कर लिया जाय। देवी माहात्म्य अथवा दुर्गासप्तशती का स्थान भक्तों के हृदय में वेद, उपनिषद और आरण्यक आदि से कम नहीं हैं। अनेक स्थानों पर इसमें आर्षप्रयोगों की भरमार है जिसे टीकाकारों ने छान्दसः कहा है। इसलिए मधु शब्द से वेदों में क्या आशय लिया गया है और उनके भाष्यकारों-सायणाचार्य आदि ने उसे किस अर्थ में लिया है।

मधु नो द्यावापृथिवी मिमिक्षताम् ऋग्वेद ५/१/१५ पर सायणभाष्य

द्यावापृथिवी नः अस्मान् मधु मधुना मिमिक्षताम् सिंचताम्।

पृथ्वी और अन्तरिक्ष हम सबको मधुर रस से आप्यायित करें।

आ वर्तिनं मधुना जिन्वथस्पथो- ऋग्वेद ३/७/२१ इस पर सायणभाष्य पथोगमनमार्गान् मधुना जिन्वथः प्रीणयतम् यद्वा एकं वाक्यम्- पथोवर्तिनम् आकाश जिन्वथः हे अश्विनीकुमार मेरे गमन मार्ग को पृथ्वी से लेकर आकाश तक मधुरस से समृदध करें।

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिहवामूले मधूलकम्। अथर्ववेद- १/३४/२ सायणभाष्य- मे जिह्वायाः रसनाया अग्रे मधु क्षौद्रं यथा भवति तथा वर्तस्व तथा जिह्वा मूले रसनाया मूलभागे मधूलकं मधुररसबहुलं यथा भवति तथा तदात्मिका वा वर्तस्व "मेरी जीभ के अग्रभाग में शहद जैसी मिठास हो, ताकि जीभ के मूलभाग में मधुररस की बहुतायत हो। यहां मधु का वही अर्थ अपेक्षित है जो अंग्रेजी के Honey Tongued का है। इतना ही नहीं इससे पूर्व मधुमतः का आशय स्पष्ट करते हुए कहा गया है-

"कायिकवाचिकमानसरूपः अस्मदीयःसकलो व्यापारः मधुररससोपेतः सन् सर्वैरुपादेयो भवतु इत्यर्थः। तथा १/३४/२ के अर्थ सारांश में भी-मदीयः शारीरो मानसो व्यापारश्च त्वत्संनिधानात् माधुर्यरसोपेतः सर्वश्लाध्यो भवतु। मधुमतीरोषधीर्द्यावा आपो मधुमन्तो भवत्वन्तरिक्षम्। ऋग्वेद ३/८/९ तथा अथर्ववेद- २०/१४२/८

"मेरे लिए औषधियां, पृथ्वी, आकाश, जल और अन्तरिक्ष मधुमय हों।

मधुमतीर्न इषस्कृधि। यजुर्वेद ७/२ इस पर उव्वटभाष्य-मधुमतीः मधुर स्वादोपेताः नः अस्माकं इषः अन्नानि कृधि कुरु

महीधरभाष्य- **नः अस्मांक इषः अन्नानि मधुमतीः मधुरररसोपेताः कृधि।**

हमारे अन्नों को आप मधुररस से युक्त करें उनका स्वाद मधुर हो।

इसी प्रकार यदि ऋषि को मद्यपान ही अभिप्रेत होता तो मधु यावत्पिबाम्यहम् के स्थान पर बिना छन्दोभंग के सुरां यावत्पिबाम्यहम् अथवा यावत्सुरां पिबाम्यहम् कहा जा सकता था। मदोदधूतमुखरागा का अर्थ भी जैसा कि इसके ठीक पहिले वाले श्लोक में ननर्दचासुरः सोऽपि वलवीर्य मदोद्धतः महिषासुर के लिए गर्व और हर्ष सूचक किया गया उसी प्रकार मद का अर्थ यहां भी गर्व और हर्ष अधिक समीचीन रहता। आकुलाक्षरम्

के संबंध में पहिले ही कहा जा चुका है कि यह-अकुलाक्षरम् है जिसका अर्थ ''हं'' होता है। आगे भी देवी ने इस हं मन्त्ररूपी खड्ग का प्रयोग किया है-उत्थाय च महासिं हं देवी चण्डमधावत। उसी हं मन्त्र से महिषासुर का वध यहां किया गया है। यदि आकुलाक्षर-लड़खड़ाती वाणी ही ऋषि का अभिष्ट हो तो- उवाचतंमदोदधूत मुखरागा कुलाक्षरम् के स्थान पर उवाचतंमदोदधूत मुखरागाकुलाक्षरैः कहा गया होता- आकुलाक्षरम् यह एक वचन न आता।

यह मधु जिसका पान देवी ने किया क्या है, इस पर भी थोड़ा ध्यान देना उचित होगा। इसके विषय में श्रुति का कथन है-

मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः।
हिरण्यवर्णा मधुकशा धृताची महान्भर्गश्चरति मर्त्येषु।

अथर्व ९/१/४

यह मधु अमृतमय नाभि है, प्रजा का प्राण है, मनुष्यों में दीप्ति के रूप में संचरणशील है।

देवी का यह मद्यपान न होकर अमृतवर्षण है जिससे समस्त तामसी वृत्तियों का जिनका प्रतीक महिष है-क्षय हो जाता है। घटस्तव में कहा गया है-

वर्षन्तीममृतं भवानि भवतीं ध्यायन्ति ये देहिनः
ते निर्मुक्तरुजो भवन्ति रिपवः प्रोजझन्ति तान् दूरतः।

''हे भवानि आपको अमृत की वर्षा करते हुए, जो भी मनुष्य ध्यान करता है, वह रोगमुक्त हो जाता है और उसके शत्रु उसे देखकर दूर से ही भाग खड़े होते हैं। देवी के हाथों में सुराभाजनम् और पानपात्र का उल्लेख हुआ है अतः भौतिक अर्थ में मद्यपान माना जा सकता है।

क्षण और मूढ को टीकाकारों ने दो पृथक शब्द मानकर व्याख्या की है, जबकि मेरे विचार से यह एक ही समस्त शब्द-क्षणम्भूढ़ होना चाहिए जिसके विषय में यहां कुछ कहा जाना आवश्यक है। कोश के अनुसार क्षण-निर्व्यापारनिस्थतौ क्षणः। तथा-क्षणो व्यापाररशून्यत्व मुहूर्तोत्सवपर्वसु तथा च- क्षणं कालविशेषे स्यात्पर्वण्यवसरे महे। व्यापारविकलत्वे च इस प्रकार कोश के अनुसार निर्व्यापारस्थिति का नाम क्षण है।

योगसूत्र पर भोजवृत्ति के अनुसार क्षण काल का सबसे अन्तिम अवयव है जिसका और विभाजन न हो सके- क्षणः सर्वान्त्यः कालावयवो यस्य कलाः प्रभवितुं न शक्यन्ते। काल को समझने के लिये यह जान लेना आवश्यक है कि जिसे हम भूत, वर्तमान और भविष्य के रूप में जानते हैं, वह काल न होकर काल का मापक मात्र है। घड़ी पल, दिन रात मासपक्ष, वर्ष, युग आदि काल के मापक हैं। सूर्य चन्द्र का उदयास्त

भी काल की मापने की घड़ी मात्र है। परन्तु लोकव्यापार में हम इसे काल कहने और इसी को काल मानने के अभ्यस्त हैं। अतः इसे गतिशील काल अथवा खण्डकाल कहना अधिक उपयुक्त होगा। अखण्डकाल सदा एकरस है, उसमें कोई परिणमन क्रिया नहीं होती। विष्णुपुराण में कहा गया है-

अनादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽजरः परः।

काल अनादि और अनन्त है वह भूत-भविष्य और वर्तमान से परे होने के कारण पर है। क्षय वृद्धि जन्य विकार उसमें नहीं हैं अतः अजर है। इसीलिये कहा है-

दिक्कालौ नेश्वरादतिरिक्तौ-देश और काल ईश्वर से अतिरिक्त नहीं हैं। ऊपर जिस गतिशील काल के संबंध में कहा गया है, उसे खण्डकाल कहा जा सकता है। उसे समय कहा जा सकता है। इण् गतौ धातु से सम् उपसर्ग लगने पर समय शब्द बनता है- जिसका अर्थ होता है-गतिशील। वैसे काल के दो भेद करते हुए कहा गया है-

नित्यो जन्यश्च कालौ द्वौ तयोराद्यः परमेश्वरः।

काल दो हैं-नित्य और जन्य जिनमें नित्य काल ही परमेश्वर है। इस नित्य अथवा अखण्डकाल में गतिशीलता की प्रतीति जिसमें होती है, उसे क्रम कहा जाता है। समय के पूर्वापर क्रम से ही हमें निरन्तर होने वाले परिवर्तन का ज्ञान होता है। क्रमु संक्रमणे धातु से क्रम बना है। जिसका अर्थ होता है। संक्रमण। परन्तु संक्रमण किससे। उस नित्य काल में चिच्छक्ति के स्पन्द से लहर उत्पन्न होने को ही चिदानन्दलहरी को ही, शक्ति के उस स्फुरण को ही क्रम कहा जाता है। इसे तान्त्रिक भाषा के अनुसार अकुलबोध समुद्र कहा गया है, जो निश्चल निस्पन्द शिवरूप है। उसमें शक्ति के स्पन्द से लहरों की प्रतीति होना ही क्रम है। निस्पन्द निश्चल अवस्था से तरंगायित होने के बीच की अवस्था का नाम ही क्षण है। निश्चल निस्पन्द अवस्था में क्षण एक है, परन्तु उन तरंगों से बहुत्व की प्रतीत ही क्रम है। इसके लिये पातंजलयोगसूत्र में कहा गया है- क्षण प्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राहयः क्रमः।

"परिणमन क्रिया के द्वारा उस क्षण का निरूपण कराने वाला ही क्रम है।" इस क्षण का ज्ञान बिरले योगियों को छोड़कर किसी को नहीं होता, इसलिए हम सब क्षणम्मूढ हैं। इस निर्व्यापारस्थिति का हमें बोध ही नहीं हो पाता। यहां तक कि गीता में भी कहा गया है- नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। कोई भी कभी भी एक क्षण के लिए भी क्रियाशील न हो ऐसा नहीं होता। पर ऐसा होता है। इसीलिए पूज्यपाद शंकराचार्य ने इसकी व्याख्या में कहा है- अज्ञ इति वाक्य शेषः, इसमें अज्ञ यह छूटा हुआ है, ऐसा मानकर पढ़ना चाहिए। इस प्रकार अखण्डकाल से खण्डकाल अथवा नित्य काल से जन्यकाल के बीच की जो सन्धि है, वही क्षण है। यदि उस क्षण का ज्ञान हो जाय तो-

क्षण तत्क्रमयोः संयमाद् विवेकजं ज्ञानम्। योगसूत्र-३/५२

क्षण और क्रम पर संयम करने से विवेकज ज्ञान होता है- ईश्वर की नित्यता और जगत् की परिवर्तनशीलता के बोध का रहस्य ज्ञात हो जाता है। साधक सदैव आनन्द-प्रतिष्ठ हो जाता है। यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं तत:-की स्थिति को प्राप्त हो जाता है। बोधिचर्यावतार में कामना की गई है कि सभी क्षणविनिर्मुक्त हों।

सर्वे क्षणविनिर्मुक्ता: श्रद्धाप्रज्ञाकृपान्विता:।
आकाराचारसम्पन्ना: सन्तु जातिस्मरा: सदा।

"सभी क्षण और क्रम से विशेष रूप से मुक्त हों, उनमें श्रद्धा, प्रज्ञा और कृपाभाव हो। रूप और आचारवान् हों, उन्हें अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो।"

क्षण और क्रम का रहस्य जाने लेने पर क्षण की साधना से मनुष्य को पूर्वजन्म अथवा जन्मजन्मान्तर का ज्ञान होना सम्भव है।

क्षण की ग्राहयता अथवा उसके अनुभव की विधियां योग, तन्त्र और बौद्धों के अनुसार अलग-अलग हैं, पर उसके पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि हम जिसे देश और काल नामों से जानते हैं, उनमें कितनी एकरूपता है। वर्ष की गणना के लिए-

साठ घड़ी के बराबर एक दिन और तीस दिन का एक मास होता है। बारह मास का वर्ष होता है इस प्रकार एक वर्ष का घट्यात्मक मान १२×३०×६०=२१६०० होता है। इसी प्रकार खगोल अथवा भगण का मान साठ कला का एक अंश और तीस अंश की एक राशि होती है। बारह राशि का भगण अथवा खमण्डल है। इसका कलात्मक मान १२×३०×६०=२१६०० हुआ। इस देश और काल की एकता के साथ पिण्डाण्ड की एकता भी देखिए-

उच्छ्वासे चैव नि:श्वासे हंस इत्यक्षरद्वयम्।
तस्मात्प्राणस्तु हंसाख्य: आत्माकारेणसंस्थित:।
नामैरुच्छ्वासनि: श्वासा: हृदयाग्रे व्यवस्थिता।
षष्टिश्वासैर्भवेत्प्राण: षट् प्राणा घटिका मता।
षष्ठिर्नाडया अहोरात्रं जपसंख्याजपा मनो:।
एकविंशतिसाहस्त्रं षट्शताधिकमीश्वरि।
जपति प्रत्यहं प्राणी सान्द्रानन्दमयीं पराम्।

"श्वास लेना और बाहर निकालने में हं और स: की ध्वनि रहती है। इसलिए प्राण को भी हंस कहा जाता है। नाभि से उठकर हृदय तक यह उच्छ्वास और नि:श्वास का क्रम चलता रहता है। साठ श्वास को प्राण कहते हैं। छ: प्राण की एक घटी होती है और साठ घड़ी का दिनरात होता है। इस प्रकार ६०×६×६०=२१६०० इतनी संख्या का

जप प्राणी प्रतिदिन जाने अनजाने करता रहता है।

इस प्रकार पिण्डाण्ड में भी यह संख्या २१६०० होती है।

योगचूड़ामणि उपनिषद् के अनुसार ह के साथ स्वास बाहर निकालता और स के साथ अन्दर जाता है। हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुन:।

प्रपंचसार में बताया गया है कि इस हं और स: से ही अजपा मन्त्र हंस: बनता है। यदि इस उच्चारण के क्रम में स: को पहिले और हं को पश्चात् मानें तो यही स: अहम् सन्धि से सोऽहम् बन जाता है। इसी के अत्यन्त मन्द ध्वनि के उच्चारण से सकार और हकार का लोप होकर ओम् रह जाता है जिसे प्रणव कहते हैं।

इस प्रकार देश, काल और आत्मा का ऐक्य सिद्ध हो जाने पर क्षण की साधना पर प्रकाश डालना सम्भव हो सकता है।

अकुल बोध समुद्र में चिदानन्दलहरी के विक्षेप से तरंगे उठने लगती हैं। काल में इस क्षोभ के उत्पन्न करने वाली शक्ति को कालसंकर्षिणी शक्ति कहा जाता है। यह तरंगे ही काल के क्रम की बोधक हैं। एक तरंग से दूसरी तरंग के सन्धिकाल को क्षण कहा जाता है। जिस प्रकार सिनेमा की रील पर चित्रों के पृथक पृथक होने पर भी समय का अन्तर सेकण्ड के दशांश से भी कम होने के कारण हमें उनमें सातत्य-निरन्तरता की प्रतीति होती है, उसी प्रकार नित्य काल में तरंगायित जन्य काल की निरन्तरता की प्रतीति होती है। दिन और रात के सन्धिकाल में जो सन्ध्योपासना की जाती है, उसमें अघमर्षण सूक्त के द्वारा उस सन्धिकाल के मूल रूप को समझने का संकेत किया गया है। ऋतं च सत्यंचाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत, ततो रात्र्यजायत तत: समुद्रो अर्णव:, समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। ऋग्वेद-८/८/४८ विशेष जानकारी के लिए उक्त का सायण भाष्य दृष्टव्य।

योगसूत्र के अनुसार साधना का क्रम इस प्रकार है-कुम्भक प्राणायाम के अभ्यास से प्राण और अपान जब स्थिर अवस्था को प्राप्त हों तब पंचतत्वों की धारणा करे पृथ्वी की धारणा में रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द ये पाचों तन्मात्रा रहती हैं। जल पर संयम से एक पृथ्वी तत्व की मात्रा गन्ध, कम होकर चार रह जायेंगी। इस प्रकार तैजस् ध्यान में रस और गन्ध कम होकर तीन मात्रा, वायु में केवल दो मात्रा और आकाश के चिन्तन में केवल शब्द तन्मात्रा रह जाती है। उसके आगे-

अमात्रंतु विचिन्तयेत्। मात्रारहित ब्रहम का चिन्तन करे। कहा गया है- मात्रालिंगपदंत्यक्त्वा पदं गच्छन्त्यनामयम्। अमृतनादोपनिषद्

अमात्र पर ध्यान केन्द्रित होने पर क्षणतत्क्रमयो: संयमाद् विवकजं ज्ञानम्। संयम योग का पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ होता है कि ध्यान, धारणा और समाधि का

एक साथ करना। इस साधना के द्वारा जो ज्ञान होता है, उसके लिए कहा गया है-तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम्। योगसूत्र ३/५४ इस ज्ञान के द्वारा हीकैवल्य अथवा चिच्छक्ति की स्वरूपप्रतिष्ठा होती है। अर्थात् अकुल-बोध-समुद्र में चित् शक्ति के विक्षेप से जो तरंगों का आभास था वह न रहकर नित्यकाल रूप ब्रहम में प्रतिष्ठित हो जाता है।

तन्त्र के अनुसार प्रणव की त्रिधामात्रात्मक साधना करते हुए फिर अर्धमात्रा का अभ्यास करे। कहा गया है- अस्वरेण मकारेण पदं सूक्ष्मं हि गच्छति। इस प्रकार बिन्दु की आधी मात्रा क्रम से आधी होती जाती है। वरिवस्यारहस्य में भास्कराचार्य ने कहा है-बिन्द्वादीनां नवानान्तु संहतिर्नाद उच्यते। ये नव इस प्रकार हैं-

बिन्दु, अर्धचन्द्र, निरोधिका, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समना और उन्मना। बिन्दु की आधी मात्रा फिर अर्धचन्द्र १/४, निरोधिका १/८, नाद-१/१६, नादान्त-१/३२, शक्ति-१/६४, व्यापिका-१/१२८, समना-१/२५६ और उन्मना-१/५१२ उन्मनी अवस्था में न प्राण की गति रहती है और न मन की, इसी को अनाख्यादशा कहा जाता है, यही क्षण की अनुभूति और अखण्डकाल में प्रतिष्ठा है।

तीसरा प्रकार श्वासोच्छ्वास के क्रम का है। स्वरोदय के अनुसार पांच घड़ी का एक आध्यात्मिक अयन माना जाता है। सुविधा के लिए दिन रात में उत्तरायण और दक्षिणायन की कल्पना करें। इस प्रकार तीस घटी का एक अयन हुआ इसमें दस दस घटी की ऋतु मान लें। पाच घटी का एक मास होगा। अब इस पांच घटी को तीस दिन में विभाजित कर लें तब दस पल में एक दिन रात होगा, पांच पल के बीच दिन रात की सन्ध्या होगी। पूर्व में बताया गया है कि साठ श्वास का एक प्राण और छः प्राण की एक घटी होती है। इस प्रकार दस पल का मान एक प्राण का हुआ जिसमें साठ श्वास होते हैं। अतः एक पल में छः श्वास होंगे। इसे अभ्यास क्रम से कम करते हुए उच्छ्वास और निःश्वास के मध्य सन्ध्याकाल मान कर इस का सूक्ष्म विभाजन करने से इस श्वास प्रश्वास काल में ही दिनरात की कल्पना करें। इसमें छत्तीस ऋतु का समय होता है १८ त्रुटि पर सन्ध्याकाल होगा। इसी को और भी सूक्ष्म करते हुए इतने ही समय में अयन मास आदि की कल्पना करने से अनाख्या दशा की सिद्धि होती है। इसका अनाख्या नाम इसलिए है कि उसे कोई नाम देना सम्भव नहीं। क्योंकि यह अवस्था तुरीया और तुरीयातीता से भी आगे की है। अनाख्या का अर्थ होता है जिसकी कोई आख्या-नाम न हो। यह केवल अनुभवगम्य है। जिसके लिए कहा गया है-स्वानुभूत्यैमानाय नमः शान्ताय तेजसे। इस दशा में क्षण और क्रम का अभाव होकर नित्य काल में प्रतिष्ठा होती है।

बौद्धमत के अनुसार शून्य का चिन्तन करने से शून्य की धारणा करने से

क्षणविनिर्मुक्त हुआ जा सकता है। नागार्जुन के अनुसार शून्य की परिभाषा अंग्रेजी का जीरो न होकर इस प्रकार है-

अशून्यं शून्यमित्याहुः शून्यं चाभाव उच्यते।
अभावः स तु विज्ञेयः यत्र भावाः लयं गताः।

"पूर्णता को ही शून्य कहते हैं, शून्य का अर्थ अभाव भी किया जाता है। किन्तु यह अभाव नकारात्मक नहीं है जिसमें सभी भावों का लय हो, वही अभाव है।

अन्यत्र कहा गया है-

सर्वालम्बनधर्मैश्च च सर्वतत्त्वैरशेषतः।
सर्वक्लेशाशयैः शून्यं न शून्यं परमार्थतः।

"जहां न कोई आलम्बन शेष रहता है न तन्मात्रा आदि कोई तत्व। न कोई संस्कारजन्य वासना शेष रहती है और न अविद्या अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश आदि क्लेश। इन सब विकारों से शून्य होना ही शून्यावस्था है। विज्ञानभैरव के अनुसार शून्य की धारणा इस प्रकार बताई गई है-

पृष्ठशून्यं मूलशून्यं हृच्छून्यं भावयेत्स्थिरम्।
युगपन्निर्विकल्पत्वात् निर्विकल्पोदयस्ततः।

"साधक जब अपने आगे पीछे दायें बायें ऊपर नीचे सभी ओर शून्य की भावना करता है तो इस निर्विकल्पक भावना से उसे किसी भी समय सम्पूर्ण विकल्पों से रहित परमशिव की अनुभूति हो सकती है।"

इसका दूसरा अर्थ भी है- पृष्ठ शून्य प्रमाता, मूलशून्य-प्रमेय, हृच्छून्य-प्रमाण

जहां प्रमाण, प्रमाता और प्रमेय की भावना शून्य में परिवर्तित हो जाती है जब उस निर्विकल्पक चैतन्य का अभाव होता है जिसे परशिव कहा गया है जो सभी विकारों से शून्य आनन्द में प्रतिष्ठित है। इस प्रकार शून्य की भावना करने से क्षण और क्रम से परे सत्ता मात्र में स्थिति होती है।

अतः अब अपने मूल श्लोक पर आकर पुनः विचार कर लिया जाय। क्षणम्मूढ़ और क्षणविनिर्मुक्त का आशय तो इतने से स्पष्ट हो गया है अब रह जाती है बात-

पिछले श्लोक में वर्णित भावना की-

उवाच तं मदोदधूतमुखरागाकुलाक्षरम्।

ऊपर आध्यात्मिक साधना के संबंध में जो कहा गया है, उसके अनुसार इस मदोदधूतमुख-रागाकुलाक्षरम् पर विचार कर लिया जाय।

सा मदोदधूतमुखरागाकुला तं अक्षरम् उवाच।

यहां मदोद्धूता, मदोद्धूतमुखा, मदोद्धूत मुखरा, मदोद्धूतमुखरागा, मदोद्धूतमुखरागाकुला ये सब देवी के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। तदनुसार इनके शब्दार्थ- मदोद्धूता-मदेन उद्धूता-मदी हर्षे धातु से हर्षेण अथवा कोश की व्याख्या के अनुसार गर्वेण-उद्धूता-धूञ् कम्पने धातु से क्त प्रत्यय और उत् उपसर्ग लगे पर मदोद्धूत बनता है। हर्ष अथवा गर्व से जो उत्कम्पित है, जोश के कारण कम्पित, मदोद्धूतमुखा-मदेन उद्धूतं कम्पितं मुखं यस्या सा मद के कारण कम्पायमान है मुख जिसका, मदोद्धूतमुखरा-मदोद्धूतश्च मुखरश्च मदोद्धूतमुखर: साच मदोद्धूतमुखरा-मदोद्धूत होकर जो वाक्पटु है, मदोद्धूतमुखरागा-मुखे रागो रक्तिमा यस्या सा मुखरागा, मदोद्धूता च मुखरागा च मदोद्धूतमुखरागा-जो हर्ष ओर गर्व के उत्साह से कम्पायमान और जिसके मुखपर हर्ष की लाली है, मदोद्धूतमुखरागाकुला-मदोद्धूता च मुखरागा च अकुला च मदोद्धूतमुखरागाकुला। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि क्षणम्मूढ के विषय में अकुल बोध-समुद्र का उल्लेख हुआ है उसी से सम्बन्धित यह अकुल देवी का विशेषण अक्षरम्-प्रपंचसार तन्त्र के अनुसार अक्षर की परिभाषा-

अक्षरं नाम किं नाम कुतो जातं किमात्मकम्।
इति पृष्टो हरिस्तेन सरोजोदययोनिना।
मूलार्णमर्णविकृतीर्विकृतेर्विकृतीरपि।
तत्प्रभिन्नानि मन्त्राणि प्रयोगांश्च पृथग्विधान्
वैदिकांस्तान्त्रिकांश्चापि सर्वानित्यमुवाच ह।
प्रकृति: पुरुषश्चैव नित्यौ कालश्च सत्तम। प्रपंचसार १/१९-२१

इसका पूरा अर्थ विस्तारमय से न लिखते हुए इतना ही स्पष्ट करना है कि श्री पदम-पादाचार्य की व्याख्या के अनुसार-तान् सर्वान् ह इति इत्थम् आह।

मदोद्धूतमुखरागा च सा अकुला ऐसा पदच्छेद मानकर अर्थ होगा गर्व अथवा उत्साह से जिनके मुख की अरुणिमा बढ़ गई है, इन देवी ने कहा, ललितासहस्रनाम के अनुसार अकुला शक्ति का ही नाम है। सौभाग्य भास्करभाष्य के अनुसार-सुषुम्णोर्ध्वस्थितं सहस्रारपद्ममकुलमित्युच्यते। तद्रूपत्वात्तन्निष्ठत्वाद्वा अकुला सुषुम्णा के ऊर्ध्व-भाग में स्थित सहस्रार को अकुल कहते हैं, सहस्रार रूप होने के कारण देवी अकुला अथवा सहस्रारनिष्ठ होने के कारण अकुला। अत: मदोदधूतमुखरागाकुला अक्षरं उवाच ऐसा मानकर अर्थ होगा अक्षर का अर्थ प्रपंचसार के अनुसार ह होता है- अत: देवी ने हम् कहा जो मारणमन्त्र है।

अथवा मदोदधूतमुखरागा च सा कुला अक्षरं उवाच-कुला भी देवी का नाम है।

जिस प्रकार ऊर्ध्वसहस्रार को अकुल कहते हैं, उसी प्रकार अध: सहस्रार को कुल कहा जाता है- अध:स्थितं रक्तं सहस्रदलपद्ममपि कुलम्-वहां स्थित होने के कारण कुला. अथवा-कुलं शक्तिरिति प्रोक्तम्-इसके अनुसार कुल शब्द शक्ति का वाचक। अत: इसके अनुसार भी वही अर्थ होगा-देवी ने अक्षरं बिन्दुयुक्तं हं उवाच-हम् कहा।

अत: आकुलाक्षरम् उवाच मान कर अर्थ करना किसी भी प्रकार समीचीन प्रतीत नहीं होता।

इस सबके उल्लेख से यह न समझा जाय कि देवी के पूजन में मांस, मदिरा आदि का विरोध किया जा रहा है। मेरा विरोध उस व्याख्या से है जिसमें कहा गया है कि मदाधिक्य से देवी की बाणी लड़खड़ाने लगी। कुल और अकुल से तो तान्त्रिक साहित्य भरा पड़ा है। मन्त्र साधना में कुलाकुल चक्रकाविचार किया जाता है। मुहूर्त शोधन में कुल, अकुल और कुला कुल तिथि वारनक्षत्र और वृक्ष तक गिना दिये गये हैं प्रसंग वश संक्षेप में उसका उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा।

कुलसंज्ञक वार-भौम और शुक्रवार।

अकुल संज्ञक वार-रवि, सोम, गुरु और शनिवार

बुधवार कुलाकुल संज्ञक है।

कुलसंज्ञक तिथियां-चतुर्थी, अष्टमी, द्वादशी और चतुर्दशी।

अकुल तिथियां- १-३, ५, ७, ९, ११, १३, १५ ये सभी विषम तिथियां अकुल हैं।

कुलाकुलतिथियां- द्वितीया, षष्ठी और दशमी।

कुल संज्ञक नक्षत्र- भरणी, रोहिणी, पुष्य, मघा, उत्तराफागल्गुनी, चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ, धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपदा और रेवती।

अकुल संज्ञक नक्षत्र- अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिर, पुनर्वसु, आश्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, स्वाती, अनुराधा, उत्तराषाढ़, श्रवण, उत्तराभाद्रपद।

कुलाकुल नक्षत्र- आर्द्रा, मूल, अभिजित् और शतभिषा।

ये तिथि, वार और नक्षत्र पुरश्चर्यार्णव और वाचस्पत्यम् के अनुसार दिए गये हैं।

षट्चक्रनिरूपण की लोकार्थपरिष्कारिणी व्याख्या में कालीकुलामृत के सन्दर्भ से निम्न श्लोक उदधृत किया गया है-

हृदयाद्ध्वंसमनुना नीत्वा जीवं मुखाम्बुजे।
हुंकारेण समुत्थाप्य कुण्डलीं परदेवताम्।

षटचक्रनिरूपण श्लोक ५० पर कालीचरण कृत टीका।

षट्चक्रनिरूपण के मूल श्लोक में कुण्डलिनी जागरण के लिए-हुंकारेणैव देवीम्-कहा गया है। अन्य योगसंबंधी उपनिषदों में हंसमन्त्र के अनुसार कुण्डली जागरण की विधि बताई गई है। उक्त श्लोक में दोनों का समावेश हो गया है। परन्तु यह विधि भी गुरुमुख से ही जानने योग्य है। कहा भी गया है-ज्ञात्वा श्रीनाथवक्त्रात्-

पहिले के श्लोक में देवी के विशेषण के रूप में-मदोदधूतमुखरागा-और अकुला कहा गया है। मूलाधार से सहस्रार तक के मार्ग को कुलपथ कहा जाता है। सौन्दर्यलहरी के अनुसार-

सकलमपि भित्वा कुलपथम्।
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे।

मूलाधार से लेकर सहस्रार तक सकल कुलपथ का भेदन कर सहस्रदल कमल में शिवसायुज्य को प्राप्त होकर आप विहार करती हैं।

पीत्वा कुलामृतरसं पुनरेव दिव्यं मध्यं विशेदपघनस्य समाहितात्मा।
यायात्कुलादकुलमेव पुनश्च मात्रायोगेन देशिकवरप्रतिपादितेन।

"श्रेष्ठ गुरु के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से कुण्डलिनी जागरण होने पर सहस्रारकमल में कुल संज्ञक अमृतरस का पान कर समाधिस्थ होकर कुल पथ से पुनः अकुल तक अवरोह क्रम से लौटे। इसमें मात्रायोगेन कहा गया है जबकि अन्यत्र ज्ञात्वा श्रीनाथवक्त्रात्क्रमम्-कहा गया है। यह क्रम गुरु से ही जानने योग्य है।

हूं को कूर्चबीज कहते हैं और हं ही हंसमन्त्र है जिसका अकुल नाम से संकेत किया जा चुका है। इस प्रकार इस श्लोक में कुल और अकुल तथा हं बीज के संकेत से कुण्डलिनी जागरण का स्पष्ट संकेत कर दिया गया है। सहस्रार में कुण्डली के गमन के साथ ही समस्त महिषासुर रूपी तामसी वृत्तियों का शमन हो जाता है। इसलिए देवी भागवत के अनुसार सहस्रारचक्र से महिषासुर का वध किया गया है-

ततो देवी सहस्रारं सुनाभं चक्रमुत्तमम्।
करे कृत्वा जगादोच्चैः संस्थितं महिषासुरम्।

देवी भागवत ५/१८/६२

जन्य काल से नित्य काल में अवस्थान के लिए मन्त्रसाधना का भी विधान बताया गया है। अम्बास्तव में कहा गया है-

ये भावयन्त्यमृतवाहिभिरंशुजालैः
आप्यायमानभुवनाममृतेश्वरीं त्वाम्।
ते लंघयन्ति ननु मातरलंघनीयां
ब्रहमादिभिस्सुरवरैरपि कालकक्षाम्।

"अमृतेश्वरी देवी अपने अमृतवाही किरणसमूह से सम्पूर्ण भुवनों का आप्यायन कर रही हैं। हे मात: इस प्रकार जो आपका ध्यान करते हैं, इस प्रकार की भावना करते हुए जो आपका चिन्तन करते हैं, वे उस कालकक्षा को लांघ जाते हैं जो कि ब्रह्मा आदि देवताओं के द्वारा भी अलंघनीय है।"

इस कालकक्षा के बाहर होकर दृष्टास्वरूप में अवस्थान होना ही उस क्षण से विर्निमुक्त होना है जो क्रम के द्वारा-गति के द्वारा महाकाल को खण्डकाल में आभासित कर सबकी कलना कर रहा है। इसकी साधना के लिए लेखक की अमृतेश्वरी विद्या पुस्तक अवलोकनीय है।

शक्तिचालन मुद्रा के द्वारा कुण्डलिनी जागरण से भी खण्डकाल से परे की स्थिति सम्भव है। इसके लिए शिव संहिता में कहा गया है-

आधारकमले सुप्तां चालयेत्कुण्डलीं दृढ़ाम्।
अपानवायुनारुह्य बलादाकृष्य बुद्धिमान्।
शक्तिचालनमुद्रेयं सर्वशक्तिप्रदायिनी।
य: करोति सदाभ्यासं शक्तिचालनमुत्तमम्।
येन विग्रहसिद्ध: स्यादणिमादिगुणप्रदा।
गुरूपदेशविधिना तस्य मृत्युभयं कुत:।

"मूलाधार के चतुर्दल पद्म में साढ़े तीन कुण्डली मारे हुए सर्प की भांति सुषुम्ना द्वार को रुद्धकर जो शक्ति सुप्तावस्था में है, उसे अपान वायु के द्वारा बलपूर्वक आरोह क्रम से जागृत करे। यही शक्तिचालनमुद्रा है। जो सर्वशक्ति देने वाली है। जो गुरु के द्वारा बताई गई विधि के अनुसार इस शक्ति चालन मुद्रा का अभ्यास करता है, उससे कायसम्पत् की सिद्धि होती है, अणिमादि अष्टसिद्धियां प्राप्त होती हैं, उसे मृत्यु से भय नहीं रहता।"

हठयोगप्रदीपिका में कहा गया है-

कुंडलीं चालयित्वा तु भस्त्रां कुर्याद् विशेषत:।
एवमभ्यसतो नित्यं यमिनो: यमभी: कुत:।

"कुण्डली का शक्तिचालन मुद्रा के द्वारा चालन करते हुए विशेष रूप से भस्त्रिका प्राणायाम करना चाहिए। इस प्रकार जो नित्य अभ्यास करता है, उस योगी को काल से क्या भय।"

वज्रासन से बैठकर ही भस्त्रिका का अभ्यास किया जाता है। अन्यत्र हंसमन्त्र से कुण्डली जागरण कहा गया है-

ध्यायेत्कुण्डलिनी देवीं स्वयम्भूलिंगवेष्टनीम्।
हंसेन मनुनादेवीं सहस्रारंसमानयेत्।

सकलजननी स्तव में अमृतसमुद्र का बड़े ही सुन्दर ढंग से रूपक बांधा गया है।

षडाधारावर्तैरपरिमितमन्त्रोर्मिपटलै:
लसन्मुद्राफेनैर्बहुविधचलद्दैवतझषै:
क्रमस्त्रोतोभिस्त्वं वहसि परनादामृतनदी
भवानि प्रत्यग्रा शिवचिदमृताब्धिप्रणयिनी।

"यहाँ शिव को चित्सत्ता का अमृतमय समुद्र कहा गया है जिसमें शक्तिरूप परनाद की अमृत सरिता जाकर मिलती है। इसमें मूलाधार से लेकर आज्ञाचक्र तक छ: आधार हैं जो कि नदी की भंवर के समान हैं, अपरिमित मन्त्र ही इस सरिता के लहरों का समूह है, विभिन्नमुद्रा विरचना ही इस सरिता का फेन है, अनेक आवरण देवता इसके मत्स्य हैं, क्रम ही स्त्रोत हैं जिनसे यह निकल कर अमृतसरिता के रूप में शिवसमुद्र में मिलने को जाती है।

इससे यावन्मधु पिबाम्यहम्-का तात्पर्य भी स्पष्ट हो जाता है। यह मधु न सुरा है, न शहद है ओर न माध्वीका मदिरा। यह वह अमृत है जिसके आस्वादन से साधक क्षणम्मूढ की स्थिति से क्षणविनिर्मुक्त होकर कालकक्षा से बाहर हो जाता है।

ऋषिरुवाच- एवमुक्त्वा समुत्पत्य सारूढा तं महासुरम्।
पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत्। ३७

अन्वय- सा एवं उक्त्वा समुत्पत्य तं महासुरं आरुढा सती एनं कण्ठे च पादेन आक्रम्य शूलेन अताडयत्। वा पादेन आक्रम्य एनं शूलेन कण्ठे अताडयत्।

शब्दार्थ- समुत्पत्य-उछलकर, आरूढा-सवार हो गई, पादेन-एक पैर से, आक्रम्य-दबाकर अताडयत्-प्रहार किया।

व्याख्या- देवी ने इस प्रकार कहकर उछल कर उस महिषासुर को दबा लिया और उस पर चढबैठी। एक पैर से उसके गले को दबा कर शूल से उस पर प्रहार किया। अथवा पैर से उसे दबोच कर शूल से उसके गले पर प्रहार किया।

तत: सोऽपि पदाक्रान्तस्तया निजमुखात्तत:
अर्धनिष्क्रान्त एवाति देव्यावीर्येण संवृत:।

अन्वय- तत: स: तया पदाक्रान्त: सन् अपि तत: निजमुखात् अर्धनिष्क्रान्त एव देव्या वीर्येण अति संवृत:।

शब्दार्थ- निजमुखात्-अपने महिष के मुख से, अर्धनिष्क्रान्त-आधा ही निकलने

पर, वीर्येण-बलेन बल से, अतिसंवृतः-अत्यन्त स्तम्भित कर दिया गया, निकल न सका।

व्याख्या- तब उस असुर ने देवी के द्वारा पैरतले दबा लिए जाने पर भी महिष के मुंह से अपने शरीर को आधा ही निकाला कि देवी ने अपने बल से उसे वहीं रोक दिया। अपने मुख से पूरा न निकल सका।

अर्धनिष्क्रान्त एवासौ युद्धमानो महासुरः।
तया महासिना देव्या शिरश्छित्वा निपातितः।३९

अन्वय- असौ महासुरः अर्धनिष्क्रान्त एव युद्धमानः तया देव्या महासिना शिरश्छित्वा निपातितः।

शब्दार्थ- अर्धनिष्क्रान्तः-शरीरस्य अर्धेन निर्गतः, शरीर के आधे भाग से ही निकल कर युध्यमानः-युद्ध करते हुए, महासिना-महान् तलवार से, छित्वा-काटकर, निपातितः- नीचे गिरा दिया गया।

व्याख्या- महिष के मुख से आधा निकल पाने पर भी वह असुर देवी के साथ लड़ता रहा। तब देवी ने बड़ी तलवार से उसका सिर काट कर उसे मार डाला।

रहस्य- महिषासुर का वध साधारण तलवार-असि-से नहीं, देवी ने महा असि से उसको मारा है। महा विशेषण विशेष अर्थ की ओर संकेत करता है। पहिले बताया जा चुका है। कि-महत्वंच देशकाला कारैरनवच्छिन्नत्वम्-जो देश और काल तथा आकार की सीमा में बंधा न हो, वह महा है यह महत्व की परिभाषा है। देवी की असि भी इसी परिभाषा के अन्तर्गत है और वह तलवार मन्त्र की है-हं मन्त्र की, ह्रूम् मन्त्र की जिसका संकेत अकुलाक्षरम् से किया जा चुका है, अथवा अगाकुलाक्षरम्-ह्रूम् से किया जा चुका है। इसीलिए महिषासुर भी कोई शरीर धारी न होकर तमोगुण ही है जिसे मारकर भी देवी ने पार्श्व में स्थान दिया है क्योंकि सृष्टिसंचालन के लिए उसकी भी आवश्यकता है।

ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत्।
प्रहर्षं च परं जग्मुः सकला देवतागणाः। ४०

अन्वय- ततः तत् सर्वं दैत्यसैन्यं हाहाकृतम् सत् ननाश, देवतागणाः सकलाः परं प्रहर्षं जम्मुः च

शब्दार्थ- ततः- महिषासुर के मारे जाने पर, तत्- जो कुछ भी असुर सेना बच गई थी वह सर्वम्- सभी, हाहाकृतम्-कृतहाहाशब्दम्-हाहाकार करते हुए, ननाश-णश अदर्शने धातु से भाग कर दृष्टि से ओझल हो गई। देवतागणाः- देवतानां गणाः- देवताओं के समूह, सकला- सब के सब, प्रहर्षम्- हर्षेद्रिकम्- परम्- उत्कृष्टम्- अत्यन्त

हर्ष को प्राप्त हुए।

व्याख्या- महिषासुर वध के पश्चात् दैत्यों की जो कुछ भी सेना थोड़ी बहुत शेष रह गई थी, वह हाहाकार करती हुई भाग गई। और सम्पूर्ण देवता हर्ष से अत्यन्त प्रसन्न हुए।

तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः।
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः। ४१

अन्वय- तां देवीं सुराः दिव्यैः महर्षिभिः सह तुष्टुवुः गन्धर्वपतयः च जगुः अप्सरोगणाः च ननृतुः।

शब्दार्थ- दिव्यैः- दिविभवैः- ब्रह्मादिभिः च दिव्य लोकों वाले अथवा ब्रहम आदि सुराः- इन्द्रादयः इन्द्र आदि देवता, महर्षिभिः- नारदादिभिः नारद आदि महर्षियों के साथ, जगुः- गीतवन्तः गै शब्दे का लिट् का रूप। गन्धर्वपतयः गन्धर्वों के स्वामी अप्सरोगणाः- अप्सरसांगणाः समूहाः अप्सराओं के समूह, ननृतुः- नृती गात्रविक्षेपे का लिट् बहुवचन का रूप। नाचने लगी।

व्याख्या- महिषासुर का वध करने वाली उस देवी की इन्द्र आदि देवता और नारद आदि ऋषि मिलकर स्तुति करने लगे गन्धर्वों के समूह गाने और अप्सरागण आनन्द से नाचने लगे। आशय यह कि देवलोक में हर्ष की लहर व्याप्त हो गई।

इतिश्री मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी माहात्म्ये महिषासुरवधस्तृतीयोऽध्यायः

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत सावर्णिक मन्वन्तर के वर्णन में देवी महात्म्य में महिषासुरवध का तृतीय अध्याय पूरा हुआ।

●●●

चतुर्थ अध्याय

ऋषिरुवाच

शक्रादयः सुरगणाः निहतेऽतिवीर्ये तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या।
तां तुष्टवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारु देहा।

अन्वय- देव्या तस्मिन् अतिवीर्ये दुरात्मनि सुरारिबले च निहते प्रणतिनम्रशिरोधरांसाः शक्रादयः सुरगणाः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः सन्तः तां वाग्भिः तुष्टवुः

शब्दार्थ- तस्मिन्-महिषासुरे, महिषासुर के, अतिवीर्ये- अतिपराक्रमशालिनि, अत्यन्त पराक्रमी, यहसुरारिबले का भी विशेषण हो सकता है, सुरारिबले-राक्षसों, असुरों की सेना के, दुरात्मनि-दुष्टे-उस दुष्ट महिषासुर के, निहते- मारे जाने पर, शक्रादयः-इन्द्र आदि देवता, आदि से देवर्षियों का भी ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि कहा गया है- महिषान्तकरी सूक्तं दृष्टं देवैर्महर्षिभिः- देवता और ऋषि दोनों ही इस महिषान्तकरी सूक्त के दृष्टा हैं तुष्टवुः स्तोतुम् आरेभिरे- स्तुति करने लगे, प्रणतिनम्रशिरोधरांसाः प्रणतिभिर्नम्राः शिरोधरा ग्रीवा अंसौ येषाम् ते- देवी के आगे नम्रता से जिनके कन्धे और गर्दन झुके हैं, प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहा- प्रहर्षेण प्रमोदेनपुलकाः रोमांचाः तेषां उद्गमः प्रादुर्भावः तेन प्रहर्षपुलकोद्गमेन चारवः मनोरमाः देहा येषां ते तथोक्ताः- अत्यन्त प्रसन्नता के कारण जिनका शरीर पुलक और रोमांच के कारण सुन्दर प्रतीत होता है, वाग्भिः- वाणी से।

व्याख्या- सुमेधा ऋषि ने कहा देवी के द्वारा उस महाबली और प्रभावशाली दुष्ट महिषासुर के मारे जाने और उसकी पराक्रमी सेना के भी मारे जाने पर इन्द्र आदि देवता और नारद आदि ऋषिगण मिलकर देवी के सामने सिर झुकाकर स्तुति करने लगे। अति प्रसन्नता के कारण उनके शरीर पुलकित और रोमांचित हो रहे थे।

रहस्य- इस चतुर्थ अध्याय में की गई स्तुति को महिषान्तकरी सूक्त कहा गया है। इसके दृष्टा देवता और ऋषिगण मिलकर हैं। इसलिए यहां वाग्भिः शब्द का जो बहुवचन में प्रयोग किया गया है, उसका विशेष आशय है। एकवचन-में-वाचा- कहना ही पर्याप्त होता। इसके लिए सामान्य अर्थ तो यह है कि लोक में प्रयुक्त वाणी के चार भेद होते हैं। द्रव्यंगुणं क्रियां जातिमाहुः शब्दाश्चतुर्विधाः। द्रव्य, गुण, क्रिया और जाति के भेद से शब्दचार प्रकार के होते हैं। अतः बहुवचन का प्रयोग। ये स्तुति रूपी मन्त्र हैं और वेदमन्त्रों की भांति इनके दृष्टा ऋषि और देवगण हैं, अतः यहां वाग्भिः से आशय परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी इन चार प्रकार की वाणियों से है। मनुष्य केवल बैखरी वाणी का ही प्रयोग करते हैं, पर यहां स्तुतिकर्ता इन्द्रादि देवता है, अतः चारों प्रकार की वाणी के अर्थ में वाग्भिः का प्रयोग किया गया है-

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहाः त्रीणि निहिताः नेंगयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्याः वदन्ति।
-ऋग्वेद २/३/२२

वाणी के चार प्रकार बताये गये हैं, उन चारों को तो ब्रह्मज्ञ मनीषी ही जान सकते हैं क्योंकि उनमें से तीन गुह्य हैं और मनुष्य केवल चतुर्थ वाणी ही बोलते हैं। सायण भाष्य के अनुसार इन चारों की बड़ी ही सुन्दर और संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार की गई है-

"परा पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरीति चत्वारीति। एकैव नादात्मिका वाग्मूलाधारादुदिता सती परेत्युच्यते। नादस्य च सूक्ष्मत्वेन दुर्निरूपत्वात्, सैव हृदयगामिनी पश्यन्तीत्युच्यते योगिर्भिर्दृष्टुं शक्यत्वात्। सैव बुद्धिं गता विवक्षां प्राप्ता मध्यमेत्युच्यते मध्ये हृदयाख्य उदीयमानत्वात् मध्यमा: अथ यदा सैव वक्त्रे स्थिता ताल्वोष्ठादि व्यापारेण बहिर्निगच्छति तदा वैखरीत्युच्यते। एवं चत्वारि वाचः पदानि परिमितानि। मनीषिणोः मनसः स्वामिनः स्वाधीनमनस्कः ब्राह्मणाः रवाख्यस्य शब्दब्रह्मणोऽधिगन्तारो योगिनः परादि चत्वारि पदानि विदुः जानन्ति। तेषु मध्ये त्रीणिपरादीनि गुहा निहितानि हृदयान्तर्वर्तित्वात्। तुरीयं तु बैखरी संज्ञकंपदं मनुष्याः वदन्ति।"

परा पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी ये चार वाणी हैं। एक ही नादात्मक वाणी मूलाधार से निकलने के कारण परा कही जाती है। नाद सूक्ष्म होने के कारण उसका नियन्त्रण कठिन है। वही हृदय में आकर पश्यन्ती कही जाती है जिसका अर्थ होता है देखी जाने योग्य और उसे योगी देख सकते हैं। वही बुद्धिगम्य होने पर बोलने की इच्छा से मध्यमा कही जाती है। हृदय के मध्य में उदित होने के कारण उसका नाम मध्यमा है। वही वाणी बाहर स्थित होकर तालु, ओष्ठ आदि के प्रयत्न से उच्चारित होती है, तो उसे वैखरी कहा जाता है। इस प्रकार वाणी के चार पद हुए। जो अपने मन को वश में करने में समर्थ मनीषी है और जो नादब्रह्म को अधिगत कर चुके ब्राह्मण हैं, योगी हैं वे इन चारों को जानते हैं। इनमें से तीन-परा, पश्यन्ती और मध्यमा-हृदयान्तर्वर्ति होने के कारण हृदय गुफा में निहित कही गई हैं। चतुर्थ जिसे वैखरी कहते हैं उसी को सभी मनुष्य बोलते हैं।

इसी को शारदातिलक की टीका में राघव भट्ट ने इस प्रकार कहा है-

मूलाधारात्प्रथममुदितो यस्तु भावः पराख्यः
पश्चात्पश्यन्त्यथ हृदयगो बुद्धियुङ् मध्यमाख्यः।
वक्त्रे वैखर्यपि रुरुदिषोरस्य जन्तोः सुषुम्णा-
बद्धस्तस्माद्भवति पवनः प्रेरितो वर्णसंघः।

भाव प्रायः वही है जो कि ऊपर कहा जा चुका है।

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्तया नि:शेषदेवगणशक्ति समूहमूर्त्या।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां भक्त्या नतास्म विदधातु शुभानि सा नः २

अन्वय- नि:शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या यया देव्या आत्मशक्त्या इदं जगत् ततम् ताम् अखिलदेवमहर्षिपूज्यां अम्बिकाम् भक्त्या नता: स्म सा न: शुभानि विदधातु।

शब्दार्थ-नि:शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या- नि:शेषा: सर्वे देवा: तेषां गणा: तेषां शक्तय: नि:शेषदेवगणशक्ति: समूहनाय वृद्धये मूर्ति: विग्रहो यस्या: अशेषदेवगणानां शक्तिसमूह एव मूर्तिर्यस्या: अथवा आत्मशक्त्या निजप्रभावेण अशेषदेवगणस्य शक्तिसमूह: तेजोंशप्रचय एव मूर्ति: कायो यस्या: यया देव्या- जिस देवी के द्वारा इदम् जगत् ततम् प्रपंचितम्-जिस देवी ने इस जगत् का विस्तार किया है। यया देव्या आततम् व्याप्तम् आत्मशक्त्या-स्वशक्त्या निजेन औपाधिक स्वभावेन वा अपने प्रभाव से अखिलदेवमहर्षिपूज्याम्-अखिला:सर्वे देवा: महर्षयश्च अखिलदेवमहर्षय: तै:पूज्यां पूजार्हां पूजनीयाम्-सम्पूर्ण देवता और महर्षियों के द्वारा पूजनीय, भक्त्या-नम्रीभावेन भक्तिपूर्वकं यथा स्यात् तथा नता: स्म-प्रणता स्म आनता: स्म का भी यही अर्थ होगा। न: अस्माकं विदधातु-करोतु।

व्याख्या- जिस देवी ने अपने प्रभाव से इस जगत् की रचना की है, जो देवी इस जगत् में व्याप्त है, सम्पूर्ण देवताओं की शक्ति बढ़ाने के लिये जिसने मूर्तरूप धारण किया है, सम्पूर्ण देवताओं ने एकत्र होकर आर्तस्वर से प्रार्थना की तब जिसने मूर्तरूप धारण किया है, सम्पूर्ण देवताओं की सम्मिलित शक्ति का ही जो मूर्त रूप है, अपने प्रभाव से जिसने देवताओं की शक्ति बढ़ाने के लिए मूर्त रूप धारण किया है, हम सभी उसके सामने भक्तिपूर्वक सिर झुकाते हैं। वह देवी सम्पूर्ण देवता और महर्षियों के द्वारा वन्दनीय है। पूजनीय है। वह शक्ति हमारा कल्याण करे।

यस्या: प्रभावमतुलं भगवाननन्तो ब्रह्मा हरश्च नहि वक्तुमलं बलं च।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु।३

अन्वय- यस्या: अतुलं प्रभावं बलं च वक्तुम् ब्रह्मा भगवान अनन्त: हर: च न हि अलम् सा चण्डिका अखिलजगत्परिपालनाय अशुभभयस्य नाशाय च मतिं करोतु।

शब्दार्थ- अतुलम्- असाधारणम्, प्रभावम्-प्रकृष्टं स्वभावम्, बलम्- शक्ति, वक्तुम्-कहने में, अलम्-समर्थ, अनन्त, शेष, भगवान्-ऐश्वर्यसम्पन्न, हर-शिव, अखिलजगत्परिपालनाय-अखिलं सम्पूर्णम् जगत् पालयितुम्- सम्पूर्ण जगत् का पालन करने के लिए, अशुभभयस्य-भावी अनिष्ट की आशंका, असुरभयस्य-दैत्यों से उत्पन्न होने वाला भय।

व्याख्या- जिस देवी के अनन्य साधारण प्रभाव और बल का वर्णन करने में चारमुख वाले ब्रह्मा जो सृष्टि की रचना करते हैं, सर्वेश्वर्य सम्पन्न भगवान विष्णु अथवा हजार फन वाले शेष और सर्वशक्तिमान शंकर भी समर्थ नहीं है, वह चण्डिका सब संसार का पालन करने और आने वाले भय का नाश करने के लिये सावधान और एकाग्रचित्त हो। असुरभयस्य पाठ मानें तो अर्थ होगा कि दैत्यों से होने वाले भय का नाश करें।

रहस्य- नवार्ण मन्त्र नौ अक्षरों का है- ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे। इसमें कुल चौबीस मात्रा हैं- ऐ, म्, ह, र्, ई, म्, क्, ल्, ई, म्, च्, आ, म्, उ, ण्, ड्, आ, य, ऐ, व्, इ, त्, च् और ए। गायत्री मन्त्र में चौबीस वर्ण होते हैं, इसमें चौबीस मात्रा हैं, इसलिये इसे शक्तिगायत्री भी कहा जाता है। ऊपर के मन्त्र में इस नवार्ण मन्त्र की चौबीसों मात्रा आ गई हैं।

यस्याः प्रभावमतुलं भगवानन्तो ब्रह्मा हरश्च नहि वक्तुमलं बलं च। सा चण्डिका। इसमें वमतुलम्, में व्, म्, त्, उ, ल्, म्, ये छः मात्रा आ गई। हरश्च में अकार उच्चारण के लिए मानकर ह्, र् और च् ये तीन आ गए। तन्त्राभिधान की परिभाषा के अनुसार भग-ए, वातीति वायुः उसका वान् शतृ प्रत्ययान्त रूप है। अतः वायु-य का बोधक, अनन्त-आ, ब्रह्मा-क, वक्तुम्-वाग्भवबीज-ऐं, इसका दो बार अन्वय, सा चण्डिका में आ चण्डिका-दो आ, इ, ड्, इकार से ईकार का भी ग्रहण और क-एलं और चं के बिन्दु का दो-दो बार अन्वय मानकर। इस प्रकार चौबीसा मात्रा पूरी हो जाती हैं। इतना ही नहीं, इसमें नवार्ण मन्त्र के दृष्टा तीनों ऋषियों-ब्रह्मा, विष्णु और महेश के नाम आ गये हैं। अब यस्याः प्रभा का अर्थ होगा जिस देवी की प्रभा-किरणसमूह का और बल का वर्णन नहीं किया जा सकता, वह सम्पूर्ण जगत् की रक्षा पालन में दैत्यों से भय को दूर करने के लिये सावधान होकर मति को करे। इसमें धियो यो नः प्रचोदयात् का पूरा भाव भी आ गया है।

याः श्री स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः पापात्मनां कृतिधयां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्।४

अन्वय- हे देवि, या सुकृतिनां भवनेषु स्वयं श्रीः, या पापात्मनां भवनेषु अलक्ष्मीः या कृतिधयां हृदयेषु बुदिधः, सतां हृदयेषु या श्रद्धा कुलजनप्रभवस्य हृदये लज्जा अस्ति तां त्वां नताः स्म हे देवि विश्वं परिपालय वा कुलजन प्रभवस्य विश्वं परिपालय। यहां स्म में विसर्ग का लोप कर दिया गया है अथवा इसे अव्यय माना जा सकता है।

शब्दार्थ- सुकृतिनाम्-पुण्यशीलानाम्-सत्कार्य करने वालों के, पुण्यवानों के, कोश के अनुसार सुकुती पुण्यवान् धन्यः, भवनेषु-आलयेषु-गृहेषु-घरों में, पापात्मनाम्-पापशीलानाम्-पापियों के, अलक्ष्मी-अलक्ष्मी को ज्येष्ठा और धूमावती भी कहा गया है।

श्रीसूक्त में कहा गया है- क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्- यहां पापियों के घर में अलक्ष्मी का वास बताया गया है, कृतधियाम्-शास्त्रानुशीलनेन निर्मलधियाम्, विमलबुद्धीनां, अभ्याससंस्कृतान्त: करणानाम्, शास्त्रों के अनुशीलन से जिनकी बुद्धि निर्मल हो गई है, सताम्-सज्जनाना-सज्जनों के, श्रद्धा-सत्यकर्मनिष्ठा संप्रत्ययः, समादरः, कोष के अनुसार-श्रद्धा संप्रत्यय: स्पृहा: और श्रद्धादरे च कांक्षायाम्, आस्था, कुलजनप्रभवस्य-शुद्धसंतानजन्मन:, सत्कुलोत्पन्नस्य जनस्य लोकस्य-अच्छे कुल में जन्म लेने वाले के लज्जा-अकरणीयाप्रवृत्तिलक्षणान्त: करणगुण:-जो न करने योग्य काम है, उसे करने की मन से ही प्रवृत्ति न होना, स्वयं स्वत: ही, नता:स्म:-सिर झुका कर प्रणाम करते हैं, परिपालय-इस प्रकार के विश्व का आप पालन करें, रक्षण करें।

व्याख्या- हे देवि आप पुण्यवानों के घर स्वयं लक्ष्मी रूप में निवास करती हैं, आप पापियों के घर स्वयं ही अलक्ष्मीरूपा बनकर रहती हैं, अभ्यास के द्वारा जिनका अन्त:करण पवित्र हो गया है उनके हृदय में आप बुद्धि के रूप में प्रतिष्ठित हैं, कृतधियां हृदये सुबुद्धि: के रूप में स्वयं आप ही रहती हैं, सज्जनों के हृदय में आस्था आप ही हैं, सत्कुल में जन्म लेने वालों में अकरणीय कार्य के प्रति जो संकोच होता है, वह लज्जा आप ही हैं, हे देवि हम सभी आपके सम्मुख श्रद्धा से नतमस्तक हैं आप इसी प्रकार-या श्री:स्वयम्- आदि के रूप में इस विश्व का पालन-रक्षण करती रहें।

किं वर्णयाम तव रूप मचिन्त्यमेतत् किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि।

किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु।५

अन्वय- हे देवि, सर्वेषु असुरदेवगणादिकेषु तव अचिन्त्यं रूपं किं वर्णयाम, तव असुरक्षयकारि भूरि अतिवीर्य च किं वर्णयाम, आहवेषु च तवाद्भुतानि चरितानि च किं वर्णयाम चाहवेसुचरितानि और आहवेस्वचरितानि भी पाठ मानकर उसके अनुसार अन्वय होगा आहवे तब सुचरितानि किं वर्णयाम और आहवे तब स्वचरितानि किं वर्णयाम ऐसा भीं अन्वय किया जा सकता है कि सर्वेषु असुरदेवगणादिकेषु आहवेषु तवाद्भुतानि चरितानि किं वर्णयाम।

शब्दार्थ- असुरदेवगणादिकेषु- असुरा च देवाश्च असुरदेवा: तेषां असुराणां देवानांचगणा आदयो येषां ते असुरदेवगणादय: अथवा असुरा: दैत्या:देवा:शिवादय: गणा: प्रमथांदय: तत्प्रभृतिषु असुरदेवगणादयेषु- असुर, देवताआदि के समूह में असुर, ईश्वरादिक देवता, प्रमथ आदि गणों में, रूपम्-स्वरूपम्, आकृति, रूप वर्णयाम-वर्ण वर्णने चुरादि लोट् उत्तम पुरुष का रूप कोश के अनुसार-वर्णो द्विजादिशुक्लादियज्ञे गुणकथासु च। स्तुतौ ना स्त्रियां भेदरूपाक्षरविलेपने तथा च-वर्णे स्वर्णेव्रते स्तुते। रूपे द्विजादौ शुक्लादौ कथायामक्षरे गुणे। भेदे गीत क्रमे चित्रा यशस्तालविशेषयो:। अंगरागे च वर्ण तुकुंकुमे। इसके अनुसार यहां वर्णयाम से वर्णन करना, चित्रित करना, स्तुति करना, प्रशंसा करना,

अंकन करना, गुणगान करना आदि सभी अर्थ अभिप्रेत हैं, अचिंत्यम्-वाङ् मनसगोचरम् मन और बुद्धि से जिसका चिन्तन न किया जा सके, भूरि-बहुशः अत्यन्त, अतिवीर्यम्-वीर्यबलं प्रभावश्च- अत्यन्त प्रभाव और बल से सम्पन्न, असुरक्षयकारि, असुराणां दैत्यानां क्षयं विनाशंकर्तु शीलं यस्य तत् असुरक्षयकारि दैत्यों का विनाश करने वाला, बल का विशेषण आहवेषु-समरांगणेषु-युद्ध में जो अद्भुत पराक्रम दिखाया वह असुर, शिव आदि देवता, प्रमथ आदि गण से और मनुष्यों के लिए भी असाधारण है उसका वर्णन किस प्रकार किया जाय, वर्णयामि का अर्थ-स्तुति करना आदि भी होता है तद्नुसार हम आपके अचिन्त्य रूप का अंकन कैसे करें, रूप की स्तुति कैसे करें, क्योंकि वह तो मनुष्य, देवता और दैत्य सभी के लिए मन से भी परे है, बुदिध के लिए अद्भुत है अनन्यसाधारण है आप जब केवल ज्योतिर्मय हैं तो उसकी स्तुति, गुणगान, रूप का बखान, आकृति का चिन्तन कैसे करें अर्थात आप का रूप आपके कार्य और आपके चरित सभी मन बुदिध और वाणी के द्वारा वर्णन नहीं किए जा सकते।

हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषैः न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूतमव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या।६

अन्वय- हे देवि त्वं समस्तजगतां हेतुः यतः त्रिगुणा असि, त्रिगुणा अपि दोषैःन ज्ञायसे हरिहरादिभिः अपि अपारात्वं सर्वाश्रया, अव्याकृता, इदं अखिलं जगत् अंशभूतम्, त्वं हि आद्या परमा प्रकृतिः असि। वा आद्या प्रकृतिः परमा च।

अथवा त्वं हरिहरादिभिः देवैः अपि न ज्ञायसे यतः अपारा अथवा त्वं आद्या अव्याकृता परमा प्रकृतिः

शब्दार्थ- समस्तजगताम्- स्वर्गभूपातालाख्यानि जगन्ति तेषां सर्वेषाम्-स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल इन तीनों जगत् की हेतुः- कारण, सभी लोगों का सृजन पालन संहार करने वाली, त्रिगुणा-सत्व, रजस् और तमस् तीन गुणों वाली, रजोगुण से सृजन कार्य, सत्व गुण से पालन और तमोगुण से संहार अतः त्रिगुणा, दोषैः- रागादिभिः रागद्वेष आदि दोनों से, ज्ञायसे- विषयीक्रियसे- त्रिगुणा होने पर भी उनसे असंपृक्त हैं। गीता में कहा गया है- ये चैव सात्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये। मत्त एवेति तान्विद्धि नत्वहं तेषु ये मयि। यही भाव यहां त्रिगुणापि दोषैः न ज्ञायसे का है हरिश्च हरश्च हरिहरौ तौ आदौ येषांते हरिहरादयः-विष्णु, शिव आदि देवता अपारा-अनवधिः अनन्ता-जिसका आदि अन्त न हो, सर्वाश्रिया-सर्वेषां आश्रयभूता अथवा सर्व आश्रयो यस्या वा आश्रीयते आश्रया सर्वस्य आश्रया सर्वाश्रिय, सर्वेषां आश्रयो यस्याम् कार्य कारण के आश्रय से रहता है, आप जगत् का कारण हैं, मूलप्रकृति हैं अतः सबका आश्रय हैं, हरिहरादिभिः न ज्ञायसे-विष्णु, और शिव आदि देवता भी आपको नहीं जानते, इदं अखिलं जगत् अंशभूतम्-यह समस्त विश्व आपका अंशमात्र है, अव्याकृता-नामरूप क्रियातः पौर्वकालिकी

नामरूपात्मक जगत् के आविर्भाव से पूर्व भी आप विद्यमान अतः अव्याकृता, जगत् आपका अंश होने पर भी आप अपरिरिच्छन्न ही हैं- पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते, अतः इसके अनुसार आप अव्याकृत हैं, आद्या-आप हरिहरादि के आविर्भाव से पूर्व भी थी अतः आद्या प्रकृतिः-मूलप्रकृति- जिसे सांख्य में प्रधान कहा गया है, अव्याकृता का एक अर्थ यह भी है कि पद वाक्य आदि के द्वारा न व्याकृता, अथवा अव्याकृता-केनापि न प्रकाशिता-स्वयं प्रकाशरूप होने के कारण अन्य के द्वारा अव्याकृता-अप्रकाशिता, परमा के लिए कहा गया है कि पर आत्मा मीयते जीवभावेन विच्छिद्यते यया सा परमा अथवा, अव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या अतः अव्याकृता इसके अनुसार अर्थ होगा- हे देवि त्वं जगताम् आद्या मूलभूता अतः सृष्टि से पूर्व सत्वरजतमोगुणों की उत्पत्ति के पूर्व विद्यमान होने के कारण अव्याकृता अथवा षड्विकारों से रहित होने के कारण अव्याकृता विकार रहिता, अथवा आद्या प्रथमा प्रकृतिः सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था-आपमें सत्वरजस् और तमस् की साम्यावस्था होने के कारण अव्याकृता, व्याकरण के आधार पर बाल की खाल निकालते हुए परमा और अव्याकृता के कुछ अन्य अर्थ भी किए गये हैं जो प्रयोजनीय न होने के कारण अनपेक्षित हैं।

व्याख्या- हे देवि आप समस्त ब्रह्माण्ड की सृष्टि, पालन और संहार का कारण हैं, आप तीनों गुणों से युक्त होते हुए भी दोष का विषय नहीं हैं, दोषों से असम्पृक्त हैं, हरि, हर आदि समस्त देवता भी आपको पूर्णरूप से नहीं जानते क्योंकि आप आदि अन्त रहित हैं अपारा हैं अनादि अनन्त हैं, सबका आश्रय आप ही हैं, अथवा यह सबकुछ आपके आश्रय से ही है, सारा जगत् आपका ही अंश है, परन्तु इससे-आपके देशकाल आकार आदि से-परिच्छिन्न होने का प्रश्न ही नहीं क्योंकि आप अव्याकृता हैं, क्योंकि इयत्ता की माप मन और वाणी से ही होती है सो आप मन और वाणी का अविषय हैं, निर्विकार हैं इसीलिए तो आपको आद्या प्रकृति कहा गया है। आपकी आवरण शक्ति से ही परमात्मभाव अपरिच्छिन्न होते हुए भी जीव भाव में आबद्ध होकर परिमित हो जाता है। आप में तीनों गुणों की साम्यावस्था होने से आप अव्याकृता हैं। आपकी आवरण शक्ति से ही गुणवैषम्य से सृष्टि का व्यापार चल रहा है।

यस्याः समस्तसुरतासमुदीरणेन तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतुः उच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च। ७

अन्वय- यस्याः समुदीरणेन सकलेषु मखेषु समस्तसुरता तृप्तिं प्रयाति सा स्वाहा त्वम् एव असि, पितृगणस्य च तृप्तिहेतुः त्वमेव, अतएव जनैः स्वधा उच्चार्यसे।

शब्दार्थ-समुदीरणेन- उच्चारणेन, उच्चारण करने से समस्तसुरता- निःशेषदेवगणः, सुरसमूहः सभी देवताओं के समूह, समस्ताश्च ते सुरताश्च समस्तसुरता देवसमूहाः,

मखेषु-यज्ञेषु, यज्ञों में तृप्ति प्रयाति-तृप्त होते हैं, स्वाहा-यज्ञ आदि में देवताओं को दी जाने वाली प्रत्येक आहुति के अन्त में प्रयुक्त होने वाला अव्यय, प्रपंचसार के अनुसार- स्वेति स्वर्ग: स्वेति चात्मा समुक्तो हेत्याहुतिर्हेति विद्याद्गतिंच। स्वर्गात्मावध्याततता धामशाखावन्हेर्जाया यत्र हूयेत सर्वम्। स्व का अर्थ आत्मा और स्वर्ग दोनों ही होता है, हा का अर्थ ओहाङ् गतौ के अनुसार गतिसंज्ञक और ओहाक् त्यागे के अनुसार त्याग करने के अर्थ में आता है। यहां दोनों ही अर्थ अभीष्ट हैं। एक अर्थ होगा- आत्मा का स्वर्ग की ओर उम्मुख होना, दूसरा अर्थ होगा- आत्मा का इष्ट के प्रति एकीभाव, पद्मपादाचार्य की टीका के अनुसार स्वर्ग शब्दार्थस्य परमात्मन: शब्दार्थ प्रत्यागात्मनि आह्वानम्- स्वर्ग से परमात्मा का बोध उस परमात्मा का स्व-आत्मा में आवाहन करना स्वाहा का अर्थ हुआ। गति संज्ञक अर्थ से स्वस्य आत्मन: परमात्मनि गतिम्-आत्मा का परमात्मा की ओर गमन, दूसरा गतिसंज्ञक अर्थ यह भी कि स्व-आत्मा के ममत्व का त्याग करते हुए देवता के प्रति समर्पण भावना, इदं न मम कहकर जिसे स्पष्ट किया जाता है, वह भावना स्वाहा शब्द में स्वयं ही निहित है। अन्य व्युत्पत्ति के अनुसार- सुष्ठु आहूयते इति स्वाहा भली भांति आवाहन करना ही स्वाहा, स्व आह इस प्रकार व्युत्पत्ति करने पर स्वीया वाक् अपनी वाणी यह अर्थ भी किया गया है। निरुक्त के अनुसार सु आह और स्वम् आह अर्थ किया गया है। जिसका अर्थ आत्मा की ओर उन्मुख होकर कथन और परमात्मा के प्रति कथन दोनों ही अर्थ होते हैं। एक व्याख्या के अनुसार स्वान् स्वकीयान् आजिहीते गच्छति-अपनों के प्रति गमन आत्मा की देवत्व के प्रति एकाग्रता-समीपता का भी अर्थ है। अथवा स्वीयत्वेन सम्यक् जानाति इसके अनुसार आत्मीयता के साथ जानना अर्थ होता है।

आहुति का अग्नि में त्याग करते समय इस प्रकार के सभी भाव मन में रहें, इसी विचार से इतना उल्लेख किया गया है।

पितरों की तृप्ति के लिये कव्य समर्पण के समय स्वधा कहा जाता है, जिसका आशय है कि स्वान्, दधाति पोषयति वा स्वधा- अपनों को जो धारण और पोषण करे। ललिता सहस्रनाम में भी स्वाहा और स्वधा देवी के नाम आये हैं- स्वाहा स्वधा मतिर्मेधा श्रुतिस्मृतिरनुत्तमा। पूर्व में भी कहा गया है- त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कार: स्वरात्मिका। पितृगणस्य-पितरों के, तृप्तिहेतुः तृप्तेःकारणम्-पितरों की तृप्ति का कारण, उच्चार्यसे-स्वाहा और स्वधा कहकर आपका ही उच्चारण किया जाता है।

व्याख्या- हे देवि, सम्पूर्ण यज्ञ, मख और क्रतु नामक यज्ञों में देवताओं को हवि अर्पण करने में जिस स्वाहा का उच्चारण किया जाता है और जिससे सब देवताओं की तृप्ति होती हैं आप ही वह स्वाहा हैं आपकी शक्ति से ही देवताओं को अग्नि के द्वारा वह हव्य प्राप्त होता है। पितरों की तृप्ति का कारण भी आप ही हैं जिस स्वधा के

उच्चारण से पितरों को कव्य प्राप्त होता है। वह स्वधा शक्ति आप ही हैं।

विशेष- स्वाहा और स्वधा के ऊपर जो अर्थ दिए गए हैं, उनके अनुसार यज्ञ में आहुति देते समय यह भावना की जानी चाहिए कि इस आहुति के द्वारा यज्ञकर्ता अपने स्व को अपने इष्टदेव के प्रति समर्पण कर रहा होता है। इष्टदेव से तादाम्य स्थापित कर रहा होता है। आत्मा के द्वारा परमात्मा के प्रति उन्मुख हो रहा होता है। स्व के विसर्जन के द्वारा व्यष्टिसत्ता का समष्टि सत्ता में लय की भावना कर रहा होता है। श्रुति की इस भावना को साकार अनुभूति का विषय बना रहा होता है-

तत्र को मोहःकः शोक एकत्वमनुपश्यतः

पितरों को कव्य अर्पण करते हुए स्वधा के उच्चारण से पितरों के प्रति स्वान् धत्ते एक अविच्छिन सनातनपरम्परा के अंतर्गत उनके प्रतिऋण के अपाकरण की भावना रहती है और दूसरे पितरों का ध्यान भी आकृष्ट करने का और धारण पोषण का भाव रहता है। कहा भी गया है- दैवे श्राद्धे भवेत्स्वाहा पैत्र्ये श्राद्धे स्वधोच्यते। स्वाहा से देवों के प्रति और स्वधा से पितरों के प्रति श्रद्धा का भाव रहता है। एक आशय यह भी है कि हे देवि देवताओं को हवि और पितरों को काव्य अर्पण करते हुए जिन स्वाहा और स्वधा मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है, वे मन्त्र जब आपके ही बोधक हैं तो इस प्रकार वहां भी आपका ही तो स्मरण और आपके ही नामों का उच्चारण किया जाता है।

या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्वमभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्व सारैः।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषैर्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवी।८

अन्वय- या मुक्ति हेतुः अविचिन्त्यमहाव्रता सुनियतेन्द्रियतत्वसारैः अस्तसमस्तदोषैः मोक्षार्थिभिः मुनिभिः अभ्यस्यसे देवी भगवती सा परमा विद्या त्वम् एव असि।

शब्दार्थ- मुक्तिहेतुः- मुक्तौ हेतुः, मुक्तिविषये कारणम्-मुक्ति में कारण, अविचिन्त्यमहाव्रता-अविचिन्त्यम्- अनुष्ठेयत्वचिन्ताया अपि अविषयम् महाव्रतम- अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः तद्रूपं महाव्रतम् उक्तं च- एते जातिदेशकालसमयानविच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रताः, जो मन से चिन्तन का भी विषय नहीं हैं ऐसे महाव्रत, पातंजलयोगसूत्र के अनुसार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांचों को महाव्रत कहा गया है। अथवा चिन्तयितुमप्यशक्यानि दुश्चराणि महाव्रतानि उपवासादि पुण्यानि यस्यां सा चिन्तन से भी परे जो अत्यन्त कठिन उपवासदि महाव्रत हैं जिसमें वह देवी, सुनियतेन्द्रियतत्वसारैः सुष्ठ नियतानि वशीकृतानि विषयेभ्यो व्यावर्तितानि इन्द्रियाणि यैस्ते सुनियतेन्द्रदियाः ते च तत्वेसाराश्चेति सुनियतेन्द्रयतत्वसारैः जिन्होंने अपनी इंद्रियों को वश में करके तत्व का सार समझ लिया है, अथवा तत्वों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। तत्व की परिभाषा-ततत्वात् सन्ततत्वाच्च तत्वानीति विदुर्बुधः तनु विस्तारे धातु से तत्व शब्द बनता है अतः

जिसका विस्तार होता रहे, और जो निरन्तर रहे उसे तत्व कहते हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश पर संयम करके जिसने इनके रहस्य को जान लिया लिया है वह तत्वसार। अथवा तत्वं ब्रह्म एव सारो येषां ते तत्वसारा: तै: तत्वसारै:, मोक्षार्थिभि:- मोक्षं अर्थयन्त इति मोक्षार्थिनस्तै: अस्तसमस्तदोषै: अस्ता: ध्वस्ता समस्ता कामक्रोधलोभमोहमदमत्सरादय: दोषा: येषाम् काम क्रोध लोभ मोह मद मत्सर ये छ: दोष जिनके मिट गए हैं अथवा रागद्वेष से रहित मुनिभि: मननशीलै:, अभ्यस्यसे- पुन:पुन: आवर्त्यसे- बार-बार की आवृत्ति से अभ्यास किया जाता है, परमा-प्रकृष्टतमा, परं ब्रह्म मातीति परिच्छिनत्तीति परमा, परब्रह्मणो रूपचतुष्कमस्ति तस्मादुत्कृष्टा-परब्रह्म का निरूपण करने के कारण परमा, परमब्रह्म हो भी उत्कृष्ट, परमादिविद्या-ब्रह्मज्ञानरूपा, भगवती-सर्वैश्वर्यसम्पन्ना।

व्याख्या- हे देवि, जो मुक्ति का कारण है, जो महाव्रतों के द्वारा भी अचिन्तनीय है जिसे अपनी इन्द्रियों को वश में करके तत्व के ज्ञाता मननशील मोक्ष की आकांक्षा करने वाले साधक जिनके रागद्वेषादि सभी दोष दूर हो चुके हैं, वे जिस सर्वैश्वर्यसम्पन्न ब्रह्मविद्या का अभ्यास करते हैं, वह आप ही हैं आशय यह है कि आपको प्राप्त करने के लिए अहिंसा सत्य आदि महाव्रतों का अनुष्ठान आवश्यक है, मुक्ति की मन में कामना होना चाहिए, जिसने अपनी इन्द्रियों पर विजय पाली हो, वही सर्वैश्वर्यसम्पन्न परमाविद्यारूपा आपको पा सकता है।

रहस्य-श्रुति का कथन है- सा विद्या या विमुक्तये। भगवती की आराधना से भुक्ति और मुक्ति दोनों ही प्राप्त होती है।

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षः यत्रास्ति मोक्षः न च तत्रभोगः।

श्री सुन्दरीसेवनतत्पराणां भुक्तिश्च मुक्तिश्च करस्थ एव।

पूर्व में या श्री स्वयं सुकृतिनां आदि से देवी से सांसारिक ऐश्वर्य और भोगों के संबंध में प्रार्थना की गई। अब मुक्ति के विषय में कि मुक्ति हेतु भी वही शक्ति है। किंतु इसके लिए कठोर यम नियमों के पालन के साथ ही इंद्रियों को वश में करना होगा, रागद्वेषादि तथा योग के जो अन्तराय बताये गए हैं उन्हें त्याग कर समस्त दोषों से रहित होना होगा, तब ऐसी दुष्कर तपस्या का व्रत लेना होगा जो सामान्यजन की कल्पना में भी नहीं आ सकते। क्योंकि वह अविचिन्त्यमहाव्रता हैं।

शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधानमुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।

देवि त्रयी भगवती भव भावनाय वार्ता च सर्वजगताम् परमार्तिहन्त्री॥९

अन्वय- हे देवि त्वं भगवती शब्दात्मिकाविमलर्ग्यजुषां उद्गीथरम्यपदपाठवतां साम्नां च निधानम् सर्वजगतां आर्तिहन्त्री परमा वार्तात्रयी असि

अथवा- हे देवि त्वं शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधानं उद्गीथरम्यपदपाठवतां साम्नां च निधानं त्रयी असि भव भावनाय वार्ता असि सर्वजगतां आर्तिहन्त्री परमा असि।

अथवा- हे देवि त्वं सुविमलर्ग्यजुषां उद्गीथरम्यपदपाठवतां साम्नां च त्रयी असि भवभावनाय निधानम् वार्ता च सर्वजगतां परमा आर्तिहन्त्री असि।

अथवा- त्वं शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधानम् उद्गीथरम्यपदपाठवतां साम्नां च निधानम्, देवी भगवती त्रयी असि, भवभावनाय त्रयी अथवा भवभावनाय वार्ता असि, सर्वजगतां परमा आर्तिहन्त्री असि।

शब्दार्थ- देवी- सम्बोधन,

जीवनायवार्ता- कृषिवाणिज्यपशुपालनत्वम्- संसार के प्राणियों के लिए आप ही कृषि, वाणिज्य और पशुपालन रूपा वार्ता आप ही हैं, आर्तिहन्त्री-पीड़ा, विपत्ति का नाश करने वाली परमार्तिहन्त्री- पीड़ातिशयनाशिनी, परमा- सर्वोत्कृष्टा परमा को त्रयी का विशेषण मानकर अर्थ होगा- परंब्रह्म रूपा।

व्याख्या- हे देवि आप ही ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद इन तीनों वेदों की त्रयीरूपा हैं। आप भगवती-सर्वैश्वर्ययुक्त हैं, भवभावनाय संसार प्रवर्तन और उसकी स्थिति के लिए कृषि, वाणिज्य और पशुपालन रूपा हैं। त्रयी के रूप में वेदविहित यज्ञ की प्रवर्तिका होने के कारण संसार की स्थिति और पालन करने वाली हैं। क्योंकि वेदमन्त्रों से ही अग्नि में देवताओं के लिए आहुति दी जाती है, वह आहुति आदित्य को पहुंचती है। सूर्य के कारण वर्षा होती है जिससे अन्न की उत्पत्ति और प्रजा की वृद्धि होती है। आप सभी बड़ी से बड़ी विपत्ति-पीड़ा-संकट को दूर करने वाली हैं। आप उन वेदों का आश्रय हैं जो अपौरुषेय होने के कारण सर्वथा दोष रहित हैं विमल हैं, जिनके द्वारा उच्च स्वर से गान किए जाने पर सुन्दर पाठ का आनन्द मिलता है। उन वेदमन्त्रों का प्रणव-ओंकार पूर्वक उच्चारण किए जाने से आप ही मन्त्रशक्ति के रूप में लोक व्यवहार की प्रवर्तक हैं। आप ही पदवाक्य रूप वाणी की प्रवर्तिका हैं। नादब्रह्म का रूप भी आप ही हैं। आप परमा हैं सर्वोत्कृष्ट हैं। स्वयं ब्रह्मरूप हैं।

रहस्य- शक्ति को पंचकर्म की करने वाली कहा गया है। वे पांच कर्म हैं- सृष्टि, स्थिति, लय, तिरोधान और अनुग्रह। इस स्तुति के द्वारा देवी के इन पंचकृत्यों का उल्लेख किया गया है- भवभावनाय-संसार की उत्पत्ति से सृष्टिकार्य, वार्ता- से स्थिति कृत्य- आर्तिहन्त्री अथवा परमार्तिहन्त्री से अनुग्रह, नादब्रह्म से तिरोधान उद्गीथकथन से भवितानिर्देश के साथलय कथन।

मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसंगा।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा।१०

अन्वय- हे देवि त्वं विदिताखिलशास्त्रसारा मेधा असि, दुर्गभवसागरनौः असंगा दुर्गा असि, कैटभारिहृदयैककृताधिवासा श्रीः असि त्वम् एव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा गौरी असि।

शब्दार्थ- मेधा- कोश के अनुसार- धीर्धारणावती मेधा, धारणाशक्ति से युक्त बुदिध को मेधा कहा जाता है, विदिताखिलशास्त्रसारा- विदितः ज्ञातः अखिलशास्त्राणां सारं तत्वं यया- जिसने सम्पूर्ण शास्त्रों के सार को समझ लिया है, दुर्गा-दुःप्रापा, दुःखेन गम्यमाना जो दुष्प्राप्य हो, दुर्गभवसागरनौः-दुर्गो दुरवच्छेदो यो भवसागरःसंसारसागरः तत्र नौः एव पारगमनसाधनम् संसार को सागर के समान बताया गया है जिसके पार जाना दुःसाध्य है उसके लिए संसारसागर को पार करने के लिए देवी नौः नाव समान है असंगा-आसक्तिरहित, संगरहिता, अद्विवतीया, अप्रतिहतप्रसरा, संत्यक्ताखिलबन्धहेतुः- जिसके साथ कोई दूसरा न हो, असाधारण, आसक्तिरहित, जिसे कोई बाधा न हो, जिसकी गति अबाध हो, सब बन्धनों से रहित, बाधाबन्धविहीन, श्रीः-लक्ष्मी, कैटभारिहृदयैककृताधिवासा-कैटभारेः हृदये एकया अद्वितीयया कृतो अधिवासोयया सा जो लक्ष्मी कैटभ दैत्य के मारने वाले विष्णु के हृदय में एकमात्र निवास करती हैं, शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा- शशिमौलौ शिवे कृता प्रतिष्ठा आस्पदं यया सा- जो शिव के अर्धांग के रूप में स्थित है, अथवा- शशिमौलेः हरस्य कृता प्रतिष्ठा यया सा-जिसने शिव को अपना कर उनके उत्कर्ष को बढ़ाया है अथवा-शशी चन्द्रःमौलौ मस्तके यस्य सःशिवः तेन कृता प्रतिष्ठा अवस्थितिः अर्धांगत्वेन यस्याः सा शिव ने जिसे अपने अर्धांग में प्रतिष्ठित किया है।

व्याख्या- जिसने समस्त शास्त्रों के तत्व को हृदयंगम कर लिया है, वह मेधा आप ही हैं, आप दुर्गा हैं- दुष्प्रपा हैं, आपको प्राप्त करना कठिन है, आप इस संसारसागर से पार जाने के लिए अद्वितीय नाव के समान हैं, सामान्य नाव को चलाने वाला कर्णधार होता है किन्तु आप ऐसी नौका हैं जिसका कोई नाविक नहीं, नाव को झंझावत आदि का भय रहता है किन्तु आप ऐसी नौका हैं जिसकी निर्बाध गति है, संसार से पार जाना तब तक संभव नहीं होता जब तक कि संसार से आसक्ति रहती है- आपका आश्रय लेने पर यह आसक्ति दूर हो जाती है इसलिए आप अद्वितीय नौका रूप हैं, कैटभ का वध करने वाले विष्णु के हृदय में निवास करने वाली एकमात्र लक्ष्मी हैं, अथवा दुर्गा और दुर्गभवसागरनौः असंगा इन तीनों को मेधा का ही विशेषण मानकर अर्थ होगा कि आप दुष्प्राप्य होने के कारण दुर्गा हैं मेधा सरस्वती का बोधक हैं, ज्ञान के द्वारा ही संसारसागर को पार किया जा सकता है और सरस्वती जो स्वयं विदिताखिलशास्त्रसारा है, वही असंगा नौ-नाव है कहा भी गया है- ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः इसीलिए आप समस्त शास्त्रज्ञान का तत्व जानने वाली मेधा रूपा सरस्वती हैं जो दुष्प्राप्या हैं और जो ज्ञान

अथवा संसारस्थितये, इस प्रकार अर्थ होगा कि संसार की स्थिति के लिए आप त्रयी हैं, अथवा भवा: प्राणिन: तेषाम् भावनाय-जीवनायवार्ता-कृषिवाणिज्यपशुपालनत्वम्- संसार के प्राणियों के जीवन के ज्ञान के द्वारा इस संसारसागर को पार करने के लिए आसक्तिरहित नाव हैं इस प्रकार देवी के ब्राह्मी रूप की स्तुति की गई, कैटभारिहृदयैक कृताधिवासा के रूप में वैष्णवी और शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा गौरी के द्वारा रौद्री की स्तुति की गई। इस प्रकार यहां ब्राह्मी, माहेश्वरी और वैष्णवी तीनों ही शक्तिरूपों का स्मरण किया गया है।

रहस्य- मन्त्रशास्त्र के विचार से इस मन्त्र में बाग्बीज, रमाबीज और सर्वमंगला बीज का उद्धार बताया गया है। शास्त्र शब्द से वेद का आश्रय लिया गया है। वेदत्रयी के ऋग्वेद और सामवेद के प्रथम मंत्रों के आद्यक्षर अकार, इकार और अकार रह जाते हैं। अ और इ को क्रम से मिलाने पर ए होता है, उसमें अकार को व्युतक्रम से मिलाने से अ-ए मिलकर ऐ हुआ तंत्रराज में भी कहा गया है। ऋक्सामयोर्यजुषि सन्धिवशादुदीर्ण बीजं सरस्वति सकृत्तव ये जपन्ति। ते सत्यवाक् मुनिवद्विदितत्रयीका आथर्वणा दिकमवाप्य सुखी भवन्ति। यही अखिलशास्त्रसार। दूसरे चरण में कहा गया है- दुर्गासि दुर्गभावगरनौरसंगा- इसमें भव शिव का वाचक होकर सकार का बोधक हुआ। सागर जल का वाचक होने से वकार का बोधक हुआ। नौरसंगा का अर्थ अर्थात् व्यंजन रहित नौ इसमें व्यंजन ननकार को हटा देने से औ शेष रहा। इस प्रकार स्वौ सर्वमंगला बीज हुआ। श्री: कैटभारिहृदयैककृत प्रतिष्ठा इस तीसरे चरण में श्री का नामोल्लेख ही है। ऐ, स्वौ और श्री इनमें बिन्दु का योग चतुर्थ चरण के अनुसार-शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा इनके मौलि में शशि चंद्रबिन्दु की प्रतिष्ठा करने पर ऐं-स्वौ: और श्रीं ये तीनों बीजाक्षर बनते हैं।

ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्रबिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम्।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण। ११

अन्वय- ईषात्सहासं अमलं परिपूर्ण चन्द्र बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकांतम् वक्त्रं विलोक्य सहसा आत्तरुषा महिषासुरेण प्रहृतम् इति अत्यद्भुतम्।

शब्दार्थ-ईषत्सहासम् ईषद्हासेन सह वर्तमानम् मन्दस्मितोपेतम् किंचित् मुस्कान के साथ अमलम्- रुचिरम्-सुन्दर, परिपूर्णचन्द्रबिम्बानुकारि पूर्णचंद्रबिम्बसदृशम् पूर्णचन्द्र के समान मानो षोडशकला पूर्ण चंद्र का बिम्ब हो, कनकोत्तमकान्तिकान्तम्- कनकेषु उत्तमं यत्स्वर्ण तद्वत्कान्तं मनोहरं कान्तिर्यस्य- अत्यन्त श्रेष्ठ सोने की कान्ति के समान मनोहर, अथवा कनकादप्युत्तमा कान्तिर्यस्य, वक्त्रम-मुख, विलोक्य-दृष्ट्वा-देखकर, आत्तरूषा-प्राप्तकोपेन- क्रोधित होकर, प्रहृतम्- प्रहारंकृतम्-प्रहार किया, वार किया, अत्यद्भुतम- महदाश्चर्यम् अत्यन्त आश्चर्य की बात है,

अथवा संसारस्थितये, इस प्रकार अर्थ होगा कि संसार की स्थिति के लिए आप त्रयी हैं, अथवा भवा: प्राणिन: तेषाम् भावनाय-जीवनायवार्ता-कृषिवाणिज्यपशुपालनत्वम्- संसार के प्राणियों के जीवन के ज्ञान के द्वारा इस संसारसागर को पार करने के लिए आसक्तिरहित नाव हैं इस प्रकार देवी के ब्राह्मी रूप की स्तुति की गई, कैटभारिहृदयैक कृताधिवासा के रूप में वैष्णवी और शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा गौरी के द्वारा रौद्री की स्तुति की गई। इस प्रकार यहां ब्राह्मी, माहेश्वरी और वैष्णवी तीनों ही शक्तिरूपों का स्मरण किया गया है।

रहस्य- मन्त्रशास्त्र के विचार से इस मन्त्र में बाग्बीज, रमाबीज और सर्वमंगला बीज का उद्धार बताया गया है। शास्त्र शब्द से वेद का आश्रय लिया गया है। वेदत्रयी के ऋग्वेद और सामवेद के प्रथम मंत्रों के आद्यक्षर अकार, इकार और अकार रह जाते हैं। अ और इ को क्रम से मिलाने पर ए होता है, उसमें अकार को व्युतक्रम से मिलाने से अ-ए मिलकर ऐ हुआ तंत्रराज में भी कहा गया है। ऋक्सामयोर्यजुषि सन्धिवशादुदीर्ण बीजं सरस्वति सकृत्तव ये जपन्ति। ते सत्यवाक् मुनिवद्विदितत्रयीका आथर्वणा दिकमवाप्य सुखी भवन्ति। यही अखिलशास्त्रसार। दूसरे चरण में कहा गया है- दुर्गासि दुर्गभावगरनौरसंगा- इसमें भव शिव का वाचक होकर सकार का बोधक हुआ। सागर जल का वाचक होने से वकार का बोधक हुआ। नौरसंगा का अर्थ अर्थात् व्यंजन रहित नौ इसमें व्यंजन ननकार को हटा देने से औ शेष रहा। इस प्रकार स्वौ सर्वमंगला बीज हुआ। श्री: कैटभारिहृदयैककृत प्रतिष्ठा इस तीसरे चरण में श्री का नामोल्लेख ही है। ऐ, स्वौ और श्री इनमें बिन्दु का योग चतुर्थ चरण के अनुसार-शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा इनके मौलि में शशि चंद्रबिन्दु की प्रतिष्ठा करने पर ऐं-स्वौ: और श्रीं ये तीनों बीजाक्षर बनते हैं।

ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्रबिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम्।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण। ११

अन्वय- ईषात्सहासं अमलं परिपूर्ण चन्द्र बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकांतम् वक्त्रं विलोक्य सहसा आत्तरुषा महिषासुरेण प्रहृतम् इति अत्यद्भुतम्।

शब्दार्थ-ईषत्सहासम् ईषद्हासेन सह वर्तमानम् मन्दस्मितोपेतम् किंचित् मुस्कान के साथ अमलम्- रुचिरम्-सुन्दर, परिपूर्णचन्द्रबिम्बानुकारि पूर्णचंद्रबिम्बसदृशम् पूर्णचन्द्र के समान मानो षोडशकला पूर्ण चंद्र का बिम्ब हो, कनकोत्तमकान्तिकान्तम्- कनकेषु उत्तमं यत्स्वर्ण तद्वत्कान्तं मनोहरं कान्तिर्यस्य- अत्यन्त श्रेष्ठ सोने की कान्ति के समान मनोहर, अथवा कनकादप्युत्तमा कान्तिर्यस्य, वक्त्रम-मुख, विलोक्य-दृष्ट्वा-देखकर, आत्तरूषा-प्राप्तकोपेन- क्रोधित होकर, प्रहृतम्- प्रहारंकृतम्-प्रहार किया, वार किया, अत्यद्भुतम- महदाश्चर्यम् अत्यन्त आश्चर्य की बात है,

व्याख्या- हे देवि आपका मुख सदैव मुसकान सहित रहता है, वह परिपूर्ण चन्द्रबिम्ब के समान आह्लादकारक है, क्रुद्ध होने पर उसकी कान्ति और भी बढ़ जाती है और उस सोने के समान आह्लादकारी और सोने से भी अधिक सुन्दर मुख को देखकर भी महिषासुर ने अकस्मात् आप पर कठोर प्रहार कर दिया यह आश्चर्यजनक है। भाव यह है कि जगन्माता के मन्द मुसकान युक्त मुख के चिन्तन मात्र से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर इन षड् रिपुओं का शमन हो जाता है किन्तु महिषासुर को ठीक इसके विपरीत ऐसे जगन्मोहन रूप को देखकर भी मोह न होकर क्रोध आया और उसने सहसा-बिना विचारे ही आप पर वार कर दिया यह कितने आश्चर्य की बात है।

दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भृकुटीकरालमुद्यच्छशांकसदृशच्छवि यन्न सद्यः।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन।१२

अन्वय- हे देवि, कुपितं भ्रुकुटीकरालं उद्यच्छशांकसदृशच्छवि मुखं दृष्ट्वा महिषः यत् सद्यः प्राणान् न मुमोच तद्अतीव चित्रम् कुपितान्तक दर्शनेन हि कैः जीव्यते।

शब्दार्थ- कुपितम्- क्रोधाविष्टम, भ्रुकुटीकरालम्- भ्रुकुट्या करालं विषमं भयंकरम्- क्रोध से भोंहो में बल पड़ जाने के कारण भयंकर, प्रसाद ने भी कहा है- जानेगा वही कुटिलता जिसने भौहों में बल देखा। उद्यच्छशांकसदृशच्छवि- उदयं कुर्वन् शशांकः चन्द्रः तेन सदृशी छविः प्रभा यस्य तत्तथोक्तं उद्यच्छशांकसदृशच्छवि उदयकालीन चन्द्रमा के समान लालिमा युक्त, सद्यः तत्काल, सद्यः अविलम्ब, तुरन्त, चित्रम्- विचित्र है, आश्चर्य है, कुपितान्तकदर्शनेन- कुपितस्य क्रुद्धस्य अन्तकस्य यमस्य दर्शनेन- दृष्ट्वा, क्रुद्ध यमराज को सामने पाकर, जीव्यते-जीवितुं शक्यते।

व्याख्या- हे देवि, क्रोध से आपकी चढ़ी हुई भयंकर भोंह को देखकर भी जिसके कारण आपका मुख उदयकालीन चन्द्रमा के समान रोषारुण हो गया था, फिर भी आपके इस प्रकार क्रोधावेश में भयजनक रूप को देखकर भी महिषासुर ने प्राण नहीं त्यागे यह बड़ी विचित्र बात है क्योंकि ऐसा कौन प्राणी है जो क्रुद्ध यमराज को सामने पाकर भी जीवित रह सके। तुलसीदास जी ने भी कहा है- भ्रुकुटि विलास जासुलय होई। जिसकी भोंह में जरा सा बल आते ही प्रलय हो जाता है, उसके सामने क्रोधावेश में आकर महिषासुर जीवित रह सका, यह बड़ा विचित्र है।

देवि प्रसीद परमाभवती भवाय सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेतन्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य।१३

अन्वय- हे देवि प्रसीद भवती परमा सती भवाय, भवती, कोपवती सद्यः कुलानि विनाशयसि, एतद्अधुना एव विज्ञातम्, यत् भवती कोपवती सती महिषासुरस्य सुविपुलं बलं अस्तं नीतम्।

शब्दार्थ- प्रसीद-प्रसन्न भव, आप प्रसन्न हो। भवती- आप, परमा-परा उत्कृष्टा सानुग्रहा मा बुद्धिर्यस्या सा जो अनुग्रह करने वाली है, वा परा सानुग्रहा मा शोभा यस्या सा जो अनुग्रह करने वाली होकर शोभायमान है, वा परा उत्कृष्टा मा लक्ष्मीः असि- आप उत्कृष्ट लक्ष्मीरूपा हैं, प्रसादपरमा भवती भवाय मानकर भी अर्थ किया गया है- प्रसादेन प्रसन्नत्वेन परमा उत्कृष्टा असि- आप कृपा करने में उत्कृष्ट हैं, वा भवाय भवती परमा- भवाय का अर्थ संसारविभूतिजननाय भवती त्वं परमा उत्कृष्टा असि- आप सांसारिक विभूतियों को प्रकट करने में उत्कृष्ट हैं, तदा भवाय कुलाभिवृद्धये भवसि। सद्यः सपदि- तत्क्षण, कोपवती-क्रुद्धा, कुलानि-कोश के अनुसार-वंशे वृन्दे गृहे कुलम्-वंश को, कुलों को, गृहों को, समूहों को सभी अर्थ अभीष्ट हैं। अधुना एव-अभी ही, विज्ञातम्-विदित हो गया, सुविपुलम्-बहुलम् अस्तम्-विनाशम्, नीतम्-प्रापितम्। नष्ट कर दिया गया।

व्याख्या- हे देवि आप प्रसन्न हों, आप सांसारिक विभूतियों को देने में सर्वोत्कृष्ट हैं। आप जब प्रसन्न होती हैं तो हमारे अभ्ययुदय के लिए हमारे शत्रुओं का तत्काल ही समूलोच्छेद कर देती हैं, कुल, परिवार और गृहों का नाश कर देती हैं। यह हम देवताओं को अभी ही विदित हो गया है जब आपने क्रोधित होकर महिषासुर की विशाल सेना को समाप्त कर दिया। आप परमाभवती हैं लक्ष्मी, सम्पत्ति, ऐश्वर्य बुदिध और विद्वत्ता की देने वाली हैं। आप प्रसन्न होकर कृपा करने में सर्वोत्कृष्ट हैं। आप वंशवृदिध, वैभव और समृदिध की देने वाली सर्वोत्कृष्ट शक्ति हैं। आप सांसारिक सुख भोग देने में परमा-उत्कृष्टा हैं। आप इस संसार के उद्भव करने वाली परमा-परं ब्रह्म मातीति परमा हैं।

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां तेषां यशांसि न च सीदति बन्धुवर्गः।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना।१४

अन्वय- हे देवि भवती सदाभ्युदयदा सती येषां प्रसन्ना अस्ति ते एव लोका जनपदेषु संमता तेषां एव धनानि तेषां यशासि तेषामेव बन्धुवर्गः न सीदति, ते एव निभृतात्मजभृत्यदारा धन्याः स्युः।

शब्दार्थ- अभ्युदयदा- सर्वमनोरथप्रदा, सर्वसमृद्धिदा, सब प्रकार की समृद्धि और उन्नति देने वाली, जनपदेषु- कोश के अनुसार- भवेज्जनपदो जानपदोऽपि जनदेशयोः "जहां मनुष्य निवास करते हैं, सम्मताः- संमानभाजः लब्धप्रतिष्ठा समाज में सम्मानित, बन्धुवर्गः बन्धुबान्धव और परिवार कुटुम्ब के जन, न सीदति- अवसानं न लभते, विपत्ति में पड़कर दुख नहीं उठाते, निभृतात्मजभृत्यदारा- निभृता-विनीताः आत्मजाः- पुत्राः भृत्याः अनुचराः सेवकाः दाराः कुलस्त्रियः येषां ते निभृतात्मजभृत्यदाराः, जिनके पुत्र, नौकर चाकर और पारिवारिक स्त्रियां विनीत- नम्र सुशिक्षित हैं, कोष के अनुसार-

निभृतविनीत- प्रश्रता:समा:।

व्याख्या- देवी की कृपा के फल का वर्णन करते हुए कहते हैं कि आप जिस पर प्रसन्न होकर कृपा करती हैं उनका सदैव अभ्युदय-उन्नति और समृद्धि होती है। वही जनसमाज में आदर पाते हैं, उनका यश फैलता है, उनके पास धनसम्पत्ति की वृद्धि होती रहती है, उनके परिजन, कुटुम्बी आदि बन्धुबान्धव कभी विपत्ति में कष्ट में पड़कर दुखी नहीं होते, उनके पुत्र सन्तान, सेवक और परिवार की स्त्रियां नम्र विनीत सुशिक्षित होती हैं और वे ही इस लोक में धन्य हैं जिन्हें आपकी कृपा से सब प्रकार की समृद्धि सदा ही प्राप्त होती रहती है।

धर्म्याणि देवि- सकलानि सदैव कर्माण्यत्यादृत: प्रतिदिनं सुकृती करोति।
स्वर्गं प्रयाति च ततोभवतीप्रसादाल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन।१५

अन्वय़- हे देवि भवतीप्रसादात् सुकृती प्रतिदिनं सदैव अत्यादृत: सकलानि धर्म्याणि कर्माणि करोति तत: भवतीप्रसादात् स्वर्गं प्रयाति च तेन भवती लोकत्रयेऽपि फलदा ननु।

शब्दार्थ- भवती प्रसादात्- आपकी प्रसन्नता से, कृपा से, भवती शब्द को अलग मानें तो अर्थ होगा आप सुकृती- कोष के अनुसार सुकृती पुण्यवान् धन्य: अत्यादृत:- अतिश्रद्धावान् अतितरां सादर: सन्- अति श्रद्धा के साथ, धर्म्याणि धर्मेण प्राप्यानि वा धर्मादनपेतानि, धर्म से प्राप्त होने के योग्य अथवा धर्मयुक्त, प्रयाति-गच्छति स्वर्ग को प्रयाणकरता है, चकार से मोक्ष को भी प्राप्त होता है, तेन-इस प्रकार, भवती-आप लोकत्रये-इस लोक और स्वर्ग तथा मोक्ष संबंधी ये तीन फलदा शुभ फल देने वाली।

व्याख्या- हे देवि पुण्यवान् व्यक्ति सदैव प्रतिदिन अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सभी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान तथा सामयिक कार्य करते रहते हैं जिसके फलस्वरूप उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति होती है और फिर मोक्ष को भी प्राप्त करते हैं। इस प्रकार आप ही की कृपा से धर्मपरायण कर्तव्यशील होकर व्यक्ति इस लोक में सुखी होता है, परलोक में स्वर्ग सुख प्राप्त करता है और आप ही उसे मुक्ति भी प्रदान करने वाली हैं अत: आप तीनों लोकों में फल देने वाली हैं।

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तो: स्वस्थै: स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदु:खभयहारिणि का त्वदन्या सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता।१६

अन्वय- दुर्गे स्मृता सती अशेषजन्तो: भीतिं हरसि स्वस्थै: स्मृता सती अतीव शुभां मतिं ददासि दारिद्र्यदु: खभयहारिणि सर्वोपकारकारणाय सदार्द्रचित्ता त्वदन्या का असि।

शब्दार्थ- दुर्गे- संकटे विपत्ति के समय वा दुर्गा का संबोधन का रूप दोनों ही अर्थ

अभीष्ट स्मृता-स्मरण करते ही, अशेषजन्तोः समस्तप्राणिनः-सम्पूर्ण प्राणियों के, भीतिम्-भयम् भय को, स्वस्थैः स्वस्थ चित्त वाले व्यक्तियों के द्वारा, स्मृता-स्मरण किए जाने पर, अतीव-अत्यन्त, शुभां मतिम्-सत्कर्मों के प्रति प्रेरित करने वाली बुद्धि, सर्वोपकारकरणाय-सर्वेषाम् उपकारान् कर्तुम्, सभी के प्रति सभी प्रकार उपकार करने के लिए, आर्द्रचित्ता-स्निग्धचित्ता- हृदय से स्नेह करने वाली, दारिद्रयदुः खभयहारिणि- दारिद्रयं निर्धनत्वं तेन जन्यं दुःखं दारिद्रदुः खंदारिद्रयदुः खाद्भयम्- तत् हर्तु शीलं यस्याः सा दारिद्रयदुः खभय-हारिणी तत्सम्बुदधौ दारिद्र्यदुः खभयहारिणी वा दारिद्र्यं निर्धनत्वं च दुःखं प्रतिकूल-वेदनीयम् च भयं भीतिं च दारिद्र्यदुः खभयानि तानि हरतीति दारिद्र्यदुः खभयहारिणी दरिद्रता, कष्ट और सभी प्रकार के भय से बचाने वाली, त्वद्-त्वत्तः अन्या अपरा

व्याख्या- हे देवि दुर्गे विपत्ति के समय संकट पड़ने पर जो भी आपका स्मरण करता है तो आप सभी प्राणियों के उस दुःख को संकट को दूर कर देती हैं, जैसा कि कहा गया है-

लक्ष्मी राजकुले जयां रणभुवि क्षेमंकरीमध्वनि,
क्रव्यादद्विपसर्पभाजि शबरीं कान्तारदुर्गे गिरौ,
भूतप्रेतपिशाचजम्बुक भये स्मृत्वा महाभैरवीं,
व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदस्तारां च तोयप्लवे। लघुस्तुति-१७

"राजकुल से किसी प्रकार का भय होने पर लक्ष्मी का स्मरण करना चाहिए, युद्धस्थल में संग्रामभूमि में सुरक्षा और विजय के लिये जया का, मार्गगमन में किसी भी अनिष्ट से बचने के लिये और सकुशल यात्रा पूरी होने के लिये क्षेमंकरी देवी का, मांसभक्षियों, मस्त हाथी और सर्प से भय उपस्थित होने पर, घने जंगल में भटक जाने पर, दुर्गम स्थान में और पर्वतारोहण आदि के समय मातंगी देवी का, भूत, प्रेत, पिशाच, पागल कुत्ते और स्यार से भय के समय महाभैरवी का और किसी भी प्रकार की व्याकुलता, बेचैनी का अनुभव होने पर त्रिपुरा का तथा जल प्लावन के समय और जल यात्रा के समय तारा का स्मरण करने से विपत्ति से संकट से रक्षा होती है"

और- जो व्यक्ति स्वस्थ चित्त से एकाग्रता के साथ ध्यानपरायण होकर आपका स्मरण करता है, उसकी अत्यन्त शुभ बुद्धि आप कर देती हैं वास्तव में अतीव शुभ मति से यहां आशय पातंजलयोग के उस प्रज्ञा से है जिसे ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा के अनुसार वर्णन किया गया है। आप सदा ही अत्यन्त दयापूर्ण रहकर सभी का हित करने में तत्पर रहती हैं इस प्रकार दरिद्रता, प्रतिकूलपरिस्थिति और भय के समय आप दरिद्रता, दुःख और भय को दूर करने वाली हैं। आपके समान इस प्रकार सभी का हित करने वाली

अन्य कोई भी शक्ति नहीं है।

एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम्।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु मत्वेति नूनमहितान्विनिहंसि देवि।१७

अन्वय- एभि: हतै: जगत् उपैति तथा एते चिराय नरकाय पापं कुर्वन्तु किन्तु संग्राममृत्युम् अधिगम्य दिवं प्रयान्तु इति मत्वा नूनं अहितान् विनिहंसि।

शब्दार्थ-एभि: इन असुरों के, हतै: मारे जाने पर उपैति- प्राप्त करता है, उपैतु इस पाठ के अनुसार प्राप्त करे, एते- ये असुर-चिराय-दीर्घकाल तक नरकाय-नरक में पड़े रहने के लिए पापं कुर्वन्तु-पाप करें, संग्राममृत्यु:-युद्धक्षेत्रे मरणम्- युद्धस्थल में मृत्यु, अधिगम्य- प्राप्त कर दिवं-स्वर्ग को, प्रयान्तु-प्रयाण कर सकें, इति मत्वा-ऐसा मानकर नूनम्- निश्चिय ही अहितान् अहित करने वाले असुरों को, स्वर्गलोक के द्रोहियों को, विनिहंसि-मारयसि-वध करती हो।

व्याख्या- हे देवि, आपने यह सोचा कि इन दैत्यों के मारे जाने से संसार तो सुखी हो जाएगा, परन्तु ये दीर्घकाल तक नरक में रहकर अपने पापों का फल भोगते रहेंगे, इसलिये यदि इनकी मृत्यु युद्ध करते हुए होगी तो ये संसार भर का अहित करने वाले भी शस्त्रपूत मरण प्राप्त होने के कारण स्वर्ग में सुखी रह सकें इसीलिए आपने दयार्द्र चित्त होकर ही इनका वध किया। आपने संग्राम में मारकर इन्हें नरकभोग से बचाकर स्वर्ग भेजा है अत: आप शत्रुओं के प्रति दयालु ही रही हैं। कहा गया है-

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्मसम्मुखे च रणे हत:।

दो ही प्रकार के पुरुष संसार में सूर्यमंडल के परे उस लोक में जाते हैं- एक तो योग के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र से प्राणोत्सर्ग करने वाला और दूसरा जो सम्मुख युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हो।

दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम्।
लोकान्प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता इत्थं मतिर्भवति तेष्वहितेषु साध्वी॥१८

अन्वय- हे देवि भवती सर्वासुरान् दृष्ट्वा एव भस्म किं न प्रकरोति यत् अरिषु शस्त्रं प्रहिणोषि हि रिपव: अपि शस्त्रपूता: लोकान् प्रयान्तु इत्थं अहितेषु अपि साध्वी मतिर्भवति।

शब्दार्थ- दृष्ट्वा एव-दृष्टिमात्र से क्रूर दृष्टि से ही, सर्वासुरान सर्वान् असुरान् सभी दैत्यों को यत् जो, अरिषु-शत्रुषु शत्रुओं पर, प्रहिणोषि- व्यापारयसि, प्रयोग करती हो, रिपव: अपि-शत्रु भी, शस्त्रपूता: शस्त्राघात से सब पापों से रहित पवित्र होकर, लोकान्- अच्छे लोकों को, प्रयान्तु- प्रयाण करें, इत्यम्- इस प्रकार अहितेषु अपि-शत्रुओं पर भी,

साध्वी मति: अनुग्रहबुदिध: अनुग्रह करने की भावना।

व्याख्या- हे देवि, आप तो अपनी क्रूर दृष्टिमात्र से ही सभी दैत्यों को भस्म कर सकती हैं पर आप ऐसा न करके उनके मारने के लिए शस्त्रप्रहार करती हैं, उसका उद्देश्य केवल यही हो सकता है कि युद्धभूमि में यदि ये असुर सम्मुख लड़ते हुए आयुधों के प्रहार से मारे जायेंगे तो इन्हें अच्छे लोकों की प्राप्ति हो सकेगी। इस प्रकार शत्रुओं के प्रति भी सद्भावना रखती हैं। उनका भी कल्याण ही चाहती हैं।

खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रै: शूलाग्रकान्ति निवहेन दृशो सुराणाम्।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्डयोग्याननं तव विलोकयतां तदेतत्॥१९

अन्वय- हे देवि, उग्रै: खड्गप्रभानिकरविस्फुरणै: तथा शूलाग्रकान्तिनिवहेन असुराणां दृश:यत् विलयं न आगता तद्अंशुमत् इन्दुखण्डयोगि तव आननं विलोकयतां असुराणां एतद्सम्भवति। वा अंशुमदिन्दुखण्डयोग्याननम्।

शब्दार्थ- उग्रै: प्रचण्डै: अत्यन्त प्रचण्ड, खड्गप्रभानिकरविस्फुरणै: खड्गस्य प्रभानिकर: दीप्ति समूह: तस्य विस्फुरणै: सर्वत: प्रसरणै: वा खड्गस्य प्रभा तासां निकर: समूह: तस्य विस्फुरणानि संचलनानि तै: खड्गप्रभानिकरविस्फुरणै: तलवार की चारों ओर फैलने वाली चकाचौंध से, शूलाग्रकान्तिनिवहेन- शूलस्य अग्राणि त्रीणि तेषां कान्तय: प्रभा: तासां निवह: समूह: तेन शूलाग्रकान्तिनिवहेन वा कोश के अनुसार अग्र- अग्रं पुरस्तादुपरि परिमाणे पलस्य च। आलम्बने समूहे च प्रान्ते च स्यान्नपुंसकम्। अधिकेच प्रधाने च प्रथमे चाभिधेयवत् इसके अनुसार- शूलाग्रं शूलमुख्यं तस्य कान्तिनिवहेन प्रभासमूहेन- त्रिशूल के तीनों अग्रभाग से निकलने वाली प्रभा के समूह से अथवा उत्तम शूल के प्रभामण्डल से, दृश:- चक्षूषि आंखे, विलयम्- विनाशनम्- नष्ट होना, अंशव: किरणा: तै: युक्तम् तत् अंशुमत् मुख का विशेषण अथवा इन्दुखण्ड का विशेषण अंशुमत् इन्दुखण्डयोगि इसे मुख का विशेषण मानकर अर्थ होगा- अर्धचन्द्रान्वितम् तव आननम् चन्द्रकला से प्रकाशयुक्त आपका मुख, वा अंशुमदिन्दो: खण्डने योग्यं तव आननम् पूर्णचन्द्रापेक्षया अधिकाह् लादकारित्वात् अथवा अंशमदिन्दु-खण्डयोग्यं च तत् आननम् चंद्रकला से युक्त आपका मुख, विलोकयताम् असुराणाम् का विशेषण है जिसका अर्थ देखते रहने वाले।

व्याख्या- हे देवि, आपकी तलवार की प्रभा तो इतनी अधिक चकाचौंध उत्पन्न करने वाली है कि उसकी ओर देखने वाले की आंख की ज्योति ही चली जाय, इसी प्रकार आपके शूल से आभा की ज्योति की जो किरणें निकलती हैं, उनकी ओर भी देखना संभव नहीं, परन्तु फिर भी अस्त्रों के इस प्रभापुंज से दैत्यों की आंखे नहीं फूटीं उसका कारण यही हो सकता है कि वे आपके चन्द्रखंड से सुशोभित मुखमण्डल की ओर देखते रहे। मुख की चन्द्रकान्ति से शीतलता के कारण ही उनकी नेत्रज्योति नष्ट

नहीं हुई। यदि असुरों ने देवी के अर्धचन्द्रयुक्त मुख-मंडल की ओर दृष्टि न की होती तो उनकी तलवार और शूल की चकाचौंध से उनके नेत्रों की ज्योति नष्ट हो गई होती। अमृतांशुखण्डयुक्त आनन देखते रहने के कारण ही उग्रप्रभा के कारण उनकी आंखे नष्ट नहीं हुई।

दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यै:।
वीर्यं च हन्तृहृतदेवपराक्रमाणां वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम्।।२०

अन्वय- हे देवि तव शीलं दुर्वृत्तवृत्तशमनं तथा रूपं अन्यैः अतुल्यं अतः अविचिन्त्यं वीर्यं च हृतदेवपराक्रमाणां हन्त इत्थं त्वया बैरिष्वपि दया एव प्रकटिता।

शब्दार्थ- शीलम्-स्वाभाविको गुणः चरितम्, रूपम्-आकृतिः, दुवृत्तवृत्तशमनम्-दुष्टं वृत्तं येषान्ते दुर्वृत्ताः तेषां दुष्टचरित्राणाम् पुंसां वृत्तस्य शमनं निवारकम् दुष्टेन वृत्तेन वृत्तं पापं तस्य शमनं निवारकम् अतुल्यम्-असाधारणम्, अविचिन्त्यम्-मनसा अपि विचारयितुम् अशक्यम् अन्यैः अतुल्यम्, जिसकी किसी अन्य से तुलना न की जा सके, अन्यैः अतुल्यम् शीलं और रूपं दोनों का ही विशेषण हो सकता है। हृतदेवपराक्रमाणाम्-हृतः देवानां पराक्रमो यैः तेषाम्- जिन्होंने देवताओं के पराक्रम को नष्ट कर दिया है, उन असुरों का विशेषण, हन्तृ-हनन करने वाला वीर्यम्-बल और प्रभाव, हृता आत्मसात्कृताः देवा येन ईदृशः पराक्रमो येषां दैत्यानां हन्तृ- असुरो ने अपने जिस पराक्रम से देवताओं को भी अधीन कर रखा था, उनके उस पराक्रम को समाप्त करने वाला आपका बल और प्रभाव है, इत्थम्- इस प्रकार, त्वया-आपके द्वारा, वैरिषु अपि-शत्रुओं पर भी दया एवं-कृपा ही, प्रकटिता-प्रकट की है।

व्याख्या- हे देवि आपका स्वभाव ही दुर्जनों की चेष्टा को खण्डन करने वाला है, दुर्वृत्तवृत्तशमनं का एक यह भी अर्थ होता है कि किसी दुष्ट के कारण किसी सज्जन व्यक्ति की लोकनिन्दा होती हो अथवा उसके चरित्रहनन का अवसर हो तो आपके शील का स्मरण करने से लोकापवाद से व्यक्ति बच सकता है। आपकी आकृति भी अनन्यसाधारण है जिसकी किसी अन्य से तुलना ही नहीं की जा सकती। तात्पर्य यह है कि- यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति- के अनुसार असाधारण सौन्दर्य के साथ आपका दयापूर्ण स्वभाव भी असाधारण ही है। जिन असुरों ने देवताओं के पराक्रम को नष्ट कर उन्हें अपना वशवर्ती बना लिया था, उनके इस पराक्रम को नष्ट करने वाला आपका बल और प्रभाव है। इस प्रकार आपने शस्त्र से शत्रुओं का वध करते हुए भी उन पर दया ही की है।

केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि।।२१

अन्यवय- हे देवि वरदे भुवनत्रये अपि ते अस्य पराक्रमस्य केन उपमा भवतु, रूपं च शत्रुभयकारि अतिहारि च कुत्र, चित्ते कृपा समरनिष्टुरता च त्वयि एव दृष्टा।

शब्दार्थ- वरदे सम्बोधन का रूप वरदा दा दाने के अनुसार वरान् ददातीति वरदा, भुवनत्रयेषु- भुवनानां त्रयं तेषु भुवनत्रयेषु, केनोपमा केन अन्येन सह उपमा तुल्यता भवतु न केनापि, शत्रुभयकारि-शत्रूणां भयजनकं शीलंयस्य तत्, अतिहारि, अतिमनोहरम् समरनिष्ठुरता-समरे युद्धे निष्ठुरता निष्कृपत्वम् चित्ते कृपा- रिपुषु अपि उपकारकत्वात्।

व्याख्या- हे देवि आप अभीष्ट देने वाली हैं, आप शत्रुओं का उच्छेद करने वाली हैं, आपके इस पराक्रम की उपमा किससे दी जाय क्योंकि समानता तो कहीं देखी ही नहीं गई। आपका रूप अत्यंत मनोहर है किन्तु वही शत्रुओं में भय उत्पन्न करना वाला है। दैत्यों को शस्त्रपूत बनाकर उन्हें शुभ लोकों की प्राप्ति कराने में आपकी दया स्पष्ट है और युद्ध में निष्ठुरता भी है। सौन्दर्य और भयंकरता तथा कृपा और निष्ठुरता यह विरोधाभास आपके ही चरित्र में देखा जाता है इसकी अन्य कोई उपमा नहीं। विरोधाभास का परिहार यह है कि कृपा स्वाभाविक है और निष्ठुरता आरोपित है।

त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन त्रातं समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा।

नीता दिवं रिपुगणाभयमप्यपास्तमस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते।।२२

अन्वय- त्वया एतत्त्रैलोक्यं रिपुनाशनेन अखिलं त्रातम्, ते रिपुगणा अपि समरमूर्धनि हत्वा दिवं नीता, अस्माकं उन्मदसुरारिभवं भयम् अपि अपास्तम् ते नमः।

शब्दार्थ- त्वया- आपके द्वारा अखिलम्-सम्पूर्ण इसे क्रियाविशेषण मानकर भी अर्थ किया गया है, अथवा त्रैलोक्यं का विशेषण, रिपुनाशनेन- शत्रुओं का संहार करके, ते-उन दैत्यों को भी, समरमूर्धनि-रणप्रधानस्थाने, युद्धभूमौ-युद्धस्थल में, हत्वा-मारकर, दिवं नीता-स्वर्गं प्रापिता, उन्मदसुरारिभवम्-उन्मदः उद्रिक्ताहंकारा :- ये सुरारयः तेभ्यो जातं भयम् उन्मदसुरारिभवं भयम्- अहंकार से मदान्ध असुरों से उत्पन्न हुए भय को अपास्तम्- अपनीतम् दूरीकृतम्-दूर कर दिया, त्रातम्-रक्षितम्-रक्षा की।

व्याख्या- हे देवि आपने देवशत्रुओं असुरों का नाश करके तीनों लोकों की रक्षा की है। उन असुरों को भी युद्धभूमि में मारे जाने के कारण आपने स्वर्ग की प्राप्ति करा दी है, अहंकार से मतवाले असुरों से उत्पन्न भय से हम सब देवताओं को रक्षित कर और दैत्यों को मारकर उस भय को भी मेट दिया है, आपको नमस्कार है।

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।

घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिः स्वनेन च।।२३

अन्वय- हे देवि त्वं शूलेन नः पाहि, अम्बिके खड्गेन च नः पाहि, घण्टा स्वनेन नः पाहि चापज्यानिः स्वनेन च नः पाहि।

प्राणालयमितिप्राहुः पादांगुष्ठेऽपि केचन।

प्राणवायु का वर्ण इन्द्रनीलमणि-नीलम जैसा है। इसको वहन करने वाली प्राण वहा नाड़ी मुख, नासिका, हृदय और नाभि के मध्य में विचरण करतीहै। इन स्थानों का नाम इसीलिए प्राणालय है। किसी के मत से पादांगुष्ठ को भी उसका स्थान कहा गया है। वास्तव में पैर के अंगूठे के नख पर दृष्टि केन्द्रित करने से अनेक विलक्षण अनुभव होते हैं परन्तु यह विद्या अभ्याससाध्य और किसी अच्छे ज्ञाता के निर्देशन में ही की जा सकती है।

अपान वायु- अपानयत्यपानोऽयमाहारं च मलायितम्।
शुक्रं मूत्रं तथोत्सर्गमपानस्तेन मारुतः।
- इन्द्रगोपप्रतीकाशः सन्ध्या जलदसन्निभः।
सच मेढ्रे च पायौ च ऊरुवंक्षणजानुषु।
जंघोदरे कृकाट्यां च नाभिमूले च तिष्ठति।

'किए हुए भोजन को जो नीचे की ओर ले जाकर मल को बाहर निकालने में तथा वीर्य, मूत्र और विसर्जनीय दूषित के निष्कासन की क्रिया सम्पन्न करे उसे अपानवायु कहते हैं। सन्ध्याकालीन मेघ और बीरबहूटी के समान जिसका वर्ण है, पतली जांघ, मोटी जांघ, जंघा की सन्धि, गुदा, लिंग, उदर, नाभिमूल, और गर्दन के पिछले भाग में संचरणशील है।

व्यानवायु- व्यानो व्यानशयत्यन्नं सर्वव्याधिप्रकोपनः।
महारजतसुप्रख्योहानोपादानकारकः।
स चाक्षिकर्णयोर्मध्येकट्यां वै गुल्फयोरपि।
घ्राणे गले स्फिगुद्देशे तिष्ठत्यत्र निरन्तरम्।

'व्यान वायु के कार्य अन्न को पचाने में सहायक, सारे शरीर में संचरणशील होने के कारण शरीर में किसी भी प्रकार के रोग उत्पन्न करने में कारण, इसका वर्ण सोने के समान, त्याग और ग्रहण करने वाला, आंख और कान के मध्य कमर, एड़ी के पिछले भाग में ऊपर की ओर, नाक, गला और कूल्हे में सदा रहने वाला है।

उदानवायु- स्पन्दयत्यधरं वक्त्रं गात्रनेत्रप्रकोपनः।
उद्वेजयति मर्माणि उदानो नाममारुतः।
विद्युत्पावकवर्णः स्यादुत्थानासनकारकः।
पादयोर्हस्तयोश्चापि स तु सन्धिषु वर्तते।

'ओंठ, मुख, शरीर, और नेत्र में स्फुरण उत्पन्न करने वाला और मर्मस्थानों में

यथाग्निः पंचधा भिन्नो नामस्थानात्मकर्मभिः।
भिन्नोऽनिलस्तथाह्येको नाम स्थानक्रियामयैः।
प्राणोदानौ समानश्च व्यानश्चापान एव च।
स्थानस्था वायवःपंच यापयन्ति शरीरिणम्।
वायुर्योवक्त्रसंचारी सप्राणो नाम देहधृक्।
सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यबलम्बते।
प्रायशः कुरुते दुष्टो हिक्का श्वासादिकान् गदान्।
उदानो नाम यस्तूर्ध्वमुपैति पवनोत्तमः।
तेन भाषितगीतादिविशेषोभिप्रावर्तते।
ऊर्ध्वजत्रुगतान् रोगान् करोति च विशेषतः।
आमपक्वाशयचरः समानो बन्हिसंगतः।
सोऽन्नं पचति तज्जांश्च विशेषान्विविनक्ति हि।
गुल्माग्निसंगातीसारप्रभृतान् कुरुते गदान्।
कृत्स्नदेहचरो व्यानो रससंवहनोद्यतः।
स्वेदासृक्स्त्रवणो वापि पंचधा चेष्टयत्यपि।
क्रुद्धश्च कुरुते रोगान् प्रायशः सर्वदेहगान्
पक्वाधानालयोऽपानःकाले कर्षति चाप्ययम्।
समीरणः सकृन्मूत्रशुक्रगर्भार्तवान्यधः।
क्रुद्धश्च कुरुते रोगान्घोरान् बस्तिगुदाश्रयान्।
शुक्रदोषप्रमेहास्तु व्यानापानप्रकोपजाः।
युगपत्कुपिताश्चापि देहं भिन्द्युरसंशयम्।

छान्दोग्य उपनिषद् में बतायागया है कि किस प्रकार भावना करते हुए प्राणादि पंच आहुति देने से कल्याण सम्पादन होता है। विस्तारभय से वह सब देना संभव नहीं।

दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः। १०

अन्वय- दुर्गायै सततंनमः, दुर्गपारायै, सारायै, सर्वकारिण्यै, ख्यात्यै, तथा एव कृष्णायै धूम्रायै च सततं नमः।

शब्दार्थ- दुर्गायै-दुरधिगमायै वा दुःखज्ञेयायै दुर्ज्ञानायै, जिस तक पहुंच कठिन हो, जिसके विषय में जानना कठिन हो, जिसकी साधना करना कठिन हो, दुर्गपारायै-दुर्गे संकटे पारयति पालयति इति दुर्गपारादुरधिगमः पारः परिच्छदः यस्या-देशकालानवच्छिन्ना, दुर्गात् संसारात्पारं करोतीति दुर्गपारा, पारतीति पारा दुर्गाणां कार्याणां पारा दुर्गपारा, दुर्गे

संकटे पारयति पालयति इति दुर्गपारा, सारायैसारः बलं तद्योगिन्यै, बलवत्यै वा, संसारसारायै सर्वश्रेष्ठायै वा, सर्वकारिण्यै-सर्वंकरोति इति सर्वकारिणी तस्यै, समस्तवस्तुजात स्वतन्त्रायै-सब कुछ करने में समर्थ, और स्वतन्त्र, ख्यात्यै-कीर्तिरूपायै, विख्यातरूपायै, योगसूत्र के अनुसार-सत्वपुरुषान्यता ख्याति सत्वपुरुषान्यथा भेदज्ञानं ख्यातिः अथच प्रकृतिपुरुषयोर्भेदज्ञानं ख्यातिः तद्रूपा तस्यै सांसारिक अनुभव के अनुसार दृश्य, दर्शन और दृष्टा ये तीन अनुभूति के करण हैं पर जिस साधना के द्वारा दृष्टा दृश्य का बुद्धि से ग्रहण करते हुए भी अपने को दृश्य से पृथक जान लेता है उससे आगे की क्रिया के द्वारा दर्शन का भाव भी उसमें न रहकर वह जब पूर्ण तटस्थ हो जाता है तब इस ख्याति का उदय होता है, उस स्थिति को ही शक्ति के रूप में ख्यात्यै कहकर नमस्कार किया गया है। कृष्णायैकृष्णवर्णायै वा कृष्णशक्त्यै, धूम्रायै-धूम्रवर्णायै

व्याख्या- हे देवि आपका ज्ञान बड़ी कठिन साधना से होता है आपको प्राप्त करना कठिन है आप दुर्ज्ञेय हैं आपको इसीलिए दुरधिगमनिः सीममहिमा कहा गया है उस दुर्गा रूप में आपको नमस्कार है, आपका आद्यन्त ज्ञान होना अत्यन्त कठिन है आप देशकाल और अवस्था विशेष में सीमित नहीं है देशकालावस्थानावच्छिन्न हैं, आप संकटों से बचाने वाली हैं आप विपत्ति से पार लगाने वाली हैं आप संसार से पार करने वाली हैं, आपको नमस्कार है, आप सबकुछ करने में स्वतंत्र हैं, सभी कुछ करने वाली, सर्गस्थितिलय- करने वाली आप ही हैं आपको नमस्कार है। आप ख्याति कीर्तिरूपा हैं प्रसिद्धिरूपा हैं, प्रकृतिपुरुष विषयक भेदज्ञान कराने वाली आप ही हैं आप स्यामवर्ण हैं अथच कृष्ण की शक्तिरूपा आप ही हैं। आप ही धूम्रवर्ण हैं अतः आपको सदैव निरन्तर नमस्कार है।

विशेष- अनुषटुभ् छन्द में आठ-आठ वर्ण के चार चरण होते हैं जिनमें पंचम वर्ण सभी चरणों में लघु और षष्ठ वर्ण दीर्घ होता है।

पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः। षष्ठं गुरु विजानीयादेतत्पद्य स्य लक्षणम्। परन्तु यहां द्वितीय पाद का सप्तम वर्ण दीर्घ है। अतः वृत्तभंग की शंका होती है जिसके लिए समाधान यह है कि इसके तीन चरणों में वक्रवृत्त है और चतुर्थ चरण में पथ्यावृत्त है अतः यह विषमवर्णिक छन्द है। दूसरा समाधान यह है कि सर्वकारिणि पाठ मान लिया जाए। सर्वंकरोतीति सर्वकारिणी उसका संबोधन का रूप सर्वकारिणि। इस प्रकार सप्तम वर्ण लघु हो जाता है।

अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः।

नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः। ११

अन्वय- अतिसौम्यातिरौद्रायै तस्यै देव्यै नमो नमः जगत्प्रतिष्ठायै नमो नमः कृत्यै देव्यै नमः वयं नताः स्मः।

शब्दार्थ- अतिसौम्यातिरौद्रायै-सौम्यान् रौद्रांश्चातिक्रान्ता अतिसौम्या अतिरौद्रा तस्यै अतिसौम्यायै अतिरौद्रायै च वा सौमदेवताकं सौम्यै मनोहरं रूपं यस्या सा अतिसौम्या रूद्रदैवतकं रुद्रसंबंधि वा रूपं रौद्रं अत्यर्थ रौद्रं रूपं यस्या या अतिरौद्रा तस्यै अतिरौद्राये, विद्यारूपेण विद्याभावेन वा संसारतापोच्छेद हेतुत्वात् अतिसौम्या, अविद्यारूपेण संसारकारणत्वात् अतिरौद्रा भजतां अतिसौम्या अभजतां अतिरौद्रा वा-विद्या रूप में संसार ताप का उच्छेद करने वाली होने के कारण अति सौम्या, अविद्या रूप में बन्धनकारी होने के कारण अतिरौद्रा, अथवा भक्तों के लिये अतिसौम्या और अभक्तों के लिये अतिरौद्रा, कृत्यै-करणंकृतिःप्रयत्नः क्रियात्मिकायै, देव्यै-देवशक्त्यै जगत्प्रतिष्ठायै-जगति प्रतिष्ठा यस्या चिच्छक्तिरूपा तस्यै वा जगतप्रतिष्ठा-जगदुपादानकारणत्वात् जगत्प्रतिष्ठा तस्यैव जगतां प्राणिनाम् प्रतिष्ठा आस्पदं आधारशक्तिस्थानं-प्राणियों के प्राणधारण का जो आधार उस मूलाधार को जगत्प्रतिष्ठा कहा गया है मूलाधार में स्थित उस देवी को जगत्प्रतिष्ठायै, वा श्रुति के अनुसार-धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा 'इसके अनुसार वेदोक्तधर्मरूपा जगत्प्रतिष्ठा तस्यै।

व्याख्या- हे देवी आप विद्यारूपा होने के कारण संसारतापशमन हेतु अतिसौम्या हैं। साथही अविद्या रूपा होने के कारण अति भयंकर भी हैं अथवा जो आपका भजन करते और आश्रय लेते हैं उनके लिये आप अत्यन्त सौम्य हैं, उदार हैं। अभक्तों और उन्मार्गगामियों के लिये रौद्ररूपा हैं। आप क्रियात्मिका देवशक्ति हैं। संसार की स्थिति का कारण हैं आपके पंचकृत्यों से संसार की स्थिति है।

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।१२

अन्वय- या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमाया इति शब्दिता तस्यै नमः तस्यै नमः तस्यै नमः नमो नमः।

शब्दार्थ- या प्रसिद्धा देवी द्योतनशीला सर्वभूतेषु-अशेष प्राणिषु-सभी प्राणियों में, सर्वेषु भूतेषु-सर्वभूतात्मिका, विष्णुमाया-कालिका पुराण के अनुसार-

अव्यक्तं व्यक्तरूपेण रजःसत्वतमो गुणैः।
विभज्य यार्थं कुरुते विष्णुमायेति सोच्यते।

जो व्यक्त को सत्व, रजस् और तमस् के द्वारा विभाजन करके सृष्टि करती है, उसे विष्णुमाया कहते हैं। वराहपुराण के अनुसार विष्णु की दृष्टि से उत्पन्न होने के कारण इसे विष्णुमाया कहा जाता है। जो माया के रूप में विश्व भर में व्याप्त है, उसे विष्णुमाया कहते हैं। शब्दिता-शास्त्रेषु कथिता- जिसे शास्त्रों में विष्णुमाया कहा गया है। इसे माया इस लिए कहा गया है कि इस माया के कारण ही व्यक्ति ममता वश मोह में पड़कर

अनात्म भाव को आत्म भाव औरआत्मभाव को अनात्म भाव समझ कर कार्यों में प्रवृत्त होते हैं। जैसे कि सामान्यतया देह को आत्मा मान लिया जाता है और आत्मा जो सर्वभूतेषु गूढ़ है, उसे जानने की चेष्टा ही नहीं की जाती जिसके लिये तुलसीदास ने कहा है- सेवत लखन सिया रघुवीरहि। जिमि अविवेकी पुरुष शरीरहि। इसी को अन्य नाम अविद्या दिया गया है। अथवा मूलशब्दविद्या कहागया है। नमस्तस्यै-तीन बार नमः कहने का प्रयोजन एक तो जिसे व्यथा होती है, वह अपनी बात को, विनय को बार बार दुहराता है। दूसरा अर्थ यह कि तीन बार से कायिक, वाचिक और मानसिक नमन का भाव समझना चाहिए। कहा गया है- विषादे विस्मये हर्षे खेदे दैन्येऽवधारणे। प्रसादने संभ्रमेऽपि द्विस्त्रिरुक्तं न दुष्यति। दुख के अवसर पर, विस्मय होने पर, अत्यन्त प्रसन्नता में, अफसोस के समय, दीनतावश निश्चयात्मक होने के लिए, घबड़ाहट के समय और किसी को प्रसन्न करने के लिए बात को दो दो तीन तीन बार कहना भी दोष नहीं होता। यहां देवता संभ्रम में है, दैन्य प्रदर्शन की अवस्था है, और देवी के प्रसादन हेतु तीन तीन बार नमः कहा गया है। देवी के तीन रूप महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती हैं। उन तीनों रूपों को प्रणति के लिए तीन बार नमस्तस्यै कहा गया है। किसी के मत से सत, रजस् और तमोगुण रूपा देवी के गुणों के अनुसार तीन बार कथन किया गया है। परन्तु इसे मानने में कठिनाई यह आती है कि निद्रा और तृष्णा तो रजस्तमस् के ही कारण हैं वहां भी तीन बार नमः कहा गया है। अतः यही मानना पड़ता है कि-प्रकर्षकोपहर्षेषु स्वप्नदैन्य भयेषु च। स्तुत्यभ्यासानु वादेषु पौनरुक्त्यं न दुष्यति। यहां दैन्य, भय और स्तुति तीनों ही कारण हैं। अथवा जिस प्रकार प्रदक्षिणा तीन तीन बार की जाती है, उसी प्रकार नमस्कार भी तीन बार करने का औचित्य है। अथवा भक्ति और श्रद्धा की अतिशयता प्रकट करने के लिए तीन बार नमस्कार किया गया है।

व्याख्या- जिस देवी को शास्त्रों में विष्णुमाया कहा गया है उसे नमस्कार है पुनः पुनः नमस्कार है।

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः।१३

अन्वय- या देवी सर्वभूतेषु चेतना इति अभिधीयते तस्यै नमः तस्यै नमः तस्यै नमो नमः।

शब्दार्थ- अभिधीयते-कथ्यते। चेतना- चिच्छक्तिः वा अन्तःकरणवृत्तिः जैसा कि मुमूर्षु के लिए कहते हैं कि अभी तो कुछ कुछ चेतना शेष है। जीवमात्र में चैतन्यशक्ति।

व्याख्या- सब प्राणियों में वर्तमान जिस शक्ति को चेतना कहा जाताहै उसे तीन बार नमस्कार है।

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः। १४

शब्दार्थ- संस्थिता- कोश के अनुसार- संस्थाधारे स्थिते मृतौ-यहाँ आधार अर्थ है सम्यक् अवस्थिता, बुद्धिरूपेण-पूर्व छन्द में चेतना कहा गया है जीवचैतन्य और बुद्धि का अन्तर यद्यपि स्पष्ट है फिर भी यहां इनके अन्तर के संबंध में कहना आवश्यक है क्योंकि वैशोषिक दर्शन के अनुसार ये दोनों एक ही हैं। वास्तव में चेतना स्वाभाविक संज्ञान है और बुद्धि मनःप्रेरित है। चेतना को चित्तवृत्तिविशेषशक्ति अथवा संज्ञान कहा गया है और बुद्धि स्वप्रकाशनज्ञानस्वभावा है। इसे इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि चेतना निर्विकल्पक ज्ञान है और बुद्धि सविकल्पक ज्ञान है। निर्विकल्पा चिच्छक्ति ही चेतना है। बुद्धि की जड़ता होने पर भी चेतना रहती है, परन्तु चेतना के अभाव में बुद्धि का होना सम्भव नहीं यही अन्तर है।

अन्वय और अर्थ स्पष्ट ही है।

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।१५

निद्रा-बाह्येन्द्रियव्यापारोपरमानुकूलविकारः निद्रा- जिसमें समस्त बाह्य इन्द्रियां अपने अपने कार्य से विरत हो जाती हैं। बाह्य इन्द्रिय इसलिए कहा कि मन के सक्रिय होने पर स्वाप स्वप्न की स्थिति रहती ही है। जहाँ मन का भी लय हो उसके अनुसार- निरिन्द्रियप्रदेशे मनोलयः निद्रा यह परिभाषा होगी। निद्रा दो प्रकार की होती है जिसे सुषुप्ति-प्रगाढ़ निद्रा या गाढ़ी नींद में सोना कहते हैं दूसरी अवस्था स्वप्न की है जिसमें मन सक्रिय रहता है और उसके सक्रिय होने पर अन्य इन्द्रियां भी क्रियाशील देखी जाती हैं, जैसे कि सपने में बड़बड़ाना जिसमें वाणी सक्रिय रहती है अथवा सपने में ही उठकर चल देना जिसमें आँख और पाद सक्रिय होते हैं। इसलिये कहा जा सकता है कि इन्द्रयमनसोः क्रमेण लयात्मिका अवस्था निद्रा है।

या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।१६

क्षुधारूपेण-भोजन की इच्छा को क्षुधा कहा जाता है। जिसे पार्थिवधातुक्षयंकृतः अवसाद कहा गयाहै। खाने की इच्छा को उत्पन्न करने वाला उदराग्नि विकार भी कह सकते हैं।

या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।१७

छायारूपेण- सूर्य से दिन के प्रकाश में दिन में पड़ने वाली परछाई और रात को चन्द्रमा अथवा दीपक के प्रकाश से पड़ने वाली परछाई। इसे व्यक्ति का प्रतिबिम्ब कहा जा सकता है। कोश के अनुसार-छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः। इस प्रकार दर्पण अथवा जल में दिखाई देने वाले बिम्ब को भी छाया कहेंगे। आतप का अभाव भी छाया है। इनमें से शक्ति सभी प्राणियों में किस छाया के रूप में अवस्थित है। परछाई तो वह हो नहीं सकती। दर्पण अथवा जल में पड़ने वाला बिम्ब भी वह नहीं। वास्तव में शरीर की कान्ति और आतपसन्तापहरण करने वाली, सांसारिकतापों से त्राण देने वाली शक्ति के रूप में वह शक्ति सभी प्राणियों में अवस्थित है। इसलिए संसारतापाभावः वर्णसादृश्यं च छाया।

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।१८

शक्ति सामर्थ्यम्, उत्साहः, कार्यजननसामर्थ्यम्। कार्य करने की सामर्थ्य और कार्य के प्रति उत्साह का होना ही शक्ति है। राजनय के विषय में जिन तीन शक्तियों को प्रभावोत्साहमन्त्रजा कहा गया है, वह अन्यत्र भी लागू होती हैं। प्रभाव औरउत्साहजन्य शक्ति प्रत्यक्ष देखी जा सकती है, पर मन्त्रजन्य साधनाजन्य शक्ति भी सदा से वन्दनीय रही है।

या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।१९

तृष्णा- लोभ जिसके कारण जो वस्तु अपनी नहीं है, उसे भी ग्रहण करने की इच्छा होती है। इसीलिए इसे अनात्मीयजिघृक्षा कहागया है। संतोष का विलोम तृष्णा है।

या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।२०

शान्तिरूपेण- क्षमा क्षान्तिः कोश के अनुसार- शान्तिः क्षमा तितिक्षा च मर्षश्च सहनात्मिका। अपकार करने वाले के प्रति उपेक्षा का भाव और सामर्थ्य होने पर भी बदला लेने की भावना का न होना- सत्यपि सामर्थ्ये अपकाराचिकीर्षा। वा अपकारिण्यनपकारचिकीर्षा शान्तिः क्षमा का भाव।

या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।२१

जाति-मनुष्येषु मनुष्यत्वं गोषु गोत्वं जातिः अनेकों में एकाकार की पहिचान जैसे मनुष्यों में कुछ समानताओं के कारण मानवसमुदाय पशु समुदाय पक्षिसमुदाय से पृथक् है बकरी अन्य पशुओं में पृथक् पहिचानी जा सकती है, इस प्रकार अपने अपने समुदाय

की पहिचान जिससे हो और दूसरों से भिन्नता हो उसी को जाति कहा जाता है। जिसे व्याकरण मेंजातिवाचक संज्ञा कहते हैं। पृथक् पहिचान कराने वाला समुदायगत वैशिष्ट्य ही जाति है। भिन्नेषु अभिन्नाधानप्रयोगो जातिः वा अनेकेषु एकाकार-प्रत्यायिका जातिः। यह तो सामान्य अर्थ हुआ। वास्तव में जीवमात्र में जो ब्रह्मसत्ता है वही शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित है। यही जातिरूपेण संस्थिता का आशय है।

या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।२२

लज्जारूपेण-चिकीर्षितिविषये लोकभीः-कर्तव्य को न करने के कारण और जो करणीय नहीं है उसे करने में प्रवृत्ति होने के कारण उसके समाज में प्रकट होने पर संकोच का भाव ही लज्जा है। लज्जा, व्रीड़ा में एक प्रकार की हीनता की भावना छिपी रहती है अतः लज्जारूपेण संस्थिता अधिक उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। वास्तव में भुवनेश्वरी बीज ह्रीं है जिसका अर्थ लज्जा होता है। महाविद्यासूत्र में कहा गया है- भुवनेश्वर्येव नामान्तरेण माया-चतुर्थ पटल सूत्र ३ अतः माया रूप में अवस्थित होने के कारण और-सर्वाभ्यः क्रियाभ्यः आत्मानं समर्प्य निश्चला तिष्ठति-महाविद्यासूत्र ४/६४ अतः यही संकोचावस्था है जिसे लज्जारूपेण कहा गया है। इच्छाशक्ति के रूप में जो भुवनेश्वरी प्रसरणशीला है, वही संकोचावस्था में लज्जारूपा कही गई है।

या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।२३

शान्तिरूपेण-शान्तिःशमः विषयोपरमः वा, मनसो विषयेभ्यः विरामः विषयोपरतिरूपः इन्द्रियसंयमः-मन का विषयों की ओर आकृष्ट न होकर इन्द्रियसंयम होने पर जिस शान्ति का अनुभव होता है, वह शक्ति से ही प्राप्त होती है जिससे मनुष्य मन और इन्द्रियों को वश में करने में समर्थ होता है, वह शान्तिरूपा शक्ति ही है।

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।२४

श्रद्धा-गीता में कहा गया है- श्रद्धा मयोऽयं पुरुषो या यच्छ्रद्धः स एव सः। यह पुरुष श्रद्धा मय है जिसकी जिस प्रकार की श्रद्धा होती है, वह वैसा ही बन जाता है। प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है- स प्राणमसृजत् प्राणाच्छ्रद्धाम् विश्वात्मा ने पहले प्राण की सृष्टि की फिर श्रद्धा को उत्पन्न किया। अतः यह श्रद्धा प्राण के साथ ब्रह्मा की प्रथम सृष्टि है। तुलसीदास ने कहा है- भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ। याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्। इस श्रद्धा के अभाव में साधक ही नहीं, सिद्ध भी अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देख पाते। इसे आस्तिक्यबुद्धि भी कहा जा

सकता है। आदर सहित अनुसरण करना भक्ति कहलाता है और उस भक्ति का अतिशय ही श्रद्धा है। विवेक का अतिशय यदि अनास्था कारक बन जाताहै तो श्रद्धा का अतिशय अन्धविश्वास को जन्म देता है। अतः विवेकसहित भक्त्यतिशय ही श्रद्धारूपा शक्ति है।

या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।२५

कान्ति-कान्तिः शोभेच्छयोः स्त्रियाम्। कान्ति का अर्थ शोभा और इच्छा दोनों ही होता है। लावण्य और कमनीयता ही कान्ति है। शोभा कान्तिर्द्युतिश्छविः इसके अनुसार द्युति का अर्थ ज्योति होता है। आत्मप्रकाशक ज्योति के रूप में जो सभी प्राणियों के हृदय में अवस्थित है।

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।२६

लक्ष्मी-धनादि सम्पत्ति, कोश के अनुसार-लक्ष्मीः श्रीशोभा सम्पत्प्रियंगुषु। और लक्ष्मीःपद्मा विभूतिश्च कायशोभा च कीर्तिता। मनुष्यों के विषय में तो धनादि सम्पत् अर्थकी संगति बैठती है, परन्तु जहां सर्वभूतेषु कहा गया है, वहां धन और संपत्ति का अर्थ उचित नहीं जान पड़ता। कायशोभा भी इसकी अपेक्षा ठीक है। पर वास्तविक अर्थ तो शोभा ही हो सकता है। सर्प और सिंह भयंकर होते हुए भी किसी न किसी रूप में विशेष शोभायुक्त कहे जाते हैं। अतः सब प्राणियों में जो शोभारूप में स्थित है। लक्ष धातु से जिसका अर्थ-दर्शनांकनयोः है लक्ष्मी शब्द बना है अथवा जो लक्ष्मयुक्त हो जिसके लिए कोश में कहा गया है- लक्ष्म चिन्हप्रधानयोः तदनुसार अर्थ होगा कि सर्वभूतों में विशेष पहचान के रूप में आप ही हैं।

या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।२७

वृत्तिरूपेण-कोष के अनुसार-वृत्तिर्विवरणे जीव्ये कैशिक्यादिषु चेष्यते। तथा- अजीबो जीविका वार्ता वृत्तिर्वर्तनजीवनम्। वर्तते अनया इति वृत्तिः वर्तनं वृत्तिः अतः वृत्तिर्जीवनं जीविका प्रवृत्तिर्वा। जीवन, जीविका और प्रवृत्ति इन तीनों अर्थों में यहां वृत्ति शब्द का प्रयोग हुआ है। सर्वभूताः प्राणिनस्तेषु सर्वभूतेषु जितने भी प्राणधारण करने वाले हैं उनका जीवन आप ही हैं, उनकी प्रवृत्ति का कारण भी आप हैं और भोजनान्नपानादि की व्यवस्था भी आप हैं।

या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।२८

स्मृति-संस्कारजन्यं ज्ञानं स्मृतिः, अनुभवजन्यं ज्ञानं स्मृतिः च। जो कुछ जीवन में अनुभव किया जाता है, उसकी भावना मन में बनी रहने के कारण कालान्तर में उसका सन्धान जिस ज्ञान के द्वारा किया जा सके उसे स्मृति कहते हैं।

या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।२९

दया-अन्यदुः खपरिहारेच्छा वा सहानुभूतिः दया दूसरे के दुख से स्वयं दुखी होकर उसे दुख से मुक्त करने की इच्छा ही दया है उसका कारण उस दुख की मन में जितनी अधिक अनुभूति होगी, उसी मात्रा में उसे दूर करने की प्रबल इच्छा भी होगी। इस प्रकार परदुखकातरता भी दया के अन्तर्गत आती है।

या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।३०

तुष्टि-सन्तोषः, जो प्राप्त है, उससे अधिक की अभिलाषा न होना, इसी को तुलसीदास ने कहा है- यथालाभ सन्तोष सदा काहूसों कछु न चहोगो। किसी के अनुसार यहां पुष्टि पाठ अधिक है जिसका अर्थ पुरुषार्थ साधन सामर्थ्य होता है। किसी प्रति में वृत्ति के आगे धृति पाठ अधिक है जिसका अर्थ होता है- धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रियक्रिया-गीता। जिस धारणा शक्ति के द्वारा मन, प्राण और समस्त इन्द्रियों का धारण होता है, उस क्रिया का नाम धृति है। इसके संबंध में गुप्तवती टीकाकार का मतहै कि मूलतन्त्र में तो केवल इक्कीस देवियों का ही उल्लेख है, पर तन्त्रान्तर के अनुसार लक्ष्मी के पश्चात् धृति और तुष्टि के आगे पुष्टि का उल्लेख हुआ है।

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।३१

मातृरूपेण-मात्यस्यां गर्भ इति माता, वा देहाधिष्ठात्री वर्णाभिमानी देवता माता, पालयित्री मातृकाधिष्ठात्री देवता वा यथा- ब्राह्म्याद्या अष्टमातरः

ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री वाराही वैष्णवी तथा।
कौमारीत्यपि चामुण्डा चर्चिकेत्यष्टमातरः।।

माङ्माने और मान पूजायाम् इन दोनों धातुओं से माता शब्द बनता है। वह देवी अष्टमातृका के रूप में सब जीवों में अवस्थित हो, यह अर्थ ठीक प्रतीत नहीं होता। जननी के रूप में समस्तस्त्रियों में अवस्थान होना तो संगत है, पर पुरुषों मेंनहीं। माता, मान और मेय ये तीन होते हैं जिनमें प्र उपसर्ग लगाने से प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय बनते हैं। अतः वह शक्ति सब प्राणियों में प्रमाता के रूप में अवस्थित है। इस प्रकार

वह शक्ति असीम् पुरुष को ससीम बनाने वाली है। माता है। क्योंकि उसी में यह विश्व समाया हुआ है।

या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।३२

भ्रान्तिरूपेण-भ्रान्तिः अतद्वति तद्वत्प्रत्ययः, अतस्मिंस्तदिति ज्ञानं भ्रान्तिः- अन्य आकार में अन्यथा भ्रम ही भ्रान्ति है। जो जैसा नहीं है, उसे वैसा समझ लेना ही भ्रम है- इसलिए कहा है - भ्रान्तिर्मिथ्यामतिः।

इन्द्रियाणायधिष्ठात्री भूतानामखिलेषु या।

भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः।३३

अन्वय- या भूतानां अधिष्ठात्री, या अखिलेषु भूतेषु इन्द्रियाणां अधिष्ठात्री तस्यै व्याप्तिदेव्यै सततं नमो नमः।

शब्दार्थ- भूतानाम्-पृथिव्यादि पंचभूतानाम्-पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पांच महाभूत कहे जाते हैं। अधिष्ठात्री-आधारशक्तिः, प्रवृत्तिनिवृत्तिकारण, ईश्वरी वा जो इनकीआधारशक्ति, स्वामिनी और नियामिका है, अखिलेषु-समस्तेषु, भूतेषु-प्राणिषु, सभी प्राणियों में, इन्द्रियाणाम्-ज्ञानकरणानां ज्ञानविषयाणाम् स्थूलसूक्ष्मानां, मन सहित रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द तन्मात्राओं का अनुभव कराने वाली आंख, रसना, नाक, त्वचा और कान। व्याप्तिदेव्यै-ब्रह्मशक्त्यै, व्याप्तिरूपायै, सततं-तनु विस्तारे से ततम् तेन सहितम् सततम्-व्याप्तिदेवी को उसकी व्याप्ति पर्यन्त नमस्कार के लिए सततं का प्रयोग, वैसे इसका अर्थ निरन्तर होता है।

व्याख्या- जो पंचभूतों की आधारभूता है, नियामिका है ईश्वरी है तथा जो समस्त प्राणिमात्र में मन और ज्ञानेन्द्रियों की अधिष्ठात्री है आधारभूता है आधारशक्ति है उस व्याप्तिरूपा-व्यापिका देवी को सदैव नमस्कार है।

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत्।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।३४

अन्वय- चितिरूपेण या एतत् कृत्स्नं जगद् व्याप्य स्थितातस्यै नमः तस्यै नमः तस्यैनमो नमः।

शब्दार्थ- चितिरूपेण-चितिःनिर्विषयकसंवित्, चितिः प्रकृतिः चैतन्यं तद्रूपेण, चिती संज्ञाने से चिति और चेतना दोनों ही शब्द सिद्ध होते हैं। पहिले श्लोक संख्या १३ में देवी को चेतना कहा गया यहां चिति कहा अतः पुनरुक्ति प्रतीत होती है जिसका समाधान यह है कि वहां व्यष्टिचैतन्य का वर्णन है प्रत्येक प्राणी में जिसे चेतना कहते हैं, देवी के उस रूप को नमस्कार किया गया है। यहांविश्वचैतन्य केरूप में सम्पूर्ण जगत्

में व्यापक चिच्छक्ति का समष्टिशक्ति का वर्णन है। कृत्स्नं-सम्पूर्ण व्याप्य-व्याप्त करके, जो समस्त प्रकृति की चेतना है।

व्याख्या- जो चिच्छक्ति सम्पूर्ण जगत् में प्रकृतिचैतन्य के रूप में, अथवा प्राणनक्रिया के रूप में अखिल संसार में व्याप्त होकर स्थित है, उस देवी को नमस्कार है, पुनः पुनः नमस्कार।

विष्णुमाया से लेकर चिति तक जिन रूपों का वर्णन आया है, उनकी संख्या तेईस इस प्रकार है-

विष्णुमाया चेतना च बुद्धिर्निद्रे क्षुधा तथा।
छाया शक्तिश्च तृष्णा च क्षान्तिर्जातिस्ततः परम्।
लज्जा शान्तिस्ततः श्रद्धा कान्तिर्लक्ष्मीस्ततः परम्।
वृत्तिः स्मृतिर्दया चैव तुष्टिर्माता ततः परम्।
भ्रान्तिर्व्याप्तिश्चितिश्चैव त्रयोविंशति संख्यकाः।

इनमें धृति और पुष्टि इन दो को जोड़कर यह संख्या पच्चीस होती है जो पच्चीस तत्वों की ओर संकेत करती है। जिसके अनुसार देवी की व्याप्ति सभी तत्वों में है। कात्यायनीतन्त्र में यद्यपि धृति और पुष्टि का उल्लेख नहीं है और मन्त्रसंख्यापूर्ति केवल तेईस से ही होती है, परन्तु धृति और पुष्टि के रूप में सप्तशती में ही अन्यत्र मान्य किया गया है।

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यपहन्तु चापदः।३५

पूर्वमभीष्टसंश्रया तथा ऐसी भी पाठ है। सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता के स्थान पर सुरेन्द्रेशदिनेशसेविता पाठ भी है।

अन्वय- पूर्वं सुरैःस्तुता तथा अभीष्टसंश्रयात् सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता वा सुरेन्द्रेश-दिनेशसेविता सा भद्राणी शुभहेतुः ईश्वरी नः शुभानि करोतु वा सा शुभहेतुः ईश्वरी नः शुभानि भद्राणि करोतु आपदः च अभिहन्तु।

शब्दार्थ- पूर्वम्-पूर्वकाले-पहिले समय में, सुरैः-देवगणैः-देवताओं के द्वारा, अभीष्टसंश्रयात् अभीष्टस्य वस्तुनः संश्रयात्-कारणात्अभीष्ट सिद्ध करने के लिए, वा अभिमतलाभात् अभीष्ट प्राप्त हो जाने पर, अभीष्टसंश्रया पाठ मानकर अर्थ होगा-अभीष्टः वांछितः संश्रीयमाणः अर्थः वा यस्या सकाशात् सा अभीष्टसंश्रया-जिससे मनचाहा प्रयोजन सिद्ध होता है, सुरेन्द्रेण-इन्द्रेण, दिनेषु-प्रतिदिन, सेविता-आराधिता, सुरेन्द्रेशदिनेशसेविता-इन्द्रेण ईशेन सूर्येण चसेविता आराधिता सा सुरेन्द्रेशदिनेश-सेविता,

भद्राणि-कल्याणानि, मंगलानि, भद्राणी ऐसा पदच्छेद किया जाने पर भद्रं अणति कथयतीति भद्राणी, शुभहेतुः-जो देवी अच्छाई भलाई का कारण है, नः-अस्माकम्, शुभानि भद्राणि-मंगलदायकानि सुखानि आपदः-विपत्तयः अभिहन्तु-विनाशयतु शुभानि जगद्धितानि कर्माणि प्रार्थनीयानि तानि भद्राणि-अनुकूलानि अबाधितानि अविघ्नानि करोतु।

व्याख्या- देवताओं के द्वारा पूर्वकाल में जिस देवी की स्तुति की गई थी और जिस देवी से महिषासुर बधरूपी अभीष्ट की सिद्धि हुई थी तथा इन्द्र जिसकी तभी से प्रतिदिन आराधना करते रहे हैं वह देवी जो हमारे शुभ का कारण है, मंगल का कारण है सुख का कारण है वह नियामिका शक्ति जो सदा मंगल कथन करने वाली है जो हमारे लिए सुख दायक और कल्याणकारक मंगलमय कार्य निर्विघ्न अवाध रूप से सम्पन्न कराने में सहायक हो। हमारे जगन्मंगल के कार्य करे, और शत्रुजनित आपदाओं का विनाश करे मनोरथ को पूरा करने के लिए जिसका आश्रय लिया जाता है। जो इन्द्र, ईश और सूर्य से पूजित है।

या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः सर्वापदो भक्तिविनम्रभूर्तिभिः।३६

अन्वय- साम्प्रतं च या ईशा उद्धतदैत्यतापितैः अस्माभिः सुरैः नमस्यते या च भक्तिविनम्रभूर्तिभिः सुरैः स्मृता सती तत्क्षणम् एव नः सर्वापदः हन्ति।

शब्दार्थ- साम्प्रतम्-इदानीम्, उद्धतदैत्यतापितैः-उद्धतैः निर्मर्यादैः उच्छृंखलैः मदोन्मत्तैः बलेन गर्वितैः दैत्यैः शुम्भनिशुम्भादिभिः तापितैः सन्तापितैः उद्धतदैत्यतापितैः उद्दण्ड दैत्यों शुम्भ निशुम्भ आदि के द्वारा सताये जा रहे हैं, अस्माभिः सुरैः-हम सभी देवताओं के द्वारा नमस्यते-नमस्कार किया जाता है भक्तिविनम्रभूर्तिभिः-भक्त्या विनम्रा मूर्तिः काया येषां ते तथोक्तास्तैः भक्ति विनम्रभूर्तिभिः-जो भक्तिपूर्वक विनत होकर प्रार्थना कर रहे हैं, स्मृता-स्मरण किए जाने पर, तत्क्षणम् एव-तुरन्त ही, नः-अस्माकम् सर्वापदः-सर्वा आपदः विपत्तयः असुरजनितबाधाः हन्ति-विनाशयति। दूरीकरोति।

व्याख्या- इस समय हम सभी देवता उद्दण्ड दैत्यों शुम्भ निशुम्भ आदि के द्वारा सताये जा रहे हैं, अतः हम सब मिलकर आपको नमस्कार करते हैं और पूर्व मेंभी आपका स्मरण करते ही आप हमारी विपत्ति को तत्काल तुरन्त ही बिना विलम्ब किए दूर करती रही हैं हम भक्तिपूर्वक आपके समक्ष नतमस्तक हैं प्रार्थनी मुद्रा मेंखड़े हैं अतः आप हमारी इस दैत्यजनित विपत्ति को भी दूर करें।

ऋषिरुवाच- एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती।
स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन।

अन्वय- ऋषिः उवाच- हे नृपनन्दन, एवं स्तवादियुक्तानां देवानां अग्रतः तत्र पार्वती जाह्नव्या तोये स्नातुं अभ्याययौ।

शब्दार्थ- एवं-उक्तरीत्या इस प्रकार, स्तवादियुक्तानाम्-स्तवादौ युक्तानाम् देवानाम् पुरतः तत्र-हिमालय पर, जाह्नवीतोये-गंगा जी के जल में, स्नातुम्-स्नान करने के लिए, पार्वती-पर्वतराजपुत्री, अभ्याययौ-आगता।

व्याख्या- ऋषि सुमेधा ने राजा सुरथ से कहाकि हे नृपनन्दन, देवता हिमालय पर जब इस प्रकार देवी की स्तुति कर रहे थे, उसी समय पार्वती गंगा जी के जल में स्नान करने के लिए गई।

साब्रवीत्तान्सुरान्सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा। ३८

अन्वय- सा सुभ्रू तान् सुरान् अब्रवीत् भवद्भिः का स्तूयते, अस्याः शरीरकोशतः समुद्भूता शिवा अब्रवीत्।

शब्दार्थ- सुभ्रू-शोभने भ्रुवौ यस्याः सा सुभ्रूः सुन्दर भोंहों वाली, तान् सुरान्-उन स्तुति करते हुए देवताओं से अब्रवीत्-अपृच्छत् पूछा, भवद्भिः-आपके द्वारा, का स्तूयते-किसकी स्तुति की जा रही है, अस्याः-पार्वत्याः शरीरकोशतः-शरीर के कोशों से प्रपंचसार के अनुसार शरीर में छः कोश होते हैं-

मज्जास्थिस्नायवः शुक्ररक्तत्वक्मांसशोणितम्।
इति षाट्कौशिकं नाम देहे भवति देहिनाम्। प्रपंचसार। २/१९

कोश म्यान अथवा आवरण को कहते हैं। इन छः से आवृत आत्मा रहता है, इसलिए ये कोश कहे जाते हैं। पार्वती के संबंध में शिवपुराण और वायवीयसंहिता में एक कथा आती है कि पार्वती का वर्ण नीलाभ श्यामल था।उनसे एक बार शिव ने विनोद में काली कह दिया। यह बात पार्वती को मर्मतक चुभ गई। उन्होंने कहा-भूयसी च तवाप्रीतिरगौरमिति मे वपुः। क्रीडोक्तिरपि कालीति घटेत कथमन्यथा। -मैं गौर वर्ण नहीं हूं, इसलिए आपको मुझसे अप्रीति, घृणा है। अन्यथा विनोद में भी कही गई इस बात का अन्य क्या अभिप्राय है। इस प्रकार कुंठित होकरशिव के समझाने पर भी न मानते हुए गौर वर्ण प्राप्त करने के लिए तप किया। जिस प्रकार सांप केंचुली त्याग देता है, उसी प्रकार उन्होंने नील वर्ण का त्याग करगौर वर्ण प्राप्त किया। उनके उस नील कोश से जो देवी प्रकट हुई उसका नाम शिवा हुआ। कोश से उत्पन्न होने के कारण इन्हें कौशिकी भी कहा जाता है। समुद्भूता-प्रकट हुई। अब्रवीत्-बोली।

व्याख्या- हिमालय पर्वत पर जब देवता इस प्रकार देवी की स्तुति कर रहे थे, उसी समय पार्वती गंगा जी के जल में स्नान करने के लिए निकली, उन्होंने जब देवताओं को इस प्रकार स्तुति करते हुए देखा तो पूछा कि आप सब किसकी स्तुति कर रहे हैं। इसके पहिले कि देवगण कोई उत्तर देते-पार्वती के शरीर के कोशों से शिवा ने

उद्भूत होकर इस प्रकार उत्तर दिया।

विशेष- देवता जिसकी स्तुति कर रहे हैं, वह जगत की अधिष्ठात्री उनके सामने उपस्थित है, फिर भी वे उसे नहीं पहिचान पाते। अतः करुणामयी देवी को ही स्वयं पूछना पड़ा कि आप लोग यहां किसकी स्तुति कर रहे हैं। शरीरकोशतः का अर्थ शरीर के कोशों से किया गया है। दूसरा अर्थ शरीर रूपी कोश से भी होता है। नील वर्ण शिवा के निकल जाने पर पार्वती का वर्ण गौर रह गया, इसके अनुसार शरीर के लिए कोश का काम करने वाले चर्म से भी अर्थ होता है। कोश खजाने को भी कहा जाता है अतः पार्वती का शरीर ही कोश के समान- यह अर्थ भी संगत है क्योंकि उनके शरीर में ही समस्त जगत् का निधान-स्थापन है। दूसरे जगदम्बा का शरीर परम् आनन्द की निधि है इसलिए भी शरीर को कोश के समान मानना उचित है। वैसे शिवा का प्राकट्य शरीर का अद्भुत तेजोमय रूप ही तो है।

स्तोत्रं ममैतत्क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः।
देवैः समेतैः समरे निशुम्भेनपराजितैः। ३९

अन्वय- समरे निशुम्भेन पराजितैः शुम्भदैत्यनिराकृतैः समेतैः देवैः मम एतत् स्तोत्रं क्रियते।

शब्दार्थ- समरे-युद्ध में, निशुम्भेन-निशुम्भ दैत्य से, पराजितैः- हार जाने पर, शुम्भदैत्य-निराकृतैः-शुम्भदैत्येन निराकृतैः- शुम्भ दैत्य के द्वारा अपमानित होकर, समेतैः-सब मिलकर यहां आये हुए, अथवा समस्तैः पाठ मानकर सभी देवता, मम-मुझ शिवा का मुझ तेजोरूपा देवी का, एतत्-यह, स्तोत्रं-स्तुतिगान, क्रियते-किया जा रहा है।

व्याख्या- ये देवता युद्ध में निशुम्भ से हारकर और शुम्भ दैत्य के द्वारा अपमानित होकर सब मिलकर यहां आये हैं और मुझ तेजोरूपा शिवा की स्तुति कर रहे हैं।

शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका।
कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते। ४०

अन्वय- यत् तस्याः पार्वत्याः शरीरकोशात् अम्बिका निःसृता ततः समस्तेषु लोकेषु कौशिकी इति गीयते।

शब्दार्थ- यत्-यस्मात्-क्योंकि, तस्याःपार्वत्याः उन पार्वती के, शरीरकोशतः-शरीर रूपी कोश से, अथवा शरीर ही कोश है जिनका उससे, अम्बिका निःसृता-शक्तिरूपा अम्बिका का प्रादुर्भाव हुआ, ततः-तस्मात् कारणात्-इसी कारण से, समस्तेषु लोकेषु-सभी लोकों में, कौशिकी-कोश शब्द से ठक् प्रत्यय लगने पर कौशिक और स्त्रीलिंग में कौशिकी बनता है। इति-ऐसा, गीयते-कथ्यते कहा जाता है।

व्याख्या- पार्वती जी के शरीरकोश से निकलने के कारण अम्बिका का प्रादुर्भाव हुआ। इसलिये संसार में उन्हें कौशिकी कहा जाता है।

तस्यां विनिर्गतायान्तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया।४१

अन्वय- सा पार्वती अपि तस्यां विनिर्गतायां सत्यां कृष्णा अभूत्कालिका इति च समाख्याता सती हिमालयकृताश्रया अभूत्।

शब्दार्थ-सा-वह पार्वती अपि-पार्वती भी तस्यां विनिर्गतायां-शरीरकोश से कौशिकी के निकल जाने पर, कृष्णा अभूत्-काली पड़ गई, कालिका इति-कालिका ऐसा समाख्याता-प्रसिद्धि हुई, हिमाचलकृताश्रया-हिमाचले कृतः आश्रयः यया हिमालय पर जिसने स्थान बना लिया है, जो हिमालय पर रहने लगी।

पाठभेद से अन्वय- तस्या विनिर्गता या तु सा अपि पार्वती परं तु कृष्णा अभूत् कालिका इति समाख्याता सती हिमालयकृताश्रया जाता।

शब्दार्थ- तस्या-उन पार्वती के शरीरकोश से, या-जो, विनिर्गता-निकली, सा अपि वह भी पार्वती परंतु-लेकिन वह कृष्णा अभूत्-काले वर्ण की हो गई, हिमालयकृताश्रया-इसलिये हिमालय पर ही रहने लगी, कालिका इति समाख्याता-कालिका के नाम से प्रसिद्ध हुई।

व्याख्या- पार्वती के शरीर कोश से उन कौशिकी देवी के निकल जाने पर वह पार्वती कृष्णवर्ण की हो गई और उनका नाम कालिका प्रसिद्ध हुआ। वे हिमालय पर ही निवास करने लगी।

अन्यथा अर्थ-उन पार्वती के शरीर से जो देवी निकली, वह भी वास्तव में पार्वती ही है, परन्तु वे कृष्णवर्ण हो गई और उनका नाम कालिका हुआ। जो हिमालय पर ही निवास करने लगी।

विशेष- पहिले अर्थ के अनुसार कौशिकी के निकल जाने पर पार्वती कृष्णवर्ण की हो गई और उनका नाम कालिका हुआ, वे हिमालय पर निवास करने लगी। जबकि दूसरी व्याख्या के अनुसार पार्वती के शरीरकोश से जो कौशिकी देवी निकली वे कृष्णवर्ण की होने के कारण कालिका कहलाई और हिमालय पर ही अवस्थान करने लगी। भास्करराय अपनी टीका में तस्यां विनिर्गतायां का भी खींचतान कर यही अर्थ करते हैं कि कृष्णवर्ण होना और हिमालय पर अवस्थान दोनों ही कौशिकी के लिए ही है न कि पार्वती के लिए। इसके लिए वे शिवपुराण और वायवीयसंहिता का उल्लेख करते हैं।

ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहराम्।
ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः।४२

अन्वय- ततः शुम्भनिशुम्भयोः भृत्यौ चण्डो मुण्डश्चपरं सुमनोहरं रूपं बिभ्राणां अम्बिकां ददर्श।

शब्दार्थ- ततः-अथवा वहां हिमालय पर, शुम्भनिशुम्भयोः- शुम्भ और निशुम्भ के भृत्यौ-दो सेवकों, चण्डो मुण्डश्च चण्ड और मुण्ड ने परं-अत्यन्त, सुमनोहरम्-बहुत सुन्दर, रूपम्-स्वरूप, परं रूपं को यदि जगदम्बा के तीन रूपों-स्थूल, सूक्ष्म और पर में से पररूप को मानें तो सुमनोहरम्-सुमनस् अर्थ में सभी देवताओं के तादात्म्यक रूप को धारण किए हुए विभ्राणाम्-धारण किए हुए, अम्बिकाम्-पार्वती के शरीर से निःसृत कौशिकी को देखा।

यहां देवी भागवत का यह वर्णन दृष्टव्य है-

पार्वत्यास्तु शरीराद्वै निःसृता चाम्बिका यदा।
कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु पठ्यते।
निःसृतायां तु तस्यां सा पार्वती तनुव्यत्ययात्।
कृष्णारूपाथ संजाता कालिका सा प्रकीर्तिता।
मषीवर्णा महाघोरा दैत्यानां भयवर्धिनी।
कालरात्रीति सा प्रोक्ता सर्वकामफलप्रदा।
अंबिकायाः परं रूपं विरराज सुमनोहरम्।
सर्वभूषणसंयुक्तं लावण्यगुणसंयुतम्।
ततोऽम्बिका तदा देवानित्युवाच ह सस्मिता।
तिष्ठंतु निर्भया यूयं हनिष्यामि रिपूनिह।
कार्यंवः सर्वथा कार्यं बिहरिष्याम्यहं रणे।
निशुम्भादीन्वधिष्यामि युष्माकं सुखहेतवे।
इत्युक्त्वा सा तदा देवी सिंहारूढ़ा मदोत्कटा।
कालिकां पार्श्वतः कृत्वा जगाम नगरे रिपोः।

देवी भागवत ५/२३/३-८

पार्वती के शरीर से जब अम्बिका निकली तो सम्पूर्ण लोकों में वे कौशिकी के नाम से विख्यात हुई। उनके निकलने पर वे पार्वती शरीर के उस अन्तःपरिवर्तन से श्यामवर्ण हो गई और उन्हें कालिका कहा जाने लगा। स्याही के समान वर्ण वाली, महाभयंकर, दैत्यों में भय बढ़ाने वाली और सभी कामनाओं को सफल बनाने वाली देवी को कालरात्रि कहा गया। अम्बिका का पर-उत्कृष्ट रूप अथवा स्थूल, सूक्ष्म और पर रूप

में पररूपअत्यन्त मनोहर शोभित हुआ। वे सभी आभूषण धारण किये थी और सौन्दर्य और गुणों से युक्त थी। तब अम्बिका ने देवताओं से मुस्कुराते हुए इस प्रकार कहा- आप सभी निर्भय रहें, मैं तुम्हारे शत्रुओं का नाश करूंगी। आप का कार्य करना ही है मैं युद्धस्थल में विचरण करती हूँ। तुम सबके सुख के लिए मैं निशुम्भ आदि का वध करूंगी। इतना कहकर वह मदमाती देवी सिंह पर सवार होकर और कालिका को बगल में करके शत्रु के नगर में गई।

उक्त दोनों ही वर्णन में पार्वती कृष्ण वर्ण हो गई और उन्हें कालिका कहा गया और वे हिमालय के आश्रय में रहने लगी। किन्तु देवी भागवत के टीकाकार नीलकण्ठ ने और सप्तशती के टीकाकार भास्करराय ने अम्बिका को कृष्णवर्ण होना और पार्वती का गौरवर्ण होना बताया है। और यह केवल शिवपुराण के वर्णन से सामंजस्य बिठाने के लिए। यदि अम्बिका मषी वर्णा, महाघोरा और दैत्यानां भयवर्धिनी होती तो उसे चण्ड और मुण्ड अतीव सुमनोहरा और चार्वंगी कैसे कहते। देवी भागवत में अम्बिका को सुमनोहरं, सर्वभूषणसंयुत और लावण्यगुणसंयुतम् कैसे कहा जाता। विद्वज्जन ही स्वविवेक से इसका निर्णय कर लें।

व्याख्या- तब शुम्भ और निशुम्भ के दो सेवकों ने जिनका नाम चण्ड और मुण्ड था- अत्यन्त मनमोहक उत्कृष्ट रूप धारण किए हुए अम्बिका को देखा।

विशेष- उक्त ३८ से ४२ संख्या तक के छन्दों का अर्थ शान्तनु की टीका के अनुसार और उसी के अनुकूल है। गीता प्रेस की हिन्दी टीका में भी यही दिया गया है।

ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता सातीव सुमनोहरा।
काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम्। ४३

अन्वय- ताभ्यां शुम्भाय आख्याता च महाराज सा अतीव सुमनोहरा कापि स्त्री हिमाचलं भासयन्ती आस्ते।

शब्दार्थ- ताभ्याम्-चण्डमुण्डाभ्याम्, चण्ड और मुण्ड के द्वारा, शुम्भाय-शुम्भ को आख्याता-कहा गया, सा वह अतीव-अत्यन्त, कापि-का अपि, कोई हिमाचलम्-हिमालय को भासयन्ती- अपनी कान्ति से दीप्त करती हुई।

व्याख्या- उन दोनों चण्डमुण्ड ने अपने स्वामी शुम्भ से जाकर निवेदन किया कि महाराज, हिमालय को अपनी आभा से प्रकाशित करती हुई अत्यन्त सुन्दरी कोई स्त्री उधर है।

नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम्।
ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर।४४

अन्वय- हे असुरेश्वर क्वचित् अपि केनचित् अपि तादृक् उत्तमम् रूपं नैव दृष्टम्। असौ देवी कापि अतः ज्ञायताम् गृह्यतां च।

शब्दार्थ- उसके समान, दृष्टम्-देखा गया, असौ-यह, कापि-कोई, देवी-दिव्यस्त्री है ज्ञायताम्-जानिये गृह्यताम्-ग्रहण कीजिए।

व्याख्या- हे दैत्यराज, उस स्त्री के समान रूप किसी ने कहीं भी न देखा होगा। यह जानिए अथवा आप जानकारी कर लीजिए और उस स्त्री को ग्रहण कीजिए।

स्त्रीरत्नमतिचार्वंगी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा।

सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान् द्रष्टुमर्हति। ४५

अन्वय- हे दैत्येन्द्र त्विषा दिशः दीपयन्तीअतिचार्वंगी स्त्रीरत्नं सा तिष्ठति तां भवान् द्रष्टुं अर्हति।

शब्दार्थ- हे-दैत्येन्द्र त्विषा-प्रभया दीप्त्या अपनी आभा से कान्ति से, दिशः-दशों दिशाओं को, द्योतयन्ती-प्रकाशयन्ती प्रकाशित करती हुई, अतिचार्वंगी-अत्यन्त चारु मनोहरं अंगं यस्याः सा अतिचार्वंगी-अत्यन्त सुन्दर अंगों वाली, स्त्रीषु रत्नं उत्कृष्टं जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमित्यभिधीयते स्त्रियों में उत्कृष्ट, स्त्रीषु रत्नमिव उत्कृष्टं वा स्त्रियों में रत्न के समान श्रेष्ठ द्रष्टुम् अर्हति-आपके देखने योग्य है, आप उसे देखें।

व्याख्या- हे दैत्यों में श्रेष्ठ, दैत्यों के राजा, वह स्त्री अपने शरीर की कान्ति से सभी दिशाओं को प्रकाशित करती हुई स्त्रियों में श्रेष्ठ अत्यन्त सुन्दर अंगों वाली वहां बैठी है, आप स्वयं उसे देख सकते हैं।

यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो।

त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे। ४६

अन्वय- हे प्रभो त्रैलोक्ये गजाश्वादीनि रत्नानि मणयः च यानि रत्नानि तानि साम्प्रतं ते गृहे भान्ति।

शब्दार्थ- गजाश्च अश्वाश्च आदौ येषान्ते गजाश्वादयः तानि गजाश्वादीनि रत्नानि रत्नभूतानि उत्कृष्टतमानि यद्यच्छ्रेष्ठतमं जातौ तद्रत्नमभिधीयते मणयःरत्नानि-पदमरागादयः साम्प्रतम्-अधुना अभी, समस्तानि-सभी भान्ति-शोभा दे रहे हैं।

व्याख्या- हे दैत्यों के स्वामी, तीनों लोकों के हाथी, घोड़े, हीरे-मोती जवाहर आदि जो भी श्रेष्ठतम हैं वे सब अभी आपके घर की शोभा बढ़ा रहे हैं।

ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात्।

पारिजाततरुश्चायंतथैवोच्चैःश्रवा हयः। ४७

अन्वय- पुरन्दरात् ऐरावतः समानीतः गजरत्नम्, अयं पारिजाततरुः, तथा एव उच्चैःश्रवा हयः ते गृहे वर्तते।

शब्दार्थ-पुरन्दरः- अरीणां पुराणि दारयतीति पुरन्दरः, शत्रुओं के नगरों को ध्वस्त करने वाला इन्द्र, ऐरावतः- एति भ्राम्यति अनया इरा तदवान् इरा सुरोदःतत्र जातः

ऐरावत:इरा-सुरा तदवान् सुरासागर से जो उत्पन्न वह ऐरावत, पारिजात:-पारिण: पारवतोब्धे: जात: पारिजात: पारवत समुद्र से उत्पन्न होने के कारण पारिजात, उच्चै:श्रवा-उच्चै: श्रवसी यस्य स उच्चै:श्रवा-जिसके उठे हुए कान हों वह उच्चै: श्रवा अथवा जो दूर से सुनने में समर्थ हो वह उच्चै:श्रवा, हय:अश्व:

व्याख्या- पूर्व में जो गजाश्वादीनि रत्नानि कहा है, उसीको गिनाते हुए स्पष्ट किया जाता है कि इन्द्र का हाथी ऐरावत जो गजरत्न है, पारिजात वृक्ष जो तरुरत्न है, उच्चै:श्रवा घोड़ा जो अश्वरत्न है, इन सभी को आपने इन्द्र से लाकर अपने घर रखा है।

विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेंऽगणे।
रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधवोऽद्भुतम्। ४८

अन्वय- यद् वेधस: अदभुतं विमानं आसीत्रत्नभूतं एतत्हंससंयुक्तं त्वया इह आनीतं ते अंगणे तिष्ठति।

अन्यच्च- हंससंयुक्तं रत्नभूतं यद् विमानं आसीत्एतत् त्वया वेधस: आनीतं ते अंगणे तिष्ठति अद्भुतम् एतत्।

शब्दार्थ- वेधस: ब्रह्मण: ब्रह्मा का अथवा ब्रह्मा से, अदभुतं-इसे विमान का विशेषण मानें तो आश्चर्यजनक विमान और एतत् अदभुतम् ऐसा मानें तो यह आश्चर्यजनक है कि आप उस ब्रह्मा का भी विमान छीन लाये जिसने आपको वर दिया। हंससंयुक्तम्-जिसमें हंस जुते हुए हों,

व्याख्या- ब्रह्मा का वह आश्चर्यजनक विमान जिसमें हंसों का जोड़ा जुता हुआ, वह भी आप ले आये और यह आपके आंगन में रखा है। ब्रह्मा जो जगत्सृष्टा है उसका भी विमान आप ले आये यह आश्चर्यजनक है। इससे ध्वनित होता है कि द्युलोक में भी आपके लिए कोई अजेय नहीं रहा। दूसरी ध्वनि यह भी है कि जिस ब्रह्मा से आपने वर प्राप्त किया उसीसे उसका विमान छीन लाये यह आश्चर्य की बात है। सामान्य कथन के अनुसार अद्भुत विमान का विशेषण हो सकता है, व्याजस्तुति के अनुसार चण्डमुण्ड का यह कथन कि जब तुमने अपने वरदानी ब्रह्मा का भी विमान छीन लिया तो अब स्त्रीरत्न को लाने में विलंब क्यों और शुम्भ इसे अपनी प्रशंसा समझ सकता है कि जगत्मृष्टा से भी विमान छीन लेने का आपका साहस अदभुत है।

निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात्।
किंजल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपंकजाम्। ४९

अन्वय- हे प्रभो धनेश्वरात् एवं महापद्म:नाम निधि: समानीत:, अब्धि: अम्लानपंकजां किंजल्किनीं मालां चददौ।

शब्दार्थ- महापदम: महांश्चासौ पद्मश्च महापद्म: वा महान्त: पद्मा:निधिभेदा: यस्माद्भवन्ति स: मणिपद्म:पद्म आदि महान निधियां जिससे होती हो वह महापद्म, वैसे कुबेर की नवनिधियों में महापद्म और पद्म को पृथक से गिनाया गया है-

महापद्मश्च पद्मश्च शंखो मकरकच्छपौ।
मुकुन्दकुन्दनीलश्च खर्वश्च निधयो नव।

धनेश्वरात् कुबेरात्, निधि: कोश खजानानिधीयते अस्मिन्निति निधि: पुल्लिग है अमरकोश के अनुसार-निधिर्ना। अब्धि: समुद्र: किंजल्किनीं-अगणितकेसरात्मिका असंख्य केसरयुक्त अम्लानपंकजा- अविशुष्ककमलाम्- जिसके कमल कभी मुरझायें नहीं इसी प्रकार किंजल्किनीम् का अर्थ भी अविशीर्णकेसराम् किया जा सकता है जिसके केसर कभी झड़ते नहीं। अम्लानपंकजां मालां के विषय में विशेष द्वितीय अध्याय के छन्द संख्या २७, २८ पर दृष्टव्य।

व्याख्या- महापद्म नाम की यह निधि भी आप कुबेर से छीन लाये हैं। और समुद्र ने आपको रत्नभूता वह माला दी है जिसके कमल कभी मुरझाते नहीं और जिसके केसर झड़ते नहीं।

छत्रं ते वारुणं गेहे कांचनस्त्रावि तिष्ठति।
तथायं स्यन्दनवरो य:पुरासीत्प्रजापते:। ५०

अन्वय- हे प्रभो यत् वारुणं कांचनस्त्रावि छत्रं तत् ते गेहे तिष्ठति। तथा अयं स्यन्दनवर: पुरा य: प्रजापते: आसीत् स तव गृहे तिष्ठति।

शब्दार्थ- वारुणं-वरुणसंबंधि-जो कभी वरुण का था, कांचनस्त्रावि-कांचनं सुवर्ण स्त्रवति वर्षति इति कांचनस्त्रावि स्वर्णवर्षणशीलम्-सोना बरसाने वाला, स्यन्दवर:- स्यन्दनेषु रथेषु वर: श्रेष्ठ: रथों में श्रेष्ठ रत्नभूत, पुरा-पूर्वकाले प्राचीनकाल में प्रजापते:- ब्रह्मण: दक्षस्य वा।

व्याख्या- वरुण का सोना बरसाने वाला छत्र भी तो अब आपके घर में है। पूर्वकाल में जो रथ प्रजापति दक्ष का हुआ करता था, वह भी रथों में रत्नभूत अब आपके पास है। प्रजापति का अर्थ ब्रह्मा भी होता है, किन्तु पूर्व में ब्रह्मा से विमान की प्राप्ति कह चुके हैं, इसलिए यहां प्रजापति का अर्थ दक्ष किया गया।

मृत्योरुत्क्रान्तिदानाम शक्तिरीश त्वया हृता।
पाश: सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे। ५१

अन्वय- हे ईश मृत्यो: उत्क्रान्तिदा नाम शक्ति: त्वया हृता, तव भ्रातु: परिग्रहे सलिलराजस्य पाश: वर्तते।

शब्दार्थ- मृत्युः म्रियन्ते अस्मिन् उपस्थिते अन्ते इति मृत्युः, उत्क्रान्तिदा-प्राणिनामायुषः अन्ते या प्राणाकर्षणकारिणी शक्तिः सा उत्क्रान्तिदा उत्क्रमणं उत्क्रान्तिः तां ददातीति उत्क्रान्तिदा, उत्क्रान्तौ मरणकाले द्यति खण्डयतीति वा उत्क्रान्तिदा, प्राणियों की आयु समाप्त होने पर जो शरीर से प्राणों का आकर्षण करने वाली शक्ति उसे उत्क्रान्तिदा कहते हैं, शरीर से प्राण के निर्गमन को उत्क्रान्ति कहते हैं, वह जिससे हो वह यम की शक्ति उत्क्रान्तिदा, सलिलराजस्यअपांपतेः वरुणस्य, पाशः आयुधविशेषः, परिग्रहे-विषये सद्मनि, परिजने, वा परिगृह्यते अनेन परिग्रहो हस्तः

व्याख्या- हे ईश स्वामी, आपने मृत्यु की उत्क्रान्तिदा नामक शक्ति को भी हरण कर लिया है, और वरुण का पाश आपके भाई के यहां है, उसके पास है, उसके हाथों में रहता है अथवा उसके परिजनों के पास है।

निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः।
वन्हिश्चापि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी। ५२

अन्वय- निशुम्भस्य अब्धिजाता समस्ता रत्नजातयः च, वन्हिः च अपि तुभ्यं अग्निशौचे वाससी ददौ। अग्निशौचेयवाससी ऐसा पाठ भी है।

शब्दार्थ- निशुम्भस्य-निशुम्भस्य तव भ्रातुर्गृहे, निशुम्भ के यहां, अब्धिजाताः अब्धेः समुत्पन्नाः समुद्र से उत्पन्न, रत्नाकरसमुदभूता, रत्नजातयः- उत्तमरत्नप्रकाराः श्रेष्ठ रत्न हैं। मुक्ताफलविद्रुमहरिन्मणिवज्रपद्मरागादयाः रत्नजातयः। मोती, मूंगा, पन्ना, हीरा, पुखराज आदि रत्न कहे जाते हैं। अग्निशौचे-सदैवाग्निवन्निर्मले, अग्नौ निक्षेपतः शौचं निर्मलीकरणं ययोः ते-अग्नि के समान सदैव निर्मल रहने वाले अथवा अग्नि में डालने पर निर्मल होने वाले, अग्निशौचेयवाससी पाठ के अनुसार- अग्नौ शौचं नैर्मल्यं ययोः तद्वासो युग्मं अन्तरीयोत्तरीयं च। अग्नि के समान शुद्ध निर्मल रहने वाले, अग्नि में निर्मल होने वाले, अग्नि के द्वारा दिये गये इस कारण अग्नि में न जलने और अग्नि में डालने पर निर्मल होने वाले वस्त्र और उपवस्त्र।

व्याख्या- समुद्र से जितने प्रकार के रत्न उत्पन्न होते हैं, वे सभी आपके भाई निशुम्भ के पास हैं। अग्निदेवता ने भी आपको दो ऐसे वस्त्र दिये हैं जो सदा ही अग्नि के समान निर्मल रहते हैं अथवा अग्नि के समान स्वर्णिम कान्तिवाले हैं अथवा अग्नि में डालने पर शुद्ध होकर निकलते हैं।

एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहतानि ते।
स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृहयते। ५३

अन्वय- हे दैत्येन्द्र एवं समस्तानि रत्नानि ते आहतानि, एषा च कल्याणी स्त्रीरत्नं त्वया कस्मान्न गृह्यते।

शब्दार्थ- दैत्येन्द्र-दैत्यों के स्वामी, समस्तानिरत्नानि-सभी रत्न, आहृतानिदेवगणैः उपहारीकृतानि, देवताओं से उपहार में प्राप्त की हैं यहां रत्न का अर्थ श्रेष्ठ वस्तु होगा। एषा-यह स्त्रीरत्नम्-स्त्रीणां रत्नभूतम्-समस्त स्त्रियों में श्रेष्ठ कल्याणी-मंगलप्रदा, सौभाग्यदायिनी, कस्मात्-केन कारणात् क्यों त्वया-शुम्भेन कस्मान्न गृह्यते-इस कल्याणी को क्यों ग्रहण नहीं करते। अर्थात् स्त्रियों में रत्नभूता इस देवी को आपको ग्रहण करना ही चाहिए।

व्याख्या- हे दैत्यराज शुम्भ, इन्द्र आदि सभी देवताओं के पास जो भी रत्नभूत श्रेष्ठ वस्तुएं थी, वे सभी उन्होंने आपको भेंट कर दी हैं। यह देवी जिसे मैंने अभी देखा है, सम्पूर्ण स्त्रीजाति में श्रेष्ठ रत्न के समान है कल्याणकारक है। निहित आशय यह भी है कि यदि उसकी अनुकूलता आपको प्राप्त हो जाय तो आपके लिए परम सौभाग्य और कल्याण की बात होगी। आपको इसे ग्रहण करना ही चाहिए। आप उसे ग्रहण क्यों नहीं करते। अर्थात् ऐसा कोई कारण नहीं जान पड़ता जिससे आप उसे ग्रहण न करें।

ऋषिरुवाच- निशम्येति वचः शुम्भःस तदा चण्डमुण्डयोः।

प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम्। ५४

अन्वय- ऋषिः उवाच-शुम्भः तदा चण्डमुण्डयोः इति वचः निशम्य महासुरं सुग्रीवं दूतं देव्या प्रेषयामास।

शब्दार्थ- ऋषिः सुमेधा, उवाच-कहा, तदा-तब, चण्डमुण्डयोः- चण्डस्य मुण्डस्य च द्वयोः इति, एवं इस प्रकार, वचः- वचन, वाणी को निशम्य-श्रुत्वा, सुनकर, महासुरम्-दैत्यवरम् कही कहीं महासुरः पाठ है तब इसे शुम्भ का विशेषण माना जायगा, सुग्रीवं-सुग्रीव नामक असुर को दूतं-दूत के रूप में, देव्याः देवी के पास, प्रेषयामास-भेजा।

व्याख्या- सुमेधा ऋषि ने कहा कि चण्ड और मुण्ड नामक दैत्यों का इस प्रकार कथन सुनकर शुम्भ ने सुग्रीव नामक महा असुर को देवी के पास अपना सन्देशवाहक दूत बना कर भेजा।

इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम

यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु। ५५

अन्वय- तत्र गत्वा मम वचनात् सा इति च इतिच वक्तव्या यथा च सा सम्प्रीत्या अभ्येति तथा त्वया लघु कार्यम्।

पाठान्तर से इस श्लोक के पहिले कहीं शुम्भ उवाच अधिक मिलता है।

शब्दार्थ- इति च इति च-एवं एवं प्रकारेण, इस इस प्रकार से, अथवा जैसा कि पूर्व में चण्ड, मुण्ड ने कहा है, मम वचनात्-मेरी ओर से, शुम्भ की ओर से, वक्तव्या-

कहना है, सम्प्रीत्या-हर्षेण-प्रसन्नतापूर्वक, लघु-शीघ्र, लघुक्षिप्रमरं द्रुतम् इत्यमरः। अभ्येतिआभिमुख्येन आगच्छति, साथ ही चली आये, तथा-वैसा ही अर्थात् साम, दान और भेद नीति अपना कर उसे अपने वचनों की चतुराई से मेरे पास आने के लिए राजी करना है, कार्यं-करणीयम् करना है।

व्याख्या- शुम्भ दैत्य ने देवी के समीप दूत के रूप में सुग्रीव नामक महा असुर को भेजने के पहिले उसे समझाया कि तुम्हें देवी के सामने जाकर मेरी ओर से इस प्रकार कहना है। दूसरा आशय यह भी है कि जिस प्रकार अभी चण्ड-मुण्ड ने मेरे प्रताप का वर्णन किया है, उसी प्रकार देवी के सम्मुख मेरे प्रताप का वर्णन करते हुए इस प्रकार कहना है कि वह तुम्हारे वचनों से इतनी प्रभावित हो जाय कि तुम्हारे साथ यहां चली आवे। इससे एक ओर तो शुम्भ की देवी को प्राप्त करने की उतावली प्रतीत होती है, दूसरे नीतिनिपुण और राजधर्म की जानकारी भी प्रकट होती है। इन वचनों से स्पष्ट होता है कि शुम्भ राजसी वृत्ति का है, अतः उसे मारने के लिए देवी का सात्विक अवतरण हुआ।

स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने।
सा देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा। ५६

अन्वय- सः ततः यत्र अतिशोभने शैलोद्देशे सा देवी आस्ते तत्र गत्वा तां श्लक्ष्णं मधुरया गिरा प्राह।

शब्दार्थ- सः-दूतः सुग्रीवः, ततः तदनन्तरम्, इसके पश्चात्, अतिशोभने-अतिरमणीके अत्यन्त सुन्दर, शैलोद्देशे-पर्वतप्रान्त में, सा देवी-देवी कौशिकी, आस्ते-स्थित थी, श्लक्ष्णम्-कोमलं, गिरा-वाण्या प्राह,-सुग्रीवः शुम्भसन्देश कथितवान्।

व्याख्या- तब शुम्भ का वह दूत सुग्रीव वहां जा पहुंचा जहां अत्यन्त सुन्दर पर्वतप्रान्त में देवी कौशिकी अवस्थित थी। वहां जाकर उसने देवी से कोमल और मधुर वाणी से इस प्रकार शुम्भ का सन्देश कहा।

दूत उवाच - देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः।
दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः। ५७

अन्वय- दूत-उवाच-हे देवि, दैत्येश्वरः शुम्भः त्रैलोक्ये परमेश्वरः अस्ति, अहं तेन प्रेषितः दूतः, इह त्वत्सकाशं आगतः।

शब्दार्थ- दैत्येश्वरः-दैत्यों का स्वामी, त्रैलोक्ये परमेश्वरः-लोकत्रये परमः उत्कृष्टः ईश्वरः-तीनों लोकों में एकमात्र परमेश्वर वही है, तेन प्रेषितः-शुम्भेन त्वत्सकाशम्- तव समीपम्-तुम्हारे पास प्रहितः पठाया हुआ इह-यहां आगतः- आया हूं।

व्याख्या- हे देवि, दैत्यों का राजा शुम्भ इस समय तीनों लोकों का स्वामी है

परमेश्वर है। मैं उसका दूत हूं उसने मुझे आपके पास सन्देश कथन के लिए भेजा है, इसीलिए मैं यहां आया हूं।

विशेष- यहां देवि सम्बोधन में साभिप्राय विशेषण होने के कारण परिकरांकुर अलंकार है। अमरकोश के अनुसार- राजा भट्टारको देवः- राजा के लिए देव शब्द का प्रयोग होता है। लोक में भी श्री जू देव आदि कहा जाता है। देवस्य स्त्री देवी उसके संबोधन का रूप देवि हुआ। इससे यह ध्वनित होता है कि वह परमेश्वर है आप उसकी सुयोग्य पट्टमहिषी हैं। दूसरा भाव यह भी है कि वह परमेश्वर है और आप देविजयशीला हैं। दिवि क्रीड़ा विजिगीषा व्यवहारदयुतिस्तुतिमोदमस्वप्नकान्तिगतिषु- इसके अनुसार उक्त अर्थ निहित हैं।

अव्याहताज्ञःसर्वासु यः सदा देवयोनिषु।

निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह श्रणुष्व तत्। ५८

अन्वय- यः सदा सर्वदेवयोनिषु अव्याहताज्ञः निर्जिताखिलदैत्यारिः स यत् आह तत् शृणुष्व।

शब्दार्थ- सर्वासु देवयोनिषु के विशेषण के रूप में प्रयुक्त, सामान्यतया योनि शब्द पुल्लिग में ही प्रयुक्त होता है, इसलिए किसी टीकाकार ने इसे लिगव्यत्यय माना है, जबकि अमरकोश के अनुसार योनि शब्द स्त्रीलिंग में भी होता है-भग योनिर्द्वयोः। देवयोनिषु-देवयोनि दश हैं-विद्याधरोऽ प्सरोयक्षरक्षगन्धर्वकिंनरा। पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः इत्यमरः। देवा योनिरेषान्ते देवयोनयः, अथवा देवानामिव योनिरुत्पत्तिकारणं येषाम् इति देवयोनयः। अव्याहताज्ञः-न व्याहता आज्ञा यस्य सः अव्यहताज्ञः, अनुल्लंघनीय शासनः, निर्जिताखिलदैत्यारिः-निःशेषेण जिता अखिलाः दैत्यारयः देवाः येन सः, जिसने सभी देवताओं को जीत लिया है। शृणुष्व शृणु होना चाहिए था, उसके स्थान पर आत्मनेपदी का प्रयोग है-सुनिये। आह-कहा

व्याख्या- विद्याधर, यक्ष, राक्षस, अप्सरा, गन्धर्व, किंनर, पिशाच, गुहयक-जिन्न, सिद्ध और भूत ये दशों देवजातिंयों वाले जिसकी आज्ञा बिना ननु नच किए पालन करते हैं, जिसने सम्पूर्ण देवताओं को जीत लिया है, उस शुम्भ दैत्यराज ने मेरे मुख से जो सन्देश आपके लिए भेजा है, उसे सुनिये।

मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगा।

यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक्। ५९

अन्वय- शुम्भ आह-अखिलं त्रैलोक्यं मम, देवा मम वशानुगाः, अहं पृथक् पृथक् सर्वान् यज्ञभागान् उपाश्नामि।

शब्दार्थ- अखिलम्-सम्पूर्णम्, त्रैलोक्यम्-लोकत्रयम्, स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल,

मम-मेरे तीनों लोक सम्पूर्ण रूप से मेरे ही हैं, वशानुगा-वशाः-अधीनाः अनुगाश्च-अनुचराश्च मेरे अधीन और अनुचर हैं, यज्ञभागान्-यज्ञेषु आहुतिरूपेण देवतोद्देशेन दत्तान् भागान्, सर्वान्-पृथक् पृथक् नामनिर्देशपूर्वकं अग्नौ प्रक्षिप्तान् देवानां प्रति निर्दिष्टान् आहुतिरूपान् यज्ञांशान्, उपाश्नामि-उपभुजे-उपभोग करता हूं।

व्याख्या- पृथ्वी, स्वर्ग और पाताल इन तीनों लोकों में मेरा एकछत्र अधिकार है इन तीनों लोकों का मैं स्वामी हूं। सभी देवता मेरे अधीन रहते और मेरी इच्छा के अनुसार कार्य करते हैं। यज्ञों में पृथक्-पृथक् देवताओं के लिए जो आहुति दी जाती है, उन सभी यज्ञांशों का मैं ही उपभोग करता हूं।

त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः।
तथैव गजरत्नं च हृतं देवेन्द्रवाहनम्। ६०

पाठभेद त्रैलोक्य वर रत्नानि ऐसा पाठ भी है, हृतं के स्थान पर हृत्वा पाठ भी है, गजरत्नं च के स्थान पर गजरत्नानि पाठ भी है।

अन्वय- त्रैलोक्यवरत्नानि अशेषतः मम वश्यानि तथैव देवेन्द्रवाहनं गजरत्नं च हृतम्।

अथवा- त्रैलोक्ये वर रत्नानि अशेषतः मम वश्यानि, देवेन्द्रवाहनं हृत्वा च गजरत्नानि मम वश्यानि।

शब्दार्थ- वररत्नानि-श्रेष्ठतमानि वस्तूनि यानि रत्नभूतानि अशेषतः-अशेषाणि सार्वविभक्तिकस्तसिल्। देवेन्द्रवाहनम्-इन्द्रस्य वाहनम् ऐरावतम्, गजरत्नं-गजेषु रत्नभूतम् हृतं-गृहीतम्, हृत्वा-इन्द्रस्यवाहनमैरावतं यद्गजरत्नं तथैव समानीय देवैः मम समर्पितम्।

व्याख्या- तीनों लोकों में जितने भी श्रेष्ठ रत्न हैं वे सबके सब मेरे ही पास हैं। यहां तक कि हाथियों में श्रेष्ठ ऐरावत जो इन्द्र का वाहन रहा उसे भी देवताओं ने लाकर मुझे सौंप दिया है।

क्षीरोदमथनोदभूतमश्वरत्नं ममामरैः।
उच्चैः श्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम्। ६१

अन्वय- क्षीरोदमथनोदभूतम् उच्चैः श्रवससंज्ञं तत् अश्वरत्नं अमरैः प्रणिपत्य मम समर्पितम्।

शब्दार्थ- क्षीरोदमथनोदभूतम्-क्षीराणि उदकानि यस्य सः क्षीरोदः 'उत्तरपदे उदकस्योदः संज्ञायाम् इत्युदादेशः क्षीरोदस्यमथनं विलोडनं तत उदभूतम्- क्षीरोदमथनोदभूतम्-क्षीरसागरस्य मथनेन सम्प्राप्तम् अश्वरत्नम्-अश्वेषुरत्नमिव श्रेष्ठम्, उच्चै श्रवससंज्ञं-श्रु गतौ श्रु श्रवणे अतः उच्चै-श्रुणोति गच्छति आकर्णयति च उच्चैः श्रवाः अश्वरत्नमिति नपुंसकलिंगे

विशेषणे उच्चैः श्रव:संज्ञं उच्चैः श्रवाः नामानं उच्चैः श्रवस इत्यकारश्छान्दसः प्रणिपत्य-पादपद्मे निपत्य समर्पितम्-उपायनीकृतम् उपहारीकृतम्।

व्याख्या- क्षीरसागर के मन्थन के समय जो अश्वश्रेष्ठ समुद्र से उत्पन्न हुआ था उस उच्चैः श्रवा नामक अश्व को देवताओं ने स्वयं मेरे चरणों में गिरकर उपहार के रूप में समर्पित कर दिया है।

यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च।

रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने। ६२

अन्वय- देवेषु गन्धर्वेषु उरगेषु च यानि अन्यानि रत्नभूतानि सन्ति हे शोभने तानि मय्येव भूतानि।

शब्दार्थ- उरगेषु-नागेषु, गन्धर्वेषु-देवानां गायकेषु, रत्नभूतानि-उत्कृष्टानि, शोभने-सौन्दर्य-शालिनि, शोभनदेहे, भूतानि-स्थितानि, प्राप्तानि।

व्याख्या- हे सुन्दरि, देवताओं, नागों और गन्धर्वों के पास जो भी श्रेष्ठ रत्नभूत वस्तु रही वह अब सभी मुझे ही प्राप्त हो चुकी है, मेरे ही पास है, मेरे ही अधिकार में है।

स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम्।

सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम्। ६३

अन्वय- देवि लोके वयं त्वां रत्नभूतां मन्यामहे सा त्वं अस्मान् उपागच्छ यतः वयं रत्नभुजः।

शब्दार्थ- स्त्रीरत्नभूताम्-स्त्रीषुरत्नभूताम् उत्कृष्टतां प्राप्तवती, सा-एवंविधा त्वं यहां शुम्भ दैत्य अपने बड़प्पन के प्रदर्शन के लिए सभी जगह बहुवचन का प्रयोग कर रहा है वयं मन्यामहे और अस्मान् इसी अर्थ को सूचित करते हैं। सामान्य नियम के अनुसार-एकत्वं न प्रयुंजीत गुरावात्मनि चेश्वरे भी है। वैसे अंग्रेजी में तो आइ- मैं के साथ बहुवचन की क्रिया का प्रयोग किया ही जाता है। वहां राजपरम्परा के अनुसार भी सम्राट अपने लिए वी-हम-वयं का ही प्रयोग करता है। पर यहां विशेष लक्ष्य करने की बात यहहै कि वह देवी को उसी प्रकार सम्मान नहीं देता वरन् आज्ञा के स्वर में कहता है कि यतः वयं रत्नभुजः त्वं वयं उपागच्छ।

व्याख्या- हे देवि, हम तुमको इस लोक में स्त्रियों में श्रेष्ठ अतः रत्नस्वरूप मानते हैं। हम ही एकमात्र रत्नों का उपभोग करने वाले हैं अतः तुम भी हमारे पास चली आओ।

मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम्।

भज त्वं चंचलापांगि रत्नभूतासि वै यतः। ६४

अन्वय- हे चचंलापांगि त्वं यतः रत्नभूतासि वै मां उरुविक्रमं ममानुजं निशुम्भं वा भज।

शब्दार्थ- चचंलापांगि- चंचलौ अपांगौ नेत्रप्रान्तौ यस्याः सा चंचलापांगी तत्संबुद्धौ चंचलापांगि-यद्गतागतविश्रान्त वैचित्र्येणविवर्तनम्। तारिकायाः कलाभिज्ञास्तत्कटाक्षं प्रचक्षते। कटाक्षोऽपांगदर्शने इति कोशवचनात्, अपांगो नयनस्यान्त इति च अतः हे कटाक्षविक्षेपिणि, यतः-क्योंकि त्वं रत्नभूतासि-स्त्रियों में रत्नभूता हो, वै-प्रसिद्धौ वै स्यात्संबोधने पादपूरणेऽनुनयेऽपि च। यतः यहां वै सम्बोधन के लिए भी प्रयुक्त है, आपके सम्बन्ध में ऐसा प्रसिद्ध है इस अर्थ में भी है और देवी के प्रति अनुनय का भाव भी निहित है। मां भज-संश्रय आश्रय, सदाश्रयेण शोभन्ते पण्डिताः वनिता लताः इति वचनात्। उरुविक्रमम्-उरुविपुलः महान् विक्रमः पराक्रमो यस्य, प्रबल पराक्रमी, ममानुजं-मम लघुभ्रातरं वा अपि-विकल्पे।

व्याख्या- हे सुन्दरकटाक्ष वाली, आपके संबंध में प्रसिद्ध ही है कि आप स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ रत्न हो, इसलिये हम राजा हैं और हमी को रत्नों के भोग करने का अधिकार है, तुम मुझे अपना लो मेरा आश्रय लो अथवा मेरे छोटे भाई निशुम्भ को वरण कर लो जोकि अत्यन्त पराक्रमी है।

परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात्।
एतद्बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां ब्रज। ६५

अन्वय- हे देवि त्वं मत्परिग्रहात् अतुलं परमैश्वर्यं प्राप्स्यसे एतत् बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां ब्रज।

शब्दार्थ- मन्मुखेन शुम्भस्त्वां प्रति कथयति-हे देवि त्वं मत्परिग्रहात्-मदाश्रयणात् मत्स्वीकारात्, मेरे आश्रय से मेरे द्वारा पत्नीरूप में स्वीकार कर लिए जाने पर, अतुलं-अनुपमम्-अतुलनीयम्, परमैश्वर्यमम्-परं श्रेष्ठम् ऐश्वर्य ईश्वरत्वं, परमेषु श्रेष्ठेषु ईश्वरत्वं स्वामित्वं, प्राप्स्यसे-प्राप्स्यसि के स्थान पर आत्मनेपदी का प्रयोग है। एतत्-यह सब, ऊपर जो कुछ कहा गयाहै, उस सब पर बुद्ध्या-बुद्धिपूर्वक, समालोच्य-विचार्य, भलीभांति विचार करके, मत्परिग्रहताम्, मत्पत्नीत्वं ब्रज प्राप्नुहि।

व्याख्या- हे देवि तुम मेरा आश्रय पाकर अनुपम श्रेष्ठ ऐश्वर्य को प्राप्त कर लोगी। अथवा मेरे आश्रय से श्रेष्ठतम कहे जाने वाले देवेन्द्र आदि पर भी स्वामित्व प्राप्त कर सकोगी। यह सब बुद्धिपूर्वक विचार कर तुम्हें मेरा पत्नीत्व स्वीकार कर लेना चाहिए। मेरी पत्नी बन जाने पर तुम्हें श्रेष्ठ ऐश्वर्य की प्राप्ति होगी और जो श्रेष्ठ हैं उनपर तुम्हारा स्वामित्व भी होगा। इसलिए मेरा आश्रय प्राप्त कर मेरी पत्नी बनना स्वीकार करो।

ऋषिरुवाच- इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तः स्मिता जगौ।
दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत्।६६

अन्वय- ऋषिः उवाच- तदा इति उक्ता सा देवी गम्भीरा अन्तःस्मिता जगौ। सादेवी दुर्गा, भगवती, भद्रा यया इदं जगत् धार्यते।

शब्दार्थ- तदा तस्मिन् काले इति एवं प्रकारेण उक्ता कथिता सा देवी यया इदं जगत् धार्यते, दुर्गा, भगवती भद्रा सा गम्भीरा अन्तःस्मिता जगौ। उक्त दुर्गा दुर्गमा दुःखप्राप्या, भगवती-षड्विधैश्वर्यसम्पन्ना-ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसःश्रियः ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा। भद्रा-कल्याणी, श्वःश्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मंगलं शुभम् इत्यमरः। प्रशस्य तमा वा भद्रःशिवे खंजरीटे बृषभे चकदम्बके। त्रिषु श्रेष्ठे च साधौच। गम्भीरा-गूढाभिप्राया, अन्तःस्मिता-सोत्प्रासं अन्तःस्मितहासा, मन ही मन मुसकुराते हुए, जगौ-उक्तवती।

व्याख्या- दूत ने जब इस प्रकार शुम्भ का सन्देश देवी से कहा तो उस सन्देश को सुनकर देवी ने मन ही मन गूढ़ रूप से मुसकुराते हुए उस दूत से इस प्रकार कहा। यह देवी जिस तक कठिनाई से ही पहुंच हो सकती है, जो दुःप्राप्या है जिसे पाने के लिये कठोरतपस्या करना पड़ती है। जो छहों ऐश्वर्य से युक्त है, जो सदा कल्याणकारिणी क्षेमरूपा है और जो इस सम्पूर्ण जगत को धारण करने वाली है उसका दूत के मुख से अपने लिए इस प्रकार के वचन सुनकर गूढ़ाभिप्राय यही है कि अब यह स्वयं ही अपनी ओर से इस प्रकार पहल करके मारा जायेगा।

देव्युवाच- सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किंचित्त्वयोदितम्।

त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः। ६७

अन्वय- देवी उवाच हे दूत, त्वया अत्र सत्यम् उक्तम्, त्वया मिथ्या किंचित् न उदितं। शुम्भः त्रैलोक्याधिपतिः निशुम्भः अपि च तादृशः।

शब्दार्थ-अत्र-अस्मिन् विषये, उक्तम्-कथितम्, उदितम्-कथितम्, अपि-भी तादृशः-तत्सदृशः

व्याख्या- देवी ने इस प्रकार दूत सुग्रीव का कथन सुनकर उससे कहा कि तुमने जो कुछ कहा है, वह बहुत ठीक कहा है, इसमें झूठ तो कुछ भी नहीं है। वास्तव में शुम्भ तो तीनों लोकों का राजा स्वामी है ही निशुम्भ भी तो वैसा ही है। इस कथन में ब्याजस्तुति अलंकार है क्योंकि देवी का यह कथन उपहास और व्यंग्यपूर्वक ही है।

किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम्।

श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञा या कृता पुरा। ६८

अन्वय- किन्तु अत्र यत्प्रतिज्ञातं तत्कथं मिथ्या क्रियते। मया पुरा अल्पबुद्धित्वात् या प्रतिज्ञा कृता सा श्रूयताम्।

शब्दार्थ- किम्-किं वितर्के परिप्रश्ने क्षेपे निन्दाप्रकारयोः। किमव्ययं वितर्के तु

तुस्याद्धेदेऽवधारणे। किम् यहां प्रश्नार्थक है और वितर्कपरक भी, तु अवधारण के अर्थ में है। यत्प्रतिज्ञातम्- या प्रतिज्ञा कृता सा श्रूयताम्।

व्याख्या- तुमने शुम्भ अथवा उसके भाई निशुम्भ को पतिरूप में स्वीकार करने केलिये जो कहा वह तो बहुत ठीक है, सत्य है किन्तु उसे मानने में मेरी कठिनाई यह है कि मैं बहुत पहिले एक प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ जो मेरी नासमझी भी कही जा सकती है। किन्तु अब उस प्रतिज्ञा को मिथ्या कैसे कर दूं। मैंने नासमझी में जो प्रतिज्ञा कर डाली उसे आप भी सुन लीजिए।

यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति। ६९

अन्वय-यः मां संग्रामे जयति, यः मे दर्प व्यपोहति, यः लोके मे प्रतिबलः सः मे भर्ता भविष्यति। वा यः मां जयति, यः संग्रामे मे दर्पं व्यपोहति, यः में प्रतिबलः सः लोके मे भर्ता भविष्यति।

शब्दार्थ- संग्रामे-युद्धे, दर्प-गर्व अभिमानम्, दम्भो दर्पोऽभिमानश्च इति कोशात् प्रतिबलः-तुल्यसामर्थ्यः, व्यपोहति-शमयति, दूरीकरोति।

व्याख्या- मैंने जो प्रतिज्ञा की वह इस प्रकार है- जो मुझे पराजित कर दे, अथवा जो मुझे युद्ध में पराजित कर दे, जो मेरे गर्व को चूर कर दे, जो मेरे समान बलशाली हो, वही इस लोक में मेरा पति होगा। मैं उसी को पतिरूप में वरण करूंगी जो मुझे किसी भी प्रकार जीत ले, जो युद्ध में मेरे अभिमान को चूर चूर कर दे, जो संसार में मुझ समान बली हो, वही मेरा पति हो सकता है। यहां तीन शर्तें हैं- जो जीत ले, जो दर्प का शमन कर सके और जो तुल्यबल वाला हो।

तदागच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः।
मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु। ७०

अन्वय- तत् अत्र महासुरः शुम्भः आगच्छतु निशुम्भः वा आगच्छतु मां जित्वा लघु मे पाणिं गृह्णातु अत्र चिरेण किम्।

शब्दार्थ- तत्-तस्मात् प्रतिज्ञाकारणात्, अत्र-अस्मिन् विषये, मां पराजेतुम्, मां-देवीं जित्वा-विजित्य, लघु-लघु शीघ्रमरं द्रुतम् इति कोशात् शीघ्रम्, पाणिं गृह्णातु-पाणिग्रहणं करोतु अत्र चिरेण किम्-इस विषय में अब और विलम्ब करने से क्या लाभ।

व्याख्या- मैंने जब प्रतिज्ञा कर ही डाली है तो अब उसके पालन हेतु महान् दैत्य शुम्भ अथवा निशुम्भ में से कोई एक चला आये और मुझ पर विजय प्राप्त कर बिना विलम्ब किए मेरे साथ विवाह कर ले। इस विषय में अब विलम्ब करने से लाभ भी क्या।

दूत उवाच- अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः।
त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः। ७१

अन्वय-दूत उवाच- हे देवि त्वं अवलिप्ता असि, एवं ममाग्रतः माब्रूहि। त्रैलोक्ये कः पुमान् अस्ति यः शुम्भनिशुम्भयोः अग्रेतिष्ठेत्।

शब्दार्थ- हे देवि त्वं अवलिप्तासि, गर्वेण विवेकहीना असि, अवलेपो अभिमानः तेन युक्ता अवलिप्ता, ममाग्रतः-मम सम्मुखे, ममाग्रे एवं मा ब्रूहि-इत्थं सगर्वकथनं न करणीयम्, कः पुमान् अस्ति-न कोऽपि,

व्याख्या- हे देवि तुम्हें अपने बल का गलत अभिमान हो गया है जो मेरे सामने ऐसा कह रही हो। तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए। तीनों लोकों में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो युद्ध में शुम्भ निशुम्भ के आगे ठहर सके।

अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि।
तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका। ७२

अन्वय- हे देवि, अन्येषाम् दैत्यानां सम्मुखे अपि सर्वे देवाः युधि न तिष्ठन्ति वै पुनः त्वं एकिका स्त्री किम्।

शब्दार्थ- अन्येषाम्-शुम्भनिशुम्भव्यतिरिक्तानाम्-शुम्भ निशुम्भ को छोड़कर अन्य दैत्यों के संमुख-सामने, युधि-संग्रामे, न तिष्ठन्ति-ठहर नहीं पाते, सामना नहीं कर पाते, पुनः- तो फिर, एकिका- एकाकी त्वेक एककः असहाया, अकेली, और उस पर भी स्त्री।

व्याख्या- शुम्भ निशुम्भ की तो बात ही जाने दीजिए। उनके अतिरिक्त जो अन्य दैत्य हैं, उनके सामने भी युद्ध में सब देवता मिलकर भी नहीं ठहर पाते फिर तुम तो अकेली ही हो और वह भी असहाय स्त्री। तुम तो किसी गिनती में ही नहीं, जहां सब देवता मिलकर युद्ध लड़ने का साहस नहीं जुटा पाते वहां तुम अकेली स्त्री क्या कर सकोगी।

इन्द्राद्याःसकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे।
शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि संमुखम्। ७३

अन्वय- येषाम् शुम्भादीनां संयुगे इन्द्राद्याः सकलाः देवाः न तस्थुः तेषां संमुखं त्वं स्त्री कथं प्रयास्यसि।

शब्दार्थ- संयुगे-रणे, संग्रामे, तस्थुः-स्थितवन्तः, प्रयास्यसि- गमिष्यसि।

व्याख्या- हे देवि, जिन शुम्भ आदि के सामने इन्द्र आदि सभी देवता मिलकर भी युद्ध में नहीं ठहर सके, उनके सामने तुम अकेली एकाकी असहाय और सो भी स्त्री अबला किस प्रकार सामना कर सकोगी। अर्थात् विवाह के लिये तुमने जो प्रतिज्ञा की है उसके पूरा करने का हठ करना शुम्भ जैसे वीर के सामने उचित नहीं है। इससे अच्छा यही है कि शुम्भ ने स्वयं ही बुलाया है तो चुपचाप बिना ननु नच किए उसके पास चलकर उसे स्वीकार कर लो।

सात्वं गच्छ मयैवोक्ता-पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः।
केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि। ७४

अन्वय- सा त्वं मया उक्ता एव शुम्भनिशुम्भयोः पार्श्वं गच्छ, केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि।

शब्दार्थ- मया-मेरे द्वारा, उक्ता-कहे जाने पर ही, पार्श्व-पास समीप, केशाकर्षणनिर्धूत गौरवा-केशानां आकर्षणेन निर्धूतं- खण्डितं तिरस्कृतं, कम्पितं अपास्तं अपनीतं वा गौरवं यस्याः सा केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा, मा-निषेधार्थक अव्यय, नहीं के अर्थ में।

व्याख्या- इसलिये भलाई इसी में है कि तुम मेरे कहने से ही शुम्भ निशुम्भ के पास स्वतः चली चलो। प्रतिज्ञापालन के लिए हठ न करो। क्योंकि यदि तुम मेरे कहने से शुम्भ के द्वारा आदर के साथ बुलाये जाने के स्थान पर अपमानित होकर जाओगी ही। अकेली स्त्री के साथ दैत्यों का कैसा युद्ध। तुम्हें तो शुम्भ का भेजा हुआ कोई भी बाल पकड़कर घसीटता हुआ उसके पास ले जायेगा, जिससे तुम्हारा सारा बड़प्पन धूल में मिल जायेगा, दूसरों के सामने अपमानित होकर जाने की अपेक्षा अच्छा यही है कि मेरे कहने पर ही मेरे साथ आदर के साथ शुम्भ और निशुम्भ की आज्ञा का पालन करते हुए वहां पहुंचो।

देव्युवाच- एवमेतद्बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्यवान्।
किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा। ७५

अन्वय- हे दूत यत्त्वयोक्तं एतत् एवम्, शुम्भो बली, निशुम्भः च अतिवीर्यवान्, अहं तु किं करोमि, यत् मे प्रतिज्ञा, पुरा मया अनालोचिता।

शब्दार्थ- एतत्- त्वया यदुक्तं शुम्भो बली, निशुम्भः च अतिवीर्यवान्-यह सब बात, एवम्-ऐसी ही है, एवमेतत्-इदम् इत्थम् एव, यह ऐसा ही है, किम् करोमि-परन्तु मैं क्या करूं। यत् - क्योंकि-यत्तद्यतस्ततः हेतौ इति कोशात्, मे प्रतिज्ञा-मेरी यह प्रतिज्ञा है, पुरा-पूर्वकाले अनालोचिता-अविचारिता बिना विचारे ही पूर्व में प्रतिज्ञा कर डाली। कहा भी है-

संभावितं प्रतिज्ञाय निर्वोढव्यं मनीषिभिः।
प्रतिज्ञयाप्यसंभाव्यं निर्वोढव्यं कथं नु तैः
निर्वोढव्यं प्रतिज्ञातं तर्कितं वाप्यतर्कितम्।
प्रतिज्ञातपरित्यक्तेः प्राणत्यक्तिः वरं नृणाम्।

इसका अर्थ यही है कि ऐसी प्रतिज्ञा की जाये जिसका पूरा करना संभव हो और उस प्रतिज्ञा का निर्वाह किया ही जाना चाहिए। यहां प्रश्न यह होता है कि यदि कोई प्रतिज्ञा असम्भाव्य हो तो उसका निर्वाह कैसे किया जाय। उसके लिये कहते हैं कि प्रतिज्ञा विचार कर की हो अथवा बिना पूरी तरह सोच विचार के ही कर डाली हो उसका भी

निर्वाह किया ही जाना चाहिए। प्रतिज्ञा करके उसका त्याग करने की अपेक्षा तो प्राणत्याग करना ही उत्तम है। एवं इवेत्थमर्थयोरेवम्।

व्याख्या- यहां देवी दूत के कथन की हंसी उड़ाती हुई उत्तर देती हैं कि हे दूत तुमने जो कुछ कहा वह सब ठीक ही है। शुम्भ और निशुम्भ दोनों ही बली और अतिवीर्यवान् हैं। किन्तु मैंने पहिले बिना विचारे ही सही- जो प्रतिज्ञा कर डाली उसका क्या हो। यद्यपि मेरी प्रतिज्ञा बिना विचारे ही की गई कि जो मुझे संग्राम में जीतेगा और जो मेरा दर्पदलन कर सकेगा, उसी के साथ विवाह करूंगी उसका भी निर्वाह करना जरूरी है।

विशेष- यहां देवी का अभिप्राय भी ध्वनित हो रहा है कि शुम्भ और निशुम्भ तो मेरे उपहार-बलि ही हैं। बलि का द्विवचन प्रयोग दो के लिये है। कोश के अनुसार- करोपहारयोः पुंसि बलिः। तथा-बलिर्दैत्यप्रभेदे च करचामरदण्डयोः। उपहारे पुमान्, तथा-बलिर्दैत्योपहारयोः। आगे भी इसका समर्थन होता है- मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डौ महापशू। युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भंच हनिष्यति।

स त्वं गच्छमयैवोक्तं यदेतत्सर्वमादृतः।
तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय सच युक्तं करोतु तत्। ७६

अन्वय- हे दूत स त्वं गच्छ, मया यत् एतत् उक्तं तत् एव सर्वं आदृतः असुरेन्द्राय आचक्ष्व, सा च यत् युक्तं तत्करोतु।

शब्दार्थ- गच्छ-स्वस्थानं याहि, मया-मेरे द्वारा, यत्-एतत्-यह जो कुछ भी उक्तम्-कथितम्, तत्सर्वं-वह सब, आदृतः-सयत्नः, आकलितवान् सन्, असुरेन्द्राय-शुम्भाय आचक्ष्व-कथय स च-और वह, यत् युक्तम्-जो उचित समझे, तत्-वह करोतु-करे।

व्याख्या- इसलिये हे दूत, अब तुम जाओ और मैने जैसा भी यह सबकुछ तुमसे कहा है, उसे अविकल रूप में ज्यों का त्यों असुरराज शुम्भ से जाकर कह देना, वह जैसा उचित समझे वैसा करे।

विशेष- आदृतः के स्थान पर आदितः पाठ भी है। तब अर्थ होगा कि आदि से अन्त तक मैंने जो कुछ कहा है।

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे देवीदूतसंवादे पंचमोऽध्यायः।

इस प्रकार मार्कण्डेयपुराण के अन्तर्गत देवी और दूत के संवाद विषयक पंचम अध्याय पूरा हुआ।

षष्ठ अध्याय

ऋषिरुवाच

इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः।
समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात्। १

अन्वय- ऋषिः उवाच-इति देव्याः वचः आकर्ण्य अमर्षपूरितः सः दूतः समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात् समाचष्ट।

शब्दार्थ- देव्याः देवी के इति-इस प्रकार के, वचःवचनों को, आकर्ण्य-श्रुत्वा सुनकर अमर्षःक्रोधःतेनपूरितः पूर्णः क्रोध से भरकर, समागम्य-देवी सकाशात् दैत्यराजं शुम्भं प्रति आगम्य, विस्तरात्-विस्तारो विग्रहो व्यासः स च शब्दस्य विस्तरः। पूरे विवरण के साथ, समाचष्ट-कथितवान्।

व्याख्या- देवी के इस प्रकार के वचन सुनकर शुम्भ के दूत सुग्रीव ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर दैत्यराज शुम्भ के समीप पहुँच कर विस्तारपूर्वक पूरे विवरण के साथ देवी के साथ हुये अपने वार्तालाप को कह सुनाया।

तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् ततः।
सक्रोधःप्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम्। २

अन्वय- असुरराट् तस्य दूतस्य तद् वाक्यं आकर्ण्य ततःसक्रोधः सन् दैत्यानां अधिपं धूम्रलोचनं प्राह।

शब्दार्थ- असुरराट्-असुराणां राजा, तत् वाक्यम्-उन वचनों को, आकर्ण्य-श्रुत्वा-सुनकर, ततः तब, उसके पश्चात् सक्रोधःसन्-अत्यन्त क्रुद्ध होकर, क्रोधेन सहितः सक्रोधः दैत्यानां अधिपं-सेनानायकम् प्राह-प्रोक्तवान्।

व्याख्या- दैत्यों के राजा शुम्भ ने अपने दूत सुग्रीव के मुख से यह सुना कि देवी ने तो यह कहा है कि जो मुझे युद्ध में जीत सकेगा उसी के साथ विवाह करूँगी तो उसने अत्यन्त क्रोध में भरकर दैत्यों के सेनानायक धूम्रलोचन से इस प्रकार कहा-

हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः।
तामानय बलाद्दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम्। ३

अन्वय- हे धूम्रलोचन त्वं स्वसैन्यपरिवारितः सनदुष्टां तां केशाकर्षणविह्वलाम् आशु बलात् आनय।

शब्दार्थ- स्वसैन्यपरिवारितः स्वसैनिकैः परिवारितः- परिवेष्टितः व्याप्तः दुष्टाम्-दुर्वचनाम्, केशाकर्षण विह्वलाम्-केशानां आकर्षणेन विह्वलाम् आकुलाम् आशु-शीघ्रम्,

आनय-प्रापय।

व्याख्या- शुम्भ ने धूम्रलोचन से कहा कि तुम अपनी सेना सहित शीघ्र ही उस दुर्वचन कहने वाली देवी के पास जाओ और उसे बलपूर्वक बाल पकड़ कर घसीटते हुये व्याकुल होती हुई को हमारे पास लाओ।

तत्परित्राणदः कश्चिद्यदिवोत्तिष्ठते परः।
स हन्तव्योमरोऽवापि यक्षो गन्धर्व एव वा।४

अन्वय- यदि तत्परित्राणदः कश्चित् परः उत्तिष्ठते सः अमरःवा यक्षः वा गन्धर्वः स हन्तव्य एव

शब्दार्थ- तत्परित्राणदः- तस्याःदेव्याः परित्राणं ददातीति तत्परित्राणदः परित्राणम्-रक्षणम् तस्याः परित्राणं दातुं क्षमः समर्थः यः कश्चित् उत्तिष्ठते-उद्युंक्ते,

व्याख्या- हे धूम्रलोचन, तुम जब इस प्रकार बाल पकड़ कर बलपूर्वक उसे घसीटते हुये लाने का प्रयत्न करो, उस समय यदि उसका कोई सहायक रक्षा करने वाला बीच में आकर उसे बचाना चाहे तो उसे मार डालना भले ही वह मनुष्य हो यक्ष हो, देवता हो अथवा गन्धर्व हो।

ऋषिरुवाच- तेनाज्ञप्तःततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः।
वृतःषष्ठ्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ।५

अन्वय- ऋषि उवाच- तेन आज्ञप्तः स धूम्रलोचनः दैत्यः ततः षष्ठ्या सहस्राणां असुराणां वृतः द्रुतं ययौ।

शब्दार्थ- तेन-शुम्भेन, आज्ञप्तः-आदिष्टः, षष्ठ्या सहस्राणाम्-षष्ठ्या गुणितानां सहस्राणाम् वृतः परिवारितः द्रुतम्-शीघ्रम् लघुक्षिप्रमरंद्रुतम् इति कोशात्। अथवा असुराणां सहस्राणां षष्ठ्या वृतम् ऐसा भी अन्वय हो सकता है। सहस्राणां षष्ठ्या का भी वही अर्थ जो षष्ठ्या गुणितानां सहस्राणाम् का है साठहजार, सहस्राणाम् असुराणां षष्ठ्या ऐसा भी अन्वय हो सकता है। ययौ-जगाम।

व्याख्या- ऋषि सुमेधा ने राजा सुरथ से कहा कि इस प्रकार जब शुम्भ ने धूम्रलोचन को आज्ञा दी तो वह शीघ्र ही अपने साथ साठ हजार सेना लेकर तुरन्त चल दिया।

स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम्।
जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः।६

अन्वय- ततः सः तुहिनाचलसंस्थितां तां देवीं दृष्ट्वा उच्चैः जगाद- शुम्भनिशुम्भयोः मूलं प्रयाहि इति।

शब्दार्थ- ततः इसके पश्चात् सः धूम्रलोचनः तुहिनाचलसंस्थिताम्- तुहिनाचलो हिमालयः तत्र संस्थिताम् आस्थिताम्-हिमालय पर स्थित, उच्चैः जगाद-ऊँचे स्वर से कहा, कड़क कर बोला, इससे उसके कथन में नम्रता का अभाव सूचित होता है। मूलम्-समीपम्, प्रयाहि-गच्छ।

व्याख्या- तब धूम्रलोचन ने जाकर देखा कि देवी हिमालय पर आराम से बैठी हुई है तो उसने वहीं से कड़कती हुई आवाज में कहा कि शुम्भनिशुम्भ के पास चल।

न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद् भर्तारमुपेष्यति।
ततो बलान्नयाम्यद्य केशाकर्षणविह्वलाम्।

अन्वय- अद्य भवती प्रीत्या मद्भर्तारं न उपेष्यति चेत‌ततः अद्य बलात् केशाकर्षण विह्वलां नयामि।

शब्दार्थ- भवती-आप, प्रीत्या-स्नेहेन स्वरुचया वा प्रेमपूर्वक अथवा अपने आप स्वेच्छा से मद्भर्तारम्-मम धूम्रलोचनस्य स्वामिनम्, शुम्भं, उपेष्यति-समीपं गच्छति, भवती के साथ प्रथमपुरुष की क्रिया का प्रयोग। चेत्-यदि ततः तो दूसरा विकल्प बलात्-बलपूर्वक, अद्य-अभी अभी, केशाकर्षणविह्वलाम्-केशानाम् आकर्षणात् विह्वलाम् विवशाम्, विकलां व्याकुलां, नयामि-मद्भर्तारं प्रापयामि।

व्याख्या- यदि आप स्वेच्छा से ही प्रेमपूर्वक मेरे कहने से ही मेरे स्वामी दैत्यराज शुम्भ के पास चलने के लिये तैयार नहीं हैं तो फिर मैं आपको बलपूर्वक जबर्दस्ती करते हुये बाल पकड़कर घसीटते हुये ले जाऊँगा जिससे आप विकल होंगी व्याकुल होंगी परेशान होंगी क्योंकि मुझे तो स्वामी की आज्ञा का प्रत्येक दशा में पालन करके आपको उनके पास उपस्थित करना ही है।

देव्युवाच- दैत्येश्वरेणप्रहितो बलवान्बलसंवृतः।
बलान्नयसि मामेवं ततःकिं ते करोम्यहम्।८

अन्वय- देवी उवाच- हे धूम्रलोचन त्वं बलवान् बलसंवृतः दैत्येश्वरेण प्रहितः बलात् एवं मां नयसि ततः अहं ते किं करोमि।

शब्दार्थ- देवी का कथन यहाँ व्यंगोक्तिपूर्ण है। हे धूम्रलोचन, त्वं बलवान्-तुम तो बलवान हो ही, बलसंवृतः सेना भी तुम्हारे साथ है, दैत्येश्वरेण प्रहतिः फिर दैत्यराज की आज्ञा है उसने तुम्हें भेजा है, इसलिये शासन का बल भी तुम्हारे पक्ष में है, ऐसी स्थिति में बलान्नयसि-बलपूर्वक मुझे ले जाना चाहते हो, ततः तो इस स्थिति में अहं ते किं करोमि- मैं तुम्हारा कर ही क्या सकती हूँ।

व्याख्या- देवी ने तब धूम्रलोचन से कहा कि आप चाहें जो करें क्योंकि आप बलवान हैं मैं अवला हूँ, आपके पास साठहजार सेना है मैं अकेली हूँ, आपको दैत्यराज

शुम्भ ने भेजा है इसलिये राजाज्ञा भी आपके पक्ष में है, इस दशा में यदि आप मुझे इस प्रकार-केशाकर्षणविह्वलाम् बल पूर्वक ले जाना चाहते हैं तो मैं कर ही क्या करती हूँ। मैं तुम्हें किस प्रकार रोक सकती हूँ तुम्हारा क्या बिगाड़ सकती हूँ।

ऋषिरुवाच- इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः।
हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः। ९

अन्वय- ऋषिः उवाच-इति उक्तः सः असुरः तां अभ्यधावत् ततः सा अम्बिका तं हुंकारेण एव भस्म चकार। कहीं भस्मसाच्चकार ऐसा पाठ है तब अर्थ होगा तं अम्बिका भस्मसाच्चकार।

शब्दार्थ- इति-इत्थं उक्तः कथितः सन् स असुरः दैत्यः धूम्रलोचनः ताम्-देवीं प्रति, अभ्यधावत्-वेगेन अभ्यद्रवत् ततः-तब सा अम्बिका-अम्बिका ने तम्-उस धूम्रलोचन को भस्म चकार-भस्म कर डाला, भस्मसात् चकार-ऐसा पाठ मानें तो भस्मीचकार अर्थ होगा। हुंकारेण-हुं मन्त्र के प्रयोग से। हुं वितर्के परिप्रश्ने भित्सायां भर्त्सने भये। क्रोधे दुःखे विकारे पि मन्त्रभेदेऽपि चाव्ययम्। कालिदास ने कुमारसम्भव में कहा है-

क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावदिगरः खे मरुतां चरन्ति।
तावत्स वन्हिर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार।

व्याख्या- जब देवी ने उस धूम्रलोचन दैत्य से इस प्रकार कहा तो वह क्रोध में भरकर बड़े वेग से अम्बिका की ओर दौड़ कर आया। तब देवी ने उस दैत्य धूम्रलोचन को हुंकार मात्र से राख के ढेर में परिवर्तित कर दिया। देवी के क्रोध पूर्वक हुंकार लगाने मात्र से वह क्रोध की ज्वाला से जलकर भस्म हो गया।

अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका।
ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्ति परश्वधैः। १०

अन्वय- अथ तथा क्रुद्धं असुराणां महासैन्यं अम्बिका च तीक्ष्णैः सायकैः तथा शक्तिपर श्वधैः ववर्ष।

शब्दार्थ- अथ-इसके पश्चात् तथा क्रुद्ध-इस प्रकार क्रोधित हुई, असुराणां-दैत्यानां महासैन्यं-प्रबलानीकम् तीक्ष्णैः निशितैः सायकैः बाणैः शक्तिपरश्वधैः शक्तिसहितैः परश्वधैः परशुभिः ववर्ष-छादयामास।

अम्बिका- यहाँ अम्बिका कर्ता के रूप में प्रयुक्त है और महासैन्यं भी कर्ता के रूप में है। अथवा महासैन्यं कर्म के रूप में है। जहाँ अम्बिकाम् पाठ मानें वहाँ महासैन्यं कर्ता के रूप में और अम्बिकाम् कर्म है। इस प्रकार तीन प्रकार से अर्थ होगा।

व्याख्या- अम्बिका और महासैन्यं दोनों को कर्ता मानकर-

१. इस प्रकार अनायास और अचानक ही धूम्रलोचन के मारे जाने पर उस दैत्य सेना और अम्बिका ने एक दूसरे पर तीखे बाणों, शक्ति और फरसों की वर्षा सी कर दी। झड़ी लगा दी।

२. अम्बिका को कर्ता और महासैन्यं को कर्म मानकर-

इस प्रकार धूम्रलोचन को भस्म करके अम्बिका ने अपनी तीखे बाणों, शक्ति और फरसों की झड़ी सी लगाकर असुरों की उस विशाल सेना को मानो ढक सा लिया।

३. महासैन्यं को कर्ता और अम्बिकाम् को कर्म मानकर-

इस प्रकार धूम्रलोचन के वध से क्रुद्ध हुई दैत्यों की उस विशाल सेना ने तीखे वाणों, शक्ति और फरसों की वर्षा सी करते हुये अम्बिका को आच्छादित कर दिया।

ततो धुतसटः कोपात्कृत्वा नादं तु भैरवम्।
पपातासुरसेनायां सिंहो देव्या स्ववाहनः।। ११

अन्वय- ततः कोपात् धुतसटः स सिंहः देव्या स्व वाहनः भैरवं नादं कृत्वा असुरसेनायां पपात।

शब्दार्थ- धुतसटः- सटाजटा केसरयोः इति कोशात् धूञ् कम्पने इति धातोः क्तप्रत्ययान्त धुतः कम्पितः सटा येन सः धुतसटः कम्पितकेसरः सुभैरवम् अतिभयंकरम् नादम्-गर्जनम् सः प्रसिद्धः स्ववाहनः इति पाठे स्वस्या वाहनः वाहयतीति वाहनः अन्यथा वाहनम् स्यात् सवाहनम् इति पाठे अनन्यसाधारणं वाहनं देव्या एव सिंहो वाहनं नान्यस्य पपात-प्राविशत् उत्प्लुत्य निपपात।

व्याख्या- तब देवी के वाहन सिंह ने अत्यन्त क्रोध से गर्जन करते हुये अपने अयालों को फटकारते हुये दैत्यों की सेना पर उछल कर आक्रमण कर दिया। धूम्रलोचन के भस्मीभूत हो जाने पर बिना सेनापति की सेना के साथ देवी के युद्ध करने की कोई आवश्यकता न रह जाने के कारण सिंह ने ही भयंकर गर्जना करते हुये दैत्यसेना पर झपट्टा मार कर आक्रमण कर दिया, वह सिंह दैत्यों की सेना पर पिल पड़ा।

कांश्चित्करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान्।
आक्रान्त्या चाधरेणान्यान् स जघान महासुरान्। १२
पाठभेद-आक्रम्य चरणेनान्यान् निजघान महासुरान्।
आक्रान्त्या चाधरेणान्याञ् जघान स महासुरान्।
आक्रम्य चाधरेणान्यान् संजघान महासुरान्।
आक्रम्य चरणेनान्यान् जघान सुमहासुरान्।

अन्वय- स करप्रहारेण कांश्चिद् दैत्यान् जघान्, आस्येन अपरान् दैत्यान् जघान, चरणेन आक्रम्य च अन्यान् महासुरान् जघान। आक्रन्त्या अधरेण च अन्यान् महासुरान् जघान। सुमहासुरानित्यापपाठः। सु उपसर्गस्य वैयथर्यत्वात्। आक्रन्त्या अधरेण च अन्यान् महासुरान् संजघान।

शब्दार्थ- सः सिंहः आक्रम्य-अतिक्रम्य आक्रन्त्या-आक्रान्तिराक्रमणम् तेन करप्रहारेण-अग्रवर्तिकरद् वयप्रहारेण आघातेन, पंजों के प्रहार से, आस्येन-मुखेन, अधरेण, अधरकायेन, यद्वा अधस्तादुपचारतः शरीरस्थ अधस्तात् अधोभागेन उरोदेशेन आक्रम्य, यद्वा अधरेण ओष्ठेन स्फुरितेन प्रकटीकृतकोपेन, यद्वा अधरेण-अविद्यमाना धरा भूर्यत्र सः अधरः आकाशदेशः तेन अन्तरिक्षेण आक्रम्य जघान, निजघान, संजघान-हतवान् जिहिंस।

व्याख्या- देवी के वाहन सिंह ने किन्हीं किन्हीं असुरों को पंजों के प्रहार से मार डाला किन्हीं को मुख से चबा डाला, किन्हीं पर आक्रमण करके उन्हें अपने वक्ष से दबा कर मार डाला, किन्हीं को अपने फड़कते हुये ओठों से जोर से झपट्टा मारकर शरीर के अधोभाग से कुचल डाला, अथवा आकाश में उछल कर अन्तरिक्ष से ही झपट कर उन्हें मार डाला।

केषांचित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी

तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान् पृथक्। १३

अन्वय- केसरी केशांचित्कोष्ठानि नखैः पाटयामास तथा तलप्रहारेण शिरांसि पृथक् कृतवान्। जहाँ कोष्ठान् स केसरी ऐसा पाठ है वहाँ अन्वय होगा स केसरी कोष्ठान् नखैः पाटयामास

शब्दार्थ- केसरी सिंहः, नखैः नखप्रहारेण, कोष्ठानि-हृदयानि वा उदरमध्यानि कोष्ठान् स केसरी इति पाठे कोष्ठान् जठराभ्यन्तरदेशान्-विदारयामास।

व्याख्या- देवी के वाहन सिंह ने अपने पंजों के नखों से किन्हीं दैत्यों की आंतें फाड़ डाली। तथा किन्हीं दैत्यों के सिरों को पंजों के प्रहार से धड़ से पृथक् कर डाला।

विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे।

पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः। १४

अन्वय- तथा तेन अपरे विच्छन्नबाहुशिरसः कृताःअथ च धुतकेसरःअन्येषां कोष्ठात् रुधिरं पपौ।

शब्दार्थ- अपरे-महासुराः शत्रवः, विच्छिन्नबाहुशिरसः-बाहवश्च शिरांसि च बाहुशिरः विच्छिन्नं शिरो येषान्ते विच्छिन्नशिरः ते च विच्छिन्नबाहुशिरसः अन्येषाम्- असुराणाम् कोष्ठात् अन्तर्जठरात्

व्याख्या- उस सिंह ने अन्य दैत्यों की भुजा और शिर अलग कर दिये। छिन्न भिन्न कर डाले। तथा अनेक दैत्यों की आंतें फाड़कर रक्तपान किया।

क्षणेन तद् बलं सर्व क्षयं नीतं महात्मना।
तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना। १५

अन्वय- महात्मना तेन अतिकोपिना देव्या वाहनेन तत् सर्वं बलं क्षणेन क्षयं नीतम्।

शब्दार्थ- महात्मना-महोत्साहेन, केसरिणा-सिंहेन, क्षयं- नाशं-निलयापचयौ क्षयौ। अतिकोपिना- अतितरां कोपयुक्तेन, नीतम्-प्रापितम्, क्षणेन-निर्व्यापारास्थिति-कालविशेषोत्सवयोः क्षणः यहाँ सामान्य अर्थ तो क्षण भर के ही समय से है, परन्तु वास्तविक अर्थ निर्व्यापारस्थिति से है। बलम् सैन्यं वा धूम्रलोचनस्य बलं।

व्याख्या- अत्यन्त उत्साह के साथ सिंह ने धूम्रलोचन की सेना पर आक्रमण करके उसकी समस्त सेना का क्षणभर में ही विनाश कर डाला।

विशेष- साधना की विशेष अवस्था में जब साधक काल की कलना से परे उस निर्व्यापार की स्थिति में पहुँच जाता है तभी संकल्पविकल्पात्मक मन की भावनाओं की असंख्य सेना का क्षय होता है। क्षणेन से यहाँ उसी निर्व्यापारस्थिति का संकेत किया गया है।

श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम्।
बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेसरिणा ततः। १६
चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भःप्रस्फुरिताधरः।
आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ। १७

अन्वय- देव्या तं असुरं धूम्रलोचनं निहतं श्रुत्वा ततः देवीकेसरिणाकृत्स्नं बलं क्षयितं श्रुत्वा दैत्याधिपितिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः सन चुकोप तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ आज्ञापयामास च।

शब्दार्थ- देव्या-देवी अम्बिका के द्वारा, निहतं-भस्मितं श्रुत्वा-सुनकर, क्षयितम् क्षयं नीतं प्रापितं, कृत्स्नं-समस्तम् बलं-सैन्यं, प्रस्फुरिताधरः- क्रोधावेगेन कम्पितोष्ठः सन् चुकोप- अतिक्रोधं चकार। तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ- कर्म उन दोनों चण्ड और मुण्ड को आज्ञापयामास- आज्ञां दत्तवान्।

व्याख्या- दैत्यराज शुम्भ ने जब सुना की देवी ने असुर सेनापति धूम्रलोचन को भस्म कर दिया है और देवी के वाहन सिंह ने सारी सेना को नष्ट कर डाला है तो क्रोध से उसके ओठ फड़कने लगे। तब उसने उन दोनों चण्ड मुण्ड असुरों को इस प्रकार आज्ञा दी।

हे चण्ड हे मुण्ड बलैः बहुभिः परिवारितौ।
तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु। १८

अन्वय- हे चण्ड हे मुण्ड बहुभिः बलैः परिवारितौ तत्र गच्छत गत्वा च लघु सा समानीयताम्।

शब्दार्थ- बलैः सैन्यैः परिवारितौ- वेष्टितौ, लघु-आशु, गच्छत-द्विवचन गच्छतम् के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग छन्द के कारण अथवा आर्ष प्रयोग अथवा उन दोनों को सम्मानसूचक रूप में बहुवचन का प्रयोग किया गया है। समानीयताम्-लाई जाये, अन्यथा तां समानीयताम् होता।

व्याख्या- हे चण्ड हे मुण्ड तुम दोनों बहुत सी सेना लेकर वहाँ जाओ जहाँ वह देवी अम्बिका है। वहाँ जाकर उसे शीघ्रता से लाना है।

केशेष्वाकृष्य बध्वा वा यदि वः संशयो युधि।
तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम्। १९
तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते।
शीघ्रमागम्यतां बध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम्। २०

अन्वय- ताम् केशेषु आकृष्य बध्वा वा शीघ्रं आगम्यताम्। यदि वः युधि संशयः तदा सर्वैः असुरैः अशेषायुधैः विनिहन्यताम्। दुष्टायां तस्यां हतायां सिंहे विनिपातिते च अम्बिकां बध्वा गृहीत्वा शीघ्रं आगम्यताम्।

शब्दार्थ- केशेषु आकृष्य-मूर्धजेषु आच्छित्वा, बध्वा-रज्जुभिः बध्वा वा, सा समानीयताम्। यदि वः युधि संशयः तदा सर्वैः, असुरैः, दैत्यैः मिलित्वा अशेषायुधैः अशेषैः आयुधैःनिःशेषशस्त्रसमूहैः विनिहन्यताम्- मार्यताम् इत्येकपक्षः। विनिहन्यताम्-विशेषेण निहन्तव्या वा अधीनो निघ्न आयत्तः इति कोशात् निजाधीना कर्तव्या। केशेषु आकृष्य बध्वा वा- केशाकर्षणे बन्धने च यदि वः संशयः तर्हि युधि-संग्रामे, तस्यां हतायाम्-हन् हिंसा गत्योः भूमौ गतायाम्, हतायां वा ताडितायाम् सिंहे च विनिपातिते-तदीये सिंहे व्यसूकृते-हन्यमाने, शीघ्रं आगम्यताम् अन्यथा पक्षे यदि संशयः न तर्हि तां गृहीत्वा बध्वाच आगम्यताम्।

व्याख्या- पूर्व में कह आये हैं कि तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु-अब कहते हैं कि उसे किस प्रकार लाना है कि बालों से पकड़ कर घसीटते हुये लाओ अथवा रस्सी से उसे बाँध कर लाओ। यदि ऐसा करने में सन्देह हो तो फिर तुम सभी मिलकर अपने सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करके उसे मार डालो, अथवा बलपूर्वक अपने वश में कर लो। युद्ध में जब वह भूमि में गिर पड़े और उसका वाहन सिंह मारा जाये तो तुम उसे बाँधकर अथवा पकड़कर शीघ्र ही हमारे सामने उपस्थित करो। क्रोध

और अम्बिका को देखने की उत्सुकता के द्वन्द्व में पड़कर कभी तो शुम्भ कहता है कि उसे बाल पकड़ कर घसीट लाओ, उसे बाँधकर हमारे पास लाओ। यदि ऐसा करना में तुम्हें कुछ सन्देह हो तो फिर तुम सभी सैनिक मिलकर उसे मार डालो अपने सभी प्रकार के आयुधों का प्रयोग उस पर करने में न हिचकना पर अच्छा यही होगा कि उसे किसी भी प्रकार पकड़ कर और बाँध कर जीवित ही हमारे पास शीघ्रता से लाओ।

इति श्री मार्केण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्बन्तरे देवी माहात्म्ये धूम्रलोचनवधो नाम षष्ठोध्याय:।

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर के वर्णन में देवी माहात्म्य में धूम्रलोचन वध नामक छठवां अध्याय पूरा हुआ।

●●●

सप्तम अध्याय

ऋषिरुवाच- आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः।
चतुरंगबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः।। १

अन्वय- ततः आज्ञप्तः चण्डमुण्डपुरोगमाः ते दैत्याः चतुरंगबलोपेताः अभ्युद्यतायुधाः ययुः।

शब्दार्थ- ततः आज्ञप्ताः शुम्भेन आदिष्टाः चण्डमुण्डपुरोगमाः-पुरो अग्रे गच्छंतौ पुरोगमौ चण्डश्च मुण्डश्च चण्डमुण्डौ पुरोगमौ येषान्ते चण्डमुण्डपुरोगमाः, चण्ड और मुण्ड जिनके आगे चलने वाले हैं, चतुरंगबलोपेताः- चत्वारि अंगानि यत्र तत् चतुरंगं बलं सैन्यं तेन उपेताः संगताः हस्त्यश्वरथपादातं सेनांगं स्याच्चतुष्टयम् इति कोशात् हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल जिस सेना में है उस चतुरंगिणी सेना के साथ, अभ्युद्यतायुधाः- अभ्युद्यता-सन्नद्धबद्धोन्मुखा आयुधाः यैस्ते अभ्युद्यतायुधाः अस्त्रशस्त्र उठाये हुये ययुः जग्मुः।

व्याख्या- इस प्रकार शुम्भ से आज्ञा पाकर वे सभी दैत्य चण्ड और मुण्ड को आगे करके अस्त्र-शस्त्र ताने हुए हाथी, रथ, घोड़े और पैदल वाली चतुरंगिणी सेना के साथ चल दिये।

ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम्।
सिंहस्योपरि शैलेन्द्रश्रंगे महति कांचने। २

अन्वय- ततः ते महति कांचने शैलेन्द्रश्रंगे सिंहस्यउपरि व्यवस्थिताम् ईषद्धासां देवीं ददृशुः।

शब्दार्थ- ततः आगताः ते चण्डमुण्डादयः दैत्याः, महति-उच्चे कांचने-सौवर्णे, शैलेन्द्रश्रंगे, -शैलेन्द्रस्य हिमालयस्य श्रंगे-शिखरे स्थितस्य सिंहस्य उपरि व्यवस्थिताम्-विशेषेण अवस्थिताम्-सिंहारूढाम्-सिंह पर सवार, ईषद्हासाम्-ईषद्अल्पो हासो यस्याः सा ईषद्हासा ताम् ईषद्हासाम् मन्दस्मिताम्, ददृशुः दृष्टवन्तः।

व्याख्या- उन दैत्यों ने जाकर देखा कि देवी हिमालय के एक सुनहरे शिखर पर सिंह की पीठ पर आसन लगाये हुए बैठी हैं और कुछ कुछ मुसकुरा रही हैं।

ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः।
आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः। ३

अन्वय- ते उद्यता तां दृष्ट्वा समादातुं उद्यमं चक्रुः। अन्ये तत्समीपगा आकृष्टचापासिधराः तां समादातुं उद्यमं चक्रुः।

शब्दार्थ- उद्यताः, उत्साहवन्तः, वा उत्साहिताः समादातुं-गृहीतुम्, उद्यमम्-

उद्योगम्, तत्समीपगाः-तयोःचण्डमुण्डयोः समीपवर्तिन, वा तेषाम् गृहीतुं उद्यतानां रक्षणार्थं समीपस्थिता, आकृष्टचापासिधराः आकृष्टाः आच्छिताः चापाः यैः ते वा आकृष्टं आकर्णान्तकृष्टं चापं यैस्ते आकृष्टचापाः असिधरा-असीनां खड्गानां धराः धारकाः असिधराः कोशोद्धृतासयः तत्समीपगाः स्थिताः तेषां रक्षणार्थ पार्श्वे स्थिताः।

व्याख्या- उन दैत्यों ने जब इस प्रकार बैठे हुए जगदम्बा को देखा तो उन्होंने उत्साह के साथ देवी को पकड़ने का प्रयत्न किया। जो असुर चण्डमुण्ड के समीप थे वे भी कानों तक धनुष खींचते हुए और तलवार म्यान से बाहर निकालते हुए देवी को पकड़ने के लिए आगे बढ़े। अथवा जो दैत्य देवी को पकड़ने के लिए आगे बढ़े, उनके पास के साथियों ने उनकी रक्षा के लिए धनुष बाण चढ़ाकर और किन्हीं ने म्यान से तलवार बाहर निकाल कर उनकी रक्षा का प्रयत्न किया।

ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन्प्रति।
कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूत्तदा। ४

अन्वय- ततः अम्बिका तान् अरीन् प्रतिउच्चैः कोपं चकार। तदा कोपेन अस्याः वदनं मषीवर्णं अभूत्।

शब्दार्थ- उच्चैः अतितराम्, तान्-आगतान्, अरीन्-दैत्यान् शत्रून् प्रति वदनं-मुखम् मुखमण्डलम् मषीवर्णम् मषी लेखनद्रव्यं तद्वद्श्यामवर्ण

व्याख्या- अपनी ओर झपट कर आते हुए उन शत्रु दैत्यों को देखकर अम्बिका ने अत्यन्त क्रोध किया, क्रोध के कारण उनका मुखमण्डल स्याही के समान काला पड़ गया।

विशेष- चण्ड और मुण्ड तथा उनके सैनिक तामसी प्रकृति के होने कारण उनके मारने के लिए तामसी काली के अवतरण की भूमिका है।

भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम्।
काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशनी। ५

अन्वय- तस्या भ्रुकुटीकुटिलात् ललाटफलकात् द्रुतम् करालवदना असिपाशिनी काली विनिष्क्रान्ता।

शब्दार्थ- भ्रुकुटीकुटिलात्-भ्रुवौ कुटी इव भ्रकुटिःभ्रूभंगात् भुग्नं यस्मात् ललाटफलकात्-ललाटंफलकं इव विस्तृतं तस्मात् ललाटफलकात् सकाशात् द्रुतम्-शीघ्रम् करालवदना-करालं दन्तुरे तुंगे भीषणे चाभिधेयवत् इति कोशात् करालं भयंकरं तुंगं वदनं वक्त्रं यस्याः सा करालवदना असिपाशिनी-असिः खड्गः पाशश्चायुधम् तद्वती असिपाशिनी, असिपाशौ विद्येते यस्याः वा, खड्गपाशपाणिः, पाश-जिससे किसी को बाँधा जा सके जैसे नागपाश आदि।

व्याख्या- अत्यन्त क्रुद्ध होने के समय अम्बिका की भोंहों पर बल पड़ गये और उनके विस्तृत चौड़े मस्तक से भयंकर मुखवाली और हाथों में तलवार और पाश धारण किए हुए काली निकल कर खड़ी हो गई।

विचित्रखट्वांगधरा नरमालाविभूषणा।
द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा।
अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा।
निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा। ६, ७

अन्वय- उक्त सभी काली के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

शब्दार्थ- विचित्रखट्वांगधरा-खट्वांगम्-खट्वापाद: दण्डारोपितनरशिरस्कं, विचित्रं च तत् खट्वांगं तस्य धारका विचित्रखट्वांगधरा, नरमालाविभूषणा-नरमुण्डमाला विभूषणं यस्या: नराणां प्रेतानां शिरसां माला स्रक् यस्या: द्वीपिचर्मपरीधाना-द्वीपी व्याघ्र: तस्य चर्म परिधानं वासो यस्या: शुष्कमांसातिभैरवा-शुष्कमांसा-निर्मांसा अस्थिमात्रशरीरा अतएव अतितरां भैरवा-भयंकररूपा-शुष्कमांसातिभैरवा, अतिभयंकररूपा, अतिविस्तारवदना-अधिको विस्तारो यस्य तत् अतिविस्तारं वदनं यस्या: सा, जिह्वाललनभीषणा:जिह्वा: ललनं चालनं तेन भीषणा भयानका जिह्वाललनभीषणा, निमग्नारक्तनयना-निमग्नानि कोटरीभूतानि आरक्तानि च नयनानि यस्या: सा निमग्नरक्तनयना, यदि नेत्र दो ही मानें तो निमग्ने अन्तर्लीने अन्तर्गते आरक्ते आसमन्तात् लोहिते नयने यस्या: सा नादापूरितदिङ्मुखा-नादेन कण्ठगर्जनेन सिंहनादेन आसमन्तात् पूरितानि दिशां मुखानिद्वाराणि अन्तरालानि यया सा नादापूरितदिङ्मुखा।

व्याख्या- अम्बिका के क्रोध करने से उनके मुखमण्डल से जो भयंकर काली प्रकट हुई, वह विचित्र वर्ण का खट्वांग लिए हुए थी, दण्ड के ऊपरी सिरे परं नरमुण्ड अथवा नरमुण्ड सदृश आकृति वाली लाठी को खट्वांग कहते हैं। गले में नरमुण्डों की माला पहिने हुए थी, वस्त्र के रूप में बाघ का चमड़ा लपेटे हुए और उसके शरीर से सारा मांस सूख गया था इसलिये वह कंकाल मात्र अत्यन्त भयंकर लग रही थी, उसका मुख विशाल और खुला हुआ था, मुख से बाहर निकाल कर जीभ लपलपा रही थी, उसकी आँखें भीतर की ओर धंसी हुई और अत्यन्त लाल लाल थी, उसने सिंहगर्जना की तो उसकी प्रतिध्वनि दिशाओं में भी न समा रही थी। उससे दिग्दिगन्त प्रतिध्वनित हो रहा था।

सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान्।
सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद्बलम्। ८

अन्वय- सा वेगेन अभिपतिता महासुरान् घातयन्ती तत्र सैन्ये सुरारीणां तद्बलं अभक्षयत।

शब्दार्थ- सा-काली, अभिपतिता, अभियाता, चारों ओर धावा बोलती हुई, महासुरान्-दैत्यवरान् घातयन्ती-मारती हुई के अर्थ में प्रेरणार्थक धातु का आर्ष प्रयोग, अन्यथा घ्नन्ती होना चाहिए। तत्र सैन्ये- उन असुरों की सेना में, सुरारीणाम्-देवशत्रूणाम् बलम् सैन्यं अभक्षयत-अखादत्।

व्याख्या- वह काली बड़े वेग के साथ शत्रुओं पर टूट पड़ी, और असुरों की उस सेना में अनेक महादैत्यों को मारती हुई काली ने असुरों की उस सेना को ही चबा डाला।

पार्ष्णिग्राहांकुशग्राहि योधघण्टासमन्वितान्।

समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान्। ९

अन्वय- पार्ष्णिग्राहांकुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान् वारणान् एकहस्तेन समादाय मुखे चिक्षेप।

शब्दार्थ- पार्ष्णिग्राहांकुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान्-यह एक ही समस्त पद है।

पार्ष्णिग्राह:-गजस्य पश्चाद्भागस्थ: पृष्ठरक्षक:, अंकुशग्राही-अंकुशं गृहणातीति अंकुशग्राही गजस्य अग्रभागस्थ:, योधो गजारूढो वीर: मध्यभागस्थ:, घण्टासमन्वितान्-पार्श्वलम्बिन्य: घण्टा: सहितान् वारणान्-गजान्, एकहस्तेन-एक ही हाथ से, आदाय-पकड़ कर, चिक्षेप चखाद।

व्याख्या- पार्ष्णि पिछले भाग को कहते हैं, हाथी के पिछले भाग में बैठने वाले को अथवा सेना के पीछे चलने वाले को पार्ष्णिग्राह कहते हैं, अंकुशग्राही-जो हाथ में अंकुश लेकर हाथी को आगे चलाता है, उसे महावत कहते हैं, वह हाथी पर आगे की ओर बैठता है। योधा मध्य भाग में हौदे पर बैठता है। हाथी के बाजू में दोनों ओर दो घण्टे लटका दिए जाते हैं जो सामान्य स्थिति में शोभा के लिए और समरभूमि में वीरों का ओज बढ़ाने और सावधान रहने का संकेत करते हैं। वारण हाथी को कहते हैं। वारण का शाब्दिक अर्थ रोकना अवरोध करना होता है। प्राचीन काल में हाथियों को शत्रु सेना के अवरोधक के रूप में रखा जाता था, इसलिए हाथी का पर्याय ही वारण हो गया। उस काली ने अपने विस्तृत मुख में एक ही हाथ से हाथी को पकड़ कर चबा डाला जिसकी पीठ पर महावत, योद्धा और उसके पिछले भाग में स्थित अन्य सहायक बैठे हुए थे। और हौदा के नीचे घण्टे लटक रहे थे। इस प्रकार काली ने चतुरंगिणी सेना के एक अंग हाथियों को नष्ट कर दिया।

तथैव योधं तुरगै: रथं सारथिना सह।

निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम्। १०

अन्वय- तथा एव सा काली योधं तुरगै: सह, रथं सारथिना सह, वक्त्रे निक्षिप्य दशनै: अतिभैरवं चर्वयन्ति।

शब्दार्थ- तथा एव- उसी प्रकार, योधं योद्धारं अश्वारोहं-जातावेकवचनम् इस नियम के अनुसार बहुत्व विवक्षायामप्येकवचनम्। यहाँ रथं सारथिना और योधं तीनों ही एकवचन में प्रयुक्त हैं जबकि तुरगैः से स्पष्ट है कि यहाँ बहुत्व विवक्षित है। योधं-अश्वारोहं-अश्वारोहान् तुरगैः सह अश्वै समं एवमेव रथान् सारथिभिः सह वक्त्रे मुखे निक्षिप्य-डालकर, दशनैःदंष्ट्राभिः अतिभैरवम्-अतिभयंकरं यथा स्यात्तथा चर्वयन्ति अथवा चर्वयन्ती के स्थान पर चर्वयति होना चाहिए। अथवा अत्र योधाः तुरगाः रथाः सारथयश्च भक्ष्याः चर्व्याःचर्वकः अतिभैरवः मृत्युः पात्रं वक्त्रं परिवेषिका काली इति रूपकम्।

व्याख्या- उसी प्रकार काली घुड़सवारों को घोड़ों सहित, रथों को सारथियों सहित अपने मुख में डालकर बड़े भयंकर रूप से अपने दांतों से चबाती जा रही थी।

एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम्।
पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत्।११

अन्वय- एकं केशेषु जग्राह अथ अपरं ग्रीवायां जग्राह, अन्येन पादेन आक्रम्य एवं अन्यं उरसा अपोथयत्।

शब्दार्थ- एकं कंचित् असुरं सा काली केशेषु-आकृष्य जग्राह-गृहीतवती, अपरं ग्रीवायां जग्राह, अन्यं पादेन आक्रम्य अन्यं च उरसा हृदयेन, आक्रम्य, अपोथयत्-अवधीत्, आलोडितवती, हिंसितवती, मसल डालना।

व्याख्या- पहिले यह बताया जा चुका है कि काली ने दैत्यों की सेना के हाथियों को नष्ट किया, फिर उन्होंने अश्वारोहियों और रथों को चबा डाला। इस प्रकार सेना के तीन अंग, हाथी, अश्व और रथ को नष्ट करने के पश्चात् पैदलों का किस प्रकार वध किया, उसके संबंध में कहते हैं कि काली ने किसी को बाल पकड़ कर घसीटा, किसी को गर्दन दबा कर मार डाला, किसी को पैरों से मसल डाला और किसी को वक्ष से चपेट कर मसल डाला। कुचल डाला।

तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः।
मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि। १२

अन्वय- तथा तैः असुरैः मुक्तानि शस्त्राणि महास्त्राणि च रुषा मुखेन जग्राह अपि च तानि दशनैः मथितानि।

शब्दार्थ- तथा-एवं तैः असुरैः-दैत्यैः मुक्तानि-प्रयुक्तानि क्षिप्तानि, शस्त्राणि-हस्तस्थखड्गादीनि, महास्त्राणि-महान्ति बाणादीन् चापादिना मोक्षणीयानि अथ च मन्त्रगर्भितानि निक्षिप्तानि अस्त्राणि महास्त्राणि मुखे जग्राह मुखे गृहीतवती, रुषा क्रोधेन च तैः अस्त्रशस्त्राणि असुरप्रयुक्तानि दशनैः मथितानि अपि। दशनैः चर्वणं कृत्वा चूर्णितानि।

व्याख्या- इसके पश्चात् काली ने उन असुरों के द्वारा चलाये हुए महास्त्र और हाथ

से प्रयुक्त किए तलवार आदि को मुख में विलीन कर लिया और क्रोधपूर्वक अनेक अस्त्रशस्त्रों को दांतों से चबा डाला।

बलिनां तद्बलं सर्वमसुराणां महात्मनाम्। दुरात्मनां इति पाठ
ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा। १३

अन्वय- दुरात्मनां बलिनां असुराणां तत् सर्वं बलं ममर्द अन्यान् अभक्षयत् तथा अन्यान् अताडयत्।

शब्दार्थ- दुरात्मनाम्-दुष्टाशयानाम्, महात्मनाम्-महान्त आत्मानो देहा येषां ते, बलिनाम् बलवताम्, ममर्द-मसल डाला, मींड डाला, कुचल डाला, अन्यान्-अन्यअसुरान् अभक्षयत्- खा लिया, अताडयत्-ठोकर मारी, ठुकरा दिया, घायल कर दिया।

व्याख्या- काली ने इस प्रकार उन दुष्ट असुरों की सम्पूर्ण सेना को मसल डाला, कुचल डाला। कुछ दैत्यों को खा डाला, कुछ दूसरे असुरों को घायल कर दिया ठोकर मार कर फैंक दिया।

असिना निहताः केचित्केचित्खट्वांगताडिताः।
जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा। १४

अन्वय- केचित् असिना निहताः, केचित् खट्वांगताडिताः तथा दन्ताग्राभिहताः असुराः विनाशं जग्मुः।

शब्दार्थ- असिनाखड्गेन निहताः- हिंसिताः खट्वांग-ताड़िता-खट्वांगेन प्रहारीकृताः दन्ताग्राभिहताः-दन्तानां अग्रा भागाः तैः अभिहता-चूर्णीकृताः विनाशं जग्मुः विनष्टाः।

व्याख्या- इस प्रकार कुछ असुरों को तलवार के घाट उतार दिया गया, किन्हीं किन्हीं को खट्वांग के प्रहार से मार डाला और कुछ असुरों को दांतों से चबा कर फेंक दिया इस प्रकार वे सभी दैत्य नष्ट हो गए।

विशेष- यह खट्वांग क्या है जिसे शस्त्र के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। काली के प्रकट होने के समय ही वह विचित्रखट्वांगधरा थी। खट्वा संस्कृत में खाट्-चारपाई में चार मंचपाद रहा करते हैं। उसी मंचपाद को खट्वांग कहा जाता है। जिस प्रकार उस समय हल और मूशल का आयुध के रूप में प्रयोग होता था, उसी प्रकार चारपाई के पायों को रंगकर उन पर मुखाकृति बना दी जाती थी। अतः आगे चलकर खट्वांग वह दण्ड हुआ जिसके ऊपरी सिरे पर नरमुण्ड की आकृति हुआ करती थी। उसे पंचमुख शिव का अस्त्र माना जाता है। अतः शैव सन्यासी ऐसा दण्ड धारण करते हैं। एक कथा के अनुसार खट्वासुर का कंकाल ही खट्वांग कहा जाता है, उसे धारण करने वाला खट्वांगधर अथवा-अघोर साधना में श्मशान के देवता विशेष का नाम खट्वा है जो श्मशानसिद्धि देने वाला है। उसका दिया हुआ आयुध खट्वांग कहा जाता है जिसका

लक्ष्य अचूक होता है, उसके द्वारा असाध्य को भी साध्य किया जा सकता है। यह क्रिया शवसाधना के क्रम में आने के कारण त्याज्य है।

क्षणेन तद्बलं सर्वमसुराणां निपातितम्।
दृष्ट्वा चण्डोभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम्।१५

अन्वय- चण्ड:असुराणां तत् सर्वं बलं क्षणेन निपातितं दृष्ट्वा अतिभीषणां तां कालीं अभिदुद्राव।

शब्दार्थ- क्षणेन-क्षणमात्रेण कालेन, निपातितम्-निहतं, दृष्ट्वा-अवलोक्य, अतिभीषणाम्-अतिभीषयते अतिभीषणा ताम् अतिभीषणाम् अभिद्रुद्राव-अभिमुखं गतवान्। अभिजगाम। वेगेन जगाम। द्रुगतौ इति धातोः निष्पन्नं।

व्याख्या- जब चण्ड ने देखा कि काली ने असुरों की उस चतुरंगिणी सेना को क्षण भर में ही नष्ट कर दिया तो वह बड़े वेग से उस अत्यन्त भयंकर काली की ओर दौड़ा।

शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः।
छादयामास चक्रैश्च मुण्डक्षिप्तैः सहस्रशः।१६

अन्वय- महासुरः तां भीमाक्षीं महाभीमैः शरवर्षैः, मुण्डः च महाभीमैः सहस्रशः क्षिप्तैः चक्रैः छादयामास।

शब्दार्थ- महासुर:महादैत्यः, भीमाक्षीम्-भीमे भयंकरे अक्षिणी यस्याः ताम् भीमाक्षीम् त्रिनेत्र पक्षे-भीमानि भयंकराणि अक्षीणि यस्याः सा ताम् भीमाक्षीम् शरवर्षैः-शराणां वर्षाणि सम्पाताः तैः शरवर्षैः, महाभीमै-महान्ति बहुलानि भीमानि घोराणि तैः महाभीमैः, मुण्ड:क्षिप्तैः इति पाठे मुण्डकर्ता अन्यथा मुण्डक्षिप्तैः इति समस्तपदैः मुण्डानि क्षिप्तानिमस्तकानि अपनीतानि यैः तानि क्षिप्तमुण्डानि अपनीत मस्तकानि, मुण्डः च क्षिप्तैः प्रेरितैः चक्रैः गोलाकारं दन्तुरं लौहनिर्मित चक्रं तैः, सहस्रशः सहस्रेण सहस्रशः छादयामास-आवृतां चकार।

व्याख्या- उस महान असुर चण्ड ने अत्यन्त भयंकर बाणों की वर्षा करके भयंकर नेत्रों वाली देवी काली को ढक लिया। और मुण्ड ने काली को लक्ष्य करके हजारों ही चक्र फेंके जिससे उन चक्रों के द्वारा काली को आच्छादित कर लिया। इतने बाण और चक्र चलाये कि उनके बीच में काली दिखाई ही न देती थी।

तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम्।
बभुर्यथार्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम्। १७

अन्वय- तानि तन्मुखं विशमानानि चक्राणि घनोदरे विशमानानि सुबहूनि अर्कबिम्बानि यथा बभौ।

शब्दार्थ- तानि मुण्डेन प्रेरितानि अनेकानि- असंख्यातानि तन्मुखम्-तस्या काल्या मुखं विशमानानि-प्रवेश नशीलानि घनोदरम्-घनस्य उदरं जठरं अभ्यन्तरं विशमानानि-प्रवेशनशीलानि अर्कबिम्बानि-रवेः मण्डलानि बभुः-शुशुभिरे, शोभितवन्तः।

व्याख्या- देवी काली के मुख में समाते हुए वे असंख्य चक्र इस प्रकार शोभित हो रहे थे मानों घने मेघों के मध्य अनेकों सूर्यबिम्ब प्रवेश कर रहे हों।

ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी।
काली करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्जवला।१८

अन्वय- ततः भैरवनादिनी काली अतिरुषा भीमं जहास सा काली करालवक्त्रा अन्तर्दुर्दर्शदशनोज्जवला वा करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्वला।

शब्दार्थ- अतिरुषा-अतिक्रोधेन भीमम्-भयंकरं यथा स्यात्तथा, भरैवनादिनी-भैरवं भयंकरं यथा स्यात्तथा नादिनी शब्दं कुर्वती भैरवनादिनी, वाभैरवः कालाग्निरुद्रः तद्वत् नदति गर्जति भैरवनादिनी, वा रणोत्सवे भैरवंनादयति नादोपेतं करोति इति भैरवनादिनी, करालवक्त्रा-करालं भयंकरं, दन्तुरं तुंग वक्त्रं मुख यस्याः सा करालवक्त्रा, अन्तर्दुर्दर्शदशनोज्वला-वक्त्रान्ते वक्त्रमध्ये विकटदन्तत्वात् दुर्दशो ये दशनाः तेषां तेजसा उज्वला-तेजोमयी, करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्वला इति एकं समस्त पदं मत्वा भयंकरं मुखं तस्याभ्यन्तरे तत्र दुर्दर्शाःद्रष्टुमशक्याः ये दशनाः दन्ताः तैः उज्वला, जहास-हसितवती हासं चकार। अट्टहासं चकार।

व्याख्या- तब भयंकर मुख वाली काली जिसके मुख के दांतों की कान्ति से उसकी ओर देखना भी कठिन था, उसने अत्यन्त क्रोध करते हुये भयंकर अट्टहास किया जो भैरव के गर्जन के समान भयंकर था। अथवा काली भयंकर गर्जना करते हुए हंसी ठठाकर हंसी।

उत्थाय च महासिं हं देवी चण्डमधावत।
गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत्।१९

अन्वय- देवी महासिं हं उत्थाय चण्डं अधावत केशेषु गृहीत्वा च तेन असिना अस्य शिरः अच्छिनत्।

शब्दार्थ- महासिं-महान्तं खड्गं, हं-तन्त्र के अनुसार हं और हुं दोनों ही बीजाक्षर मारण के लिए प्रयुक्त होते हैं। जिस प्रकार देवी ने धूम्रलोचन का वध हुं के प्रयोग से किया था, उसी प्रकार चण्ड का वध यहाँ हं रूप असि-तलवार के प्रयोग से किया है। उत्थाय-खड्ग के अर्थ में-उद्यम्य, उत्थाप्य, उत्तोल्य, ऊर्ध्वीकृत्य, उत्थाय का अर्थ जहां महासिहं आरुह्य किया जाता है, वह ठीक नहीं क्योंकि आगे जो तेन असिना आया है कि यहाँ महासिं हं है महासिंहं कहना असंगत है। केशुषु गृहीत्वा-बाल पकड़ कर,

अस्य शिरः-इसके शिर को तेन प्रसिद्धेन असिना-तलवार से मन्त्ररूप हं उच्चारण रूपी तलवार से, अच्छिनत्-अच्छिदत्।

विशेष- यहाँ हं मारणमन्त्र ही तलवार है। अथवा जोर से भयानक हं शब्द करते हुए भी अर्थ किया जाता है।

अथ मुण्डोभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।

तमप्यपातयद्भूमौ सा खड्गाभिहतं रुषा। २०

अन्वय- अथ मुण्डः निपातितं चण्डं दृष्ट्वा तां अभ्यधावत्, सा रुषा खड्गाभिहतं तम् अपि भूमौ अपातयत्।

शब्दार्थ- निपातितम्-हतम्, अभ्यधावत्-तां उपरोद्धुं दुद्राव। तम् अपि-मुण्डासुरं अपि, रुषा-क्रोधेन, खड्गप्रहारेण हत्वा, अपातयत्-पातयामास।

व्याख्या- जब मुण्ड ने देखा कि काली ने चण्ड को तलवार के प्रहार से मार डाला तो उसने देवी पर धावा बोल दिया। तब काली ने उसे भी तलवार के प्रहार से मार कर पृथ्वी पर गिरा दिया।

हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।

मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम्। २१

अन्वय- हतशेषं सैन्यं सुमहावीर्यं चण्डं च सुमहावीर्यं मुण्डं च निपातितं दृष्ट्वा भयातुरं सत् दिशः भेजे।

शब्दार्थ- हतशेषम्-देव्या हतेभ्यः शेषं अवशिष्टम्, सैन्यं दैत्यबलं सुमहावीर्यं-सुष्ठ महत् वीर्यं प्रभावो यस्य तं निपातितं-निहतं, भयातुरम्-भयेन आतुरं विह्वलं व्याकुलं सत् ततः युद्धभूमितः-सकाशादपगत्य अपसृत्य दिशो भेजे-दिगन्तान् अशिश्रियत्।

व्याख्या- काली के द्वारा मारे जाने के पश्चात् असुरों की जो सेना शेष रह गई थी, उसने जब देखा कि चण्ड और मुण्ड जैसे प्रभावी सेनानायकों को भी मौत के घाट उतार दिया गया है तो भयभीत होकर जिसे जहां स्थान मिला उसी ओर दिशाओं के छोरों तक भाग कर छिप गये।

शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च।

प्राह प्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम्। २२

अन्वय- काली चण्डस्य शिरः मुण्डस्य मुण्डं च गृहीत्वा प्रचण्डाट्टहासमिश्रं चण्डिकां अभ्येत्य प्राह।

शब्दार्थ- मुण्डम्-मुण्डस्य मुण्डम्, गृहीत्वा-आदाय, प्रचण्डाट्टहासमिश्रं-प्रचण्डः प्रगल्भ अट्टः अधिकः हासः तेन मिश्रं प्रचण्डाट्टहासमिश्रम्, जोर से ठठकार हंसते हुए,

अभ्येत्य आगत्य, प्राह- अवोचत्।

व्याख्या- चण्ड और मुण्ड का वध करने के पश्चात् काली ने उन दोनों असुरों के मस्तकों को लेकर प्रचण्ड हास करते हुए चण्डिका, अम्बिका के पास आकर कहा।

मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डौ महापशू।

युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यति।२३

अन्वय- तव महापशू चण्डमुण्डौ अत्र यज्ञे मया उपहृतौ युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भंनिशुम्भं च हनिष्यसि।

शब्दार्थ- महापशू-देवतायै बलिप्रदानार्थं पशुः महापशुः तौ च महापशू, उपहृतौ- उपहारीकृतौ, अत्र-अस्मिन्, युद्धयज्ञे-युद्धं यज्ञ इव युद्धयज्ञः तस्मिन् युद्धयज्ञे

व्याख्या- जिस प्रकार यज्ञ में पशुबलि दी जाती है, उसी प्रकार इस युद्धरूपी यज्ञ में मैंने आपको इन दो यज्ञपशुओं की बलि दी है ये दोनों चण्ड और मुण्ड मेरे द्वारा बलिपशु के रूप में उपहार स्वरूप प्रस्तुत हैं। अब आप स्वयं ही आगे आने वाले युद्ध यज्ञ में शुम्भ और निशुम्भ इन दोनों असुरों का वध करेंगी।

ऋषिरुवाच- तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ।

उवाच कालीं कल्याणी ललितं चण्डिका वचः।

अन्वय- ततः कल्याणी चण्डिका तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ आनीतौ दृष्ट्वा कालीं ललितं वचः उवाच।

शब्दार्थ- ततः अनन्तरम्, कल्याणी-कल्याणकारिणी, कल्याणात्कल्या तु शुभात्मिका, इति कोशात्कल्यां शुभां वाचं अणिती कथयन्ती कल्याणी, ललितं-ईप्सितं मनोहरम्

व्याख्या- काली के द्वारा लाये गए उन दोनों चण्ड और मुण्ड महा असुरों के शिरों को देखकर चण्डिका देवी ने जो सदा ही कल्याण करने वाली है अथवा जो शुभ वाणी का कथन करने वाली हैं उन्होंने काली से इस प्रकार मधुर वचन कहे।

यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता।

चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि। २५

अन्वय- हे कालि त्वं यस्मात् चण्डं मुण्डं च गृहीत्वा मां उपागतः ततः लोके चामुण्डा इति ख्याता देवी भविष्यसि।

शब्दार्थ- यस्मात्-यतः, चण्डं मुण्डं च गृहीत्वा-चण्डमुण्डयोः शिरसी आदाय, मां उपागता मत् समीपं आगतासि, ततः तस्मात् कारणात् लोके-भुवने, चामुण्डा इति- नाम्ना ख्याता-प्रसिद्ध

व्याख्या- अम्बिका के पास जब काली चण्ड और मुण्ड दोनों असुरों के सिर काटकर उपस्थित हुई तो अम्बिका उनसे बहुत प्रसन्न हुई और प्रेमपूर्वक कहा कि तुम मेरे पास चण्ड और मुण्ड के सिर काटकर लाई हो इस कारण लोक में चामुण्डा नाम से तुम्हारी प्रसिद्धि होगी। तभी से देवी का नाम चामुण्डा हुआ।

इतिश्री मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे चण्डमुण्डवधो नाम सप्तमोऽध्यायः।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत सावर्णिक मन्वन्तर के वर्णन में चण्डमुण्डवध नामक सप्तम अध्याय हुआ।

●●●

अष्टम अध्याय

ऋषिरुवाच

चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते।
बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः।
ततः कोपपराधीनचेताः शुम्भः प्रतापवान्।
उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह। १-२

अन्वय- ततः चण्डे दैत्ये निहते सति मुण्डे च विनिपातिते सतिसैन्येषु बहुलेषु क्षयितेषु सत्सुकोपपराधीनचेताः असुरेश्वरः प्रतापवान् शुम्भः दैत्यानां सर्वसैन्यानां उद्योगं आदिदेश।

शब्दार्थ- ततः तदनन्तरं निहते सति- युद्धस्थले हते सति, विनिपातिते- निहते, सैन्येषु बहुलेषु क्षयितेषु सत्सु प्रभूतं प्रचुरं प्राज्यमद्भ्रं बहुलं बहु इति कोशात् बहुबलेषु नाशितेषु सत्सु सेना के बड़े भाग के नष्ट हो जाने पर, कोपपराधीनचेता-कोपे परं अतिशयितं अधीन आयत्तं चेता यस्य सः कोपाधीनचित्तः, असुरेश्वरः- असुराणां ईश्वरः अधिपः उद्योगम्- उद्यमम्, दैत्यानां सर्वसैन्यानाम्-दैत्यानां यानि सर्वाणि सैन्यानि तेषाम्, सर्वसैन्यानां दैत्यानां- सेनामध्ये ये दैत्यप्रमुखास्तेषा सर्वेषाम्। आदिदेश आज्ञापयामास। दैत्यानां यानि महान्ति हस्त्यश्वरथपदातिबलानि तेषां देवीं प्रति अभिषेणयितुं उद्योगं कुरुत इति आज्ञापयामास।

व्याख्या- जब दैत्यराज प्रतापी शुम्भ ने सुना कि चण्ड और मुण्ड दोनों ही देवी के साथ युद्ध में मारे गए और उनके साथ भेजी गई सेना का अधिकांश भी इस युद्ध में नष्ट हो गया तो वह क्रोध के मारे तिलमिला उठा और उसने आदेश दिया कि हमारी सम्पूर्ण चतुरंगिणी सेना अपने अपने प्रमुख सेनानायकों के साथ देवी से युद्ध करने के लिये तैयार हो जाय।

अद्य सर्ववलैर्दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः।
कम्बूनां चतुराशीतिर्नियान्तु स्वबलैर्वृताः। ३

अन्वय- अद्य षडशीति दैत्याः उदायुधाः सर्वबलैःवृताः ममाज्ञया निर्यान्तु कम्बूनां चतुराशीतिः ममाज्ञया स्वबलैः वृताः निर्यातु।

शब्दार्थ- अद्य-इदानीं, अथवा आज ही, षडशीतिः षड्भिः अधिका अशीतिः- छयासी, उदायुधाः- सज्जितशस्त्राः सन्तः, उद्यतायुधाः, सर्वबलैः- चतुरंगलक्षणैः सज्जितैः सेनाभिः वृताः- वेष्टिताः सन्तः निर्यान्तु-योद्धुं निर्गच्छन्तु। कम्बूनाम्-कम्बू

नाम्निदैत्यकुले जातानां, कम्बुः शंखः चतुराशीतिः चतुर्भिरधिका अशीतिः-चौरासी, स्वबलैः- स्वसेनाभिः वृता-वेष्टिताः।

व्याख्या- शुम्भ ने आदेश दिया कि उसके छियासी प्रधान सेनानायक अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ अस्त्रशस्त्रों से सज्जित होकर देवी के प्रति अभियान के लिये निकल पड़ें। कम्बु नामक चौरासी दैत्य अपनी अपनी सेना के साथ सज्जित होकर युद्ध के लिये सेना की मोर्चाबंदी करते हुये निकलें। यहाँ यदि कम्बु का अर्थ संख्यावाचक शंख लिया ज़ाय तो चौरासी शंख सेनानायकों की संख्या से असंगत होता है इसलिये कम्बु को दैत्यों की विशेष संज्ञा मानकर अर्थ करना ही उचित है।

कोटिवीर्याणि पंचाशदसुराणां कुलानि वै।
शतं कुलानि धूम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया। ४

अन्वय- पंचाशत् कोटिवीर्याणि असुराणां कुलानि धूम्राणां शतं कुलानि ममाज्ञया निर्गच्छन्तु।

व्याख्या- कोटिवीर्य कुल के पचास सेनानायक और धूम्र कुल के सौ सेनानायक मेरी आज्ञा से युद्ध के लिये प्रस्थान करें।

कालकाः दौर्हृदामौर्याः कालकेयास्तथासुराः।
युद्धाय सज्जाः निर्यान्तु चाज्ञया त्वरिता मम।। ५

अन्वय- कालकाः दौर्हृदाः मौर्याः कालकेयाः असुराः युद्धाय सज्जाः सन्तः ममाज्ञया त्वरिता निर्यान्तु।

शब्दार्थ- सज्जाः सायुधाः, ससामग्रीकाः त्वरिताः- त्वरमाणाः

व्याख्या- कालक, दौर्हृद, मौर्य और कालकेय वंश के असुर मेरी आज्ञा से शीघ्रता से युद्ध के लिये तैयार होकर युद्धसज्जा के साथ निकल पड़ें।

इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भो भैरवशासनः।
निर्जगाम महासैन्यसहस्त्रै र्बहुभिर्वृतः।६

अन्वय- इति आज्ञाप्य भैरवशासनः असुरपतिः शुम्भः बहुभिः महासैन्यसहस्त्रैः वृतः निर्जगाम।

शब्दार्थ- इति, एवं, आज्ञाप्य- आदिश्य, भैरवशासनः भैरवं- भयंकरं शासनं आज्ञा यस्य सः अव्याहताज्ञः, महासैन्यसहस्त्रैः- महान्ति सैन्यानां सहस्त्राणि तैः, बहुभिः अनेकैः, वृतः वेष्टितः, परिवारितः निर्जगाम, निरगात् निर्ययौ।

व्याख्या- भयंकर शासन करने वाला शुम्भ इस प्रकार आज्ञा देकर स्वयं सहस्त्रों विशाल सेनाओं के साथ युद्ध के लिये चल दिया।

आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम्।
ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम्। ७

अन्वय- अतिभीषणं तत्सैन्यं आयान्तं दृष्ट्वा चण्डिका ज्यास्वनैः धरणीगगनान्तरं पूरयामास।

शब्दार्थ- अतिभीषणम्- अतिभयजनकं, तत्सैन्यं- तस्य शुम्भस्य सैन्यं, आयान्तं- आगच्छन्तं, दृष्ट्वा- अवलोक्य, ज्यास्वनैः- धनुरारोपिताकृष्टमौर्वीजनितनिस्वनैः मौर्वीटंकारनिर्घोषैः, धरणीगगनान्तरम्-धरणी च गगनं च धरणीगगने तयोः अन्तरं मध्यं अन्तरिक्षं, पूरयामास- व्यापयामास।

व्याख्या- अत्यन्त भयंकर शुम्भ दैत्य की उस सेना को आते देखकर चण्डिका ने अपने धनुष की टंकार से पृथ्वी और आकाश के मध्य को गुंजायमान कर दिया। धनुष के टंकार की प्रतिध्वनि पृथ्वी से आकाश तक व्याप्त हो गई।

ततः सिंहो महानादमतीव कृतवान्नृप।
घण्टास्वनेन तन्नादमम्बिका चोपबृंहयत्। ८

अन्वय- हे नृप, ततः सिंहः अतीव महानादं कृतवान् अम्बिका घण्टास्वनेन तन्नादं च उपबृंहयत्।

पाठान्तर- ततः सिहो महानादम् के स्थान पर- स च सिंहो महानादम् तथा तन्नादमम्बिका के स्थान पर तन्नादानम्बिका पाठ भी है।

शब्दार्थ- हे नृप- सुरथ, ततः धनुर्ज्यानिर्घोषादनन्तरम्, अतीव-अत्यर्थ, तन्नादं- धनुर्ज्यानिः स्वनम्, तन्नादान् धनुर्ज्यानिर्घोषान् च सिंहगर्जनम् च, महानादम्-महान्तं नादं गर्जनं उपबृंहयत्- वर्धयामास।

व्याख्या- सुमेधा ऋषि ने कहा कि हे राजन् हे सुरथ, देवी के द्वारा बार-बार धनुष की टंकार किए जाने पर देवी के वाहन सिंह ने भी भयंकर नाद करते हुए अनेक बार गर्जन किया। देवी ने घण्टानिनाद के द्वारा उस महानाद को और भी अधिक बढ़ा दिया। धनुष की टंकार, सिंह का गर्जन और देवी के घण्टानिनाद इन तीनों के मिल जाने से वह प्रतिध्वनि बढ़ती ही गई।

धनुर्ज्यासिंहधण्टानां नादापूरितदिङ् मुखा।
निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारिताननना। ९

अन्वय- धनुर्ज्यासिंहघण्टानां नादापूरितादिङ्मुखा काली भीषणैः निनादैः विस्तारितानना जिग्ये। धनुर्ज्यासिंहघण्टानां भीषणैः निनादैः नादापूरितदिङ्मुखा विस्तारितानना काली जिग्ये।

शब्दार्थ- धनुर्ज्यासिंहघण्टानाम् धनुर्ज्यानिः स्वनेन, सिंहगर्जनेन घण्टानादेन च मिलित्वा जनितैः भीषणैः भयंकरैः निनादैः ध्वनिभिः विस्तारिताननाः- विस्तारितं आननं यया सा, नादापूरितदिङ्मुखा- नादेन आ समन्तात् पूरितानि दिशां मुखानि यया सा, जिग्ये- जितवती

व्याख्या- धनुष की टंकार, सिंह का गर्जन और घण्टानिनाद की भयंकर ध्वनि से दिग्दिगन्त में प्रतिध्वनि व्याप्त हो गई। उस समय काली ने अपने मुख को विस्तीर्ण करते हुये अपने जय की घोषणा की।

प्रत्यंचा की टंकार, सिंह का गर्जन और घंटा का घोर शब्द इन तीनों के नाद से काली ने दिगन्तराल तक भयंकर नाद को पूरित कर दिया और उस समय उन्होंने अपने मुख को विस्तृत करते हुये जयघोष किया।

धनुर्ज्यासिंहघण्टानां के साथ नादापूरितदिङ् मुखा का अन्वय करने से एतेषां नादैः ऐसा समासविग्रह करने से अविमृष्टविधेयांश दोषापत्ति हो सकती है। अतः धनुर्ज्यासिंहघण्टानां भीषणैः निनादैः अन्वय करते हुए व्याख्या की गई। दूसरे धनुर्ज्या के स्थान पर केवल ज्यासिंह घण्टानां भी कहा जा सकता था। क्यों ज्या पद के ग्रहण से ही धनुष की प्रतीति स्वाभाविक रूप से हो सकती थी। इसलिए जिस प्रकार अवतंस कहने से ही कान के आभूषण के प्रतीति होती हो, पर कर्णावतंस कह दिया जाता है, उसी प्रकार धनुर्ज्या का प्रयोग।

इस प्रकार का अर्थ भी हो सकता है कि धनुष की टंकार, सिंह का गर्जन और घण्टा के निरन्तर निनाद से जब प्रतिध्वनि दिशाओं में भर गई तो काली के द्वारा मुख का विस्तार करते हुए भीषण निनाद किया गया उससे असुरवर्ग अभिभूत हो गया।

तन्निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम्।
देवी सिंहस्तथा काली सरोषैः परिवारिता।१०

अन्वय- चतुर्दिशम् तन्निनादं उपश्रुत्यसरोषैः दैत्यसैन्यैः देवी, सिंहः काली च परिवारिता। वा-तन्निनादं उपश्रुत्य सरोषैः दैत्यसैन्यैः देवी, सिंह, तथा काली चतुर्दिशं परिवारिता।

शब्दार्थ- चतुर्दिश- चतुर्दिक्षु व्याप्तं निनादं, उपश्रुत्य- आकर्ण्य, सरोषैः- कुपितैः दैत्यसैन्यैः- दैत्यानां सैन्यैः, देवी अम्बिका, सिंहस्तस्या वाहनः, काली- चण्डीललाटजा, परिवारिता-परिवेष्टिताः। चतुर्दिशम्- चतस्रो दिशा अधिकरणीभूता यस्मिन् परिवारेण तच्चतुर्दिशम्।

व्याख्या- चारों दिशाओं में व्याप्त उस प्रतिध्वनि को सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर असुरों की सेना ने देवी अम्बिका, उनके वाहन सिंह और उनके ललाट से प्रकट हुई काली को घेर लिया।

अथवा- उस घोर नाद को सुनकर अत्यन्त क्रोध में भयंकर दैत्यों की उस सेना ने देवी, सिंह और काली को चारों दिशाओं से घेर लिया।

एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम्।
भवायामरसिंहानामतिवीर्य बलान्विताः।
ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथैवेन्द्रस्य शक्तयः।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः। ११-१२

अन्वय- हे भूप, एतस्मिन् अन्तरे सुरद्विषां विनाशाय अमरसिंहानां भवाय अतिवीर्यबलान्विताः शक्तयः ब्रह्ममेशगुहविष्णूनां तथा इन्द्रस्य च शरीरेभ्यः विनिष्क्रिम्य तद्रूपै चण्डिकां ययुः।

शब्दार्थ- एतस्मिन्- देवीदैत्यरणे अन्तरे अवकाशे, सुरद्विषां- दैत्यानां विनाशाय- हननाय, अमरसिंहानाम्- अमरेषु-देवेषु सिंहाः श्रेष्ठाः तेषाम् अमरश्रेष्ठानां अमरा निर्जरा देवा इति कोशात्, सिंहाः- स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुंगवर्षभकुंजरा। सिंह शार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचराः। इति कोशवचनात् सिंहः श्रेष्ठवाचकः। भवाय- भूत्यै अभिवृद्धये उत्कर्षाय, स्थितये च अतिवीर्यबलान्विताः- वीर्यं वीरकर्म बलंः सामर्थ्यवीर्येण उत्साहशक्त्या, बलेन देहशक्त्या अन्विताः सहिताः शक्त्यः सामर्थ्य लक्षणा देवतारूपाश्च, ब्रह्मेशगुहविष्णूनां- ब्रह्माईशःगुहः विष्णुश्च तेषां ब्रह्मेशगुहविष्णूनां ईशः महेश्वरः, गुहः कार्तिकेयः विष्णुशब्देन वराहनृसिंहयोः अपि तथा एव इन्द्रस्य शरीरेभ्यः तनुभ्यः विनिष्क्रम्य-विनिर्गत्य तद्रूपैः- ब्रह्मणः शरीरात् ब्रह्माणी, महेश्वरात् माहेश्वरी, गुहस्य कुमारस्य कौमारी, विष्णोः शरीरान्निर्गताः वैष्णवी, वाराही, नारसिंही च इन्द्रस्य शक्तिः इन्द्राणी तत्तद्रूपैः ब्रह्मादिरूपैः विनिष्क्रम्य- निर्गत्य चम्डिकां- देवीं ययुः प्रापुः।

व्याख्या- सुमेधा ऋषि राजा सुरथ को सम्बोधित करते हुये कहते हैं कि हे राजा जब दैत्यों ने देवी को इस प्रकार चारों ओर से घेर लिया तो इसी समय उन दैत्यों का नाशकरने और देवीं के उत्कर्ष के लिये ब्रह्मा, महेश्वर, कार्तिकेय, विष्णु और इन्द्र के शरीर से उन देवताओं के समान ही आकृति वाली शक्तियाँ प्रकट होकर देवी से आ मिली। ब्रह्मा की शक्ति ब्रह्माणी, महेश की शक्ति माहेश्वरी, कार्तिकेय की कौमारी, विष्णु की वैष्णवी और इन्द्र की शक्ति इन्द्राणी देवी के पास आकर उपस्थित हुई। विष्णु कहने से नृसिंह और वराह का भी बोध होता है अतः वराह की शक्ति वाराही और नृसिंह की नारसिंही भी उपस्थित हुई।

यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम्।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान्योद्धुमाययौ। १३

अन्वय- यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम् तद्वत् एव हि तच्छक्तिः असुरान् योद्धुमाययौ।

शब्दार्थ- देवस्य- ब्रह्मादेः यद्रूपं- य आकारः यथाभूषणवाहनम्- भूषणवाहनानि अनतिक्रम्य यथालंकारवाहनम् यस्य देवस्य यद्भूषणम् यस्य देवस्य यद्वाहनं तद्वत् एव- उसके समान ही उसके जैसा ही, तद्रूपं विभ्राणा, तत्सदृशं एव शरीरविन्यासं धारयती, तद्वदेव च वाहनं आरूढ़वती तच्छक्तिः तस्य देवस्य शक्तिः असुरान् दैत्यान् योद्धुम् प्रहर्तुम् आययौ आजगाम।

व्याख्या- जिस देवता का जैसा रूप, जैसा वाहन, जैसी वेशभूषा और अलंकरण थे, उसी प्रकार का उसी देवता के समान रूप, वैसी ही वेष भूषा और उसी देवता के वाहन पर सवार होकर उन देवताओं की शक्तियाँ उस युद्धभूमि में दैत्यों से युद्ध करने के लिये आकर उपस्थित हुई।

हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः।

आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते। १४

अन्वय- हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः ब्रह्मणः शक्तिः आयाता सा ब्रह्माणी इति अभिधीयते।

शब्दार्थ- हंसैः युक्तो योजितो विमानः अग्रे उपरि हंसयुक्तविमानोपरि स्थिता हंसयुक्तविमानस्था पाठ मानकर अर्थ होगा हंसयुक्तविमाने स्थिता, साक्षसूत्रकमण्डलुः- अक्षाणां स्फटिक मणीनां सूत्रं जपमाला, अक्षसूत्रं च कमण्डलुश्च ताभ्यां सह वर्तमाना साक्षसूत्रकमण्डलुः, आयाता-आगता, ब्रह्माणी ब्रह्माणं आनयति चेष्टयतीति ब्रह्माणी अभिधीयते- कथ्यते।

व्याख्या- ब्रह्माणी शक्ति के विषय में कहते हैं कि वह जिस विमान में स्थित थी उसमें हंस जुते हुए थे, उस शक्ति के हाथों में अक्षसूत्र और कमण्डलु थे। इस रूप में जो शक्ति उपस्थित हुई उसे ब्रह्माणी कहा जाता है। अक्षसूत्र की व्याख्या स्फटिक मणि के दानों की माला के रूप में क़ी गई है। इसी प्रकार अन्यत्र इसका अर्थ रुद्राक्ष की माला किया जाता है। जबकि यह अक्षसूत्र अ से लेकर क्ष तक के वर्ण समाहार से सम्पूर्ण वर्णमयी माला है। सरस्वती विद्या की देवी है। अतः उसकी माला अक्षमाला का आशय इसी वर्णमयी माला से है।

माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी

महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखाविभूषणा। १५

अन्वय- वृषारूढा- वृषे वृषभे धर्मे च आरूढ़ा, त्रिशूलवरधारिणी त्रीणि शूलानि श्रृंगाणि अग्राणि यस्यायुधस्य तत् त्रिशूलं वरं श्रेष्ठम् त्रिशूलवरंधारयति बिभर्ति इति

त्रिशूलवरधारिणी। महाहिवलया- महान्तः अहयः नागाः सर्पाः वलयानि यस्याः सा महाहिवलया आवापकः परिहार्यः कटकोवलयोस्त्रियाम्। इति कोशात् वलयः कंकणः चन्द्ररेखाविभूषणा- चद्रस्य रेखाकला विभूषणं यस्याः सा चन्द्ररेखाविभूषणा, माहेश्वरी महेश्वरस्य इदं माहेश्वरी शक्तिः प्राप्ता आजगाम।

व्याख्या- असुरों से युद्ध करने के लिये महेश्वर महादेव की जो शक्ति देवी के समीप उपस्थित हुई वह शिव के समान ही वृभष-बैल पर सवार थी, वृष का अर्थ धर्म भी होता है। अतः धर्म पर सवार थी, वह हाथ में त्रिशूल धारण किए हुए थी, उसके मस्तक पर चन्द्रकला सुशोभित थी, उसके हाथों में कंकण के स्थान पर महासर्पो के वलय पड़े थे।

कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना।
योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी। १६

अन्वय- शक्तिहस्ता मयूरवरवाहना गुहरुपिणी अम्बिका कौमारी दैत्यान् योद्धुम् अभ्याययौ।

शब्दार्थ- शक्तिः आयुधं हस्ते यस्याः सा- शक्ति नामक आयुध को धारण करने वाली, मयूवरवाहना- मयूरेषु वरः श्रेष्ठः वाहनं यस्याः सा मयूरवरवाहना, गुहरूपिणी- गुहं कार्तिकेयं रूपयति दर्शयति सा गुहरूपिणी कौमारी-कुमारस्य शक्तिः वा कुमार संबंधिनी शक्ति अम्बिका एव स्कन्दशक्ति रूपेण मयूरं आरुह्य हस्ते शक्ति गृहीत्वा प्रहरणार्थ युद्धभूमिं आगता। अभ्याययौ आजगाम।

व्याख्या- शक्ति हाथ में लिए हुए और मयूर पर सवार कार्तिकेय के सदृश रूप वाली स्कन्द की शक्ति अम्बिका भी दैत्यों से युद्ध करने के लिये वहाँ आकर उपस्थित हुई।

तथैव वैष्णवीशक्तिः गरूडोपरि संस्थिता।
शंखचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ। १७

अन्वय- तथैव गरुडोपरिसंस्थिता शंखचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ता वैष्णवी शक्तिः अभ्युपाययौ।

शब्दार्थ- गरुडोपरिसंस्थिता- गरुडस्य उपरि संस्थिता, सम्यक् स्थिता आरुढ़ा शंखः पांचजन्यः चक्रम् सुदर्शनम्, गदा कौमोदकी, शार्ङ् ग धनुः खड्गः नन्दकः तत् शंखाद्यं हस्ते यस्या सा शंखचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ता वैष्णवी विष्णोः इयं वैष्णवी शक्ति अभ्युपाययौ आजगाम।

व्याख्या- जिस प्रकार ब्रह्मा, शिव और स्कन्द की शक्तियां वहां उन्हीं रूपों वाहनों

और वेशों में उपस्थित हुई थी, उसी प्रकार विष्णु की चारभुजा धारी शक्ति भी गरुड़ पर बैठकर और हाथों में शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और खड्ग लिये हुए असुरों से युद्ध करने के लिये आकर उपस्थित हुई।

विशेष- इस वैष्णवी शक्ति को शंख, चक्र, गदा, धनुष और तलवार ये पाँच आयुध धारण किए हुए बताया गया है। किसी ने यह मानकर कि धनुष के साथ बाण भी होगा ही, उसे षड्भुजा वाली माना है। मन्त्रमहोदधि में एक षड्भुजा देवी का भी ध्यान दिया गया है, अतः यह न हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। अन्य का कथन है कि खड्ग के साथ चर्म (ढाल) भी होना ही चाहिये, इस प्रकार सात आयुधों के लिये सात भुजाएँ होना चाहिये। उनका कहना यह है कि तब यह देवी अष्टभुजा वाली हो सकती है और एक हाथ खाली भी हो सकता है जैसा कि कौमारी और माहेश्वरी के वर्णन में आया है। किन्तु प्रश्न यह है कि विष्णु को सर्वत्र चार भुजा वाला बताया जाता है, इसलिये उनकी शक्ति भी चार भुजा वाली ही होना संगत जान पड़ता है। उसके लिए एक समाधान तो यह है कि सामान्यतया दो भुजाओं वाला सामान्य सैनिक भी दो से अधिक हथियार धारण किए देखा जाता है, इसलिए तलवार को बगल में लटकता और ढाल और तूणीर को कन्धे के पीछे मानकर देवी को चार भुजा वाली माना जा सकता है। किन्तु किसी ने अभ्युपाययौ का सन्धि विच्छेद कर अभ्युप और आययौ को पृथक् मानकर अभ्युप का अर्थबाहुमूल किया है। कोष को भी उद्ध्धृत किया है- अभ्युपं बाहुमूलं स्यात्। तदनुसार खड्ग बगल में लटकाये और तरकस को कन्धे के पीछे टांगे हुए यह चतुर्भुज मूर्ति हो सकती है।

यज्ञवाराहमतुलं रूपं या बिभ्रती हरेः।
शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम्। १८

अन्वय- हरेः अतुलं यज्ञवाराहरूपं विभ्रतीः या शक्तिः सा अपि वाराहीं तनुं बिभ्रती तत्र आययौ।

शब्दार्थ- यज्ञवाराहम्- यज्ञांगकल्पितं वराहाकारं बिभ्रतः धारयतः अतुलं अनुपमेयं वाराहीं वाराहस्य इयं वाराहीं तां तनुं बिभ्रती तनुं शरीरव्यक्ति धारयती सा वाराही शक्तिः अपि आययौ आजगाम।

व्याख्या- भगवान के यज्ञ वाराह के अनुपम रूप धारण करने वाले रूप की जो शक्ति वह भी ठीक उसी वाराह वेष में युद्ध के लिये उपस्थित हुई।

नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः।
प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः। १९

अन्वय- तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः सटा जटा केसरयोः इति कोशात् केसराणां

आक्षेपेण ससंरब्धकम्पनेन स्कन्धकेसराणां इतस्ततः चालनेन क्षिप्ता प्रेरिता तिरस्कृता विकीर्णा नक्षत्राणां संहतयः समूहा यया जिसके अयाल के विधूनन से नक्षत्रसमूह भी बिखरता सा दिखाई देने लगा। वपुः गात्रं धारयती नारसिंही- नृसिंहस्य इयं नारसिंही प्राप्ता- आगता।

व्याख्या- नृसिंह के समान ही शरीर धारण किए हुए नरसिंह की शक्ति नारसिंही भी अपने गर्दन के बालों के विधूनन से तारा मंडल को विचलित करती हुई वहाँ युद्ध भूमि में उपस्थित हुई।

वज्रहस्ता तथैवेन्द्री गजराजोपरि स्थिता।
प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा। २०

अन्वय- वज्रहस्ता वज्रं हस्ते यस्याः सा वज्रहस्ता, गजराजोपरि- गजानां राजा ऐरावतः गजराजः तस्य उपरि स्थिता आरूढा सहस्रनयना- सहस्रं नयनानि यस्याः सा यथा शक्रः येन प्रकरेण इन्द्रः तथैव तेनैब प्रकारेण ऐन्द्री इन्द्रस्य इयं ऐन्द्री शक्तिः तथैव- तद्वदेव ब्रह्मण्यादिदेव्यः तदित्थम्-ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही ऐन्द्री चेति सप्त देवशक्तयः कथिता।

व्याख्या- ब्रह्माणी आदि देवशक्तियों के समान ही इन्द्र की शक्ति ऐन्द्री हाथ में वज्र लिए और ऐरावत हाथी पर सवार जिसके हजार नेत्र थे, वह भी इन्द्र के वेष वाहन और आयुधसहित युद्धस्थल पर उपस्थित हुई।

ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः।
हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याह चण्डिकाम्। २१

अन्वय- ततः ताभिः देवशक्तिभिः परिवृतः ईशानः मम प्रीत्या असुराः शीघ्रं हन्यन्ताम् इति चण्डिकां आह।

शब्दार्थ- ततः अनन्तरम्, ताभिः - ब्रह्माण्यादि देवशक्तिभिः परिवृतः-परिवेष्टितः ईशानः महेश, प्रीत्या- स्नेहेन।

व्याख्या- जब वे सातों देवशक्तियाँ शिव के पास आकर उनके चारों ओर खड़ी हो गई तो उन्होंने चण्डिका से कहा कि मेरा प्रिय करने के लिये अब शीघ्र ही असुरों को मार डालिए।

ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा।
चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादनी। २२

अन्वय- ततः तु देवीशरीरात् अतिभीषणा अत्युग्रा शिवाशतनिनादनी चण्डिका शक्तिः विनिष्क्रान्ता।

शब्दार्थ- देवीशरीरात्- देव्या: चण्डिकाया: शरीरात् शरीरत: तस्मात् देवीशरीरात्, अतिभीषणा- अत्यर्थ भयंकरी, अत्युग्रा- अतिशयेन उग्रा रौद्रा शिवाशतनिनादनी- शिवानां श्रृगालीनां शतेन निनादिनी, शिवाशतस्य निनादैर्युक्ता, अनन्तश्रृगालानां नादेन युक्ता, शिवाशतेन सह निनदती इति वा- सैकड़ों श्रृगालियों के निनाद से युक्त, अथवा सैकड़ों सियारिनों के जैसा नाद करने वाली, जिसके साथ असंख्य सियारिनें घोर शब्द कर रही हों, जो अकेले ही सैकड़ों, श्रृगालियों जैसा घोर नाद करती हो, अथवा जो एक होते हुए भी ऐसा भयंकर गर्जन कर रही हो मानो सैकड़ों चण्डिका एक साथ गर्जन करती हों। कोश के अनुसार- शिवा झाटामलौषधौ तथा शिवा गौरीफेरवयो:। अत: शिवा का अर्थ चण्डिका और सियार दोनों ही हैं।

व्याख्या- इस प्रकार वे देवशक्तियाँ आकर जब शिव के पास खड़ी हो गई और शिव ने चण्डिका से असुरों को मारने के लिये कहा तो चण्डिका के शरीर से एक अन्य शक्ति प्रकट हुई जो अत्यंत भयंकर, उग्ररूप और सैकड़ों सियारों से घिरी हुई थी जो घोर शब्द कर रहे थे। अथवा वह चण्डिका ही इतना घोर शब्द कर रही थी जो असंख्य सियारों के रुदन सा ज्ञात होता था। अथवा उस अकेली चण्डिका का गर्जन इतना भयंकर था कि मानों एक नहीं सैकड़ों शक्तियाँ गरज रही हों।

सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता।
दूतत्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयो:। २३

अन्वय- अपराजिता सा धूम्रजटिलं ईशानं च आह- भगवन् शुम्भनिशुम्भयो: पार्श्वं दूतत्वं गच्छ।

शब्दार्थ- अपराजिता- अपरै: अजिता अपराजिता, अ-पराजिता-अवाप्तलोकोत्कर्षा वा, धूम्रजटिलं-धूम्रवर्णजटावन्तम्, दूतत्वं - दूतो वार्ताहर: तद्भावत्वम् वा हे दूत त्वं गच्छ दूतत्वं गच्छ का अर्थ दूतकार्य के लिये जाइये अथवा हे दूत आप जाइये। पार्श्व- समीप।

व्याख्या- उस अपराजिता देवी ने उस धूम्र वर्ण जटाधारी शिव जी से कहा कि हे भगवन् आप मेरी ओर से दूतकार्य करने के लिये मेरा सन्देश लेकर शुम्भ और निशुम्भ के पास जाइये।

ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च दानवावतिगर्वितौ।
ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिता:। २४

अन्वय- अतिगर्वितौ दानवौ शुम्भं निशुम्भं च ब्रूहि, युद्धाय समुपस्थिता: ये च अन्ये दानवा: च तान् ब्रूहि।

शब्दार्थ- अतिगर्वितौ- संजाताहंकारौ, युद्धाय-युद्धं कर्तुम, समुपस्थिता-संगताः, ब्रूहिउपदिश कथय।

व्याख्या- देवताओं पर विजय प्राप्त कर लेने के कारण शुम्भ और निशुम्भ को बहुत अभिमान हो गया है, उन दोनों से मेरी ओर से कहना, उन्हें समझाना तथा वहाँ लड़ने के लिये जो दूसरे दानव एकत्र हुए हैं उनको भी मेरी ओर से समझाकर कहना।

त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ। २५

अन्वय- यदि जीवितुं इच्छथ तर्हि यूयं पातालं प्रयात, इन्द्रः त्रैलोक्यं लभताम् देवाः हविर्भुजः सन्तु।

शब्दार्थ- प्रयात प्रगच्छत, पलायनं कुरुत, लभताम्-प्राप्नोतु, हविर्भुजः - यज्ञेषु हवींषि भुंजानाः।

व्याख्या- दुर्गा शिव के द्वारा दावनों के पास जो संदेश भेजना चाहती हैं, उसके विषय में कहती है कि उन दानवों से कहना कि यदि वे जीवित रहना चाहते हैं तो पाताल में जाकर रहें। इन्द्र त्रैलोक्य का स्वामी पूर्व की भांति रहे और देवता यज्ञ में अपने अपने भाग को हवि के रूप में प्राप्त कर सकें। कहने का तात्पर्य यह है कि इन्द्र सहित सभी देवताओं को दिए जाने वाले यज्ञ भाग को वे असुर स्वयं ग्रहण कर रहे हैं। अतः इन्द्र त्रैलोक्य का राज्य पुनः प्राप्त कर सके और देवता अपना प्राप्य यज्ञभाग पा सकें इसके लिये यह आवश्यक है कि तुम सभी यहाँ से पाताल जाकर रह सकते हो अन्यथा युद्ध में प्राण गंवाकर तुम्हें इन्द्र का राज्य और देवताओं का भाग दोनों से वंचित तो होना ही पड़ेगा।

बलावलेपादथ चेद्भवन्तो युद्धकांक्षिणः।
तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः। २६

अन्वय- अथ चेद्भवन्तः बलावलेपात् युद्धकांक्षिणः तदा आगच्छत मच्छिवाः वः पिशितेन तृप्यन्तु।

शब्दार्थ- बलावलेपात् - बलगर्वात्, दर्पोवलेपोहन्तापि इति कोशात्, अथचेत्- यदि मच्छिवाः - मदीयश्रृगालाः, पिशितेन-मांसेन, युद्धकांक्षिणः - युद्धाभिलाषिणः शिवा के दो अर्थ - चण्डिका और श्रृगाली यहाँ दोनों ही अभिप्रेत हैं। मम शक्तेः परिवाराः श्रृगालाश्च। कहा भी है - कुक्कुराश्च श्रृगालाश्च हरिणश्च तथा बयः प्रिया भवन्ति शक्तीनां भैरवाणां च वै तथा।

व्याख्या- यदि आप अपने बल के अभिमान में पड़कर युद्धकरने के ही इच्छुक हों तो आइये आपके मांस को खा खाकर मेरे श्रृगाल तृप्त होंगे। तात्पर्य यह कि यदि

आप अभिमान के कारण मेरी बात नहीं मानते और युद्ध करना ही चाहते हैं तो युद्ध में आप सबकी वह दुर्गति होगी कि आपकी बोटी बोटी सियार और कौवे नोच-नोच कर खायेंगे।

यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवःस्वयम्।
शिवदूतीति लोकस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता। २७

अन्वय- यतः तया देव्या स्वयं शिवः दौत्येन नियुक्तः ततः सा अस्मिन् लोके शिवदूती इति ख्यातिं आगता।

शब्दार्थ- यतः - यस्मात् कारणात्, तया - शक्त्या, दौत्येन-दूतकार्येण, दूतभावेन वा नियुक्तः अधिकृतः, ततः तस्मात् कारणात्, सा- चण्डिकायाः शक्तिः देवता, अस्मिन् लोकेमर्त्यलोके, ख्यातिं-प्रसिद्धिं आगता-प्राप्ता। शिवदूती- शिवः दूतो यस्याः सा

व्याख्या- देवी ने स्वयं ही शिव को दूतकार्य में लगाया था, इसी कारण वह इस लोक में शिवदूती के नाम से प्रसिद्ध हुई।

तेपि श्रुत्वा वचो देव्याः शर्वाख्यातं महासुराः।
अमर्षपूरिता जग्मुर्यतः कात्यायनी स्थिता। २८

अन्वय- ते महासुरा अपि शर्वाख्यातं देव्या वचः श्रुत्वा अमर्षपूरिताः सन्तः यतः कात्यायनी स्थिता तत्र जग्मुः।

शब्दार्थ- शुम्भादयः, शर्वाख्यातं, शर्वेण शिवेन आख्याताम् कथितम्, वचः- सन्देशवचनम् अमर्षापूरिताः - क्रोधाविष्टाः, यतः - यत्र, कात्यायनी - चण्डिका, उमा कात्यायनी गौरी इति कोशात्,

व्याख्या- उन महासुरों ने देवी के द्वारा भेजे गए संदेश को शिव जी के मुख से सुना तो उन्हें क्रोध आया और शिव को उस सन्देश का कोई उत्तर न देकर युद्ध करने के लिये सीधे वहीं जा पहुँचे जहाँ पर कि चण्डिका आसीन थी।

ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यर्ष्टिवृष्टिभिः।
ववर्षुरुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः। २९

अन्वय- ततः अमरारयः उद्धतामर्षाः प्रथमम् एव अग्रे शरशक्त्यर्ष्टिवृष्टिभिः देवीं ववर्षुः।

शब्दार्थ- प्रथमम् - आदौ, अग्रे - सम्मुखम्, अमरारयः - अमराणां देवानां अरयः शत्रवः देवरिपवः उद्धतामर्षाः उद्घतः प्रकटः अमर्षः क्रोधः यैःते उद्धतामर्षाः प्रकटितरोषाः, शरशक्त्यर्ष्टि वृष्टिभिः - शरःबाणः, शक्तिः शूलंः ऋष्टिःखड्गःशरश्च शक्तिश्च ऋष्टिश्च

शरशक्त्यषर्टय: तेषां वृष्टिभि: सम्पातै: निरन्तरपातै: बाण, भाला और तलवारों के निरन्तर प्रहारों से, देवीं चण्डिकां ववर्षु: आर्ष प्रयोग है ववृषु: होना चाहिये था।

व्याख्या- तब उन असुरों ने अत्यन्त क्रोध में भरकर अचानक पहिले ही देवी पर आक्रमण कर दिया और बाणों, बरछियों और तलवारों के प्रहार की वर्षा सी करके देवी को आच्छादित कर दिया।

सा च तान्प्रहितान्वाणान् शूलशक्तिपरश्वधान्।
चिच्छेद लीलयाध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभि:।। ३०

अन्वय- सा च तान् प्रहितान् बाणान् शक्तिशूलपरश्वधान् लीलया आध्मातधनुर्मुक्तै: महेषुभि: चिच्छेद।

शब्दार्थ- प्रहितान् चलाये गए, शूलश्च शक्तिश्च परश्वधश्च शूलशक्तिपरश्वधा: तान् शूलशक्तिपरशून् शूल शक्ति और फरसों को, लीलया- अनायासेन तमाशे जैसा, आध्मातं शाब्दिकं ज्यानिर्घोषिण शब्दवत् धनु: तेन मुक्तै प्रेरितै: महेषुभि: महद्भि: इषुभि: बाणै: धनुष की टंकार के साथ छोड़े गए महाबाणों से चिच्छेद - काट डाले।

व्याख्या- देवी ने उन असुरों के द्वारा चलाये गये उन बाणों, भालों और फरसों को अपने धनुष की प्रत्यंचा की टंकार करते हुए छोड़े गये विशाल बाणों से काट डाला। छिन्न-भिन्न कर डाला।

तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान्।
खट्बांगपोथितांश्चान्यान्कुर्वती व्यचरत्तदा। ३१

अन्वय- तदा काली तस्या: अग्रत:तथा अन्यान् शूलपातविदारितान् खट्वांगपोथितान् च कुर्वती व्यचरत्।

शब्दार्थ- तस्या: अग्रत: इसमें विसर्ग लोप के पश्चात् सन्धि नहीं होना चाहिये अत: पुन: दीर्घसन्धि आर्ष प्रयोग है। तस्या: का अर्थ चण्डिका और अग्रत: का अर्थ आगे होकर है। चण्डिका के ललाट से जो काली प्रकट हुई थी वही यहाँ कर्ता है। तस्यास्तथाग्रत: ऐसा भी प्रयोग हो सकता था। अन्यान्- दूसरे दानवों को, शूलकृतपात: प्रहार: तेन विदारितान् विच्छिन्नान् खट्वांगपोथितान् - खट्वांगो अस्थिपंजर: तेन आयुधेन पोथितान् मर्दितान् कुर्वती व्यचरत्- चचार।

व्याख्या- इस प्रकार उन चण्डिका के आगे ही उनके ललाट से उत्पन्न काली ने अनेक अन्य असुरों को भाले से विदीर्ण करके रणभूमि में गिरा दिया और कुछ को खट्वांग से मर्दन करते हुए युद्ध भूमि में विचरण करने लगी।

विशेष- खट्वांग के दो अर्थ होते हैं- एक तो नरकंकाल अथवा उसके मुण्ड को

लाठी के सिरे पर लगाने से बनता है। दूसरे प्रकार का खट्वांग वह दंड जिसके सिरे पर दो आँख वाला मुखाकृति चिन्ह होता है। अनेक साधु सन्यासी इस प्रकार का दण्ड लेकर चलते हैं। तीसरे प्रकार का खट्वांग चारपाई का पाया जिसकी मार से पोथित मर्दित चपटे करना सामान्य व्यवहार में कहा जा सकता है। बहुत सम्भव है कि प्राचीन काल में चारपाई के पाये का भी शस्त्र के रूप में उपयोग होता रहा हो जैसे कि मुसल को शस्त्रों में गिनाया ही जाता है।

कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान् हतौजसः।
ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून्येनयेन स्म धावति। ३२

अन्वय- ब्रह्माणी येन येन धावति स्म तत्र तत्र शत्रून् कमण्डलुजलाक्षेपात् हतवीर्यान् हतौजसः च अकरोत्।

शब्दार्थ- ब्रह्म की शक्ति ही ब्रह्माणी न कि ब्रह्म की स्त्री। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, ऐन्द्री, नारसिंही, नारायणी, वाराही ये सब उन उन देवताओं की शक्तियाँ हैं जो तद्नुरूप आयुधों के प्रयोग से असुर सेना का संहार करने वाली है। समष्टिरूपा देवी की ये व्यष्टि शक्तियाँ हैं अथवा यही देवी का परिवार है। जिनके देवी परितः चारों ओर वारित सुरक्षित है। येन मार्गेण जिस जिस मार्ग से धावति, दौड़ती है, कमण्डलुजलाक्षेपात् कमण्डलोः सकाशात् उद्धृतस्य जलस्य आक्षेपात् प्रक्षेपात् कमण्डलु के जल को चुल्लू में लेकर फेंकने मात्र से, हतवीर्यान्- वीर्य, बलं उत्साहश्च नष्टबलोत्साहान् हतौजसः - ओजोदीप्तो बलेपि स्यात् इसके अनुसार जिसका ओज बल और तेज नष्ट हो गया हो, स्म के योग में धावति भूतकाल का वाचक है।

व्याख्या- ब्रह्मा से उद्भूत शक्ति जिस जिस ओर वेग से चल देती उसी ओर शत्रुओं-असुरों पर अपने कमण्डलु से जल छिड़क कर उन्हें निष्क्रय और निश्चेष्ट कर देती थी। उनका बल नष्ट हो जाता था, उत्साह नष्ट हो जाता था और उनकी कान्ति भी नष्ट होकर निस्तेज हो जाते थे।

विशेष- दुर्गा सप्तशती मन्त्र शास्त्र का अनुपम ग्रन्थ है जिसमें आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक स्तर पर साधक को इसी शरीर से देवत्व की प्राप्त का क्रम एक साथ बताया गया है। पुराणों में जो ऐतिहासिक घटनाओं को खोजना चाहते हैं उनके लिए मानव जाति के उस आदि युग की कहानी है जिसमें नारी ही परिवार की प्रधान होती थी और गिरिकन्दराओं में निवास हुआ करता था। उनके अनुसार उस समय धातु के स्थान पर केवल पत्थर और हड्डियों के आयुध हुआ करते थे। पशुओं के सींग-शृंग से बनने वाला धनुष शार्ङ्ग और मानव की रीढ़ की हड्डियों से निर्मित धनुष अथवा

बकरे के पृष्ठवंश से निर्मित धनुष को पिनाक और अजगव कहा गया। नरमुण्डारोपित दण्ड को खट्वांग कहा गया। फरसा, गदा, कुण्डी आदि पत्थर के और वज्र हड्डियों से बनता था। ढाल को तो चर्म नाम ही दिया गया है। जो पिछले दिनों तक कछुवे की पीठ से बनाई जाती थी। धनुष और बाण लकड़ी के बनाये जाते थे, बाण को गति देने के लिए उसमें विशेष प्रकार से पक्षियों के पंख लपेटे जाते थे। प्रत्यंचा तो बकरी के तन्तुओं से बनती ही थी। जिसे तांत कहा जाता है। अत: इतिहास के क्रम में यह पाषाण युगीन मानव की गाथा है। देवी भागवत के अनुसार यदि इस कथा को समझने का प्रयास किया जाय तो यह स्मृतिकालीन परम्परा के अन्तर्गत नीतिविशारदों का प्रभाव, उत्साह और मन्त्र-मन्त्रणा समन्वित इस त्रिशक्तिसमन्वित अष्टप्रकृति-स्वामी, अमात्य, सुहृत्, कोश, राष्ट्र, दुर्ग, सेना और पौरश्रेणी- इन आठअंगों से युक्त राजनीति की कथा है।

साधना की दृष्टि से इसमें राजा सुरथ के राज्य च्युत होकर राज्य से भागकर वन में जाने और समाधि वैश्य का अपने स्त्री पुत्रों द्वारा तिरस्कार और घर से निकाल देने का वर्णन किया गया है। जो दोनों ही ऋषि सुमेधा के आश्रम में आकर मिलते हैं। दोनों में वैराग्य का नितान्त अभाव है और दोनों की मनोवृत्ति उन्हीं भोगों के प्रति उन्मुख है- आसक्त है जिनके मोह में पड़कर उन्हें इस प्रकार तिरस्कृत, लांछित और अपमानित होकर राज्य और घर से भागना पड़ा है। सुमेधा ऋषि उन्हें उस दुर्गा देवी की शरण में जाने का उपदेश देते हैं जिसकी कृपाकोर से उनके सभी प्रकार के क्लेशों का शमन सम्भव है। राजा देवी के विषय में जानने की जिज्ञासा, प्रकट करता है इस प्रकार दुर्गा सप्तशती के आख्यान का प्रारंभ होता है। कथा में आये सभी नाम सार्थक और सप्रयोजन हैं तथा कथा की प्रतीकात्मकता की ओर संकेत करते हैं। आयुधों के अनेक नाम और उनके प्रयोग एक ओर जहाँ लोकप्रचलित शस्त्रों के रणभूमि में प्रयुक्त होने की सूचना देते हैं, वहीं मन्त्रों के विशेष प्रयोग का भी स्पष्ट संकेत करते हैं। अत: ये आयुध जहाँ भौतिक धरातल पर भौतिक पदार्थों से निर्मित तो दूसरी ओर वे केवल मन्त्रात्मक हैं जिनके लिए लोहा, लकड़ी, चर्म, अस्थि आदि आवश्यक नहीं। इस सबके संबंध में विस्तार से विवेचन तो पृथक् अध्याय का विषय है, यहाँ केवल इतना ही कहना है कि हंससमारूढा ब्राह्मी का कमण्डलु का जल ही यहाँ संहारक बन गया है। जिस किसी असुर के ऊपर उस जल के छींटे पड़ जाते हैं वही हतवीर्य और हतौजस हो जाता है। तेज और बल से रहित हो जाता है। ऐसे प्रयोगों पर जनसामान्य को कम विश्वास हो सकता है और इसे देवशक्ति का विलास माना जा सकता है, किन्तु यह वर्तमान काल में भी सम्भव है जिसके लिए आज से लगभग पचास साठ वर्ष पूर्व की एक घटना का यहाँ उल्लेख करना अनुचित न होगा।

सनकेश्वर क्षेत्र सेंवढ़ा में उस समय एक ब्रह्मचारी जी कहीं बाहर से आकर ठहरे

हुए थे। वे बहुत ही उच्चकोटि के सन्त थे। उस समय सेंवढ़ा में भी अनेक विद्वान् तन्त्र, मन्त्र और ज्योतिष विद्या के ज्ञाता थे। उन्हीं में से एक श्री श्रीधर पाण्डेय थे जो बाह्याडम्बरयुक्त पण्डितम्मन्य थे। उन्हीं ने ब्रह्मचारी जी को एक सिद्ध मन्त्र के संबंध में बताया जिसे ब्रह्मचारी जी के कहने पर उन्होंने उस मन्त्र को लिखा दिया। पूरा मन्त्र लिख लिए जाने पर ब्रह्मचारी जी ने पाण्डेय जी से उस मन्त्र को दुबारा बोल देने के लिए कहा जिससे यदि लिखने में कहीं कोई भूल रह गई हो तो उसे सुधारा जा सके। मन्त्र लम्बा था और पाण्डेय जी उसे दुहरा न सके। इसलिए उनके पाखण्ड की पोल खुल गई। सभी के सामने इस प्रकार अपमानित हो जाने पर पाण्डेय जी ने उन ब्रह्मचारी को धोखा देना चाहा। नदी के तट पर ब्राह्ममुहूर्त में जब वे सन्ध्यावन्दन आदि कर रहे थे तो पाण्डेय जी विकराल वेष धारण कर भयंकर चीत्कार करते हुए उनके सामने प्रकट हुए। ब्रह्मचारी जी ने छलना के रूप में उसे प्रेतात्मा समझ कर अपनी अंजलि में जलभरकर अभिमन्त्रित किया, उधर पाण्डेय जी का सारा शरीर अग्निज्वालावलीढ होने के समान जलने लगा और वे अपनी असली बोली में चीख पड़े। ब्रह्मचारी जी ने अंजलि के उस जल को विसर्जित कर उन्हें डांटा कि तुमने यह क्या मूर्खता कर डाली, यदि एक क्षण की भी देर हो जाती और जल का छींटा तुम्हारें ऊपर पड़ जाता तो अकारण तुम्हारे प्राण चले जाते और मुझे अनजाने ब्रह्महत्या का पाप भोगना पड़ता। इस घटना से इतना तो सिद्ध हो जाता है कि कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान्हतौजसः केवल कपोलकल्पित पौराणिक कथा न होकर मन्त्रशक्ति का प्रयोग मात्र है। जो त्रिकाल सत्य है।

माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी
दैत्यान् जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना। ३३

अन्वय- अतिकोपना माहेश्वरी त्रिशूलेन दैत्यान् जघान, तथा वैष्णवी चक्रेण दैत्यान् जघान तथा कौमारी शक्त्या दैत्यान् जघान।

शब्दार्थ- महेश्वरस्य शक्तिः माहेश्वरी, विष्णोः शक्तिः वैष्णवी कुमारस्य गुहस्य स्कन्दस्य शक्तिः कौमारी, अतिकोपना-अत्युग्रक्रोधना, अतिकोपना तीनों ही शक्तियों का विशेषण है।

व्याख्या- महेश्वर शिव की शक्ति माहेश्वरी ने अत्यन्त कुपित होकर त्रिशूल से दैत्यों का वध कर डाला, वैष्णवी शक्ति ने चक्र से इसी प्रकार कौमारी ने शक्ति आयुध से असुरों का वध किया।

ऐन्द्री कुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः।
पेतुर्विदारिता भूमौ रुधिरौघप्रवर्षिणः। ३४

अन्वय- ऐन्द्रीकुलिशपातेन विदारिता रुधिरौघप्रवर्षिणः शतशः दैत्यदानवा भूमौ पेतुः।

शब्दार्थ- ऐन्द्री- इन्द्रस्य इयं शक्तिः ऐन्द्री, कुलिशपातेन-कुलिशं वज्रं तस्य पातेन प्रहारेण आघातेन शतशः सैकड़ों, विदारिता-विदीर्णाः, दैत्यदानवाः-दितेःअपत्यं दैत्यः और दानव दोनों ही पर्याय हैं, परन्तु यहाँ असुर जाति विशेष के अर्थ में दोनों का प्रयोग पृथक किया गया है, रुधिरौघप्रवर्षिणः रुधिराणां ओघाः प्रवाहः तेषां प्रवर्षाणि धारासम्पातानियेषां ते रुधिरौधप्रवर्षिणः - जिनके शरीर से रक्त की धारा बह रही है, पेतुः-पतिताः।

व्याख्या- इन्द्र की शक्ति के वज्रप्रहारों से छिन्न भिन्न शरीर वाले सैकड़ों असुर रक्त की धारा बहाते हुए धराशायी हो गए।

तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्टाग्रक्षतवक्षसः।
वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः। ३५

अन्वय- वाराहमूर्त्या तुण्डप्रहारविध्वस्ताः दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः चक्रेण च विदारिताः न्यपतन्।

शब्दार्थ- वाराहमूर्त्या- वराहस्य भगवतो विष्णोरियं मूर्तिः कायः सा वाराहमूर्तिः तया वाराहमूर्त्या, - वाराही चासौ मूर्तिश्च वाराहमूर्तिः, तुण्डप्रहारविध्वस्ताः-तुण्डेन वक्त्रेण यः प्रहारः आघातः तेन विध्वस्ताः थूथन के प्रहार से घायल वा मृत, दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः-बहिर्निगतस्य सूकरस्य द्वे दं ष्ट्रे तयोः अग्रभागो ताभ्यां क्षतानि वक्षांसि येषां ते बाहर निकले हुए दांतों से जिनके वक्ष विदीर्ण कर दिए गए, विदारिताः विदीर्णगात्राः न्यपतन्-भूमौ निपतितवन्तः।

व्याख्या- वाराही शक्ति ने अनेक असुरों को थूथन के प्रहार से मार डाला, बाहर निकली हुई डाढों से कुछ का वक्षस्थल फाड़ डाला कुछ को चक्र आयुध से क्षत-विक्षत कर दिया, इस प्रकार से राक्षस धराशायी हुए।

विशेष- विष्णु की वाराही शक्ति का आयुध चक्र है जिससे स्पष्ट होता है कि वराहमूर्ति का केवल मुख वराह के आकार का है शेष भाग सामान्य मनुष्य के सदृश ही है। इसी प्रकार वराह भगवान की आकृति चित्रित भी की जाती है।

नखैर्विदारितांश्चान्यान्भक्षयन्ती महासुरान्।
नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिगम्बरा। ३६

अन्वय- नादापूर्णदिगम्बरा नारसिंही अन्यान् महासुरान् नखैः विदारितान् भक्षयन्ती आजौ चचार।

शब्दार्थ- नादापूर्णदिगम्बरा-नादेन आपूरितं दिशां अन्तरालं यया वा दिशः अम्बरं

यया सा वा नादेन सिंहगर्जनेन आपूर्ण व्याप्तं दिशः अम्बरं आकाशं यया, जिसके सिंहनाद से दिशाएँ और आकाश प्रतिध्वनित हो रहे हैं जिसका गर्जन अन्तरिक्ष में समा नहीं रहा है, नृसिंहस्य शक्तिरियं नारसिंही, आजौ-रणे, महासुरान्-महतः असुरान् महासुरान्, भक्षयन्ती-खादयन्ती

व्याख्या- नृसिंह की शक्ति नारसिंही ने अपने सिंहनाद से दिशाओं और आकाश को प्रतिध्वनि से पूर्ण कर दिया। उसने अपने पंजों से असुरों को फाड़ डाला और उन्हें खाती हुई युद्धभूमि में विचरण करने लगी।

विशेष- नादापूर्णदिगम्बरा के स्थान पर नादापूर्णदिगन्तरा भी पाठ है। अर्थ वही है। नादापूरितदिङ् मुखा पाठ भी है। अर्थ समान ही है।

चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः।
पेतुर्विदारिता भूमौ तांश्चखादाथ सा तदा।३७

अन्वय- शिवदूत्या चण्डाट्टहासैः अभिदूषिताः असुराः विदारिताः भूमौ पेतुः अथसातान् तदाचखाद।

शब्दार्थ- शिवदूत्यभिदूषिताः-प्रापितकृत्याः प्रापितमूर्च्छा वा, चण्डाट्टहासैः-चण्ड उत्कष्टः सकोपो वा अट्ट उच्चैर्हासः तैः चण्डाट्टहासैः, विदारिता-विदीर्णीकृताः, पेतुः पतन्तिस्म।

व्याख्या- चण्डिका से निर्गत जिस शक्ति ने शिव को दूत बनाकर भेजा था उस शिवदूती के कृत्या प्रयोग से अभिभूत असुरों को उसीने अपने उग्र और उच्च हास से विदीर्ण करते हुए भूमि में गिरा दिया और भूमि में गिरे हुए उन असुरों को खा डाला।

विशेष- यहाँ भी किन्हीं भौतिक अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग न होकर केवल शिवदूती के ठठाकर हंसने मात्र से दैत्य अभिभूत होकर धराशायी हो रहे हैं, विदीर्ण हो रहे हैं।

इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान्।
दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः। ३८

अन्वय- इति क्रुद्धं मातृगणं विविधैः अभ्युपायैः महासुरान् मर्दयन्तं दृष्ट्वा देवारिसैनिकाः नेशुः।

शब्दार्थ- इति मातृगणम्-मातृणां ब्रह्माण्यादीनाम् गणं समूहं, अष्टमातृका अथवा सप्त मातृकाओं की गणना अनेक प्रकार से की जाती है, किन्तु यहाँ युद्ध में जिन मातृगण का उल्लेख किया गया है वे इस प्रकार हैं- ब्रह्माणी वैष्णवी रौद्री कौमारी शिवदूतिका। ऐन्द्री च नारसिंही च वाराही चाष्टमातरः। क्रुद्धं सकोपं महासुरान्- बड़े-बड़े दैत्यों को, विविधैः बहुविधैः अभ्युपायैः- संग्रामसाधनैः, देवारिसैनिकाः- देवानां अरयः

दैत्याः तेषां सैनिकाः नेशुःणश अदर्शने धातु लिट् बहुवचन- पलायिताः।

व्याख्या- यहाँ आठों मातृगणों का युद्धरत होना बताया गया है- ब्राह्मी, माहेश्वरी, वैष्णवी, कौमारी, ऐन्द्री, वाराही, नारसिंही और शिवदूती। इनके द्वारा युद्ध में बड़े-बड़े दैत्यों को भी इस प्रकार मातृगण के द्वारा अभूतपूर्व साधनों के प्रयोग से धराशायी होते देखकर अन्य साधारण सैनिक समरभूमि से भाग खड़े हुए।

विशेष- युद्ध सामान्यतया अस्त्र-शस्त्रों से लड़ा जाता है, उसी प्रकार के युद्ध करने के वे सभी दैत्य अभ्यस्त रहे। परन्तु कमण्डलु के जल से, वराह के थूथन से, कृत्याप्रयोग से, केवल ठठाकर हंसने से शत्रु समाप्त होते हों, वहाँ सैनिकों का सारा बल पौरुष और प्रशिक्षण व्यर्थ हो जाता है, इसलिए उनका युद्धस्थल से पलायन उचित ही है।

पलायनपरान्दृष्ट्वा दैत्यान्मातृगणार्दितान्।
योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः। ३९

अन्वय- रक्तबीजो महासुरः दैत्यान् मातृगणार्दितान् पलायनपरान् दृष्ट्वा क्रुद्धः योद्धुं अभ्याययौ।

शब्दार्थ- रक्तबीजः-रक्तं बीजं यस्य सः रक्तबीजः, मातृगणार्दितान्-ब्रह्माण्यादि मातृसमूहेन अर्दितान् हिंसितान् मातृगणार्दितान्, पलायनपरान्-रणस्थलात् अभिद्रुतान् समरपराङ् मुखान्। रक्तबीज के लिए- रक्तं बीजं कारणं यस्य सः रक्तं बीजं पुनःपुनः प्रादुर्भावकं यस्य वा, रक्तं बीजयति बीजंकरोति वा रक्तबीजः।

व्याख्या- रक्तबीज नामक महान् दैत्य ने जब देखा कि मातृसमूह के द्वारा युद्ध में असहाय अवस्था में मारे जाने के कारण उसकी सेना युद्ध से विमुख होकर भाग रही है तो वह अत्यन्त क्रोधित होकर युद्ध करन के लिए आगे आया।

रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः।
समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणो महासुरः। ४०

अन्वय- अस्य शरीरतः रक्तबिन्दुः यदा भूमौ पतति तदा तत्प्रमाणः महासुरः मेदिन्यां समुत्पतति।

शब्दार्थ- अस्य रक्तबीजस्य शरीरतः शरीरात् तत्प्रमाणः- तस्य रक्तबीजस्य शरीर प्रमाणकः मेदिन्याः इस पाठ के अनुसार मेदिनीं प्राप्य मेदिन्यां भूमौ समुत्पतति- उत्पन्न होता है। यहाँ क्रिया एकवचन अवश्य है किन्तु रक्तबीज के रक्त के जितने बिन्दु पृथ्वी पर गिरते उतने ही उसी के सदृश्य दैत्य पृथ्वी से उठकर खड़े हो जाते थे।

व्याख्या- रक्तबीज के शरीर से यदि एक बूंद भी रक्त भूमि पर गिरता था तो उसी के आकार का दूसरा रक्तबीज पृथ्वी से उठकर खड़ा हो जाता था। पृथ्वी से उसके

रक्त का संयोग होते ही उसी के समान आकार, बल और रूप वाला असुर पृथ्वी से उस बीज की बूंद से उत्पन्न हो जाता था।

विशेष- अध्यात्म पक्ष में यह रक्तबीज कामनाओं का प्रतीक है। मन ही कामनाओं को जन्म देने वाली भूमि है। इस मनरूपी भूमि पर कामना का बीज गिरते ही तत्काल दूसरी तीसरी कामना उत्पन्न होने लगती है। श्रीमद्भागवत में इसलिये कहा गया है। ''न जातु कामा: कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।'' कामनाओं की पूर्ति हो जाने से कामनाएँ शान्त नहीं होती, किन्तु कामनाओं की एक के बाद एक पूर्ति होने पर भी उसी प्रकार उत्पत्ति और वृद्धि होती रहती है जिस प्रकार अग्नि में आहुति पड़ने पर अग्नि की बुभुक्षा शान्त न होकर तीव्र ही होती जाती है। गीता में भी कहा गया है-

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।

रजोगुण से उत्पन्न होने वाला यह काम ही है क्रोध ही है जो अत्यन्त पेटू है, भोजन चाहे जितना दो उससे यह कभी तृप्त नहीं होता। मनुष्य इसके लिये बड़े से बड़ा पाप कर बैठता है। इसलिये यह महापापी है। जो इस साधना के क्षेत्र में महान शत्रु है। कामनाओं का उत्पत्ति स्थल मन है जिस प्रकार भूमि में बीज पड़ने से उसी के आकार प्रकार के अनेक बीज उत्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार मनोमय भूमि पर कामना का बीज पड़ने से उनकी पूर्ति होने पर भी एक श्रृंखला बन जाती है जिससे रक्तबीज की भांति यह कामनाओं का दैत्य हमें कहीं का नहीं रहने देता। यह बीज कितना भयंकर और कष्टकारक होता है तथा इसको कितनी भयंकर लड़ाई के बाद नष्ट किया जा सकता है। इसे इस अध्याय में रक्तबीज के रूपक द्वारा बताया गया है।

युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः।
ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत्।४१

अन्वय- महासुरः गदापाणिः सन् इन्द्रशक्त्या सह युयुधे। ततः ऐन्द्री च स्ववज्रेण रक्तबीजं अताडयत्।

शब्दार्थ- गदापाणि गदा पाणौ यस्य सः गदापाणिः, ऐन्द्री-इन्द्रस्य इयं शक्तिः देवता ऐन्द्री।

व्याख्या- उस रक्तबीज ने गदा हाथ में लेकर इन्द्र की शक्ति के साथ युद्ध आरंभ किया। तब उस इन्द्र की शक्ति ने अपने वज्र के द्वारा उस पर प्रहार किया।

विशेष- कामनाओं का उत्पत्तिस्थान मन है। मन इन्द्रियों को प्रेरित करता है जिससे वे कामनापूर्ति के लिये प्रयत्न करती हैं। इन्द्रियों का देवता इन्द्र और उसकी क्रियाशक्ति

का ही नाम ऐन्द्री है। यहाँ कामना के रक्तबीज के साथ इन्द्रियों के द्वन्द्व का ही चित्रण किया गया है। इसीलिये इन्द्र का आयुध वज्र होते हुए भी यहाँ उसके साथ स्व विशेषण लगाकर स्ववज्रेण कहा गया है। कठोपनिषद्में कहा गया है-

आत्मानं रथिनं विद्धिशरीरं रथमेव तु।
बुद्धि तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।

"यह शरीर रथ है, आत्मा रथी है, बुद्धि सारथि है, इन्द्रियां ही इस इस रथ को खींचने वाले अश्व हैं और मन ही इन घोड़ों की लगाम है। इसे ही रक्तबीज के युद्ध में कथा के रूप में बताया गया है। संकेत सभी विद्यमान है। यही आर्षकाव्य की विशेषता है।"

कुलिशेनाहतस्याशु बहु सुस्रावशोणितम्।
समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः। ४२

अन्वय- कुलिशेन-आहतस्य तस्य शरीरतः आशु बहु शोणितं सुस्राव ततः तद्रूपाः तत्पराक्रमाः योधा समुत्तस्थुः।

शब्दार्थ- कुलिशेन-वज्रेण आहतस्य- ताडितस्य, तस्य- रक्तबीजस्य शरीरतः आशुशीघ्रं शोणितम्- रक्तम् सुस्राव-भूमौ पपात, प्रवहतिस्म ततः- रक्तबीजस्य रक्त तः तद्रूपा तस्य रक्तबीजस्य रूपं आकृतिः येषां ते, तत्पराक्रमाः-तस्य रक्तबीजस्य इव पराक्रमों येषां ते तत्पराक्रमाः समुत्तस्थुः-समुत्थिताः।

व्याख्या- इन्द्रशक्ति के वज्र से घायल हुए रक्तबीज के शरीर से शीघ्र ही बहुत अधिक रक्त बहने लगा। उस रक्त से उसी के समान आकृति और बल पराक्रम वाले अनेकों योधा उठकर खड़े हो गए।

यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः।
तावन्तः पुरुषाः जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः। ४३

अन्वय- तस्य शरीरात् यावन्तः रक्तबिन्दवः पतिताः तावन्तः तद्वीर्यबलविक्रमाः पुरुषाः जाताः।

शब्दार्थ- यावन्तः यत्परिमाणाः, यावत्संख्याकाः, तावन्तः- तत्परिमाणाः, तावत्संख्याकाः, तद्वीर्यबलविक्रमाः- तद्वीर्यः च तत्तुल्यबलाः, तद्विक्रमाश्च, वीर्य-वीरकर्म प्रभावः वा, बलं शरीरं विक्रम उत्साहः उसी के समान प्रभावशाली बलवान और उत्साह वाले।

व्याख्या- उस रक्तबीज के शरीर से भूमि पर जितना भी रक्त गिरा जितनी भी

उसकी रक्त की बूंदे गिरी, उतनी ही संख्या में उसी के समान बलवीर्यपराक्रम वाले रक्तबीज पृथ्वी से उठकर खड़े हो गए।

ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा, रक्तसम्भवा:।
समं मातृभिरत्युग्रशस्त्रपातातिभीषणम्। ४४

अन्वय- तत्र रक्तसंभवा ये पुरुषा, ते अपि मातृभि: समं अत्युग्रशस्त्रपातातिभीषणं युयुधु:।

अत्युग्रं शस्त्रपातातिभीषणम् ऐसा भी पाठ है।

शब्दार्थ- तत्र-देवीदानवसंग्रामे, रक्तसंभवा:-रक्तबीजस्य रक्तपातेन उत्पन्ना, समं-साधर्म्, सह साथ, अत्युग्रं- बड़े वेग से क्रियाविशेषण, अथवा शस्त्र का विशेषण विकट हथियारों के प्रहार से अति भयंकर भीषणम्- भयंकरम्।

व्याख्या- समरभूमि में रक्तबीज के रक्त से उत्पन्न वे दैत्य भी मातृगणों के साथ युद्ध में प्रवृत्त होकर भयंकर शस्त्रों से विकट प्रहार करने लगे।

पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा।
ववाह रक्तं पुरुषा: ततो जाता: सहस्रश:। ४५

अन्वय- पुन: च ऐन्द्र्या शक्त्या कृतेन वज्रपातेनअस्य शिर: यदा क्षतम् तत: रक्तं ववाह तत: सहस्रश: पुरुषा: जाता:।

शब्दार्थ- पुन: च पुन: अपि, ऐन्द्रया शक्त्या कृतेन वज्रपातेन वज्रप्रहारेणअस्य रक्तबीजस्य, शिर: मस्तकं यदा क्षतम् आहतम् भग्नं अभूत् तत: वज्रप्रहारादाहतात् शिरस: रक्तं ववाह प्रवहतिस्म, तत: तस्माद्रक्तप्रवाहात् सहस्रश: पुरुषा: दैत्या: जाता: समुत्पन्ना:। रक्तं उवाह होना चाहिए था उसके स्थान पर सम्प्रसारण का अभाव कर ववाह आर्ष प्रयोग ही माना जायेगा।

व्याख्या- ऐन्द्री शक्ति ने जब उस रक्तबीज पर वज्र से प्रहार किया तो उसका मस्तक फट गया जिससे बहुत सा रक्त का प्रवाह चल पड़ा। उस रक्त के प्रवाह से रक्तबीज के समान ही अनेक दैत्य उत्पन्न हो गए हजारों दैत्य पैदा हो गए।

वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजघान ह।
गदया ताडयामास ऐन्द्रीतमसुरेश्वरम्। ४६

अन्वय- समरे वैष्णवी एनं चक्रेण अभिजघान गदया ताडयामास च ऐन्द्री तम् असुरेश्वरम् गदया ताडयामास।

अथवा- ऐन्द्रीतं एनं असुरेश्वरंवैष्णवी समरे चक्रेण अभिजघान गदया ताडयामास च

शब्दार्थ- समरे युद्धे वैष्णवी शक्तिः देवता तम् एनं रक्तबीजदैत्यम् चक्रेण अभिजघान-जिहिंस, ऐन्द्री इन्द्रस्य शक्तिः देवता तम् असुरेश्वरम् गदया ताडयामास।

अथवा- गदया वाचा ताडयामास-भर्त्सयामास। यदि यह मानें कि परास्त्रेणापि युध्यन्ते के अनुसार ऐन्द्री ने उसे गदा से प्रहार किया। यह अर्थ अधिक समीचीन जान पड़ता है कि ऐन्द्री शक्ति की ओर से मुड़कर वैष्णवी शक्ति की ओर गया तो एन्द्रीतः- ऐन्द्रया इतः ऐन्द्रीं परित्यज्य गतः तं ऐन्द्रीतम् असुरेश्वरं दैत्याधिपतिं वैष्णवी चक्रेण अभिजघान गदया ताडयामास च।

व्याख्या- वैष्णवी शक्ति ने उस दैत्यराज रक्तबीज पर चक्र से प्रहार किया और ऐन्द्री शक्ति ने उस पर गदा से प्रहार किया। यहाँ विसंगति यह प्रतीत होती है कि इन्द्राणी अथवा ऐन्द्री शक्ति का आयुध तो वज्र है फिर गदा से प्रहार क्यों कर कहा गया। उसका एक समाधान तो यह है कि प्रायः दूसरों के आयुध लेकर भी युद्ध किया जा सकता है। गदया ताडयामास का अर्थ कठोर शब्दों में भर्त्सना की ऐसा भी होता है। तीसरा अर्थ यह है कि ऐन्द्री शक्ति की ओर से मुड़कर जब वह दैत्य रक्तबीज वैष्णवी देवी से युद्ध करने के लिए पहुँचा तो वैष्णवी देवी ने उस पर चक्र से प्रहार किया और गदा से भी प्रहार किया अथवा कठोर शब्दों में भर्त्सना की।

वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्त्रावसम्भवैः।
सहस्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः। ४७

अन्वय- वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्त्रावसम्भवैः तत्प्रमाणैः सहस्रशः महासुरैः जगद्व्याप्तम्।

शब्दार्थ- विष्णोः इदं वैष्णवी शक्तिः तस्या चक्रप्रहारेण भिन्नस्य विदारितस्य रक्तबीजस्य रक्तप्रवाहेण समुत्पन्नैः तत्प्रमाणैः तस्य रक्तबीजस्य परिमितैः सहस्रशः सहस्रं सहस्रंः वा सहस्रेण सहस्रशः महासुरैः प्रबल दैत्यैः जगद्भुवनं व्याप्तम् व्याकीर्णम्।

व्याख्या- वैष्णवी शक्ति ने अपने चक्र से उस रक्तबीज का जब सिर काट डाला तो उसके मस्तक फटने से जो रक्त की धारा बह चली उससे उसी रक्तबीज के आकार प्रकार के विशालकाय हजारों ही दैत्य उत्पन्न हो गए जिससे कि सम्पूर्ण संसार भर गया। वे दैत्य समस्त लोकों में छा गए।

शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना।
माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम्। ४८

अन्वय- कौमारी शक्त्या वाराही च असिना तथा माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरं जघान।

शब्दार्थ- कुमार कार्तिकेय की शक्ति कौमारी ने रक्तबीज पर शक्ति नामक आयुध से प्रहार किया, वराह की शक्ति वाराही ने उसी रक्तबीज पर तलवार से प्रहार किया। यहाँ यह शंका हो सकती है कि भगवान आदि वराह का अस्त्र तो उनकी विकराल डाढें ही है फिर यहाँ वाराही शक्ति के द्वारा तलवार से वार करना कहा गया। उसका समाधान यही है कि वाराही शक्ति की मुखाकृति मात्र वराह की है, शेष कर चरण आदि सामान्य ही हैं।

व्याख्या- उस महान दैत्य रक्तबीज पर कौमारी ने शक्ति नामक आयुध से प्रहार किया, वाराही शक्ति ने तलवार से प्रहार किया और माहेश्वरी शक्ति ने त्रिशूल से वार किया। अपने अपने अस्त्रों से उसका वध करने का प्रयत्न किया।

स चापि गदया दैत्याः सर्वा एवाहनत् पृथक्।

मातृः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः। ४९

अन्वय- स च अपि रक्तबीजः महासुरः दैत्यः कोपसमाविष्टः सर्वा एव मातृः गदया पृथक् अहनत्।

शब्दार्थ- स च अपि- उस रक्तबीज ने भीमहासुरः और दैत्यः शब्द समानार्थक होने के कारण पुनरुक्ति प्रतीत होती है। जिसका समाधान इस प्रकार किया जा सकता है कि महासुर शब्द साभिप्रायस विशेषण के रूप में प्रयुक्त है जिसका विग्रह होगा- महांश्चासौ असुरश्चेति न पौनरुक्त्यम् अथवा महान्तः असुराः यस्य सः महासुरः अथवा सबसे अच्छा अर्थ होगा महान्तो असुराःयस्मात् जिससे कि महान् असुर उत्पन्न होते हैं। अहनत् आर्ष प्रयोग है अहन् होना चाहिए।

व्याख्या- महान असुर जिससे उत्पन्न हो रहे थे अथवा जिसकी सेना में महान असुर थे, उस रक्तबीज ने भी अत्यन्त कुपित होकर कौमारी, वाराही और माहेश्वरी शक्तियों पर जिन्हें कि मातृगण कहा गया है- गदा से प्रत्येक पर पृथक-पृथक रूप से प्रहार किया। रक्तबीज अकेला था, फिर भी उसने इन शक्तियों में से प्रत्येक पर गदा से प्रहार किया।

तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि।

पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ् शतशोऽसुराः।५०

अन्वय- शक्तिशूलादिभिः बहुधा आहतस्य तस्य वै यो रक्तौघः पपात तेन शतशः असुराः आसन्।

शब्दार्थ- शक्तिशूलादिभिः शक्त्यः शूलाश्च आदौ येषां तैः शक्तिशूलादिभिः शक्तीनां देवीनां शूलादीनि आयुधानि तैः तान्यायुधानि च यथा ब्रह्माण्या आयुधं शत्रुघ्नो मन्त्रः यथोक्तम् कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान्हतौजसः। वैष्णव्याश्चक्रम्, माहेश्वर्याः शूलम्

कौमार्याः शक्तिः, ऐन्द्रयाः कुलिशम्, वाराह्या श्चक्रमुखनखपजरश्च, शिवदूत्याः शूलं पिनाकाख्यं धनुश्च, काल्याः, शूलं चक्रं च। बहुधाः- बहुभिः, प्रकारैः, आहतस्य ताडितस्य, रक्तौध, रक्तस्य प्रवाहः, तेन रक्तप्रवाहेन, शतशः उपलक्षणमात्रम् तेन सहस्त्रशः लक्षशः कोटिशश्च बहुसंख्याकाः असुराः-रक्तबीजासुरसदृशपरिमाणकायपराक्रमाः आसन् समभवन्।

व्याख्या- रक्तबीज पर जब इस प्रकार शक्ति शूल आदि आयुधों के द्वारा प्रहार किए गये, अथवा ब्राह्मी, माहेश्वरी, वैष्णवी, वाराही और कौमारी आदि शक्तियों ने प्रहार किए तो उन प्रहारों के कारण क्षत होने पर उसके शरीर से जो रक्त के पनाले बहे और वह रक्त भूमि पर गिरा उससे सैकड़ों, हजारों, लाखों की संख्या में रक्तबीज के समान ही आकार, बल और पराक्रम वाले दैत्य उत्पन्न हो गए।

तैश्चासुरासृक्संभूतैरसुरैः सकलं जगत्।
व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम्।५१

अन्वय- असुरासृक्संभूतैः तैः असुरैः सकलं जगत् व्याप्तं आसीत्, ततः देवाः उत्तमं भयं आजग्मुः।

शब्दार्थ- असुरासृक्संभूतैः असुरस्य रक्तबीजस्य यदसृक् रुधिरं तस्मात् संभूतैः समुत्पन्नैः तैः असुरैः, सकलं समस्त जगत् त्रैलोक्यं व्याप्तं आसीत् भर गया।

व्याख्या- उस रक्तबीज के रुधिर के भूमि पर गिरने से उस रक्त से रक्तबीज के समान ही अनेकों असुर उत्पन्न हो गए जिससे कि तीनों लोक ही भर गए। सर्वत्र वही असुर दिखाई देने लगे। इस कारण देवता अत्यंत ही भयभीत हो उठे। कहाँ एक रक्तबीज से युद्ध करना कठिन हो रहा था और अब जिधर देखो उधर ही रक्तबीज ही रक्तबीज दिखाई दे रहे थे जिसके कारण देवता अत्यन्त ही डर गए।

तान्विषण्णान् सुरान्दृष्ट्वा चण्डिका प्राहसत्वरा।
उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु। ५२

अन्वय- चण्डिका सुरान् विषण्णान् दृष्ट्वा सत्वरा सती तान् प्राह (मा विषीदत इति) चण्डिका कालीं उवाच चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु।

अन्यथा अन्वय- चण्डिका तान् सुरान् विषण्णान् दृष्टवा प्राह- सत्वरा सतीकालीं उवाच हे चामुण्डे वदनं विस्तीर्णं कुरु।

शब्दार्थ- विषण्णान् विषीदतः विषाद करते हुए, सत्वरा-त्वरमाणा, प्राह-कहा, क्या कहा इसके लिए कहते हैं कि मा विषीदत इति, आप लोग दुखी न हों, उवाच-कहा, विस्तीर्णम्-विस्तारयुक्तम्, वदनम् मुखम्।

प्राहसत्वरा-युद्ध के लिए सत्वरा, प्राहसत्-ठठाकर हंसीत्वरा त्वरया।

व्याख्या- यहाँ प्राह सत्वरा का पदच्छेद भिन्न होने पर अर्थ में भिन्नता होती है। देवताओं ने जब देखा कि इस प्रकार रक्तबीज संसार भर में भर गए हैं तो वे बहुत दुखी हुए। उन्हें इस प्रकार दुखी देखकर देवी ठठाकर हंसने लगी और काली से कहा कि हे चामुण्डे अपना मुख और अधिक विस्तीर्ण कर लो। अथवा युद्ध में शीघ्रता करने की दृष्टि से कहा। प्राह का अर्थ यहाँ कहा भी है, सत्वरा का अर्थ शीघ्रता करते हुए भी है और प्राह का अर्थ युद्ध भी है। यदि प्राहसत् त्वरा ऐसा पदच्छेद किया जाय तो अर्थ होगा कि प्रकर्षेण अहसत् बड़े जोर से हंसने लगी। यहाँ पर ये सभी अर्थ अभीष्ट हैं।

मच्छस्त्रपातसंभूतान् रक्तबिन्दून्महासुरान्।
रक्तबिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिता।५३

अन्वय- मच्छस्त्रपातसंभूतान् रक्तबिन्दोः रक्तबिन्दून् महासुरान् त्वं वेगिता अनेन वक्त्रेण प्रतीच्छ।

शब्दार्थ- मच्छस्त्रपातसंभूतान् मम शस्त्राणां पातेन प्रहारेण रक्तबिन्दोः सम्भूतान् समुत्पन्नान् रक्तबीजान् महासुरान् रक्तबीज सदृशान् तादृशान् अन्यान् असुरान् दैत्यान् भूपतनात् प्राक् एव त्वं त्वरावती सती अनेन विस्तीर्णमुखेन प्रतीच्छ गृहाण।

व्याख्या- चण्डिका देवी ने पिछले मन्त्र में काली से अपेक्षा की थी कि वे अपना मुख विस्तृत कर लें। अब उसका प्रयोजन बताया जा रहा है कि मैं रक्तबीज पर जब शस्त्रों से आघात करूँगी तो उसके शरीर से रक्त के बिन्दु निकल कर पृथ्वी पर गिरते ही उसी के समान आकार और बल वीर्य वाले महान असुर उत्पन्न हो जायेंगे, इसलिए उसके बिन्दु पृथ्वी पर गिरने के पहिले ही आप अपने मुख को विस्तृत कर शीघ्रता के साथ उन रक्त बिन्दुओं का पान कर लें।

भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान् महासुरान्।
एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति। ५४

अन्वय- तदुत्पन्नान् महासुरान् भक्षयन्ती रणे चर एवं एष दैत्यः क्षीणरक्तः सन् क्षयं गमिष्यति।

शब्दार्थ- तदुत्पन्नान्-तस्मात् रक्तबीजात् समुद्भूतान् रक्तबीज के रक्त बिन्दुओं से उत्पन्न होने वाले, भक्षयन्ती- खादयन्ती, रणे संग्रामे चर विहर, एवं प्रकारेण त्वयि भक्ष्यमाणे सति क्षीण रक्तः सन् एष रक्तबीजः नाशं प्राप्स्यति मृत्युं प्राप्स्यति।

व्याख्या- उस रक्तबीज के रक्त से उत्पन्न होने वाले महान दैत्यों को भूमि पर

अवतरित होने के पूर्व ही आप भक्षण करती रहें, इस प्रकार जब यह दैत्य रक्त रहित हो जायेगा तभी मृत्यु को प्राप्त होगा।

भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे।

अन्वय- एवं प्रकारेण त्वया भक्ष्यमाणा अपरे च उग्राः नउत्पत्स्यन्ति।

शब्दार्थ- यहाँ उत्पत्स्यन्ति आर्ष प्रयोग है उत्पत्स्यन्ते होना चाहिए। उग्राः क्रूराः भयंकराः

व्याख्या- इस प्रकार आपके द्वारा भक्षण कर लिए जाने पर अन्य उग्र दैत्य उत्पन्न न होंगे।

इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम्।
मुखेन काली जगृहे रक्तबीजजस्य शोणितम्। ५५

अन्वय- देवी तां इति उक्त्वा ततः तम् शूलेन अभिजघान काली मुखेन रक्तबीजस्य शोणितं जगृहे।

शब्दार्थ- इति एवं प्रकारेण उक्त्वा कथयित्वा देवी तं शूलेन अभिजघान, काली मुखेन रक्तबीजस्य शोणितं जगृहे। चण्डिका इत्थं कुरु इत्थं कुरु एवं प्रकारेण कालीं आदिश्य तं रक्तबीजं शूलेन त्रिशूलेन अभिजघान ताडयामास काली च मुखेन रक्तबीजस्य शोणितं पपौ।

व्याख्या- देवी चण्डिका ने इस प्रकार काली को समझाया कि तुम ऐसा ऐसा करना फिर अपने शूल से रक्तबीज पर प्रहार किया, उस प्रहार से रक्तबीज के शरीर से जो शोणित रक्त बहा उसे काली ने मुख से पान कर लिया भूमि पर नहीं गिरने दिया जिससे उसके रक्त से अन्य दैत्य उत्पन्न न हो सके।

ततोसावाजघानाथ गद्या तत्र चण्डिकाम्।
न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोल्पिकामपि। ५६

अन्वय- तत्र ततः असौ गदया चण्डिकां आजघान अथ च गदापातः अस्याः अल्पिकाम् अपि वेदनां न चक्रे।

शब्दार्थ- तत्र रणे देव्या शूले प्रयुक्ते सति ततः तदनन्तरं असौ रक्तबीज चण्डिकां गदया आजघान ताडयामास।

व्याख्या- तब संग्राम में उस रक्तबीज ने चण्डिका देवी पर गदा से प्रहार किया किन्तु उस गदा के प्रहार से देवी को किंचिन्मात्र भी पीड़ा का अनुभव न हुआ।

तस्याहतस्य देहात्तु बहुसुस्राव शोणितम्।
यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति। ५७

अन्वय- आहतस्य तस्य देहात् यतः बहु शोणितं सुस्राव ततः तद्शोणितं चामुण्डा वक्त्रेण सम्प्रतीच्छति।

शब्दार्थ- देव्या चण्डिकया आहतस्य तस्य रक्तबीजस्य देहात् शोणितं रक्तं सुस्राव स्रवतिस्म यतः यतः यत्र तस्य शोणितं सुस्राव तत्र तत्र चामुण्डा पिबतिस्म।

व्याख्या- देवी चण्डिका के द्वारा आहत- घायल होने पर उस रक्तबीज के शरीर से जहाँ जहाँ से रक्त निकला, देवी ने वहीं अपनी जीभ लगाकर उस रक्त को पी डाला।

मुखे समुद्गता येस्या रक्तपातान्महासुराः।
तांश्चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम्। ५८

अन्वय- अस्या मुखे रक्तपाताद्ये महासुराः समुद्गताः अथ चामुण्डा तान् चखाद तस्य शोणितं च पपौ।

शब्दार्थ- अस्या देव्या मुखेरक्तपाताद्ये महासुराः समुद्गताः जाता उत्पन्नाः अथ चामुण्डा तान् चखाद तस्य रक्तबीजस्य च रक्तं पपौ पिबतिस्म।

व्याख्या- चामुण्डा के मुख में पड़कर रक्तबीज के रक्त से जो दैत्य उत्पन्न हुए, उन्हें चण्डिका देवी ने चबा डाला और इस प्रकार रक्तबीज का समस्त रक्त पान कर लिया।

देवी शूलेन वज्रेण बाणैरसिभि ऋष्टिभिः।
जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम्। ५९

अन्वय- देवी चामुण्डापीतशोणितम् तं रक्तबीजं शूलेन चक्रेण वज्रेण इति पाठान्तरम्असिभिः ऋष्टिभिः जघान।

शब्दार्थ- चामुण्डापीतशोणितम् चामुण्डया पीतं शोणितम् यस्य सः तम्-चामुण्डा पीतशोणितम्- चामुण्डा ने जिसका रक्त पी डाला है, उस रक्तबीज को देवी ने त्रिशूल से चक्र से अथवा वज्र से, तलवारों से दुधारी तलवारों तेगाओं से मार डाला।

व्याख्या- जब देवी चामुण्डा ने उस रक्तबीज का पूर्व बताये अनुसार शरीर का सारा रक्त पी डाला तो देवी चण्डिका ने उसे बाणों, तलवारों और दुधारी तलवारों के प्रहार से मार डाला।

यहाँ यह शंका हो सकती है कि बाणों का बहुवचन का प्रयोग तो उचित है किन्तु शूलेन वज्रेण एकवचन के प्रयोग होते हुए भी असिभिः ऋष्टिभिः इनके बहुवचन प्रयोग का क्या अभिप्राय हो सकता है। इसका सामान्य समाधान यही है कि बाणों के समान ही तलवारों के अनेक प्रहार करके रक्तबीज को देवी ने मार डाला।

स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसंघसमाहतः।

नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः। ६०

अन्वय- हे महीपाल स रक्तबीजः महासुरः शस्त्रसंघसमाहतः अतः नीरक्तः सन् महीपृष्ठे पपात।

शब्दार्थ- शस्त्रसंघसमाहतः में पाठभेद के अनुसार शस्त्रसंहतितः हतः और शस्त्रसंहति माहतः पाठान्तर मिलते हैं। अर्थ प्रायः समान ही है। शस्त्राणां संघेन समूहेन समाहतः, शस्त्रों के समूह द्वारा मारा गया, नीरक्तः रक्तेन रहितः महीपृष्ठे भूमौ भूम्युपरि पपात- गिर गया, धराशायी हुआ।

व्याख्या- सुमेधा ऋषि राजा सुरथ को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे महीपाल, चामुण्डा के द्वारा इस प्रकार रक्तपान कर लेने पर जब रक्तबीज के रक्त की अन्तिम बूंद तक समाप्त हो गई तब चण्डिका देवी के शस्त्रसमूह के लगातार प्रहारों से आहत होकर वह निष्प्राण होकर भू पर गिर गया।

ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशाः नृप। ६१

हते मातृगणस्तस्मिन्ननर्तासृङ् मदोद्धतः। ६२

अन्वय- हे नृप ततः ते त्रिदशाः अतुलं हर्षं अवापुः तस्मिन् हते मातृगणः असृङ्मदोद्धतः ननर्त।

शब्दार्थ- ततः रक्तबीजवधानन्तरं ते विषण्णाः त्रिदशाः देवाः अतुलं अपरिमितं हर्षं आनंदं अवापुः प्राप्तवन्तः। तस्मिन् रक्तबीजेहते सति मातृगणः असृङ्मदोद्धतः असृजो यो मदः तेन उद्धतः तरलः अथवा तेषाम् रक्तबीजादीनां रुधिर पानेन मदोत्कटः मत्तः मदघूर्णितः मातृगणः आनन्दतः ननर्त।

व्याख्या- सुमेधा ऋषि राजा सुरथ से कहते हैं कि हे नृप वे देवगण जो अनेक रक्तबीजों के उत्पन्न होने से अत्यन्त दुखी हो रहे थे अब उस असुर के मारे जाने पर अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे तथा उस रक्तबीज के मारे जाने पर ब्राह्मी वाराही आदि सभी मातृगण रुधिरपानमदोत्कट मद्यपान से मस्त होकर आनन्द से नाचने लगी।

इति श्री मार्कण्डेय पुराणे देवीमाहात्म्ये रक्त बीज वधो नामाष्टमोऽध्यायः

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराण के देवी-माहात्म्य प्रकरण में रक्तबीजवध नामक अष्टम अध्याय पूरा हुआ।

●●●

नवम अध्याय

राजोवाच

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन्भवता मम।

देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम्। १

अन्वय- राजा उवाच- हे भगवन् भवता मम रक्तबीजवधाश्रितम्इदं विचित्रं देव्याः चरित- माहात्म्यं आख्यातम्।

शब्दार्थ- राजा सुरथः सुमेधसं ऋषि वाचं उवाच भगवन्-हे ऋषे भवता-त्वया मम-सुरथस्य श्रृण्वतः इति, रक्तबीजवधाश्रितम्-रक्तबीजस्य वधविषयं, विचित्रं अद्भुतं चरितमाहात्म्यं-चरितस्य चेष्टितस्यकर्मणः माहात्म्यं- औदार्यं वा प्रभावातिशयः, आख्यातं-कथितम्।

व्याख्या- राजा सुरथ ने तब इस प्रकार महर्षि सुमेधा से कहा- हे भगवन् आपने मुझसे रक्तबीज दैत्य के चण्डिका द्वारा वध किए जाने से संबंधित जो विचित्र कथा सुनाई उससे देवी के प्रभाव और उनके कर्म के विषय में ज्ञान हुआ कि उनका चरित्र और उदारता पूर्ण प्रभाव अद्भुत है।

भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते।

चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः।२

अन्वय- देव्या रक्तबीजे निपातिते शुम्भः निशुम्भः च अतिकोपनः यत्कर्म चकार तत् अहं भूयः श्रोतुं इच्छामि।

शब्दार्थ- भूयः बार बार पुनः पुनः और अधिक, इससे आगे, निपातिते हते सति अतिकोपनः स्वभावेनैव अतिक्रोधकर्ता, भूयः का यत्कर्म के पूर्व अन्वय करने पर ऐसा होगा- रक्तबीजे निपातिते शुम्भः अतिकोपनः निशुम्भः भूयः च यत्कर्म चकार तत् अहं श्रोतुं इच्छामि। वा भूयः श्रोतुं इच्छामि।

व्याख्या- राजा ने आगे ऋषि से कहा कि हे ऋषे, देवी के द्वारा रक्तबीज के मारे जाने पर शुम्भ दैत्य और अत्यन्त क्रोधी उसके भाई निशुम्भ ने आगे जो कुछ किया उसे सुनने की इच्छा है। कृपा कर आगे का वृतान्त सुनाइये।

ऋषिरुवाच- चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते।

शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे। ३

अन्वय- ऋषिः उवाच- रक्तबीजे निपातिते अन्येषु च आहवे हतेषु सत्सु शुम्भासुरः निशुम्भः च अतुलं कोपं चकार।

शब्दार्थ- आहवे- युद्धे, हतेषु-मारे जाने पर, अन्येषु-दूसरे सेना के दैत्यों के, निपातिते-निहते वध कर दिए जाने पर।

व्याख्या- देवी के द्वारा युद्ध में रक्तबीज के मारे जाने पर और उसके अन्य साथी और सेना के युद्ध में धराशायी होने पर शुम्भ और निशम्भ ने अत्यन्त क्रोध किया। रक्तबीज और उसकी सेना के मारे-जाने का समाचार पाकर शुम्भ और निशुम्भ दोनों को बड़ा क्रोध हुआ।

हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन्।

अभ्यधावन्निशुम्भोऽथमुख्ययासुरसेनया। ४

अन्वय- देव्याः हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यअथ अमर्षं उद्वहन् निशुम्भः मुख्यया असुरसेनया सह अभ्यधावत्।

शब्दार्थ- हन्यमानय्-हतम्, अमर्षम्-क्रोधः, अभ्यधावत्-अभिदुद्राव, उद्वहन्-धारयन् उद्गिरन्, प्रकटीकुर्वन् उद्वहनं पाणिपीडनं तथापि धात्वनेकार्थतया अत्र धारयन्नित्यर्थे प्रयुक्तः मुख्यया-प्रधानया आत्मीयया वा,

व्याख्या- निशुम्भ ने जब देखा कि उसकी दैत्यों की वाहिनी इस प्रकार देवी के द्वारा मारी जा रही है अथवा मारी जा चुकी है तो वह क्रोधित होकर अपनी प्रधान सेना लेकर देवी के सम्मुख युद्ध करने के लिए बड़े वेग से आया।

तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः।

सन्दष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययौ। ५

अन्वय- तस्य अग्रतः पार्श्वयोः च तथा पृष्ठे वर्तमाना महासुराः क्रुद्धा सन्तः सन्दष्टौष्ठपुटाः देवीं हन्तुं उपाययुः।

शब्दार्थ- तस्य निशुम्भस्य अग्रतः-अग्रभागे, पृष्ठतः पश्चाद्भागे, पार्श्वयोः- वाम-दक्षिणभागे, सन्दष्टौष्ठपुटाः- क्रोधावेशात् दष्टाधरोष्ठाः क्रोध के कारण जो अपने नीचे के अधर को दांतों से दवा रहे थे हन्तुं-प्रहर्तुं उपाययौ- उप समीपं आययुः आजग्मुः।

व्याख्या- निशुम्भ के इस प्रकार युद्ध के लिए प्रस्थान करने पर उसके आगे, पीछे और दाहिने बायें अनेक प्रबल दैत्य क्रोध के कारण अपने होंठ चबाते हुए देवी पर प्रहार करने के लिए उसके पास आ गये।

आजगाम महावीर्यःशुम्भोऽपि स्वलबलैर्वृतः।

निहन्तुं चण्डिकां कोपात्कृत्वा युद्धं तु मातृभिः।६

अन्वय- स्वबलैः वृतः महावीर्यःशुम्भः अपि मातृभिः सह युद्धं कृत्वा तु कोपात् चण्डिकां हन्तुं आजगाम।

शब्दार्थ- महावीर्य:- महाप्रभाव: महाशूर: वा, स्वबलै:- निजसेनया, वृत:- परिवारित:, मातृभि:- ब्रह्माण्यादिभि: सह कोपात्-क्रोधवशात् आजगाम- आययौ।

व्याख्या- अत्यन्त बलवान और प्रभावशाली शुम्भ जो पहिले ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं से युद्ध करता रहा, अब अपनी सेना लेकर क्रोधाविष्ट होकर देवी को मारने की इच्छा से आ पहुँचा। निशुम्भ पहिले ही अपनी सेना लेकर आ गया था, अब शुम्भ भी सेना सहित युद्ध करने के लिए आकर उपस्थित हुआ।

ततो युद्धमतीवासीद्देव्या शुम्भनिशुम्भयो:।
शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतो:। ७

अन्वय- तत: तयो: इति पाठे वा शुम्भनिशुम्भयो: देव्या सह अतीव उग्रं शरवर्षं वर्षतो: मेघयो: इव युद्धं आसीत्।

शब्दार्थ- तत: अतीव अत्यर्थंउग्रं रौद्रं प्रबलंवर्षतो: द्वयो: मेघयो: इव शरवर्ष शराणां वृष्टिं मुंचत:।

व्याख्या- तत: देवी के साथ उन दोनों शुम्भ और निशुम्भ का ऐसा घोर युद्ध हुआ और उन्होंने वाणों की ऐसी झड़ी लगा दी मानों दो मेघ जल की बूंदों के स्थान पर बाणवर्षा कर रहे हों।

चिच्छेदास्तांश्छरांस्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करै:।
ताडयामास चांगेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ। ८

अन्वय- ताभ्यां अस्तान् शरान् चण्डिका स्वशरोत्करै: चिच्छेद च सा असुरेश्वरौ अंगेषु ताडयामास।

शब्दार्थ- चिच्छेद अस्तान् शरान् ताभ्याम् इति सन्धिविच्छेद: ताभ्यां-शुम्भनिशुम्भाभ्यां अस्तान्-क्षिप्तान् प्रेरितान् शरान्-बाणान्, स्वशरोत्करै: स्वै: शराणां उत्करै: च अथ च सा चण्डिका तौ असुरेश्वरौ अंगेषु- प्रत्यंगं शस्त्रौघै:- बाणाद्यनेकविध आयुधै:ताडयामास- प्रहारं कृतवती।

व्याख्या- शुम्भ और निशुम्भ ने देवी पर प्रहार करते हुए जितने भी बाण चलाये उन सभी को देवी ने अपने बाणों के ढेर से काट दिया और फिर उन दोनों के अंग को अपने आयुधों से प्रहार कर जर्जर कर डाला।

निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म चादाय सुप्रभम्।
अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम्। ९

अन्वय- निशुम्भ: निशितं खड्गं सुप्रभं चर्म च आदाय देव्या उत्तमं वाहनं सिंहं मूर्ध्नि अताडयत्।

शब्दार्थ- निशितम्-तीक्ष्णम्, पैना तेज धारवाला, चर्म-ढाल, आदाय-गृहीत्वा, सुप्रभम्-आभामण्डितम्, चमकीला, अताडयन् अताडयत्-प्रहारं कृतवान् मूर्ध्नि-मस्तके, उत्तमं-श्रेष्ठम् उत्तमं-कसकर।

व्याख्या- देवी के साथ युद्ध में निशुम्भ तीक्ष्ण तलवार और ढाल लेकर आ गया और उसने देवी के श्रेष्ठ वाहन सिंह के मस्तक पर जोर से प्रहार किया।

ताडिते वाहने देवीक्षुरप्रेणासिमुत्तमम्।
निशुम्भस्याशु चिच्छेद चर्म चाप्यष्टचन्द्रकम्।१०

अन्वय- वाहने ताडिते सति देवी क्षुरप्रेण निशुम्भस्य उत्तमं असिं अष्टचन्द्रकं चर्म च आशु चिच्छेद।

शब्दार्थ- क्षुरप्रेण-क्षुरप्र-वाणविशेषः खुरप्रेण-खुरपा से, उत्तमं-श्रेष्ठम्, असिं खड्गम्, आशु-अविलम्बेन, त्वरया, अष्टचन्द्रकम्-अष्टचन्द्रचिन्हांकितम् अष्टौ चन्द्राकार रचना विशेषा यत्र, चिच्छेद-दो टुकड़े कर दिये।

व्याख्या- निशुम्भ ने जब इस प्रकार देवी चण्डिका के वाहन सिंह के मस्तक पर तलवार से प्रहार किया तो देवी ने शीघ्र ही बिना एक क्षण का भी विलम्ब किये अपने खुरपा सदृश चौड़े फाल वाले बाण से उस तलवार के टुकड़े कर डाले।

विशेष- किसान जिस प्रकार अपने लम्बे खुरपा से ऊंटकटारे अथवा बेर के गुल्म को काटकर कुट्टी करते हैं, उसी प्रकार देवी ने चौड़े फाल वाले बाण से उस तलवार के टुकड़े कर डाले।

छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः।
तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम्। ११

अन्वय- चर्मणि खड्गे छिन्ने सति सः असुरः शक्तिं चिक्षेप, देवी अभिमुखागताम् तां शक्तिं अपि चक्रेण द्विधा चक्रे।

शब्दार्थ- चर्मणि-ढाल के, खड्गे च और तलवार के छिन्ने सति-टुकड़े टुकड़े कर दिए जाने पर, शक्तिम्-आयुधविशेषम्-शूलं, चिक्षेप-फेंककर प्रहार किया, अभिमुखागताम्-सम्मुखम् आयान्तीं, द्विधा चक्रे-दो टुकड़े कर दिए।

व्याख्या- देवी चण्डिका ने जब निशुम्भ की ढाल और तलवार दोनों ही छिन्न भिन्न कर दिए तो उस दैत्य ने देवी पर शक्ति से प्रहार किया और शक्ति चला दी। देवी ने उस सम्मुख आने वाली शक्ति को भी चक्र के द्वारा काट डाला और उसके दो टुकड़े कर दिए।

कोपाध्मातो निशम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः
आयान्तं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत्। १२

अन्वय- अथ निशुम्भ:दानव: कोपाध्मात:शूलं जग्राह, आयान्तं तत् अपि देवी मुष्टिपातेन अचूर्णयत्।

शब्दार्थ- कोपाध्मात: क्रोधेन प्रज्वलित:, मुष्टिपातेन-मुष्टिप्रहारेण, जग्राह-गृहीत्वा प्रक्षिप्तवान् आयान्तम्-सम्मुखागतम्, मुष्टिपातेन-मुष्टिप्रहारेण, अचूर्णयत्-संपिनष्टिस्म चूर्णवत् पीस डाला।

व्याख्या- क्रोध की ज्वाला में जलते हुए दानवराज निशुम्भ ने शूल लेकर देवी को लक्ष्य कर फेंका चण्डिका ने उस आते हुए शूल को भी बीच में ही मुष्टिका प्रहार से खण्ड कर चूर्ण सा पीस डाला।

आविध्याथ गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति।

सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता। १३

अन्वय- अथ स: अपि गदां आविध्य चण्डिकां प्रति चिक्षेप सा अपि गदा देव्या त्रिशूलेन भिन्ना सती भस्मत्वं आगता।

शब्दार्थ- आविध्य-भ्रामयित्वा, सा अपि- निशुम्भेन प्रेरिता गदा, भिन्ना सती-विदारिता सती, भस्मत्वं आगता-भस्मीभूता।

व्याख्या- तब निशुम्भ ने भी गदा को घुमाते हुए देवी की ओर चलाया। वह गदा भी देवी के त्रिशूल के प्रहार से खण्ड खण्ड होकर भस्म हो गई।

विशेष- यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि यह युद्ध मन्त्र शक्ति से हो रहा है जहाँ शक्ति मुष्टिका प्रहार से चूर्ण चूर्ण हो जाती है और गदा टुकड़े-टुकड़े होकर भस्म हो जाती है राख के ढेर में परिणत हो जाती है।

तत: परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुंगवम्।

आहत्य देवी बाणौधैरपातयत भूतले। १४

अन्वय- तत: परशुहस्तं आयान्तं तं दैत्यपुंगवम् देवी बाणौधै: आहत्य भूतले अपातयत।

शब्दार्थ- तत: गदायां भस्मितायां तदनन्तरम् परशुहस्तं-हस्ते परशुं गृहीत्वा आयान्तम्-सम्मुखं आगच्छन्तं, दैत्यपुंगवम्-दैत्यमुख्यम्, प्रधान दैत्यं, दैत्यों में श्रेष्ठ, बाणौधै: शरसंमूहै: शरजालै:, आहत्य-ताडयित्वा नतु हत्वा भूतले-पृथिव्यां अपातयत-मूर्च्छा प्राप्य पातनम्। देव्या बाणौधै स: दैत्यमुख्य: मूर्च्छितो भूत्वा भूमौ पपात।

व्याख्या- जब निशुम्भ के द्वारा देवी की ओर फेंकी हुई गदा भस्म हो गई तो वह दैत्यराज फरसा हाथ में लेकर देवी के सम्मुख दौड़ा तब देवी ने शरवृष्टि करके उसे मूर्च्छित करके पृथ्वी पर गिरा दिया।

तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे।

भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ योद्धुमम्बिकाम्। १५

अन्वय- तस्मिन् भीमविक्रमे निशुम्भे भ्रातरि भूमौ निपतिते अतीव संक्रुद्धःशुम्भःअम्बिकां योद्धुं प्रययौ।

शब्दार्थ- भीमविक्रमे- घोरपराक्रमे, भूमौ निपतिते-मूर्च्छां प्राप्य भूलुण्ठिते सति, अतीव-अतितराम् संक्रुद्धः कोपाविष्टः योद्धुं युद्धं कर्तु, प्रययौ- प्रचलितः।

व्याख्या- जब घोर पराक्रम करने वाला शुम्भ का भाई निशुम्भ देवी के बाणों से आहत होकर मूर्च्छित भूमि पर गिर पड़ा तो शुम्भ अत्यन्त क्रोध करके चण्डिका से संग्राम करने के लिए आ गया।

स रथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः

भुजैरष्टाभिरतुलैः व्याप्याशेषं बभौ नभः।१६

अन्वय- तथा अत्युच्चैः रथस्थः सःगृहीतपरमायुधैः अष्टाभिःअत्युच्चैः अतुलैः भुजैः अशेषं नभः व्याप्य बभौ।

शब्दार्थ- तथा- तेन प्रकारेण, रथस्यः रथं आरूढः, गृहीतपरमायुधैः गृहीतं परमं आयुधं येन सः, जिसने परम शस्त्रों को धारण कर लिया है, अतुलैः-अनुपमैः भुजैः बाहुभिः नभः व्याप्य- आकाशं आच्छादय बभौ-शुशुभे।

व्याख्या- वह शुम्भ अत्यन्त ऊँचे रथ पर सवार था, उसने अपनी आठ अनुपम भुजाओं में दिव्य अस्त्र शस्त्र धारण किए थे, विशाल भुजाओं और ऊँचे रथ के कारण वह समस्त आकाश को आच्छादित कर शोभित हो रहा था। पूरे आकाश में वही समाया था।

तमायान्तं समालोक्य देवी शंखमवादयत्।

ज्या शब्दं चापि धनुष्श्चकारातीव दुःसहम्।१७

अन्वय- देवी तं आयान्तं समालोक्य शंखं अवादयत् धनुषः अतीव दुःसहम् ज्या शब्दं च चकार।

शब्दार्थ- आयान्तम्- आगच्छन्तम् समालोक्य- विलोक्य, ज्या- प्रत्यंचा, दुःसहम्- सोढुं अशक्यम्,

व्याख्या- देवी ने जब इस प्रकार रण के लिए सुसज्जित होकर शुम्भ को आते हुए देखा तो उन्होंने शंख बजाया और धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर अत्यन्त असहनीय टंकार की। शंखध्वनि और धनुष्टंकार से युद्ध का उत्साह प्रकट होता है और साथ ही शत्रु को इस प्रकार घोर शब्द से निरुत्साहित भी किया जाता है जैसा कि गीता में आया

है कि- स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।

पूरयामास ककुभो निजघंटास्वनेन च।
समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना। १८

अन्वय- समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना निजघंटास्वेनन च ककुभ: पूरयामास।

शब्दार्थ- समस्तदैत्यसैन्यानाम्-सकलासुरसेनानीनां, तेजोवधविधायिना-तेजसां वध: विनाश: तं विदधाति करोतीति तेन-जो तेज को समाप्त कर दे, निजघण्टास्वनेन-स्वस्य घंटानिनादेन, ककुभ:-दिश: पूरयामास- स्वन्दिगन्तरेषु व्याप्त:। तेज:-तेज: प्रभावे दीप्तौ च बले छत्रेपि संस्मृतम्। निजधंटास्वनेन च यहाँ चकार शब्द से प्रत्यंचा की टंकार और शंखनाद का बोध होता है। इस घोर शब्द से असुर सेना के सभी सैनिकों का प्रभाव बल और दीप्ति समाप्त हो गई।

व्याख्या- देवी ने दैत्यसेना के आने पर पहिले तो धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा कर घोर शब्द किया फिर शंख बजाया फिर अपने घंटे का शब्द किया। यह तुमुल ध्वनि समस्त दिशाओं में व्याप्त हो गई जिससे दैत्य सेना के वीरों के चेहरों की कान्ति जाती रही, प्रभावहीन हो गए और बल भी क्षीण हो गया। पहिले ही कहा जा चुका है कि यह युद्ध वास्तव में मन्त्रशक्ति का है, धनुष, बाण, शंख और घंटा तो प्रतीक मात्र हैं। पहिले भी इस मन्त्रशक्ति का वर्णन कर आये हैं जहाँ ब्रह्माणी के द्वारा कमंडलु का जल छिड़कने पर समस्त दानव हतवीर्या:हतौजस: होते बताये गए हैं। सामान्यतया तो यह देखने में आता है कि यदि मूर्च्छित व्यक्ति के मुँह पर शीतल जल के छींटे दिए जायं तो उसे होश आ जाता है, बेहोशी दूर हो जाती है। वही जल यहाँ मन्त्रपूत होकर आसुरी सेना के बल और पराक्रम तथा ओज का नाश कर रहा है। इसी प्रकार यहाँ नाद से ही ओज: क्षय, प्रभावहीन और बलहीन होना बताया गया है।

तत: सिंहो महानादै: त्याजितेभमहामदै:।
पूरयामास गगनं गां तथोपदिशो दश। १९

अन्वय- तत: सिंह: त्याजितेभमहामदै: महानादै: गगनं गां तथा दश उपदिश: पूरयामास। गां तथैव दिशो दश ऐसा पाठ माना जाय तो तथैव दश दिश: पूरयामास ऐसा अन्वय होगा।

शब्दार्थ- त्याजितेभमहामदै: त्याजित: इभानां मत्तवारणानां महामद: यै: जिसके घोर गर्जन को सुनकर बड़े बड़े मस्त हाथियों का मद दूर हो जाता हैं, महानादै-महांश्चासौ नादश्च महानाद: तै: महानादै: गगनं आकाशं, गां पृथ्वी उपदिशो दिक्सहिता: उपदिश: दश संख्याका:

व्याख्या- इसके पश्चात देवी के वाहन सिंह ने ऐसी घोर गर्जन की कि उससे बड़े-

बड़े मतवाले हाथी अपनी मस्ती भूल गए और उनका मद बहना बन्द हो गया, उस घोर गर्जन से आकाश पृथ्वी और दिशाएं और उपदिशाएं भर गई। सर्वत्र वह महानाद व्याप्त हो गया।

ततःकाली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत्।
कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः।२०

अन्वय- ततः काली गगनं समुत्पत्य क्ष्मांकराभ्यां अताडयत्। तन्निनादेन ते प्राक्स्वनाः तिरोहिताः।

शब्दार्थ- समुत्पत्य-उत्प्लुत्य- उछलकर, उड्डीय, उड़ान भरकर, क्ष्माम्-पृथ्वी, कराभ्यां-हस्ताभ्यां दोनों हाथों से, निनादेन-शब्देन, प्राक्स्वनाः-प्रागुक्ताः शंखघंटाज्यासिंहस्वनाः तिरोहिताः-पिहिताः न्यक्कृताः पूर्व के शंखनाद, ज्यानिर्घोष, घंटानाद और सिंह नाद सभी दब गए। क्ष्मां अताडयत् के लिए समुत्प्लुत्य पुनः पृथ्वी अवतीर्य कराभ्यां पृथ्वी अताडयत्। अथवा द्यावापृथिव्यौ द्वौ अपि हस्ताभ्यां आहतवती।

व्याख्या- तब इसके पश्चात् देवी उछल कर आकाश में पहुँच गई और वहीं से अपने दोनों हाथों से इतने जोर से ताली बजाई कि उस घोर शब्द से पिछले सभी निनाद शंख, ज्या घंटा और सिंहनाद दब गए तिरोहत हो गये। ऐसा भी अर्थ किया गया है कि आकाश में उछल कर फिर पृथ्वी पर आकर दोनों हाथों से पृथ्वी पर इतने जोर का शब्द किया।

अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह।
तैःशब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ।२१

अन्वय- शिवदूती अशिवं अट्टाट्टहासं चकार। तैः शब्दैः असुराः त्रेसुः शुम्भः परं कोपं ययौ।

शब्दार्थ- अट्टाट्टहासः अट्ट उत्क्रमं उल्लंघनम् शत्रून् अवमत्य हसनं अट्टाट्टहासः अशिवम्-अकल्याणसूचकम् अतिभीषणं, शिवदूती-चण्डिकाशरीरान्निष्क्रान्ता शक्तिः शिव को जिसने दूत के रूप में भेजा, त्रेसुः- भयं प्रापुः उद्विग्न हुए। परं, अत्यन्तं अतीवं ययौ, प्राप।

व्याख्या- चण्डिका की शक्ति विशेष शिवदूती उस समय ठठाकर हंसी। इसके उस भयंकर अट्टहास से दानवों को बड़ा त्रास हुआ वे उद्विग्न हो गये और शुम्भ ने अत्यन्त क्रोध किया। उस ठठाकर हंसने से दैत्य सेना भयभीत हुई और शुम्भ उत्तेजित हो उठा।

दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा।
तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः। २२

अन्वय- दुरात्मन् तिष्ठ तिष्ठ यदा अम्बिका व्याजहार तदा जय इति आकाशसंस्थितैः देवैः अभिहितम्।

शब्दार्थ- दुरात्मन्-रेदुष्ट, रे दुष्टात्मन् शुम्भ को सम्बोधन करते हुए देवी ने उसे ललकारते हुए कहा कि रे दुष्टात्मा तिष्ठ-ठहर ठहर व्याजहार- उक्तवती, आकाशसंस्थितै- गगने स्थितैः, अभिहितम्- कथितम्

व्याख्या- इस प्रकार देवी के घोर अट्टहास करने पर फिर उन्होंने शुम्भ को युद्ध के लिए ललकारते हुए कहा कि रे दुष्ट ठहर ठहरतू जरा ठहर तो जा, जाता कहां है। देवी के इस प्रकार शुम्भ को चुनौती देने पर देवता बहुत प्रसन्न हुए जो इस युद्ध को देखने के लिए आकाश में एकत्र हो गए थे। उन्होंने प्रसन्नता के साथ कहा- जय हो, जय हो।

शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा।
आयान्ती बन्हिकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया। २३

अन्वय- शुम्भेन आगत्य ज्वालातिभीषणा या शक्तिः मुक्ता, सा वन्हिकूटाभा आयान्ती महोल्कया निरस्ता। वा वन्हिकूटाभा महोल्कया निरस्ता।

शब्दार्थ- आगत्य रणांगणे स्थित्वा मुक्ता-प्रेरिता, प्रहिता ज्वालातिभीषणा-अग्निज्वाला इव अतिभयंकारी, अग्निपुंज के समान भयजनक आयान्ती, आती हुई वन्हिकूटाभा- अग्निपुंज इव आभा कान्तिर्यस्या महोल्कया-उल्का अंगारकाष्ठ-ज्वालामहती चउल्का इति महोल्का तया, अंगारकाष्ठवज्जवलन्ती, व उल्कापिण्ड इव ज्वलन्ती तया, निरस्ता-दूरीकृता निष्प्रभावीकृता। तथा हि-वन्हेर्द् वयोः ज्वालकीलावर्चिर्हेतिः शिखा स्त्रियाम्। निरस्तःप्रहितो मुक्त प्रेरितः क्षिप्त उज्झितः। विसृष्टो दवितो दूरीकृतो बाणादिमोक्षणे।

व्याख्या- शुम्भ दैत्यराज ने समरांगण में आकर देवी के ऊपर प्रहार करते हुए अग्नि की ज्वाला के समान भय जनक शक्ति छोड़ी उसे देवी ने जलती हुई विशाल लुकाठी के समान शक्ति छोड़कर निरस्त कर दिया। अथवा जलते हुए उल्कापिंड के समान जिसका तेज अग्निपुंज के समान था, उसे छोड़कर शुम्भ के द्वारा छोड़ी गई शक्ति को निष्प्रभाव कर दिया।

सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम्।
निर्घातनिः स्वनो घोरो जितवानवनीपते। २४

अन्वय- अवनीपते, शुम्भस्य सिंहनादेन लोकत्रयान्तरं व्याप्तम्। घोरः निर्घात- निःस्वनः जितवान्।

शब्दार्थ- सिंहनादेन- कण्ठगर्जनेन, यहाँ सिंहनाद का अर्थ देवीवाहन सिंह के द्वारा किया जाने वाला गर्जन नहीं है अपितु शुम्भ ने जो घोर गर्जना की उसी को शुम्भ का

सिंहनाद कहा गया है। लोकत्रयान्तरम्-भू:भुव:, स्वरिति लोकत्रयाणां अन्तरालं, वा लोकद्वयानां मध्यवर्ति भुवर्लोकम् व्याप्तम्-आपूरितम्। निर्घातनिस्वन:-उत्पातध्वनि:, अमंगललसूचक घोरशब्द, निर्घातनिस्वन के यहाँ अनेक अर्थ आचार्यों ने किए हैं। ऊपर कह आये हैं कि शुम्भ ने जो शक्ति देवी पर चलाई उसे निरस्त करने के लिए देवी ने जो शक्ति प्रतिघात के रूप में चलाई, उन दोनों शक्तियों के घात प्रतिघात से जो निर्घातनि: स्वन उत्पन्न हुआ वह, दूसरे अर्थ के अनुसार शुम्भ के सैनिकों ने जो गर्जना की वह, अथवा उनके युद्ध में आयुधों की ध्वनि, आकाश से अकस्मात् होने वाले उल्कापात की ध्वनि, निर्घातनि: स्वन: जितवान्-निर्घातनि: स्वन से शुम्भ का सिंहनाद दब गया, अथवा शुम्भ के सिंहनाद से घोर निर्घातनि: स्वन दब गया,

व्याख्या- देवी और शुम्भ के द्वारा शक्ति के घात-प्रतिघात से जो घोर शब्द हुआ, उससे शुम्भ की वह गर्जना तिरोंहित हो गई जो उसने रणभूमि में की। अथवा-शुम्भ ने जो सिंहगर्जना की वह तीनों लोकों के मध्य व्याप्त हो गई किन्तु आकाश से अमंगलसूचक असमय जो ज्वाला सहित घोर ध्वनि हुई उससे शुम्भ का सिंहनाद तिरोहित हो गया। अथवा शुम्भ की सेना के अस्त्र-शस्त्रों के घात-प्रतिघात से जो ध्वनि हुई उससे शुम्भ का सिंहनाद तिरोहित हो गया।

शुम्भमुक्ताञ्शरान्देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्शरान्।
चिच्छेद स्वशरैरुग्रै: शतशोऽथ सहस्रश:। २५

अन्वय- देवी शतश: अथ सहस्रश: शुम्भमुक्तान् शरान् उग्रै:स्वशरै: चिच्छेद। अथ शुम्भ: तत्प्रहितान् शरान् शतश: सहस्रश: उग्रै:स्वशरै: चिच्छेद।

शब्दार्थ- शुम्भमुक्तान्-शुम्भेन प्रक्षिप्तान् शरान्-वाणान् शतश: शतं शतं, तथैव सहस्रश:-सहस्रं उग्रै: तीक्ष्णै: स्वशरै:- निजोत्क्षिप्तवाणै:, चिच्छेद- खण्डयामास, तत्प्रहितान्- देव्या क्षिप्तान्।

व्याख्या- देवी उस संग्राम में शुम्भ के द्वारा सैकड़ों हजारों बार छोड़े गए तीक्ष्ण वाणों को अपने वाणों से खण्ड खण्ड करती रही और शुम्भ भी इसी प्रकार देवी के द्वारा छोड़े गये वाणों को काटता रहा।

तत:सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम्।
स तदाभिहतो भूमौ मूर्च्छितो निपतात ह। २६

अन्वय- तत: क्रुद्धा सा चण्डिका शूलेन तम् अभिजघान। स तदा एवं अभिहतो मूर्च्छित: सन् भूमौ निपतात।

शब्दार्थ- क्रुद्धा-कोपाविष्टा, चण्डिका-अम्बिका एवं क्रुद्धा सती चण्डिका अभिजघान-ताडयामास, प्रहरतिस्म, अभिहत:-ताडित:, निपपात- अपतत्। अभि साम्मुख्येर्थे

अभिजघान- सम्मुखं जघान अथवा समन्तात् जघान, अभिहतः समन्तान् हतः मूर्च्छितः- मूर्च्छां प्राप्तः।

व्याख्या- जब चण्डिका ने देखा कि शरयुद्ध में शुम्भ इस प्रकार घात प्रतिघात से उनकी समता कर रहा है तो उन्होंने क्रोधित होकर उस पर शूल से प्रहार किया उस शूल के प्रहार से शुम्म मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा।

ततो निशुम्भः संप्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः।
आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा। २७

अन्वय- ततः निशुम्भःचेतनां संप्राप्य आत्तकार्मुकः शरैः देवीं कालीं तथा केसरिणं आजघान।

शब्दार्थ- ततः शुम्भ के मूर्च्छित हो जाने पर, अथवा स्वयं मूर्छा रहित होने पर चेतनाम्-संज्ञां संप्राप्य-लब्ध्वा, आत्तकार्मुकः- आत्तं गृहीतं धनुः येन सः आत्तकार्मुकः, केसरिणम्-देव्या वाहनं सिंहम् आजघान, ताडयामास।

व्याख्या- शुम्भ के इस प्रकार देवी के शूल के प्रहार से मूर्च्छित हो जाने पर निशुम्भ की बेहोशी दूर हो गई और वह धनुष लेकर युद्ध करने के लिए उपस्थित हुआ। उसने चारों ओर से देवी और सिंह पर वाणवर्षा प्रारम्भ कर दी।

पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः।
चक्रायुधेन दितिजः छादयामासचण्डिकाम्।२८

अन्वय- पुनःच दनुजेश्वरः बाहूनां अयुतं कृत्वा चक्रायुधेन चण्डिकां छादयामास।

शब्दार्थ- दनुजेश्वरः दनोः जाताः दनुजाः तेषां ईश्वरः प्रभुःस्वामी अधिपतिः, दितिजः-दितेर्जातः दितिजः- दिति से उत्पन्न, बाहूनां अयुतम्-दशसहस्रभुजां कृत्वा, मायया दससहस्रभुजां निर्माय, सहस्रभुजो भूत्वा, चक्रायुधेन-चक्रवत्आयुधेन शस्त्रेण, छादयामास-संवृतां चकार-ढक दिया, चक्रायुतेन पाठ मानकर अर्थ होगा- चक्राणां अयुतेन- दशसहस्रेण-दस हजार चक्रों को चलाकर अथवा जिस प्रकार आजकल कहा जाता है कि कितने राउण्ड (चक्र) गोली चलाई, उसी प्रकार चक्र राउण्ड के अर्थ में प्रयुक्त है कि इतने चक्र अस्त्र के चलाये। वाणों के चलाये क्योंकि अगले श्लोक में आया कि तान् सायकांश्च चिच्छेद।

व्याख्या- फिर उस दैत्यों के स्वामी निशुम्भ ने आसुरी माया से सहस्र भुजा वाला बनकर चक्र से अथवा वाणों का चक्र सा चलाकर देवी को दस हजार चक्र में ढंक सा दिया। बाणावलि से आच्छादित कर दिया।

ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी।
चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान्।२९

अन्वय- ततः दुर्गार्तिनाशिनी भगवती दुर्गा क्रुद्धा सती स्वशरैः तानि चक्राणि तान् सायकान् च चिच्छेद।

शब्दार्थ- दुर्गार्तिनाशिनी-दुर्गार्तिः-दुःसहा पीड़ा वा दुर्गे संकटे या आर्तिः पीड़ा तस्या नाशिनी नाशनशीला- घोर पीड़ा वा घोर संकट के कष्ट को नाश करने वाली, दुस्तर कठिन पार न पाने योग्य पीड़ा को नष्ट करने वाली, चक्राणि-दस सहस्र चक्रों को, सायकान्-वाणान् चिच्छेद- खण्डयामास।

व्याख्या- असह्य पीड़ा और घोर संकट का नाश करने वाली भगवती दुर्गा ने तब क्रोधित होकर निशुम्भ दैत्य के चलाये हुए चक्रों को काट डाला और उसके प्रेरित वाणों को भी खण्ड खण्ड कर दिया।

ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम्।
अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः। ३०

अन्वय- ततः निशुम्भः वेगेन गदां आदाय दैत्यसेनासमावृतः सन्चण्डिकां हन्तुं अभ्यधावत।

शब्दार्थ- ततः तत्पश्चात्, तदनन्तरम्, वेगेन-त्वरया, आदाय-गृहीत्वा, दैत्यसेना समावृतः-दैत्यानां सेना तया सम्यक् वेष्टितः- दैत्य सेना से चारों ओर सुरक्षित होकर वै-निश्चयेन, अभ्यधावत-दौड़कर आ गया।

व्याख्या- तब निशुम्भ देवी को मारने के लिए बड़े वेग से गदा लेकर दौड़ता हुआ आया वह अपनी दैत्य सेना से चारों ओर से घिरा हुआ था।

तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका।
खड्गेन शितधारेण सच शूलं समाददे। ३१

अन्वय- आपतत एव तस्य गदां चण्डिका शितधारेण खड्गेन आशु चिच्छेद स च शूलं समाददे।

शब्दार्थ- आपतत- आगच्छतः, आक्रमण करते ही, शितधारेण-शिते तीक्ष्णे धारे यस्य सः शितधारः तेन शितधारेण-तीक्ष्ण धार वाले दुधारा से, सः-निशुम्भ-समाददे-जग्राह।

व्याख्या- जैसे ही निशुम्भ ने इस प्रकार सेना सहित देवी पर आक्रमण किया देवी ने उसी समय तीक्ष्म धार वाले खड्ग से उस गदा को काट दिया। तब उस दैत्य ने देवी पर चलाने के लिए शूल हाथ में लिया।

शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भममरार्दनम्।
हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका। ३२

अन्वय- चण्डिका अमरार्दनम् निशुम्भं शूलहस्तं समायान्तं वेगाविद्धेन शूलेन हृदि विव्याध।

शब्दार्थ- अमरार्दनम्-अर्दयते हिनस्तीति अर्दनः अमराणां अर्दनः अमरार्दनः- देवताओं को पीड़ित करने वाला, तम् अमरार्दनम् शूलहस्तं-शूलं हस्ते यस्य स शूलहस्तः तम् शूलहस्तम्-शूल हाथ में लिए हुए, समायान्तं-आगच्छन्तं, वेगाविद्धेन-वेगेन भ्रामितेन वेगात्उत्क्षिप्तेन, वेग से फेंके हुए अथवा वेग से घुमाते हुए विव्याध-बींध दिया।

व्याख्या- जब निशुम्भ शूल हाथ में लेकर देवी की ओर दौड़ा तो उस देवताओं को पीड़ा करने वाले को चण्डिका ने देखते ही अपने शूल को वेग से घुमाकर फेंकते हुए उसे हृदय में बींध दिया वह शूल उसके हृदय में धंस गया।

भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निसृतोपरः।

महाबली महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन्।३३

अन्वय- शूलेन भिन्नस्य तस्य हृदयात् तिष्ठ इति वदन् महाबलः महावीर्यः अपरःपुरुषःनिःसृत।

शब्दार्थ- भिन्नस्यविदारितस्य तस्य-निशुम्भस्य महावीर्यः- महान विक्रमी, अपरः अन्य द्वितीयः, दूसरा तिष्ठ इति वदन्-ठहर ठहर इस प्रकार कहता हुआ, निःसृतः- निर्गतः निष्चक्राम।

व्याख्या- देवी के शूल के प्रहार से विदीर्ण हुए उस निशुम्भ के हृदय से दूसरा अत्यन्त बलिष्ठ और पराक्रमी पुरुष निकल कर देवी के सामने खड़ा हो गया और कहने लगा कि ठहर मेरे सामने से अब कहाँ जाती है।

तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः।

शिरश्छिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि।३४

अन्वय- स्वनवत् प्रहस्य देवी ततः तस्य निष्क्रामतः पुरुषस्य शिरः खड्गेन चिच्छेद ततः असौ भुवि अपतत्।

शब्दार्थ- स्वनवत्-शब्द करते हुए, प्रहस्य-हंस कर, स्वनवत् प्रहस्य का विशेषण मानें तो विद्रूप हंसी हसते हुए, निष्क्रामतः निशुम्भहृदयात् निर्गच्छतः तस्य-निशुम्भरूपापरपुरुषस्य भुवि अपतत्-शिरश्छेदानन्तरं असौ दैत्यः रणभूमौ पततिस्म।

व्याख्या- जैसे ही निशुम्भ के हृदय से उसी के सदृश दूसरा दैत्य निकला, तो देवी ने विद्रूप हंसी हंसते हुए अपनी तलवार से उसका शिर काट डाला। शिर के कटते ही वह दैत्य निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर गया।

ततः सिंहश्चखादोग्रदंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान्।

असुरांस्तांस्तदा काली शिवदूती तथापरान्।३५

अन्वय- ततः सिंहः उग्रदंष्ट्रक्षुण्णशिरोधरान् असुरान् चखाद तदा अपरान् तान् काली शिवदुती च चखाद।

शब्दार्थ- उग्रदंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान्-उग्राभिः रौद्राभिः दंष्ट्राभिः उग्रदंष्ट्राभिः क्षुण्णा संपिष्टा चूर्णीकृता शिरोधरा येषां ते क्षुण्णशिरोधराः तान् उग्रदंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् सिंह ने अपनी भयंकर दाढों से जिनकी गर्दन पीस डाली है, तदा तदनन्तरम् काली शिवदूती- चण्डिका शक्तितः निष्क्रान्ताशक्तिविशेषा तथा-तैनेव प्रकारेण अपरान् अवशिष्ट असुरान्- सिंह के खा लेने पर शेष बचे दैत्यों के शवों को।

व्याख्या- तब देवी के वाहन सिंह ने अपनी भयंकर दाढ़ों से अनेक असुरों की गर्दन चबा डाली। जो शेष बचे उन्हें काली और उनकी शक्ति शिवदूती ने खा डाला।

कौमारीशक्तिनिर्भिन्ना केचिन्नेशुर्महासुराः।

ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः। ३६

अन्वय- केचित् महासुराः कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः नेशुः, अन्ये ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेन निराकृताः।

शब्दार्थ- केचित् बहवः, कई महासुराः- महांश्चासौ असुरः महासुरः ते च महासुराः कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः- कुमारस्य स्कन्दस्य शक्तिः कौमारी तथा कौमार्याः शक्त्या आयुधेन निर्भिन्नाः- निःशेषेण खण्डिताः स्कन्द की शक्ति कुमारी के द्वारा चलाये गए शक्ति नामक आयुध से खण्ड खण्ड हुए, नेशुः णश अदर्शने धातु का लिट् बहुवचन का रूप नश्यन्तिस्म, मृताः ब्रह्माणीब्रह्मणः परमेष्ठिनः शक्तिर्ब्रह्माणी तस्या मन्त्रेण पूतेन पवित्रेण-ब्रह्माणी के द्वारा अभिमन्त्रित किए हुए, तोयेन-जलेन, निराकृताः-ध्वस्ताः

व्याख्या- अनेक दैत्य स्कन्द की शक्ति कौमारी के द्वारा प्रेरित शक्ति से कट कट कर मर गये और कुछ ब्रह्म की शक्ति ब्रह्माणी के द्वारा अपने कमण्डलु से अभिमन्त्रित जल के छींटों से नष्ट हो गए।

माहेश्वरी त्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे।

वाराहीतुण्डघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि।३७

अन्वय- माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः अपरे पेतुः, केचित् वाराहीतुण्डघातेन चूर्णीकृताः, भुवि पेतुः।

शब्दार्थ- माहेश्वरीत्रिशूलेन-महेश्वरस्य शक्तिः माहेश्वरी तस्या त्रिशूलेन आयुधेन भिन्नाः- भिदृ्, विदारणे क्तान्त भिन्नाः विदारिता, अपरे अन्ये तथा-तेनैव प्रकारेण 'पेतुः' पतलृ पतने का लिट् बहुवचन का रूप पेतुः पतन्तिस्म गिर पड़े, वाराहीतुण्डघातेन-

वराहभगवत: शक्ति: वाराही तस्या तुण्डस्य थूथनस्य घातेन-प्रहारेणवाराह्या थूथनकृतप्रहारेण, चूर्णीकृता-संपिष्टा: भुवि निपेतु:।

व्याख्या- महेश्वर की शक्ति माहेश्वरी के त्रिशूल के प्रहारों से खण्ड खण्ड होकर अन्य अनेक असुर धराशायी हुए, और कुछ वराह की शक्ति वाराही के थूथन के प्रहार से पिस कर भूमि में सदा के लिए सो गए।

खण्डं खण्डं च चक्रेण वैष्णव्या दानवा: कृता:
वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन तथापरे। ३८

अन्वय- वैष्णव्या चक्रेण च दानवा: खण्डं खण्डं कृता: तथा अपरे ऐन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन वज्रेण खण्डं खण्डं कृता:।

शब्दार्थ- दैत्या: खण्डं खण्डं- खण्डश: ऐन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन-इन्द्रस्य शक्ति: देवता ऐन्द्री तस्या हस्ताग्रेण कराग्रेण विमुक्तेन-प्रक्षिप्तेन वज्रेण इन्द्रस्य आयुधेन

व्याख्या- वैष्णवी देवी का आयुध चक्र है, इसलिए उन्होंने अपने चक्र से अनेक दानवों के टुकड़े टुकड़े कर डाले। उसी प्रकार इन्द्र की शक्ति ऐन्द्री ने अपने आयुध वज्र को अपने हाथ से चलाकर अनेक दूसरे दैत्यों को काट डाला।

केचिद्विनेशुरसुरा: केचिन्नष्टा: महाहवात्।
भक्षिताश्चापरे कालीशिवदूतीमृगाधिपै: ३९

अन्वय- केचित् असुरा: विनेशु: केचित् महाहवात् नष्टा: अपरे च कालीशिवदूतीमृगाधिपै: भक्षिता।

शब्दार्थ- असुरा:दानवा:, दैत्या:, विनेशु:-मृता:, महाहवात्-महाहवं महायुद्धं प्राप्य महत: आहवात् युद्धात् संग्राम भूमिं प्राप्य नष्टा:- पलायिता: महायुद्ध से प्राण बचाकर भाग गए। कालीशिवदूतीमृगाधिपै:- काली च शिवदूती च मृगाधिपश्च कालीशिवदूतीमृगाधिपा: तै: कालीशिवदूतीमृगाधिपै:, मृगाणां पशूनां अधिप: मृगाधिप: यहाँ देवी के वाहन सिंह से अभिप्राय है, शिवदूती-काली के शरीर से नि:सृत शक्ति विशेष भक्षिता:- चबा डाले।

व्याख्या- देवी के साथ इस संग्राम में निशुम्भ के मारे जाने पर कुछ दैत्य तो मारे गए कुछ युद्धक्षेत्र से प्राण बचाकर भाग गए। जो कुछ रह गए उन्हें काली, शिवदूती और देवी के वाहन सिंह ने चबा डाला।

इति श्री मार्कण्डेय पुराणे देवीमाहात्म्ये निशुम्भवधो नाम नवमोध्याय:।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत देवी-माहात्म्य में निशुम्भ-वध नामक नवम अध्याय पूरा हुआ।

●●●

दशमोऽध्यायः

ऋषिरुवाच

निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम्।
हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धो ब्रवीद्वचः। १

अन्वय- प्राणसम्मितं भ्रातरं निशुम्भं निहतं दृष्ट्वाबलं च हन्यमानं दृष्ट्वा शुम्भः क्रुद्धः वचः अब्रवीत्।

शब्दार्थ- निहतम्- मारितम्, प्राणसम्मितम्-प्राणतुल्यं जीवनसमम्, बलं-सैन्यं, हन्यमानम्-हतं एव दृष्ट्वा क्रुद्धः कोपाविष्टः।

ऋषि सुमेधा ने राजा सुरथ से कहा-

व्याख्या- शुम्भ ने जब देखा कि चण्डिका से युद्ध करते हुये उसका भाई निशुम्भ जो उसे प्राणों से भी अधिक प्रिय था मारा गया है और सारी सेना भी मारी जा चुकी है तो उसे बड़ा क्रोध आया और उसने कुपित होकर देवी से कहा।

बलावलेपाद्दुष्टे त्वं मा दुर्गे गर्वमावह।
अन्यासां बलमाश्रित्य युद्ध्यसे यातिमानिनी। २

अन्वय- हे दुर्गे हे दुष्टे त्वं बलावलेपात् गर्वं मा आवह, या अतिमानिनी सती अन्यासां बलं आश्रित्य युद्ध्यसे।

शब्दार्थ- शुम्भः देवीं अब्रवीत्-बलस्य पराक्रमस्य अवलेपः अहंकारः तस्मात् बलावलेपात् दुष्टे दुर्विनीते, मा-नहीं, आवह-वहन करना, अपनाना, स्वीकार करना, अन्यासाम्-दूसरों का, बलं आश्रित्य-दूसरों के पराक्रम का सहारा लेकर, या-जो, अतिमानिनी-अत्यन्त अभिमान करने वाली।

व्याख्या- जब कोई व्यक्ति निराश होता है और उसे अपने पुरुषार्थ वा सामर्थ्य पर भरोसा नहीं रहता तो वह सामने वाले को उपालम्भ देना प्रारंभ कर देता है वही दशा यहाँ पर भ्रातृवध से दुखित शुम्भ की है। वह देवी से कहता है कि तुम तो दूसरों का बल पाकर शेखी बघार रही हो और अतिमानिनी होने का दावा करती हो। तुमने तो कहा था कि- यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति। यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति। इसका निर्णय तो आमने सामने दो के लड़ने पर ही हो सकता है। जबकि तुमने तो युद्ध में मातृकाओं की सेना खड़ी कर रखी है जो सभी मिलकर लड़ रहे हैं। इसलिये तुम दुष्टा हो। हे दुर्गे दूसरों की सामर्थ्य से लड़कर गर्व करना ठीक नहीं। तुम्हारा यह अभिमान वृथा है। दूसरों की सामर्थ्य पर अभिमान करना और अतिमानिनी बनना तो तब अच्छा लगे जब तुम अकेले युद्ध करो। जो दूसरों के सहारे युद्ध करे और

साथ ही अपने पराक्रम पर अभिमान करे तो इसे क्या कहा जाय।

देव्युवाच- एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।

पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः।३

अन्वय- देवी उवाच- अत्र जगति अहं एक एव, मम अपरा द्वितीया का, हे दुष्ट एताः मद्विभूतयः मय्येव विशन्त्यः त्वं पश्य।

शब्दार्थ- अस्मिन् जगति- भुवनत्रये, अपि ममदेव्याः, का प्रश्नार्थकः न कापि, एताः ब्रह्माणीप्रभृतिशक्तयः, मद्विभूतयः- मम शक्त्यः, गीता में भी भगवान ने कहा है- एतां विभूतिं योगंच मम यो वेत्ति तत्वतः, पर वास्तव में तत्वतः समझना ही तो कठिन है, क्योंकि तुलसीदास जी ने भी कहा है- सो जानहि जेहि देहु जनाई। मय्येव- मयि एव मुझमें ही, विशन्त्यः- विलुप्यन्त्यः, समाती हुई।

व्याख्या- शुम्भ के इस प्रकार कहने पर देवी ने उससे कहा- रे दुष्ट मैं तो इस जगतीतल में तीनों लोकों में वा अखिल विश्व में एक ही हूँ, मेरे अतिरिक्त अन्य कुछ तो है ही नहीं। श्रुति का कथन है- एकमेवाद्वितीयम् वह ब्रह्म एक ही है, अद्वितीय है, मेरे सिवा दूसरा ही ही कौन, ये ब्रह्माणी आदि सब तो मेरी ही शक्तियाँ हैं, ये तो मेरी विभूतियों का ही विस्तार है। अब तू स्वयं देख ले कि किस प्रकार ये सब ब्रह्माणी, ऐन्द्री, वाराही, कौमारी, वैष्णवी माहेश्वरी आदि मेरी शक्तियाँ- मेरी विभूतियाँ, किस प्रकार मुझमें ही समा रही हैं, लीन हो रही हैं।

ततः समस्तास्ताः देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम्।

तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका। ४

शब्दार्थ- ततः ताः ब्रह्माणीप्रमुखाः समस्ताः देव्यः तस्याः देव्याः तनौ लयं जग्मुः तदा अम्बिका एका एव आसीत्।

शब्दार्थ- ततः देवी के ऐसा कहने के पश्चात्, ब्रह्माणीप्रमुखाः- ब्रह्माणी आदि आठों प्रमुख शक्तियाँ, समस्ताः- सभी लयं जग्मुः- लीनतां प्रापुः तनौ-शरीरे, तदा-तस्मिन् काले अम्बिका चण्डिका, एका एव- अद्वितीया, आसीत्-जाता।

व्याख्या- देवी के ऐसा कहते ही ब्रह्माणी आदि आठों प्रमुख शक्तियाँ देवी के शरीर में समा गई। तब वह देवी अम्बिका ही एक मात्र रणभूमि में रह गई।

देव्युवाच- अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता।

तत्संहतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव। ५

अन्वय- देवी उवाच- हे शुम्भ, अहं विभूत्या बहुभिः रूपैः यत् आस्थिता तत् मया संहतम्, अहं आजौ एका एव तिष्ठामि स्थिरो भव।

शब्दार्थ- देवी उवाच- देवी ने कहा, यत्- जो, विभूत्या-विभूति-ऐश्वर्य के द्वारा ऐश्वर्य के बल से, बहुभिः रूपैः अनेक रूपों में आस्थिता-तिष्ठतिस्म-स्थित थी, तत्- वह विभूति, संहृतम्-समेट ली है, आजौ-युद्ध में, स्थिरो भव-अब तू ठहर। अब तू युद्ध में मुझ एकाकी का भी पराक्रम देख ले।

व्याख्या- जब ब्रह्माणी आदि शक्तियाँ देवी के शरीर में विलीन हो गई तब देवी ने शुम्भ से कहा कि मैं अब तक जो अनेक शक्तियों के साथ रणभूमि में थी, उन सबको मैंने अपने में लीन कर लिया है, और मैं ही एक मात्र तेरे सामने समरभूमि में खड़ी हूँ रे दुष्ट अब तू ठहर और युद्ध में मेरे कौशल को देख।

ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः।

पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम्। ६

अन्वय- ततः देव्याः शुम्भस्य च उभयोः सर्वदेवानाम् असुराणां च पश्यतां दारुणं युद्धं प्रववृते।

शब्दार्थ- ततः तदनन्तरम्, देव्याः- चण्डिकायाः, उभयोः- दोनों का, देवानां असुराणां च पश्यताम्-देवता और दैत्य दोनों ही जिसे देख रहे थे, दारुणम्-भयजनकम्, प्रववृते-प्रारभत-प्रावर्तिष्ट प्रारंभ हुआ।

व्याख्या- देवी ने जब इस प्रकार शुम्भ को ललकारा तो फिर दोनों में ऐसा भयंकर युद्ध प्रारंभ हुआ जिसे देखकर देवता और दैत्य दोनों ही भयभीत हो रहे थे। देवता इस आशंका से डर रहे थे कि कहीं देवी की पराजय हुई तो अब तक का सब किया कराया चौपट हो जायेगा और असुर उन्हें अधिक उत्पीड़ित करेंगे। दूसरी ओर दैत्य इसलिये डर रहे थे कि यदि इस अन्तिम युद्ध में शुम्भ मारा गया तो असुरों के लिये तीनों लोकों में कहीं भी ठिकाना न रह जायेगा।

शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः।

तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्वलोकभयंकरम्। ७

अन्वय- शितैः शरवर्षैः शस्त्रैः अस्त्रैः च दारुणैः तयोः सर्वलोकभयंकरम् भूयः युद्धं अभूत्।

शब्दार्थ- शितैः तीक्ष्णैः, शरवर्षैः- वाणवृष्टिभिः, दारुणैः-घोरतरैः, भूयः- बहुतरम् वा महत्, अस्त्रैः क्षेप्तव्यैः जिन्हें दूर से फेंका जाय, तयोः - देवीशुम्भयोः सर्वलोकभयंकरम्- सर्वेषाम् लोकानाम् भयजनकम्, तयोर्युद्धमभूद्भूयः के स्थान पर तयोर्युद्धमभूद्भूप ऐसा पाठ मानकर भी अर्थ किया गया है। भूयः का अर्थ- फिर अथवा महत्- बड़ा होता है और यह युद्ध का विशेषण है। यदि भूप ऐसा पाठ मानें तो यह राजा सुरथ के लिये सम्बोधन होगा। तयोः - उभयोः देवी और शुम्भ का

व्याख्या- तब देवी और शुम्भ का परस्पर ऐसा घोर युद्ध हुआ कि दोनों ओर से तीक्ष्ण बाणों की मानों वर्षा हो रही हो, अभिमन्त्रित अस्त्र-शस्त्र चलाये जा रहे थे। बड़े ही घोरतर महान् आयुधों का इस युद्ध में प्रयोग किया जा रहा था। इस युद्ध से तीनों लोकों में भय व्याप्त हो गया।

दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका।
बभंज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः। ८

अन्वय- अम्बिका शतशः यानि दिव्यानि अस्त्राणि मुमुचे, दैत्येन्द्रः तत्प्रतीघातकर्तृभिः तानि बभंज।

शब्दार्थ- दिव्यानि- अभिमन्त्रितानि- अस्त्राणि-असु क्षेपणे धातु से निष्पन्न होने के कारण वे आयुध जिन्हें फेंककर दूर से प्रहार किया जा सके, उन सभी को अस्त्र कहा जाता है। इन्हें आज के आयुधों में प्रक्षेपास्त्र कहा जा सकता है। शस्त्र वे जिनसे आमने सामने की लड़ाई लड़ी जाय जैसे तलवार, किरच आदि। शतशः - शतं शतं सैकड़ों की संख्या में, मुमुचे- प्रक्षिप्तवती, छोड़ा, तानि- उन उनको, बभंज-भंजन किया खण्डयामास, तत्प्रतीघातकर्तृभिः - तस्य अस्त्रस्य विफलत्वं सम्पादयद्भिः, तेषा प्रयुक्तानां अस्त्राणां विपरीतास्त्रैः विफलत्वं कर्तृभिः विरोधिभिः, जैसे कि आग्येयास्त्र का विपरीत वारुणास्त्र से उसका शमन, वारुणास्त्र का वायव्यास्त्र से शमन, पन्नगास्त्र-नागपाश का प्रयोग किये जाने पर वहाँ गरुड़ का आवाहन किया गया था, इसी को प्रतिघातकर्ता कहा गया है।

व्याख्या- अम्बिका ने जब शुम्भ पर सैकड़ों दिव्यास्त्रों का प्रयोग किया तो शुम्भ ने भी उसके विरुद्ध उनके प्रतिकारकारक अस्त्रों का प्रयोग कर उन्हें विफल कर दिया।

मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी।
बभंज लीलयैवोग्रहुंकारोच्चारणादिभिः। ९

अन्वय- परमेश्वरी तेन मुक्तानि दिव्यानि अस्त्राणि च लीलया एव उग्रहुंकारोच्चारणादिभिः बभंज।

शब्दार्थ- परमेश्वरी-चण्डिका देवी, दिव्यानि-अभिमन्त्रितानि, मुक्तानि-प्रक्षिप्तानि, लीलया- अनायासेन, उग्रहुंकारोच्चारणादिभिः- हुं इति उच्चारणं हुंकारोच्चारणं उग्रं च तत् हुंकारोच्चारणं तदादिर्येषाम् तैः- उग्रहुंकारोच्चारणादिभिः बभंज - खण्डयामास।

व्याख्या- ऊपर के श्लोक में बता आये हैं कि देवी ने शुंभ के साथ युद्ध में जिन-जिन दिव्यास्त्रों का प्रयोग किया, उन्हें शुंभ ने उसका प्रभाव निष्फल करने वाले विपरीत अस्त्रों का प्रयोग कर उनका प्रतीकार प्रतिघात किया। परन्तु शुम्भ ने जितने भी दिव्यास्त्रों का प्रयोग किया, उन सभीको चण्डिका ने केवल हुं, हुं, फट् आदि मारण प्रयोगों के

उच्चारण मात्र से ध्वस्त कर दिया। देवी को उसके विपरीत प्रभाव वाले अस्त्र के प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं पड़ी।

ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः।
सापि तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्देद चेषुभिः।१०

अन्वय- ततः सः असुरः शरशतैः देवीं आच्छादयत, सा च देवी अपि कुपिता इषुभिः तद्धनुः चिच्छेद।

शब्दार्थ- शरशतैः- शराणां शतैः सैकड़ों हजारों बाणों से, आच्छादयत-छादयामास, ढक दिया तत्कुपिता- तस्मात् कुपिता क्रुद्धा सती इषुभिः - बाणैः शरप्रहारैः, धनुः शुम्भ के धनुष को चिच्छेद-खण्डयामास।

व्याख्या- तब उस दैत्य शुम्भ ने देवी को अपने धनुष से शरवर्षा करके ढक दिया। इससे देवी ने कुपित होकर अपने बाणों से उसका धनुष ही काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। यदि ऐसा अन्वय करें कि इषुभिः सह धनुः चिच्छेद। तो अर्थ होगा कि धनुष और वाणों को खण्ड खण्ड कर दिया।

छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे।
चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम्।११

अन्वय- अथ दैत्येन्द्रः धनुषि छिन्ने सति तथा शक्ति आददे देवी अस्य करे स्थितां तां अपि चक्रेण चिच्छेद।

शब्दार्थ- दैत्येन्द्रः दैत्यानां इन्द्रः श्रेष्ठः दैत्यराज, धनुषि छिन्ने सति-खण्डिते सति-धनुष के खण्ड खण्ड हो जाने पर, तथा- तेनैव प्रकारेण, आददे-जग्राह, चक्रेण-चक्रायुधेन चिच्छेद-छिनत्तिस्म।

व्याख्या- देवी के द्वारा शुम्भ का धनुष काट दिए जाने पर उसने देवी पर प्रहार करने के लिये शक्ति हाथ में ली ही थी कि उस शक्ति को भी चलाने के पहिले ही देवी ने उसके हाथ में ही काट डाला।

ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत्।
अभ्यधावत तां देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः।१२

अन्वय- ततः दैत्यानामधिपेश्वरः शतचन्द्रं भानुमत् च खड्गं उपादाय तां देवीं अभ्यधावत।

शब्दार्थ- शतचन्द्रम्- तारांकित, भानुमत्- सूर्य के समान चमकने वाला चर्म-ढाल उपादाय-गृहीत्वा, दैत्यानामधिपेश्वरः- दैत्यानां अधिपः स्वामिनः रक्तबीज धूम्रलोचनादयः-तेषां ईश्वरः शासनकर्ता दैत्यों के अधिपतियों पर जिसका शासन चलता हो।

व्याख्या- जब देवी ने शुम्भ के हाथ की शक्ति को चलाने के पहिले ही चक्र से काट डाला तो उस दैत्याधिराज ने अपनी ढाल-तलवार निकाली। उसकी ढाल अत्यन्त चमकीली और तारांकित थी। इस प्रकार ढाल तलवार लेकर वह देवी की ओर दौड़ा।

तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका।
धनुर्मुक्तैः शितैर्वाणैश्चर्म चार्ककरामलम्। १३

अन्वय- चण्डिका तस्य आपतत एव धनुर्मुक्तैः शितैः वाणैः आशु खड्गं चिच्छेद, अर्ककरामलं चर्म च चिच्छेद।

शब्दार्थ- तस्य शुम्भस्य आपतत एव- आक्रान्तुं आगत एव, धनुर्मुक्तैः- चापात् क्षिप्तैः शितैः- तीक्ष्णैः, अर्ककरामलम्-सूर्यरश्मिवत् निर्मलम्, चर्म- फलकम्, ढाल

व्याख्या- शुम्भ ने ढाल तलवार लेकर जैसे ही देवी पर आक्रमण किया तो देवी ने अत्यन्त शीघ्रता से अपने धनुष के द्वारा छोड़े गए तीक्ष वाणों से उसकी तलवार को काट डाला और सूर्य की किरणों के समान चमचमाती हुई ढाल को भी खण्ड खण्ड कर दिया।

हताश्वः स तदा दैत्यः छिन्नधन्वा विसारथिः।
जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिकानिधनोद्यतः। १४

अन्वय- तदा स दैत्यः हताश्वः छिन्नधन्वा विसारथिः सन् अम्बिकानिधनोद्यतः घोरं मुद्गरं जग्राह।

शब्दार्थ- हताश्वः - हता अश्वाः यस्यस हताश्वः, छिन्नधन्वा- छिन्नं चापं यस्य सः विसारथिः - विगतः मृत्युं प्राप्तः सारथिर्यस्य सः सारथिरहितः, घोरम्- भयंकरम्, मुद्गरम्- अयोलगुडम्, सारथिः हयनियामकः, अम्बिकानिधनोद्यतः अम्बिकां चण्डिकां जगदम्बां निधनाय- हन्तुं उद्यतः - कृतोद्योगः अम्बिकां हन्तुं कृत उद्योगः येन सः अम्बिकानिधनोद्यतः

व्याख्या- देवी के द्वारा जब शुम्भ के रथ के घोड़े मार डाले गये, धनुष काट डाला गया और रथ हांकने वाला सारथि भी मारा गया, तब उसने देवी का वध करने का प्रयत्न करते हुये देवी पर लोहे के मुद्गर से प्रहार किया।

चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः।
तथापि सोऽभ्यधावत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान्।१५

अन्वय- देवी आपततः तस्य मुद्गरम् निशितैः शरैः चिच्छेद तथापि सः वेगवान् मुष्टिं उद्यम्य तां अभ्यधावत्।

शब्दार्थ- आपततः - वेगेन आगच्छतः मुद्गरम्- लोकभाषा में इसे मुग्दर कहा

जाता है, काठ का मूसल के आकार का जिसके निचले भाग में लोहा गोलाकार जड़ा रहता है। प्राचीन व्यायाम शालाओं में इसे देखा जा सकता था। निशितैः- तीक्ष्णैः, शरैः- वाणैः चिच्छेद-खण्डयामास, तथापि-एवं कृते अपि, मुष्टिं-मुक्का, उद्यम्य-मुक्का ऊपर को तानकर, तां- देवीं प्रति, अभ्यधावत्-वेगेन प्रस्थितः।

व्याख्या- देवी ने शुम्भ के फेंके हुए मुद्गर को तीक्ष्ण वाणों से खण्ड खण्ड कर डाला फिर भी वह दैत्य देवी की ओर अपना मुक्का तानकर दौड़ा।

स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुंगवः।
देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत्।१६

अन्वय- सः दैत्यंपुगवः देव्या हृदये मुष्टिं पातयामास, सा देवी तं अपि.च तलेन उरसि अताडयत्।

शब्दार्थ- दैत्यपुंगवः - दैत्येषु पुंगवः श्रेष्ठः कोशानुसारेण- स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुंगवर्षभकुंजराः सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचराः। मुष्टिं- हस्त बद्धांगुलिसन्निवेशम् मुक्का, पातयामास-प्रयुक्तवान्, सा देवी तं दैत्यं उरसि-वक्षस्थले तलेन-करतलेन, चपेटतलेन थप्पड़ंअताडयत्- प्रहारं कृतवती।

व्याख्या- उस श्रेष्ठदैत्यशुम्भ ने देवी के हृदय में घूंसा का प्रहार किया तब देवी ने भी उस दैत्य के वक्ष पर तमाचा मारा।

तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले।
स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः।१७

अन्वय- स दैत्यराजः तलप्रहाराभिहतः महीतले निपपात, सहसा पुनः तथा एव उत्थितः।

शब्दार्थ- दैत्यराजः दैत्यानां राजा शुम्भः तलप्रहाराभिहतः- देवीकृतेन तलप्रहारेण अभिहतः- ताडितः महीतले भूमौ निपपात- गिर पड़ा, सहसा-वेगेन, एकदम, तथा एव- निपतनात् प्राक् एव उत्थितः- उत्थाय स्थितः।

व्याख्या- देवी का तमाचा खाकर वह दैत्यराज पृथ्वी पर गिर पड़ा। किन्तु वह फिर अकस्मात् ही पूर्व जैसा स्वस्थ होकर उठकर खड़ा हो गया।

उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैः देवीं गगनमास्थितः।
तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका। १८

अन्वय- उत्पत्य देवीं च प्रगृह्य उच्चैः गगनं आस्थितः। उच्चैः उत्पत्य देवीं प्रगृह्य च गगनं आस्थितः वा उत्पत्य उच्चैः देवीं प्रगृह्य च गगनं आस्थितः तत्र अपि सा चण्डिका निराधारा तेन सह युयुधे।

शब्दार्थ- उत्पत्य- उड्डीय, ऊर्ध्वं गत्वा, प्रगृह्य-आदाय गृहीत्वा, उच्चैः अत्यर्थ, उच्चावस्थायां गगनं-आकाशं, नभोमण्डलं, आस्थितः - आश्रितः, आरूढवान्, तत्र-आकाशे, निराधार- आधाररहिता, निरालम्बा यानरहिता, स्वप्रयत्नेतरपाताभावहेतुहीना, जहाँ से केवल इच्छा से ही नीचे आया जा सके, अथवा स्थिति के लिये आधाररहिता,

व्याख्या- वह दैत्य उछल कर देवी को लेकर ऊँचे आकाश में जा पहुँचा, अथवा बहुत ऊँचा उछल कर देवी को लेकर आकाश में जा पहुँचा, ऊँचे उछल कर देवी को कसकर पकड़े हुए आकाश में जा कर स्थित हुआ। देवी ने उस आधारहीन आकाश में भी स्थित होकर उस दैत्य के साथ युद्ध किया।

विशेष- गगन से साधनामार्ग में यहाँ आज्ञा चक्र का संकेत है। निराधारा से निरालम्बा मुद्रा का संकेत है। निरालम्बा मुद्रा के साथ आज्ञचक्र में ध्यान करने से भ्रूमध्य में ज्योति का दर्शन होता है।

नियुद्धं खे तदा दैत्यचण्डिका च परस्परम्।

चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम्। १९

अन्वय- तदा दैत्यः चण्डिका च परस्परम् सिद्धमुनिविस्मयकारकम् प्रथमं नियुद्धं खे चक्रतुः।

शब्दार्थ- दैत्यः शुम्भः, तदा-गगनारोहरणकाले, आकाश में आरोहण करते समय, चण्डिका- दुर्गा, खे- आकाशे, प्रथमम्- प्राक् पहिले, प्रथमं मुख्यार्थकम्, प्रमुख सिद्धमुनिविस्मयकारकम्- सिद्धाश्च मुनयश्च सिद्धमुनयः तेषां विस्मयकारकम्-आश्चर्य जनकं, सिद्ध और नारदादि मुनियों को आश्चर्य में डालने वाला, नियुद्धम्-बाहुयुद्धम्, मल्लयुद्ध, चक्रतुः- चक्राते।

व्याख्या- तब आकाश में शुम्भदैत्य और दुर्गा के मध्य परस्पर वह घोर बाहुयुद्ध प्रारंभ हुआ जिसे देखकर सिद्धगण और मुनियों को भी आश्चर्य हुआ कि निराधार आकाश में अवस्थित होकर इस प्रकार बाहुयुद्ध करना तो कभी न देखा गया और न सुना गया।

विशेष- भौतिक अर्थ इस युद्ध का जो कुछ भी लिया जाय परन्तु आध्यात्मिक धरातल पर तो यह संघर्ष आज्ञाचक्र से आगे बिन्दु, अर्धचन्द्र रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समना और उन्मनीअवस्था तक का मार्ग प्रशस्त करने का है। इसी को द्वादशसंहति और द्वादशान्त के नाम से अभिहित किया जाता है। इसी के लिये पूर्व में - अर्धमात्रा स्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः कहा गया है।

ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह।

उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले। २०

अन्वय- अम्बिका तेन सह सुचिरं नियुद्धं कृत्वा ततः उत्पात्य भ्रामयामास धरणीतले चिक्षेप च।

अम्बिका- दुर्गा, जगन्माता, तेन-शुम्भदैत्येन सह सुचिरम्- बहुकालपर्यन्तम् चिरतरकालं-चिरकाल तक, कृत्वा सम्पाद्यनिवृत्य, उत्पात्य-उर्ध्व नीत्वा, उठाकर, ततः तदनन्तरं इसके पश्चात्, भ्रामयामास-चरणं उद्धृत्य वलयाकारेण भ्रामयित्वा, पैर पकड़ कर घुमाते हुए धरणीतले- भूमौ पृथ्वी पर, चिक्षेप- पातयामास, फेंक दिया।

व्याख्या- जगन्माता दुर्गा ने चिरकाल तक आकाश में स्थित रहकर उस दैत्यराज के साथ मल्लयुद्ध किया, फिर उसे उठाकर वहीं उसको पैरों से पकड़कर घुमाया और फिर पृथ्वी पर फेंक दिया पटक दिया।

विशेष- सुचिरम् कहकर यह संकेत दिया है कि यह साधना का संघर्ष अनेक जन्म तक भी चल सकता है- अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।

स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगतः।

अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिका निधनेच्छया।२१

अन्वय- स क्षिप्तः सन् धरणीं प्राप्य वेगतः मुष्टिं उद्यम्य दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया अभ्यधावत।

शब्दार्थ- क्षिप्तः - देवी के द्वारा इस प्रकार आकाश से पृथ्वी पर फेंक दिये जाने पर धरणीं प्राप्य- पृथ्वी पर आकर, वेगतः- वेगात्, जवेन, वेगितः इति पाठे वेगयुक्तः, वेगवान् इति पाठे च सैवार्थः, बड़े वेग से, मुष्टिं उद्यम्य-घूंसा तानकर दुष्टात्मा- दुष्ट आत्मा स्वभावो यस्य सः - जो स्वभाव से ही दुष्ट है - आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्म वर्ष्म च। इति कोशात्। चण्डिकानिधनेच्छया चण्डिकां देवीं निधनाय निहन्तुं इच्छा तया देवीं हन्तुकामः, देवी को मार डालने की इच्छा से अभ्यधावत-आभिमुख्येन अद्रवत्। सामने दौड़ा।

व्याख्या- देवी ने जब शुम्भ को इस प्रकार उठाकर और पैर पकड़ कर घुमाते हुए पृथ्वी पर फैंक दिया तो पृथ्वी पर आते ही उस दैत्य ने देवी को मार डालने की इच्छा से घूंसा तान लिया और वह दुष्ट बड़े वेग से देवी के सामने दौड़ कर आया।

तमायान्तं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम्।

जगत्यां पातयामास भित्वा शूलेन वक्षसि।२२

अन्वय- ततः देवी सर्वदैत्यजनेश्वरं तं आयान्तं दृष्ट्वा शूलेन वक्षसि भित्वा जगत्यां पातयामास।

शब्दार्थ- सर्वदैत्यजनेश्वरम् सर्वेषां दैत्यजनानां ईश्वरं स्वामिनं- सभी दैत्यों के राजा

को आयान्तं- आगच्छन्तं, वक्षसि-उरसि, हृदये, भित्वा-विदीर्य, जगत्यां पृथिव्यां, जगती जगतिच्छन्दे विशेषेपि क्षितावपि। इति कोशात्। पातयामास-गिरा दिया।

व्याख्या- देवी ने जब उस दैत्यराज शुम्भ को अपनी ओर आते देखा तो शूल के प्रहार से उसका हृदय विदीर्ण करके उसे पृथ्वी पर गिरा दिया।

स गतासुः पपातोर्व्यां देवी शूलाग्रविक्षतः।
चालयन्सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम्।२३

अन्वय- देवी शूलाग्रविक्षतः सः गतासुः साब्धिद्वीपां सपर्वतां सकलां पृथ्वीं चालयन् उर्व्यां पपात।

शब्दार्थ- देवीशूलाग्रविक्षतः - देव्याः शूलं आयुधं तस्य अग्रं अग्रभागं तेन विक्षतः विशेषेण क्षतः हिंसितः विक्षतः खण्डितः, देवी के शूल के नुकीले प्रहार से क्षतविक्षत होकर, गतासुः निष्प्राणः मृत, सपर्वतां-पर्वतैः सहिताम्, साब्धिद्वीपां-सप्तद्वीपसमुद्रसहिताम् चालयन्-कम्पयन् उर्व्यां - भूमौ।

व्याख्या- देवी अम्बिका केशूल प्रहार से क्षत विक्षत होकर वह दैत्य शुम्भ मर गया और जब वह मरकर पृथ्वी पर गिरा तो समुद्र, द्वीप ओर पर्वतों सहित सम्पूर्ण पृथ्वी हिल गई।

उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः।
सरितो मार्गवहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते। २४

अन्वय- प्राक् ये सोल्काः उत्पातमेघाः आसन् ते शमं ययुः, तत्र पातिते सरितः तथा मार्ग वाहिन्यः आसन्।

शब्दार्थ- प्राक्-शुंभवधात्पूर्वम्, सोल्का-उल्का ज्वलत्पिण्डसहिता, उत्पातमेघाः-उत्पातसूचकाः मेघाः, आसन् अभूवन् शमंशान्ति ययुः अगमन्। तथा एवमेव, तत्र पातिते-देव्या शुम्भे निपातिते सति सरिताः मार्गवाहिन्यः - मार्गे वहन्ति स्रवन्ति इति मार्गवाहिन्यः स्वमार्गगामिन्यः

व्याख्या- शुम्भ की मृत्यु के पूर्व आकाश में पुच्छतलाराओं के साथ जो अशुभसूचक मेघ छाये हुए थे, वे उस दैत्य की मृत्यु के साथ ही शान्त हो गए। पहिले नदियां अपना अपना मार्ग त्याग कर प्रवाह बदल कर उत्पथगामिनी होकर लोगों के त्रास का कारण बन गई थी वे अब फिर अपने पूर्व निर्धारित मार्ग से बहने लगी।

ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन्दुरात्मनि।
जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाभवन्नभः।२५

अन्वय- ततः तस्मिन् दुरात्मनि हते अखिलं जगत् प्रसन्नं अतीव स्वास्थ्यं आप नभः च निर्मलं अभवत्।

शब्दार्थ- तस्मिन् दुरात्मनि - उस दुष्ट के हते - मारे जाने पर, अखिलं- समस्तं, सर्व, सम्पूर्ण जगत्- विश्वं, स्वास्थ्यं-अनाकुलता अनाविलत्वं, प्रसन्नं-प्रकाशीभूतम्-आप-प्राप्तं, नभः - आकाशं, प्रसन्नं निर्मलं अभवत्।

व्याख्या- तब उस दुष्ट शुम्भ के मारे जाने पर संसार भर में प्रसन्नता छा गई। संसार की जो व्यवस्था उसके कारण अस्त व्यस्त हो गई थी, वह फिर से ठीक हो गई और आकाश में जो उल्का पिण्ड और उत्पात सूचक मेघ दिखाई दे रहे थे वे हट जाने से आकाश निर्मल हो गया।

ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः।
बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्वाः ललितं जगुः।२६

अन्वय- ततः तस्मिन् निहते सर्वे देवगणाः हर्षनिर्भरमानसाः बभूवुः गन्धर्वा च ललितं जगुः।

शब्दार्थ- ततः शुम्भवधानन्तरम्, देवगणाः - ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्रादयः, हर्षनिर्भरमानसाः-हर्षेण निर्भराणि पूर्णानि मानसानि मनांसि येषां ते हर्षनिर्भरमानसाः जिनके मन प्रसन्नता से आनंद से भर गये हैं बभूवुः- जाताः, सर्वे गन्धर्वाः हर्षनिर्भरमानसाः सन्तः ललितं-मधुरं देव्या पराक्रमं जगुः गायन्तिस्म।

व्याख्या- शुम्भ के मारे जाने पर ब्रह्मा, विष्णु, शंकर और इन्द्र आदि सभी देवता मन में पूर्ण आनन्दित हुए और गन्धर्व प्रसन्न मन से देवी के पराक्रम का बखान करते हुये गाने लगे।

अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः।२७

अन्वय- तथैव अन्ये वाद्यानि अवादयन्, अप्सरोगणाः ननृतुः च तथा वाताः पुण्याः ववुः दिवाकरः च सुप्रभः अभूत्।

शब्दार्थ- अन्ये- गन्धर्वादयः वाद्यानि अवादयन् ननृतुः- नृत्यन्तिस्म, नाचने लगी। वाताः पवनाः पुण्याः- शीतमान्द्यसुगन्धयुक्ता, शीतल, मन्द, सुगन्ध, ववुः-वान्तिस्म दिवाकरः- सूर्यः, सुप्रभः- प्रभाभास्वरः,

व्याख्या- उस दैत्यराज के मारे जाने पर अन्य गन्धर्वादिक आनंद से बाजे बजाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगी, पवन धूलरहित होकर शीतल, मन्द, सुगन्ध बहने लगा, आकाश में युद्ध के समय जो अन्धकार सा छा गया था, वह अब दूर हो गया और सूर्य का प्रकाश प्रभामय होने लगा।

जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्ता दिग्जनितस्वनाः। २८

अन्वय- शान्ताः अग्नयः जज्वलुः, दिग्जनितस्वनाः च शान्ता।

शब्दार्थ- शान्ताः अग्नयः जज्वलुः - यज्ञविध्वंसकारिणः शुम्भस्य निर्देशात् य आहवनीयगार्हपत्यदक्षिणाग्न्यादयः तद्वधात्प्राक् शान्ताः निर्वापिता आसन् ते अधुना तद्वधानन्तरं जज्वलुः शुम्भे निहते यज्ञाः प्रवृत्ता इति भावः दिग्जनितस्वनाः च शान्ता- शुम्भस्यात्याचारेण पीड़िता देवाः मानुषाश्च हाहाकारं कृतवन्तः तेषां हाहाकारेण दिगन्तव्यापिकोलाहलं शान्तम् अभवत्।

अंगारिणी दिग् रविविप्रयुक्ता यस्यां रविस्तिष्ठति सा प्रदीप्ता।
प्रधूपिता यास्यति यां दिनेशः शेषास्तु शान्ताः शुभदाश्च ताः स्युः।।

शान्ता दिग्जनितस्वना आग्नेयः का विशेषण मानकर अर्थ होगा कि दिशाओं में उत्पन्न घोर शब्द जो दिग्दाह के कारण हो रहा था, अब वही अग्नि शान्त होकर जलने लगी।

व्याख्या- शुम्भ के शासन में यज्ञ आदि करना वर्जित होने के कारण आवहनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि प्रज्वलित नहीं की जा सकती थी, अब उसके निधन से यज्ञ क्रिया फिर प्रारंभ हो गई और शमित अग्नि फिर से प्रज्वलित होने लगी। अग्नि शान्त धूमरहित और निर्मल होकर प्रज्वलित होने लगी। दिशाओं में अशुभ सूचक जो घोर शब्द हो रहे थे वे शान्त हो गए।

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे शुम्भवधो नाम दशमोऽध्यायः।

इस प्रकार मार्कण्डेयपुराण के अन्तर्गत शुम्भवध नामक दशम अध्याय पूरा हुआ।

●●●

एकादशोऽध्याय:

ऋषिरुवाच

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे सेन्द्राः सुराः वन्हिपुरोगमास्ताम्।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद्विकासिवक्त्रास्तु विकासिताशा।।१

अन्वय- ऋषि: उवाच-देव्या तत्र महासुरेन्द्रे हते सेन्द्राः वन्हिपुरोगमाः सुराः इष्टलाभाद्विकासिवक्त्राः विकासिताशाः तां कात्यायनीं तुष्टुवुः।

शब्दार्थ- तत्र-संग्रामे, महासुरेन्द्रे-महान्तः असुराः तेषु इन्द्रः श्रेष्ठस्तस्मिन् महासुरेन्द्रे हते-निहते सति, सेन्द्राः इन्द्रेण सहिताः, वन्हिपुरोगमाः वन्हिपुरः सराः, वन्हिमुख्याः कात्यायनी कतो नाम ऋषिः तस्य अपत्यं स्त्री-कात्यायनी, कात्यायनी कथनेन आसां चण्डिकादिदेवीनां ऐक्यं सूचितम्। इष्टलाभात्-इष्टस्य अभीष्टस्य शुम्भादिवधस्य लाभात् प्राप्तेः, विकासिवक्त्राः- प्रसन्नवदनाः विकसितं आननं येषान्ते, विकाशिताशाः - विकासिताः आशाः दिशः यैस्ते, विकाशिताशाः - फलिताः आशाः मनोरथाः येषां ते यहाँ तीन पाठ भेद मिलते हैं - विकासिवक्त्रास्तु विकासिताशाः, विकासिवक्त्राब्जविकासिताशाः और विकासिवक्त्रांशुविकाशिताशाः - विकासि में तालव्य और दन्त्य सकार दोनों में यद्यपि भिन्नता है किन्तु आप्टे के कोश के अनुसार दोनों का अर्थ-चमकने वाला, फलने वाला, खिलने वाला दिया है। आशा का अर्थ कोष के अनुसार- दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः -अमरकोश के अनुसार दिशा के अर्थ में अधिक समीचीन जान पड़ता है। प्रत्याशा का अर्थ पुनरुक्त सा प्रतीत होता है, क्योंकि इष्टलाभात् पहिले ही आ चुका है। विकासिवक्त्राब्जविकासिताशा का अर्थ होगा जिनके मुखकमल विकसित होने से मुखों की दीप्ति से दिशाएं प्रकाशित हो रही है। विकासिवक्त्रांशविकासिताशाः का अर्थ होगा कि जिनके प्रफुल्लित मुखों की दीप्ति के किरणजाल से दिशाएं प्रकाशित हो रही हैं, चमक रही हैं। वैसे विकासि शब्द कस् धातु से और विकाशि चकाशृ धातु से बनता है। अतः प्रथम पद में सकारान्त और द्वितीय पद में शकारान्त अधिक संगत प्रतीत होता है। क्योंकि मुख केसाथ खिलना या फूलना और दिशा के साथ दीप्त होना, चमकना, प्रकाशित होना अर्थ अभीष्ट व्यंजक है। तुष्टुवुः- स्तुत्युपयोगीनि वाक्यानि उक्तवन्तः।

व्याख्या- चण्डिका के साथ युद्ध में दैत्यराज शुम्भ के मारे जाने पर सभी देवता अपना मनोरथ पूर्ण हो जाने के कारण अत्यन्त प्रसन्न हुये। उनके मुख कमल प्रसन्नता से जैसे खिल रहे थे, उनके मुखों की कान्ति से दिशा में प्रकाश फैल रहा था। इन्द्र सहित सभी देवता अग्नि देव को आगे करके जगदम्बा की स्तुति करने के लिये उनके सम्मुख आकर इस प्रकार स्तुति करने लगे।

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेवरि पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य।२

अन्वय- हे देवि, हे प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद, अखिलस्य जगतः मातः प्रसीद हे विश्वेश्वरि प्रसीद, विश्वं पाहि, हे देवि त्वं चराचरस्य ईश्वरी।

शब्दार्थ- प्रपन्नार्तिहरे- प्रपन्नानां शरणागतानां भक्तानां आर्ति दुःखं हरतीति प्रपन्नार्तिहरा तत्संबुद्धौ प्रपन्नार्तिहरे - शरणागत भक्तों के कष्ट विपत्ति को दूर करने वाली, प्रसीद-प्रसन्ना भव, आदर अथवा संभ्रम के कारण दो या तीन बार की उक्ति, अखिलस्य-समस्तस्य, जगतः- संसारस्य, मातः - लक्ष्मीरूपेण पालनकर्त्री, विश्वेश्वरी - विश्वस्य ईश्वरी विष्णुमाया रूपेण नियामिका, पाहि-रक्ष, चराचरस्य-स्थावरजंगमात्मकस्य, जडचेतनस्य, मध्ये ईश्वरी-व्यापिका।

व्याख्या- हे देवि आप शरणागतों के कष्टों को दूर करने वाली हैं, आप इस जड़ चेतन जगत की माता हैं, रक्षा करने वाली हैं। माता के समान पालन करने वाली हैं आप सम्पूर्ण विश्व का नियंत्रण करने वाली हैं। आप ही इस सबकी स्वामिनी हैं, संसार की रक्षा कीजिये, इस सम्पूर्ण जगत में एकमात्र आप ही स्वतंत्र हैं अन्य सभी तो आपकी माया के वशीभूत हैं।

आधारभूता जगतस्त्वमेकामहीस्वरूपेण यतः स्थितासि।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैतदाप्यायते कृत्स्नमलंघ्यवीर्ये।३

अन्वय- त्वं यतः महीस्वरूपेण स्थिता असि अतः त्वं एका जगतः आधार भूता, हे अलंघ्यवीर्ये अपां स्वरूपस्थितया त्वया एव एतत् कृत्स्नं आप्यायते।

शब्दार्थ - यतः क्योंकि, महीस्वरूपेण, - पृथ्वीरूपेण स्थिता-अवस्थिता, एका- केवला, एकेमुख्यान्य केवले त्यमरः, आधारभूता-त्वदाधारणैव जगतः स्थितिः, अपां स्वरूपस्थितया - जलरूपया कृत्स्नं- सम्पूर्णम्, आप्यायते-वृद्धिं नयते, अलंध्यवीर्ये- न लंध्यं अलंध्य वीर्य बलं यस्या सा अलंध्यवीर्या तत्संबुद्धौ- जिससे बढ़कर कोई भी बल और प्रभाव वाला न हो।

व्याख्या- हे देवि, हे अतुलबलपराक्रमे, आप पृथ्वीरूप में इस संसार की आधारभूत हैं। जल के रूप में आप ही इस जगत का आप्यायन- वृद्धि करने वाली हैं।

त्वं वैष्णवीशक्तिरनन्तवीर्या विश्वस्य बीजं परमासि माया।
संमोहितं देवि समस्तमेतत्त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः।४

अन्वय - देवि त्वं अनन्तवीर्या वैष्णवीशक्तिः असि, त्वं विश्वस्य बीजं, त्वं परमा माया असि, एतत् समस्तं त्वया संमोहितं, त्वं प्रसन्ना वै मुक्तिहेतुः।

शब्दार्थ- अनन्तवीर्या-अपरिमितं बलं प्रभावो यस्या सा, वैष्णवीशक्ति:-पालनकर्मणि नारायणि रूपेण, बीजं-निदानं आदिकारण्म्, परमा-अतिशया, उत्कृष्टा, संमोहितम्-मोहगर्ते निपातितम्, मुक्तिहेतु:-मुक्ते: कारणम्। हेतुर्नाकारणं बीजम्, वीर्य बलं प्रभावश्च इति कोशात्। माया-अविद्या शक्ति:।

व्याख्या- हे देवि अमित पराक्रम वाली वैष्णवी शक्ति आप ही हैं, आप ही इस जगत की उत्पत्ति का मुख्य कारण हैं, आप ही अतिशय माया अविद्या रूपा हैं। जिसके वशीभूत यह सारा संसार मोह ममता में फंसा हुआ है, यह समस्त जगत आप की माया के द्वारा ही मोहजाल में उलझा हुआ है, यहाँ प्रश्न यह होता है कि यदि अविद्या रूपा देवी ही सबके मोह का कारण है तो जीव की मुक्ति तो सम्भव ही नहीं। इसलिए कहते हैं कि आप यदि प्रसन्न हो जाये तो आप ही मोक्ष प्रदान करने वाली हैं। बन्ध और मोक्ष दोनों ही आपके हाथ में है।

विशेष- वैष्णवीशक्ति कहने से पालनशक्ति और विश्वस्य बीजं कहने से कारणशक्ति का संकेत किया गया है। संमोहन से अविद्या का संकेत करते हुए आगे विद्या रूपा देवी की स्तुति करते हुए कहते हैं-

विद्या: समस्ता:तव देवि भेदा:स्त्रिय: समस्ता:सकला जगत्सु।
त्वयैकयापूरितमम्बयैतत्का ते स्तुति: स्तव्यपरापरोक्ति:।५

अन्वय-हे देवि जगत्सु समस्ता: विद्या सकला: समस्ता: स्त्रिया: तव भेदा: जगत्सु त्वया एकया अम्बया एतत् पूरितं, स्तव्यपरा अपरोक्ति: अत: ते का स्तुति:। वा स्तव्या परा, उक्ति: अपरा।

शब्दार्थ- विद्या:-विद्या कहने से चौदह अथवा अठारह विद्याओं का बोध होता है जो इस प्रकार हैं - अंगानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तर:। पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश। आयुर्वेदो धनुर्वेदोगन्धर्वश्चेति ते त्रय:. अर्थशास्त्रं चतुर्थं च विद्या ह्यष्टादशैव तु। चार वेद-ऋक्, यजु:, साम और अथर्ववेद। वेदों के छ: अंग - शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द: शास्त्र। धर्मशास्त्र, पुराण, मीमांसा और न्यायशास्त्र न्यायविस्तर: कहा है जिसका आशय यही है कि इसी के अंतर्गत छ: दर्शन शास्त्रों का समावेश कर लिया गया है। मीमांसा और न्याय के अतिरिक्त चार दर्शन-सांख्य, योग, वैशेषिक और वेदान्त वा उत्तरमीमांसा आते हैं। विद्धातु ज्ञान के अर्थ में इसलिये विद्या शब्द के व्यापक अर्थ को लेते हुए वर्तमान काल के सभी विषयों का समावेश इसी एक शब्द के अंतर्गत आ जाता है। तब इसका आशय हुआ कि संसार में जो कुछ भी ज्ञेय है, वह सब शक्ति का ही रूप है। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय ये तीनों ही शक्ति के भेदमात्र हैं, शक्ति के स्फुरण मात्र हैं। समस्ता: स्त्रिय: तव भेदा: - सम्पूर्ण स्त्री वाची जो कुछ है,

वह आपके ही भेद है। चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा छाया, शक्ति, तृष्णा, क्षान्ति, जाति, लज्जा, शक्ति, वृत्ति, अन्यजितने भी स्त्रीवाची हो सकते हैं, वे सभी शक्ति के ही रूप हैं। यही स्त्रियः समस्ताः का आशय है।

सकला-कला सहिता, जितनी भी कलाएं हैं वे सभी शक्ति के रूप हैं। चौसठ कलाओं के नाम इस प्रकार गिनाये गये हैं-

गीत, वाद्य, नृत्य नाट्य, आलेख्य, तिलक, तण्डुलकुसुमावलीविकार, पुष्पास्तरण, ८ दशनवसनांगानां रागः, मणिभूमिकर्म, शयनरचनं, उद्कवाद्यं, चित्रयोगः, १३, चित्रमाल्यग्रथनविकल्पः, शेखरापीडयोजनं, नेपथ्ययोगः, कर्णपत्रभंगि, सुगन्धयुक्तिः, १८ भूषणयोजनं, ऐन्द्रजालं, कौंचमारयोगः, हस्तलाघवं, चित्रशाखापूपभुक्तिविकारक्रिया २३ पानकरसरागासवयोजनं, सूचिवयनकर्म, सूत्रक्रीडा, डमरुकवीणावाद्यानि, प्रहेलिका २८ प्रतिमाला, दुर्वचकयोगः, पुस्तक वाचनं, नाटकाख्यायिकादर्शनं, काव्यसमस्यापूरणं ३३ पट्टिकीवेत्रवाणविकल्पाः, तर्ककर्माणि, तक्षण, वास्तुविद्या, रूपरत्नपरीक्षा, ३८ धातुवादः, मणिरागज्ञानं, आकारज्ञानं, वृक्षायुर्वेदयोगाः, मेषकुक्कुटलावबकयुद्धविधिः शुकसारिकाप्रलापनं, उत्सादनं, केशमार्जन, अक्षरमुष्टिकाकथनं, श्लोकतर्कविकल्पः, ४८ देशभाषाज्ञानं, पुष्पशकटिका, निमित्तज्ञानं, यन्त्रमातृ-का, धारणामातृका, संवाच्यं, ५४ मानसीकाव्यक्रिया, अभिधानकोशः, छन्दोज्ञानं, क्रियाविकल्पः, छलितकयोगः, ५९ वस्त्रगोपनानि, द्यूतविशेषः, आकर्षणक्रीड़ा, बालक्रीडनकानि, वैनायकीनां वैयासिकीनां च विद्यानां ज्ञानम् ६४ इनमें से अनेक कलाओं के केवल नाम ही जाने जा सकतेहैं, वह कला किस प्रकार की रही होगी, इसका ज्ञान होना दुष्कर है। अतः शुक्रनीतिसार के अनुसार चौसठ कलाओं के नाम दिये जा रहे हैं जो इस प्रकार हैं-

नृत्य, चतुर्विधवाद्यनिर्माण और वादन, चार प्रकार के वाद्य तत, आनद्ध, सुषिर और घन कहे जाते हैं। इनका बनाना और बजाना मिलाकर एक कला मानी गयी है, वस्त्रालंकरण, वेशपरिवर्तन-बहुरूपिया की कला शैयास्तरण, द्यूत, कामकला के चौरासी आसन, आसवारिष्टनिर्माण, शल्यक्रिया, उद्यानकला, पाककला, धातुविज्ञान, १२ मिष्ठान्ननिर्माण, रसायन, मित्रपंचक का ज्ञान - धातुओं के शोधन मारण के पश्चात् उनकी परीक्षा की जाती है कि वे कच्ची तो नहीं रह गई। यह परीक्षा मित्रपंचक के द्वारा की जाती है। घी, गुड, गुग्गुल, शहद और घुंघची इन पांचों को मिलाकर भस्म के साथ आंच देने पर यदि भस्म शुद्ध होगी तो मित्रपंचक जल जायेंगे और शुद्ध भस्म मात्र रह जायेगी। इसे निरुत्थ भस्म कहा जाता है। यदि भस्म कच्ची रही हो तो मित्रपंचक के सहयोग से वह मूल धातु के रूप में परिवर्तित हो जायेगी। धातु मिश्रण, लवणनिर्माण, आलीढज्ञान, मल्लविद्या, निपीडनतत्प्रतिक्रिया, लक्ष्यानुसंधान २१ गजाश्वारोहण औरसंचालन, मुद्रा और आसन, कामकला के चौरासी आसन पहिले आ चुके हैं,

इसलिये मुद्रा और आसन से योग की मुद्रा और आसन अथवा, पूजन में प्रदर्शित की जाने वाली मुद्राओं से है, सारथ्य, भाण्डनिर्माण, चित्रकला, शिल्प, घटी निर्माण, वाद्यनिर्माण, व्यंजनकला, जलवाय् वग्निसन्निरोधक्रिया, इसके अंतर्गत अग्निशमन, बाढशमन और झंझावात शमन ये तीनों कलाएं आ जाती हैं, यान निर्माण, ३२ तन्तुश्रंखला निर्माण, तन्तुवयन, रत्न परीक्षा, रजतमहारजतपरीक्षण, सोने चांदी की परख, ३६ धातुमिश्रणविज्ञान, स्वर्णालंकार निर्माण क्रिया लेपादिकरण, चर्ममार्दवक्रिया, पशुचर्मांग निर्हारक्रिया, गोदोहन, सीवनकला जलसन्तरण, मार्जनकला, वस्त्रसंमार्जन, क्षौरकर्म, ४६ तेलनिष्कासन, हलप्रवहण, वृक्षारोपण, मनो नुकूलसेवा, वंशपात्रनिर्माण, कांच के बर्तन निर्माण जलसंसेचन, जलसंहरण, अस्त्रशस्त्रनिर्माण, गजाश्वसंभार निर्माण, शिशु संरक्षण, कौमार भूत्य, ५८ क्रीड़नकनिर्माण, दण्डनिर्धारण, विभिन्नलिपिलेखनवाचन, ताम्बूलसंरक्षण, आशुकारित्व और प्रतिदान ६४ ये चौंसठ कलाएं गिनाई गई हैं।

त्वया एकया अम्बया एतत् पूरितम् - हे देवि, केवल तुम्हारे द्वारा ही यह सब पूर्ण है यह सब तुम्हारा ही विस्तार है, ते-तव, कास्तुतिः क्या स्तुति हो क्योंकि स्तव्यपरा स्तव्या सापराच स्तव्यपरा जो स्तव्य है - स्तुतियोग्य है वह परा-श्रेष्ठ है उक्तिः अपरा- जो कुछ कहा जा सके वह उससे न्यून है हीन है। अथवा-स्तव्यपरा- जो स्तुतियोग्य है, वह परावाक् रूप है सरस्वती रूपा होने के कारण वह परावाक् है, कुण्डलिनीरूपा होने के कारण परावाक् है और उक्ति जो वैखरीरूपा है, वह अपरा है। वाणीके चार प्रकार बताये गये हैं - परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी।

व्याख्या - देवी शब्द दिवु, क्रीड़ाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु इतने अर्थों में प्रयुक्त होते है। देवि संबोधन का रूप है। योगियाज्ञवल्क्य में कहा है - दीव्यते क्रीडते यस्मात् रोचते द्योतते दिवि। तस्माद्देव इतिप्रोक्तः स्तूयते सर्वदेवतैः। संसार ही जिसकी क्रीड़ा स्थली है, वह देवी, जो द्युतिमती है वह देवी, जिनकी सभी देवता स्तुति करते हैं वह देवी, और भी कहा गया है-यतः क्रीडति सर्गादिभिः विजिगीषते शत्रून्व्यवहरति सर्वभूतेषु आत्मतया, द्योतते स्तूयते स्तुत्यैः सर्वत्र गच्छतीति तस्मात् देवः। सर्वशक्तिमयी उस देवी के लिये भी ये सभी विशेषण घटित होते हैं, अतः देवी संबोधन। वह जयशीला है, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करती है, विश्व व्यापार में उसी का व्यवहार दृष्टिगोचर होता है, वह प्रकाशरूपा है इसलिये उसे तेजोमयीं वाड्मयीं कहा गया है। सभी उसकी स्तुति करते हैं, शक्ति का मोदन एक व्यापार ही है, मुद्रारूप में मोदनशीला है, शक्ति जिसके पास हो उसे मद होते देखा जाता है, कान्तिमती और गतिशीलता दोनों ही विशेषण प्रत्यक्ष हैं ही। अतः देवि संबोधन। अष्टादश विद्या तथा ज्ञान के जितने भी भेद हो सकते हैं, वे सभी शक्ति के ही रूप हैं, शक्ति के ही अंश हैं, जितनी भी स्त्रियां स्त्रीवाची शब्द हो सकते हैं वे सब देवी

के ही अंश हैं। इससे यहभी स्पष्ट होता है कि ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, चामुण्डा, वाराही, इन्द्राणी, नारसिंही ये सब उस एक ही शक्ति के अंश हैं, उससे भिन्न नहीं। सकला कहने से जिन कलाओं का बोध होता है, उनकी गणना ऊपर की जा चुकी है, स्त्रियों में पातिव्रत्य, सौन्दर्य तारुण्य आदि जो भी गुण हैं वे भी उस शक्ति के ही अंश हैं, हे अम्ब आप ही तो एकमात्र इस संसार में व्याप्त हैं दूसरा कोई भी है ही नहीं, जैसा कि स्वंय भगवती का कथन है - एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा। मैं ही तो एकमात्र विश्व में हूँ, विश्वरूपा हूँ, मेरे अतिरिक्त दूसरा है ही कौन। अत: केवल आपसे ही यह जगत व्याप्त है पूर्ण हैं पूरित है, आप जो कि स्तुति के योग्य है वे या तो सर्वरूपा है अथवा सबसे पर - श्रेष्ठ हैं। आपके लिये जो कुछ भी कहा जा सकता है, वह आपसे अपर है अवर है हीन है न्यून है तब फिर आपकी स्तुति किस प्रकार हो सकती है। स्तुति प्रशंसापरक हुआ करती है जिसकी स्तुति की जाती है, उसे उससे अधिक गुण-कर्म वाला बताया जाता है, किन्तु आपसे श्रेष्ठ गुण कर्म न होने के कारण आपकी स्तुति कैसे की जाय।

आगमशास्त्र प्रसिद्ध षटचक्रों में मूलाधार प्रथम है जिसकी स्थिति गुदा और लिंग के मध्य चतुर्दल पद्मयुक्त कही जाती है। कुण्डली रूप में सर्पाकार तेजो मयी परावाक् की यहीं स्थिति है। परावाक् स्पन्द रहित है, इसीलिए उसे अश्रोत्रविषया कहा गया है। इच्छा शक्ति से प्रेरित जब यह ऊपर को जाती है तो नाभि में स्थित मणिपूर चक्र में पश्यन्ती कही जाती है। पश्यका अर्थ देखना होता है। यह नाद रूप में योगियों के लिये अनुभवगम्य है। इसलिये इसे पश्यन्ती कहा गया। यही पवन से प्रेरित ऊर्ध्व गमन करती हुई जब हृदय में पहुँचती है तो इसे मध्यमा कहा जाता है। पश्यन्ती और वैखरी के मध्य में होने के कारण इसे मध्यमा कहा जाता है। मध्ये हृदये मा बोधों यस्या सा मध्यमा इस व्युत्पत्ति के अनुसार हृदय में अनाहत स्थान में अनुभवगम्य होने से मध्यमा कही जाती है। यही आगे जब कण्ठ में विशुद्धि चक्र में पहुँचती है तो वही वाणी कण्ठ, तालु, मूर्धा, नासिका, दन्त, जिह्वामूल और ओठ के प्रयत्न से वैखरी वाणी के रूप में उच्चरित होती है। इसीलिए इसे शब्दप्रपंचजननी और श्रोत्रग्राह्या कहा गया है। प्रपंचसार की टीका में कहा गया है कि विशेष रूप से स्पष्ट होने के कारण इसे वैखरी कहा जाता है- विशेषेण खरत्वाद्वैखरी। श्रुति में भी चार प्रकार की वाणी के संबंध में कहा गया है-

चत्वारि वाक् परिमितापदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिण:।
गुहा त्रीणि निहिता नेंगयन्ति तुरीयं वाचो मनुब्या: वदन्ति।

वाणी के चार पद हैं - परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। जिन्हें ब्रह्म के ज्ञाता मनीषी ही जानते हैं। इसमें से तीन उद्‌गमित न होकर केवल चतुर्थ वैखरी वाणी को ही मनुष्य बोलते हैं।

जो स्वयं चारों प्रकार की वाणी रूपा है, उसकी वाणी से स्तुति कैसे हो। क्या हो। ऊपर जो स्त्रिय: समस्ता: सकला जगत्सु कहा गया है, उसके अंतर्गत लोकव्यवहार में प्रचलित सामान्य कला ही गिनाई गई हैं। मन्त्रशास्त्र के अनुसार देवी, देवता के परिकर के रूप में जो कला होती है और वर्णों की बोधक जो कला होती हैं, उनका उल्लेख यहाँ विस्तारभय से नहीं किया जा रहा। इसके विशेष विवरण के लिये लेखक की पुस्तक "ताण्डव-रहस्य" दृष्टव्य। विभिन्न देवी देवताओं की पचास कलाओं के लिए श्रीविद्यार्णवतन्त्र दृष्टव्य है।

सर्वभूता यदा देवी भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तय:।६

अन्वय- हे देवी भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी यदा त्वं सर्वभूता स्तुता तदा का वा परमोक्तय: भवन्तु। वा का परमोक्तय: भवन्तु। सर्वभूता अयदा स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी एवं त्वं स्तुता तदा का वा परमोक्तय: भवन्तु।

शब्दार्थ- परमा श्रेष्ठा उक्ति: वर्णनं स्तुति: इति स्तुतिलक्षणम्। सर्वभूता विश्वात्मिका, सर्वभूतं प्राप्तं यया सा सर्वभूता, सर्वभूतायदा-सर्वेषां प्राणिनां अयदा सुखावहा, अय: शुभावहो विधि: इत्यमर:। भुक्ति मुक्तिप्रदायिनी, भुक्तिश्च मुक्तिश्च प्रदातुं शीलं यस्या सा, स्वर्गमुक्तिप्रदायनी इति पाठे स्वर्गों दिव्यं अनुभाव्य सुखं मुक्ति कायत्वापाय: ते दातुं शीलं यस्या सा इस प्रकार सर्वभूता के दो अर्थ हुये- जिसने सब कुछप्राप्त कर लिया है, देवी के लिये कुछ भी प्राप्तव्य नहीं है। सर्वभूता का दूसरा अर्थ सर्वात्मा अथवा विश्वरूपा है। यदा को समस्तपदमानकर सन्धिविच्छेद करने से सर्वभूता अयदा होता है। अमरकोश के अनुसार अय शुभावह विधि को कहते हैं, इस प्रकार अर्थ होगा कि आप सभी प्राणियों का कल्याण करने वाली हैं। भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी भोग और मोक्ष दोनों ही देने वाली हैं। जहां भोग की कामना होती है, वहां मोक्ष नहीं होता और मोक्ष होता है, वहां भोग नहीं होते। किन्तु देवी भगवती की आराधना करने वाले के लिये भोग और मोक्ष दोनों ही करतलगत हैं। सप्तशती में ही हम देखते हैं कि राजा सुरथ अपना राज्य पाकर इहलोक में सुखी होता है और अगले जन्म में वैवस्वत मनु की पदवी प्राप्त करता है। दूसरी ओर समाधि वैश्य साधना और तपस्या करते हुये मुक्ति प्राप्त करता है। सवर्णा नाम की सूर्य की पत्नी से उत्पन्न होने के कारण उसे सावर्णि मनु कहा गया है। विवस्वान से जन्म होने के कारण वैवस्वत मनु कहा गया।

व्याख्या- हे देवी आप सब प्राणियों में व्याप्त हैं, और आपको कुछ भी प्राप्तव्य शेष नहीं है आप सर्वात्मा हैं विश्वरूप हैं। सभी प्राणियों का कल्याण करने वाली हैं। स्वर्ग और अपवर्ग दोनों की ही देने वाली हैं। सांसारिक भोगों को देते हुए साधक को अन्तकाल में मोक्ष देने वाली हैं। यह यथार्थ भी है और यही आपकी स्तुति भी है। फिर इससे

अधिक श्रेष्ठ कोई भी कथन शेष नहीं रहता जिससे आपकी प्रशंसात्मक स्तुति की जा सके। इससे अधिक आपकी क्या स्तुति की जाय।

सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते।७

अन्वय- हे देवि सर्वस्य जनस्य हृदि बुद्धिरूपेण संस्थिते हे स्वर्गापवर्गदे हे नारायणि ते नमः अस्तु।

शब्दार्थ- जनस्य - प्राणिनः हृदि-चेतसि, बुद् धरूपेण-बुद्धिः निश्चयात्मकं ज्ञान तद् रूपेण संस्थिते-सम्यक् अवस्थिते स्वर्गापवर्गदे-स्वर्ग अपवर्ग 'मोक्षं च ददातीति स्वर्गापवर्गदा तत्संबुद्धौ स्वर्गापवर्गदे, नारायणी-नारायणस्य शक्तिः नारायणी तत्संबुद्धौ नारायणि नारायण की स्त्री नारायणी अर्थात विष्णु माया। कहीं विष्णुमायेति शब्दिता कहा भी गया है॥ नारायण शब्द की व्याख्या आचार्यों ने अनेक प्रकार से की है, वे सब शक्ति के विशेषण माने जा सकते हैं, उनमें से कुछ का यहां उल्लेख किया जा रहा है। आपो नारा इति प्रोक्ता के अनुसार नार जल को कहते हैं। जल है अयन जिसका वह नाराण अम्भयं अयनं यस्य सः नारायणः नराणां समूहों नारं अयनं यस्य सः नारायणः, तस्य स्त्री लक्ष्मी तत्संबुद्धौ नारायणि नारस्य जीवितसमूहस्य अयनं प्रवृत्तिर्यस्मात् स नारायणः, नाराणां समूहों नारं तदयनं निवासं यस्य सः सर्वान्तर्यामी तस्य शक्तिः नारायणी, अराः दोषाः न विद्यन्ते यस्मिन् तन्नाराः गुणाः तेषामाश्रयः नारायणः नारं जीवनसमूहं अयते जानाति सः नारायणः नारं जीव समूहं आयति प्रवर्तयतीति नारायणः नारायण की स्त्री नारायणी, नारायण की शक्ति नारायणी विष्णुमाया उसी का सम्बोधन का रूप नारायणि।

व्याख्या- हे देवि आप सभी प्राणियों के हृदय में बुद्धि के रूप में विद् यमान रहने वाली हैं, भक्तों और साधकों को आप स्वर्ग के समान भोगों को प्रदान करने वाली है और अन्त में मोक्ष देने वाली आप ही हैं। हे नारायणि आपको नमस्कार है।

कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि।
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तुते।८

अन्वय- हे कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि, विश्वस्योपरतौ शक्ते हे नारायणि ते नमः अस्तु।

शब्दार्थ- कलाकाष्ठा- निमेष पलक झपकने को कहते हैं, उसमें जितना समय लगता है, उसे एक निमेष का काल कहते हैं। अठारह निमेष की एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठा की एक कला होती है। अमरकोश के अनुसार अठारह निमेष की एक काष्ठा और तीस काष्ठा की एक कला बताई गयी है। मानियर विलियम्स की संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी में बताया गया है कि कला, काष्ठा, निमेष आदि की गणना में

ज्योतिष, आयुर्वेद, संगीत आदि के अनुसार भिन्न-भिन्न मान हो जाते हैं। वृहत्संहिता की भट्टोत्पल की टीका में बताया गया है कि पलक झपकने में जितना समय लगता है उसे निमेष कहते हैं।

दो निमेष - एक त्रुटि, दो त्रुटि - एक लव, दो लव - एक क्षण, १० क्षण एक काष्ठा, १० काष्ठा-एक कला-, १० कला एक घटी-२४ मिनट होते हैं।

अन्यप्रकार से कला काष्ठा का मान इस प्रकार बताया गया है-

दो क्षण-एक लव, दो लव-एक निमेष १८ निमेष-एक काष्ठा, ३० काष्ठा-एक कला ३० कला एक क्षण, १२ क्षण-एक मुहूर्त-२४ मिनट, दो घटी-४८ मिनट कहीं तीस कला के बराबर एक काष्ठा मानी गयी है तो कहीं बारह कला के बराबर है।

समय की इस माप में भिन्नता पाई जाती है। यहाँ कला काष्ठा से आशय समय के छोटे से छोटे मापक से है। कलाकाष्ठादिरूपेण-कला च काष्ठा च आदिशब्देन लवत्रुटिक्षणमुहूर्त- अहोरात्रादीनां ग्रहणम् एवं कालरूपेण, कला काष्ठा के रूप में, परिणमप्रदायिनि-परिणमनं षड्भावविकारात्मकं ते च अस्ति, जायते, वर्धते, विपरिणमति, अपक्षीयते नश्यति च। विश्व ब्रह्माण्ड में दृश्य मान जो कुछ भी है जिसका अस्तित्व है जिसकी उत्पत्ति होती है, क्योंकि गीता के अनुसार - नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत: उत्पत्ति के पश्चात वृद्धि होती है। बीज से अंकुर और अंकुर से वृक्ष बनता है। वृक्ष में फल फूल लगते हैं फिर अपक्षय का क्रम प्रारंभ हो जाता है, अन्त में उसका नाश होता है। नाश का अर्थ सर्वथा अभाव नहीं है। णश अदर्शने का अर्थ ही उसका लोप होना होता है। इसी प्रकार कालक्रम से जीव का गर्भ में आना, उत्पन्न होना, बढ़ना प्रौढ़ होना फिर वृद्धावस्था और मरण का क्रम चलता रहता है। परिणाम अन्यथाभावप्रददातीति प्रदायिनी तत्संबुद्धौ प्रदायिनि हे शक्ते विश्वस्य उपरतौ नाशे शक्ते समर्थ हे नारायणि ते नम: अस्तु आपको नमस्कार है जो शक्ति काल की कलना के रूप में इस संसार में क्षय वृद्धि के क्रम का कारण है। महाभारत में कहा गया है।

अस्मिन्महामोहमये कटाहे सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन।
मासर्तुदर्वी परिघट्टनेन भूतानि काल: पचतीति वार्ता।

व्याख्या- कला और काष्ठा आदि समय के छोटे मापक हैं। आदि कहने से घड़ी, पल घंटा मिनट प्रात: सायं दिन रात आदि के रूप में समय चलता रहता है, उसी के अनुसार विश्व के जड़ चेतन पदार्थों में उत्पत्ति विनाश का क्रम भी देखने में आता है जिसे आगम परिणमन क्रिया कहता है। इसे काल की कलना कहा जाता है। इसी प्रकार विश्व के संहार में जो शक्तिसमर्थ है उस नारायणी को नमस्कार है। यद्यपि संहारकर्ता रुद्र को माना गया है, उन्हें महाकाल भी कहा जाता है किन्तु यहां तो परिणमन क्रिया

के अंतर्गत जन्म से मरण तक के सारे व्यापार आ जाते हैं। यह क्रिया जिस शक्ति के द्वारा सम्पन्न हुआ करती है उसे ब्रह्माणी, रुद्राणी और वैष्णवी शक्ति किसी भी नाम से अभिहित किया जा सकता है। क्योंकि स्वयं देवी का कथन है- एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा। आगे छन्द संख्या १० में इन तीनों रूपों में नारायणी की स्तुति की गयी है।

सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते।९

अन्वय- सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि ते नम: अस्तु

शब्दार्थ- संर्वमंगलमांगल्ये- सर्वोषांमंगलादीनां यन्मांगल्यं मंगलस्वभावस्तद्रूपे वा सर्वाणि मंगलानि शुभानि यत: स्यु: सा सर्वमंगला मंगलभाव: मांगल्यं तद् यस्या: सा सर्वमंगलमांगल्या सम्बोधने हे सर्वमंगलमांगल्ये, मंगलो का भी मंगल कल्याण करने वाली, मंगलों में जो मंगलशीला है, शिवे-कल्याणकारिणि, सर्वार्थसाधिके- सभी प्रयोजनों का साधन करने वाली शरण्ये-शरणार्हे, जिसकी शरण प्राप्त करने योग्य हो, त्र्यम्बके-त्रीणि अम्बकानि नेत्राणि सोमसूर्याग्निरूपाणि यस्या: सा 'स्त्रियां दृष्टिदृशौ देवी लोचनमम्बकम् त्रयाणां लोकानां अम्बिका माता सा तत्संबुद्धौ त्र्यम्बके, त्रयो अम्बा:वर्णा:अकारोकारमकारा: प्रतिपादका यस्या सा, प्रणवरूपे, हे गौरि हे नारायणि।

व्याख्या- हे देवि आप सभी मंगलों में मंगल करने वाली हैं, शुभ करने वाली हैं, कल्याण करने वाली हैं शिवे कल्याणरूपा हैं, सर्वार्थ का साधन करने वाली हैं, अभीष्ट वस्तु की देने वाली हैं, आप शरणागत की रक्षा करने वाली हैं, जीव आपकी शरण में जाकर कृतार्थ हो जाता है, आप तीन नेत्रों वाली हैं, सोम, सूर्य और अग्नि ये ही आपके तीन नेत्र हैं। अम्ब का अर्थ वर्ण मानें तो आपही प्रणव में अकार, उकार और मकार रूप से हैं, प्रणव के द्वारा प्रतिपाद्य आप ही हैं, गौरी पार्वती आप ही हैं हे नारायणि आपको नमस्कार है।

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते।१०

अन्वय- सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि गुणाश्रये गुणमये हे नारायणि ते नम: अस्तु।

शब्दार्थ- सृष्टिस्थितिविनाशानाम् - जगतां सृष्टे: सर्गस्यस्थिते: वर्तमानस्यविनाशस्य संहारस्य, हे शक्तिभूते शक्तिंस्वरूपे सृष्टिकारक ब्रह्मशक्ति, स्थिति कारक विष्णु शक्ति प्रलयकारक रुद्रशक्ति आप ही हैं अत: सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते, संसार के सृजन,

पालन, संहार करने वाली जो शक्तिः सामर्थ्यरूपा तद्भूता देवी शक्तिभूता का संबोधन का रूप शक्तिभूते त्रिशक्तिरूपासनातनि-सनात्सनातना नित्ये शाश्वतस्तु ध्रुवो नित्यं सदातन-सनातना: 'इति कोश वचनात् सनातनी का संबोधन का रूप, गुणाश्रये गुणा: आश्रयो यस्या सा गुणाश्रया, गुणानामाश्रयो यत्र सा गुणाश्रया गुणा: सत्वं रज: तम इति वा महदादयो तेषां आश्रयभूता गुणमये-सत्वाद्यात्मकप्रकृतिरूपे गुणाश्रये पुरुष-रूपे, गुणमये प्रकृति, वा गुणाश्रये व्योमादिभावेन गुणमये शब्दादिभावेन, वास्तव में गुणाश्रये गुणमये की सर्वोत्तम व्याख्या तो गीता के इस संदर्भ से स्पष्ट हो जाती है- सत्वं रजस्तम इति गुणा: प्रकृति सम्भवा: मत्त एवेति तान्विद्धि नत्वहं तेषु ते मयि। वे गुण मुझमें हैं किन्तु मैं उनके आश्रित नहीं हूँ। इसीलिये गुणाश्रया कह कर गुणमया गया है। मैं गुणों से असम्पृक्त हूं, पर वे मुझमें वर्तते हैं। गुणों से अप्रभावित शक्ति त्रिगुणमयी है।

व्याख्या- हे नारायणि, ब्रह्मा जिस शक्ति से विश्व का सृजन करता है, विष्णु जिस शक्ति से विश्व का पालन करते हैं, रुद्र जिस शक्ति से संहार करते हैं, वह सत्व, रजस् और तमस्वरूपा त्रिगुणात्मक शक्ति आप ही हैं। ब्रह्माणी, वैष्णवी और रुद्राणी आप ही हैं। ये तीनों गुण आप ही को आश्रय कर वर्तमान हैं। आप गुणों का आश्रय स्थान भी हैं और जगत की प्रवृत्ति में गुणमय भी हैं। आप शाश्वत हैं नित्य हैं। हे नारायणी आपको नमस्कार है।

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।

सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोस्तु ते।११

अन्वय- शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे सर्वस्या र्तिहरे हे देवि नारायणि ते नम: अस्तु।

शब्दार्थ- शरणागतदीनार्तपरित्रा णपरायणे- शरणं आगता शरणागता त एव दीना: आर्ता: च दु:खिता: तेषां परित्राणं परिरक्षणं एवं परायणं अभीष्टं यस्या सा तत्संबुद्धौ परायणभीष्टं स्यात् तत्पराश्रययोरपि' इत्यभिधानात्। सर्वस्य-लोकस्य, आर्तिहरे-कष्टनिवारिणि, दु:खनिवारणि, विपत्तिनिवारणि।

व्याख्या- जो शरण में आकर रक्षा के लिये प्रार्थना करे, उसे शरणागत कहते हैं. जो दीन दुखी और विपत्ति में पड़कर सहायता के लिये पुकारे वह आर्तरोगग्रस्त और आपत्ति में पड़ा हुआ-राजभय, चोरभय, दस्युभय अथवा हिंस्र जन्तुओं से भयभीत होकर प्राण संकट उपस्थित होने पर दीनता के साथ आपको पुकारता है, उसकी रक्षा करने के लिये आप सदा तत्पर रहती हैं, यह जैसे आपका अभीष्ट ही है। आप सभी का संकट दूर करने वाली हैं। पहिले केवल शरणागत की विपत्ति दूर करने का कथन फिर लोकमात्र का संकट दूर करने का कथन है। हे नारायणि आपको नमस्कार है।

हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि।
कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥१२

अन्वय- हंसयुक्तविमानस्थे, ब्रह्माणी रूपधारिणि, कौशाम्भःक्षरिके हे देवि नारायणि ते नमः अस्तु।

शब्दार्थ - हंसयुक्तविमानस्थे-हंसैर्युक्तं विमानं यानं यस्या सा हंसयुक्तविमाना हंसयुक्तविमाने तिष्ठतीति हंसयुक्तविमानस्था संबोधने हंसयुक्तविमानस्थे जो हंसों के यान पर आरूढ़ है। ब्रह्माणीरूपधारिणि-ब्रह्माणी - ब्रह्माण्या रूपं आकृतिः तद्धरति धारयति वा ब्रह्माणी-रूपधारिणि, कौशाम्भः क्षरिके-कुशं जल तस्येदं कमण्डलु कौशं तद्गतमम्भः सेचिके-कमण्डलु के जल से सेचन करने वाली, जैसा कि कहा गया है - कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान्हतौजसः कुशमप्सु च इत्यमरः 'कुशो रामसुते दर्भे योक्त्रे द्वीपे कुशं जले' इत्यभिधानात्। वा कुशस्येदमम्भः तत्क्षरतीति कोशाम्भः क्षरिके कुश का जल छिड़कने वाली, अथवा कुश से अभिमन्त्रित जल छिड़कने वाली कुशस्य इदं कौशं कुशप्रोक्षितम् तदम्भः क्षरति सिंचतीति कौशाम्भः क्षरिका सम्बोधने कौशाम्भः क्षरिके, कुशो दर्भः तस्येदं कौशं तत् अभ्भश्च कौशाम्भः क्षरः सोचनं कौशाम्भः क्षरः तं करोतीति कौशाम्भः क्षरिका।

व्याख्या - हे देवि आप हंसों के विमान पर सवारी करने वाली हैं। ब्रह्म की शक्ति आप ही हैं। आप ब्रह्माणी का रूप धारण करने वाली हैं। कमण्डलु के जल का आप सिंचन करती हैं - छिड़कती हैं, आप कुशोदक से अभिषिंचन कर अपने भक्तों को आशीर्वाद देने वाली हैं। आप अपने कमण्डलु के जल से जब शत्रुओं पर छीटे देती हैं तो उससे शक्तिहीन और ओजरहित हो जाते हैं। हे देवि नारायणी आपको नमस्कार है।

विशेष - सप्तशती में तीनों चरित्रों में महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती का वर्णन आता है। इन्हें ही हम ब्रह्मा की शक्ति, विष्णु की शक्ति और रुद्र की शक्ति कह सकते हैं। षट्चक्रवेध के लिये ब्रह्मग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि का भेदन आवश्यक होता है। षट्चक्रनिरूपण में मूलाधार के वर्णन में कहा गया है -

तदंके च चतुर्बाहुं रक्तवर्णं शिशुं शिवे
चतुर्वक्त्रं हंसपृष्ठे ब्रह्माणं विद्धि पार्वति।

ब्रह्मा की चार भुजा हैं, वे हंस पर सवार हैं। उनके चार मुख हैं। ब्रह्मा की शक्ति ब्रह्माणी के विषय में कहा गया है-

दण्डकमण्डलुधरामक्षसूत्राभयं तथा।
ध्यायेत्तां रक्तवर्णांच ब्राह्मीं कृष्णजिनोज्वलाम्।

ब्राह्मी शक्ति चार हाथों में दण्ड, कमण्डलु अक्षमाला और अभयमुद्रा धारण किए हुए है।

ऊपर कहा गया है कि ब्रह्माणीरूपधारिणि, वह नारायणी शक्ति ही ब्रह्माणी के रूप में है। जो लक्ष्मी है, वही सरस्वती भी है। अब इस दृष्टि से विचार करने पर हंसयुक्तविमानस्थ का अर्थ होगा। वह विमान जिसमें दो हंस युक्त हैं - जुते हैं। ये दो हंस वही है जिनके विषय में कहा गया है- हंसहंसेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा। यह शरीर ही वह विमान है। यह जप श्वास प्रश्वास के साथ स्वतः ही चलता रहता है, इसीलिये कहा है कि जीव इसे जपता रहता है। आगम शास्त्र के अनुसार दिन रात में इस मन्त्र की २१६०० आवृत्ति हो जाती है। यही अजपा जप है। इसी का क्रम जब बदल जाता है तो हंसः! सोहम् बन जाता है। इसमें जब व्यंजनों की ध्वनियां तिरोहित हो जाती है तो यही ओम् है। जब केवल महाप्राण हकार तिरोहित होता है तो यही सोम है जिसे देवता पान करते हैं। अब कौशाम्भः क्षरिके को लें। हमारे शरीर के षट्चक्र जो पद्मकोश प्रतीकाश कहे जाते हैं यही वे कोश हैं जिनसे सुधास्राव अभीष्ट है। सामान्य दशा में ये चक्र अधोमुख रहते हैं। जिसके कारण सहस्रार से होने वाला अमृतस्राव इन पद्मों में न जाकर बाहर स्रवित होता रहता है जिसे मणिपूर में सूर्य सोख लेता है। किसी के मत से इस अमृत को अनाहतस्थ रवि सोख लेता है अतः कहा गया है - तेन पिण्डो जरा युतः। जब शरीर के ये पद्म विकसित हो जाते हैं तब वही अमृत योगी को जरामरण से मुक्त करने वाला होता है। सरस्वती से यही प्रार्थना की गयी है कि वह हमारे कोशों का आसिंचन करे। तस्येदम् सूत्र के अनुसार कोश से कौश और अम्भः जल का क्षरण करने वाली देवी। इसीलिए सरस्वती की नदीतम के रूप में स्तुति की गई है -

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।

अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि।

'हे सरस्वती आप माताओं में सर्वोत्तम है आप नदियों में श्रेष्ठ हैं, देवियों में श्रेष्ठ हैं- हम अप्रशस्त से हो गए हैं - हे माता आप हमें प्रशस्तिमान बना दीजिए।

नारायणी के संबंध में पहिले बताया जा चुका है कि नारा का अर्थ जल होता है - आपो नारा इति प्रोक्ता जल ही है अयन जिसका वह सरस्वती हमारे पद्मकोशों का अमृत से सिंचन करे। यही कौशाम्भः क्षरिके का आशय है। सरस्वती बीज से कुण्डलिनी जागरण का संकेत किया गया है। ब्रह्मग्रन्थि-भेदन का संकेत किया गया है।

त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि।

माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते।१३

अन्वय- त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनी माहेश्वरी स्वरूपेण हे नारायणि ते नमः अस्तु

शब्दार्थ - त्रिशूलचन्द्राहिधरे-त्रिशूलं आयुधम, चन्द्रस्यैककला, अहय: सर्पा: धरतीति धरा त्रिशूल-चन्द्राहिधरा तत्संबुद्धौ त्रिशूलचन्द्राहिधरे जो त्रिशूल, चन्द्रकला और सर्पों को धारण किए है वा करने वाली है, महावृषभवाहिनी - महान् वृषभस्तेन वाहनवती, वा महावृषभेण सर्वं वाहयति सा महावृषभवाहिनी, वा वृषभं वाहयति वृषभवाहिनी महती च सा महावृषभावाहिनी महा वृषभ जिसका वाहन है, जो महावृषभ को चलाती है, जो वृषभ के वाहन वाली महती शक्ति है, माहेश्वरीस्वरूपेण-महेशवरस्य इयं शक्ति: माहेश्वरी तस्या: स्वरूपं आकार: तेन माहेश्वरीस्वरूपेण।

व्याख्या - महेश्वर की उस शक्ति को नमस्कार है जो वृषभ पर सवार है, त्रिशूल धारण किए है, जिसके सर्पों के कंकण हैं जिसके मस्तक पर चन्द्रकला सुशोभित है। माहेश्वरी रूप में हे नारायणि आपको नमस्कार है।

मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे।
कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोस्तु ते।१४

अन्वय - हे अनघे हे कौमारीरूपसंस्थाने हे महाशक्तिधरे, मयूरकुक्कुटवृते हे नारायणि ते नम: अस्तु।

शब्दार्थ - मयूरकुक्कुटवृते-मयूरै: कुक्कुटैश्च वृते वेष्टिते आवृते वा मयूरा वाहनीभूता: क्रीड़ार्थाश्च वर्धिता: कुक्कुटाश्च युद्धचातुर्यादिदिदृक्षयापालिता: - मयूर और मुर्गों से खेलने वाली वास्तव में मयूर स्कन्द का वाहन है अत: उनकी शक्ति कौमारी का भी वाहन मयूर कहा गया। मयूर और कुक्कुट दोनों ही कुमार-स्कन्द के पूजन में तृतीयावरण देवता हैं। अत: उनकी शक्ति के भी परिवार में उनका होना बताया गया और मयूरकुक्कुटवृता कहा गया महाशक्तिधरे-महती शक्ति: आयुध धरतीति महाशक्तिधरा सा संबोधने महाशक्तिधरे वा शक्ति कुमार का आयुध है अत: कौमारी भी महाशक्ति धरा हुई। वा महाशक्ति महती शक्ति: सामर्थ्य धरतीति महाशक्तिधरा, कौमारीरूपसंस्थाने-रूपस्य आकारस्यसम्यक् अवस्थिति: संस्थानम्, कौमारी षणमुखी रूपवद्रूपं यस्या: सा कौमारीरूपसंस्थाना जिसकी आकृति स्कन्द के ही समान है।

व्याख्या - कुमार नाम स्कन्द का है, उनकी शक्ति को कौमारी कहा गया है। शक्ति का उनका आयुध है इसलिए महाशक्तिधरे कहा गया। मयूर उनका वाहन है और आवरण देवता भी अत: कौमारी मयूर और कुक्कुट से वेष्टित कही गयी। मयूरकुक्कुट विशेष प्रकार के मयूर को भी कहते हैं - आरक्तनेत्रपिच्छाग्रो मयूर: कुक्कुट: स्मृत:। बर्हेणवर्जितो बर्ही य: स मयूरकुक्कुट: जिस मयूर के नेत्र और पिछला भाग लाल हो जिसके पूंछ में मोरपंख न हों, उस मयूर को मयूरकुक्कुट कहते हैं। अथवा - मयूरस्य कुक्कुट: पुत्र:-कुक्कुट:ककुभे पिच्छे पुत्रे च चरणायुधे। मयूर कुक्कुट का अर्थ मयूर का

बच्चा भी होता है। स्कन्द पुराण में कथा आती है कि स्कन्द ने युद्ध में जब पद्मासुर का वध कर दिया तब वही मयूर और कुक्कुट ये दो रूप धारण कर एक मयूर रूप से उनका वाहन हुआ और कुक्कुट रूप से उनके ध्वज पर विराजमान हुआ। स्कन्द के तृतीयावरण देवता के रूप में मयूर और कुक्कुट दोनों की पूजा करने का विधान है। उसी के साथ उनके आयुध शक्ति की भी पूजा की जाती है, इसलिये महाशक्ति धरे कहा गया है दलाग्रेषु च पूर्वादि यजेद्देवाननन्तरम्। देवसेनापतिं शक्तिं विध्नं कुक्कुटमेव च। मेधां मयूरं वज्रं च द्वीपं लोकेश्वरांस्ततः। मयूरकुक्कुट का अर्थ मोर का पूंछ भी होता है। हरिवंश पुराण में कहा गया है - ध्वजेन शिखिबर्हाणामुछ्रितेन समावृता। संस्थान अवयव को कहते है, इसलिये कौमारी रूप संस्थान का अर्थ होगा! कि कुमार के समान ही रूप और शरीरावयव वाली। अनघ का अर्थ-अघ पाप से जो रहित है। उस नारायणी को नमस्कार है। कौमारी शक्ति को मयूरकुक्कुटवृता कहने से एक आशय यह भी हो सकता है कि जो कौमारी शक्ति मोर और मुर्गे की क्रीड़ा का आनन्द लेने वाली है। अथवा जिस प्रकार युद्ध में चक्रव्यूह और क्रौंच व्यूह की रचना की जाती है, उसी प्रकार मयूर व्यूह और कुक्कुटव्यूह से जो आवृत है-वेष्टित है।

शंखचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे।

प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते।१५

अन्वय - शंखचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे हे वैष्णवीरूपे प्रसीद हे नारायणि ते नमः अस्तु।

शब्दार्थ - शंखचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे-शंखश्च चक्रं च गदा च शार्ङ्गश्चैते सह गृहीतानि परमाणि आयुधानि खड्गबाणरूपे यया सा तत्संबुद्धौ। जिसने शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग धनुष के साथ खड्ग वाण आदि धारण किए हैं, विष्णु की शक्ति वैष्णवी देवी के आयुध भी वही हैं जो विष्णु भगवान धारण करते हैं। यहां शंख चक्र गदा के साथ धनुष तो कहा, परन्तु पद्म नहीं कहा जिसका आशय यही है कि यहां उस शक्ति की प्रार्थना की गई है जो युद्धोन्मुख है, जो युद्धभूमि में समर के लिये उपस्थित हुई। अतः इससे स्पष्ट होता है कि देवता के आयुध वाहनादि भी उसी प्रकार के स्मरण-ध्यान में लाये जाते हैं जो समयानुकूल हों। गीता में महाभारत के युद्धक्षेत्र में भी इसी प्रकार विश्वरूपदर्शन के समय अर्जुन यही प्रार्थना करता है कि आप वही गदा और चक्रधारी अपना रूप दिखाएं। यहां भी पद्म का उल्लेख नहीं किया गया जो शान्ति और समृद्धि का प्रतीक है -

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां दृष्टुमहं तथैव। तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते। परमायुध से खड्ग और बाण का ग्रहण करना चाहिये कहीं

गृहीतविविधायुधे पाठ भी है तब अर्थ होगा कि शंख चक्र, गदा पद्म तथा अन्य आयुध धारण किए हुए है उस नारायणी को हम नमस्कार करते हैं, हे देवी आप हमारे ऊपर प्रसन्न हों।

विशेष - शुम्भ निशुम्भ की सेना के साथ युद्ध करते समय जगदम्बा ने जिन-जिन देव शक्तियों के रूप में युद्ध किया था, उन सभी शक्तियों का उसी रूप में यहां ध्यान और स्मरण किया गया है।

गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे।

वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोस्तु ते।१६

अन्वय - गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुनधरे वराहरूपिणि शिवे हे नारायणि ते नमः अस्तु।

शब्दार्थ - गृहीतोग्रमहाचक्रे-गृहीतं उग्रं भयंकरं महान् चक्रं यया सा गृहीतोग्रमहाचक्रा संबोधने गृहीतोग्रमहाचक्रे, दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरा दंष्ट्रया उद्धृता वसुन्धरा पृथिवी यया सा तत्संबुद्धौ शिवे - कल्याणकारिण, वराहरूपिणि-वराहस्य भगवतो विश्वरूपस्य शूकर इव रूपं आकृतिः यस्या सा।

व्याख्या - जो वराहरूप भगवान विष्णु के रूप वाली होकर उनके आयुध चक्र को धारण किए है, जो सबका कल्याण करने वाली है, जिसने अपनी दाढ़ों पर वराह अवतार के समय पृथ्वी को उठाकर उसका उद्धार किया था उस नारायणी शक्ति को नमस्कार है।

नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान्कृतोद्यमे

त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते।१७

अन्वय - उग्रेण नृसिंहरूपेण दैत्यान् हन्तुं कृतोद्यमे त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि से नमः अस्तु।

शब्दार्थ - उग्रेण - रौद्रेण नृसिंहरूपेण-नृसिंहस्य रूपेण कृतोद्यमे कृतः उद्यमः प्रयत्नः यया सा त्रैलोक्यत्राणसहिते-त्रैलोक्यस्य लोकानां तिसृणाम् त्राणं रक्षणं तेन सहितं हितेन सह वर्तमाना सहिता लोकत्रयरक्षणे कृतोद्यमे।

व्याख्या - आप भयंकर नृसिंह का रूप धारण कर दैत्यों का वध करने वाली हैं, इस प्रकार आप तीनों लोकों की रक्षा करने के प्रति सावधान रहती हैं, हे नारायणी देवी आपको हम नमस्कार करते हैं।

किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्जवले।

वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते।१८

अन्वय - किरीटिनि महावज्रे सहस्त्रनयनोज्ज्वले वृत्रप्राणहरे एन्द्रि च नारायणि ते नम: अस्तु

शब्दार्थ - किरीटिनि - किरीटं मुकुटं यस्या किरीटिनी हे किरीटिनि, महावज्रे- महत् वज्रं आयुधं यस्या सा महावज्रा हे सहस्त्रनयनोज्ज्वले-सहस्त्रं नयनानि यस्या सा सहस्त्रनयना तेनउज्ज्वलति प्रकाशते सहस्त्रनयनोज्वला हे सहस्त्रनयनोज्वले, वृत्रप्राणहरे-वृत्रो असुर: तस्य प्राणान् हरतीति वृत्रप्राणहरा हे वृत्रप्राणहरे, ऐन्द्रि-इन्द्रस्य एव एन्द्री शक्ति: देवता एन्द्री तत्संबुद्धौ ऐन्द्रि

व्याख्या - इन्द्र का जो रूप आयुध और कर्तव्य आदि वही उसकी शक्ति है अत: कहते हैं कि आप मुकुट धारण किए हैं, आपके हजार प्रकाशमान नेत्र हैं, आप महान् वज्र धारण किए है, आप वृत्रासुर के प्राण हरण करने वाली हैं अत: हे नारायणि आपको नमस्कार है।

शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले।
घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते।१९

अन्वय - शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले घोररूपे महारावे हे नारायणि ते नम: अस्तु।

शब्दार्थ - शिवदूती - चण्डिका के शरीर से जो शक्ति निकली उसे शिव के दूत के रूप में शुम्भ निशुम्भ के पास सन्धि का प्रस्ताव लेकर इसलिए उस शक्ति को शिवदूती कहा गया। शिवं दूतं सन्देशहरं करोतीति शिवदूती, शिवदूती इति स्वरूपं तेन शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले - महद्बलं सैन्यं च महाबलं हतं दैत्यानां महाबलं यया सा हतदैत्यमहाबला हे हतदैत्यमहाबले, घोररूपे भयंकररूपधारिणि, घोरं भयंकर रूपं आकारो यस्या: सा धोररूपा हे घोररूपे, महारावे- महान् आराव: शब्दायस्या: सा महारावा हे महारावे।

व्याख्या - हे देवि आपने शिवदूती के रूप में दैत्यों की विशाल सेना का संहार कर डाला, आपका रूप भयजनक है और शिवाशतनिनादिनी के रूप में महाशब्द करने वाली है, हे नारायणि आपको नमस्कार है।

दंष्ठाकरावलदने शिरोमालाविभूषणे
चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते।२०

अन्वय - दंष्ट्रकरालवदने। शिरोमालाविभूषणे चामुण्डेमुण्डमथने नारायणि ते नम: अस्तु।

शब्दार्थ - दंष्ट्रकरालवदने दंष्ट्राभि: करालं भयंकरं वदनं यस्या: सा दंष्ट्राकरालवदना

हे दंष्ट्राकरालवदने, शिरोमालाविभूषणे - शिरसां मुण्डानां माला विभूषणं यस्या: सा शिरोमाला विभूषणा मुण्डमालधारिणी, मुण्डमथने-मुण्डं दैत्यं मथ्नाति मुण्डमथने, मुण्डदैत्य का वध करने वाली।

व्याख्या - देवी चामुण्डा के रूप में आप मुण्ड दैत्य का संहार करने वाली हैं, आपकी विकराल दाढ़ों के कारण आपका मुख भयंकर है, आप नरमुण्डों की माला धारण किए हुए हैं नारायणि आपको नमस्कार है।

लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टि स्वधे ध्रुवे।

महारात्रि महामाये नारायणि नमोऽस्तु ते। २१

अन्वय - लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टि स्वधे ध्रुवे महारात्रि महामाये नारायणि ते नम: अस्तु।

शब्दार्थ - महाविद्ये-महद्ब्रह्म तत्प्राप्ति हेतु विद्या महाविद्या, उपनिषद्रूपा, महती विद्या महती अविद्या सा च यथा-विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते। महती अविद्या सर्वावरणसमर्थों महामोहरूपा, श्रद्धा-आस्तिक्यबुद्धि: पुष्टि-शरीराद्यवयवोपचयरूपा, स्वधा - पितृतृप्तिरूपा, ध्रुवे-सनातनि, शाश्वति महारात्रि-कल्पान्ते प्रलयात्मिका, हिरण्यगर्भावसानकालरूपा, महती रात्रि: द्विपरार्धावसानजा, महाप्रलयरूपा, अनल्पतमोधिकरणरूपा, महामाये-महामाया सर्वजगत्कारणीभूता।

व्याख्या - प्रथम अध्याय में देवी की ब्रह्मा के द्वारा जो स्तुति की गई है उसमें देवी को त्वं स्वाहा कहा गया है, महाविद्या महामाया कहा गया है, महारात्रि लज्जा, पुष्टि कहा गया है। चतुर्थ अध्याय की स्तुति में श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा कहा गया है, उन्हीं रूपों में यहां देवी को संबोधित किया गया है। आप ही लक्ष्मी हैं, आप ही ह्री और लज्जा हैं - आप ही श्रद्धा रूपा और पोषण करने वाली पुष्टि हैं, पितरों को तृप्तिकारक स्वधा भी आप ही हैं। आप शाश्वत हैं सनातन हैं महारात्रि और महामाया आप ही हैं हे देवि नारायणि आपको नमस्कार हैं।

मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि।

नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते।२२

अन्वय - मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि नियते ईशे त्वं प्रसीद हे नारायणि ते नम: अस्तु।

शब्दार्थ - मेधा धीर्धारणावती मेधा इति कोशवचनात् धारणावती, सरस्वति-जलरूपा, वाग्रूपा मातृरूपा च, वरे-श्रेष्ठे भूति-विभूति भूतिरैश्वर्य सत्वप्रधाना वा, बाभ्रवि- रजोगुणरूपा, तामसि तमोगुणप्रधाना-नियते- "दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं

स्त्रीनियतिर्विधिः। नियतिः दैवं तद्रूपा नियतं नित्या वा, ईशे-सर्वसामर्थ्ययुक्ता। इन सभी के संबोधन के रूप आये हैं।

व्याख्या - हे देवि धारणावती मेधा आप ही हैं, आप सरस्वती के रूप में मातृरूपा, जलरूपा और वाक् रूपा हैं, आप श्रेष्ठ हैं, पूर्व में देवी को गुणत्रयविभाविनी कहा गया है, उसी को यहां कहते हैं कि आप सत्वप्रधान विभूति हैं रजः प्रधान ब्राभ्रवि हैं और तामसी भी हैं। आप ही प्राणियों की नियति हैं अथवा सर्वदा एकरस रहने वाली हैं। आप सर्वसमर्थ हैं। हे नारायणि आप प्रसन्न हों आपको नमस्कार हैं।

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।

भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते।२३

अन्वय - सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते हे दुर्गे देवि नः भयेभ्यः त्राहि हे देवि ते नमः अस्तु।

शब्दार्थ - सर्वस्वरूपे - सर्व जगत्स्वरूपं यस्याः सा, सर्वेशे-ईशा स्वामिनी सर्वस्य ईशा सर्वेशा, सर्वशक्तिसमन्विते-शक्तिः सामर्थ्य तेन वा ब्राह्मीवाराह्याद्यष्टशक्तिसमन्विता सहिता। भयेभ्यः भौमान्तरिक्षदिव्येभ्यः वा सर्वभूतेभ्यः त्रिविधभयेभ्यः आधिभौतिकाध्यात्मिकाधिदैवि-केभ्यः, नः-अस्मान्, त्राहि-त्रायस्व,

व्याख्या - हे देवि, यह सारा प्रपंच आपका ही रूप है, आप सर्वसामर्थ्ययुक्त हैं सब कुछ करने में समर्थ हैं। ऐन्द्री, वाराही, कौमारी, माहेश्वरी, वैष्णवी, नारसिंही, चामुण्डा, ब्राह्माणी आदि सभी रूपों में आप ही हैं यह सब शक्तियां आपके ही रूप हैं। आप सभी प्रकार के भयों से हमारी रक्षा करें। हे देवि आपको नमस्कार है।

एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम्।

पातु नः सर्वभूतेभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते।२४

अन्वय - एतत्ते सौम्यं वदनं लोचनत्रयभूषितं नः सर्वभूतेभ्यः पातु हे कात्यायनि ते नमः अस्तु।

शब्दार्थ - सौम्यं-सुन्दरम्, वदनं मुखं, ते-तब, लोचनत्रयभूषितम्-नयनानां त्रयेण सोमसूर्याग्निरूपेण विभूषितम् अलंकृतम्, सूर्य, चन्द्र और अग्निरूपी तीन नेत्रों से सुशोभित, सर्वभूतेभ्यः सर्वभूतविकारेभ्यः प्राणिभ्यश्च।

व्याख्या - हे कात्यायनि देवी आपका मुख अत्यन्त सुन्दर है सूर्य, चन्द्र और अग्नि ये तीनों ही आपके तीन नेत्र हैं, आप सभी प्राणिमात्र से हमारी रक्षा करें।

ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम्।

त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते।२५

अन्वय - ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् त्रिशूलं न: भीते: पातु भद्रकालि ते नम: अस्तु

शब्दार्थ - ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम्- ज्वालाभि: करालं अत्युग्रंअतिरौद्रम् भयंकरम् अशेषाणां असुराणां दैत्यानां सूदनं संहारक ज्वालाकरालं, अत्युग्रं और अशेषासुरसूदनम् ये तीनों ही त्रिशूल के विशेषण हैं न: - अस्मान् देवान् भीते:- भयात्पातु-रक्षतु

व्याख्या - हे भद्रकाली आपको नमस्कार है। आपका यह त्रिशूल है जिससे ऊँची ऊँची अग्नि कीलपटें निकल रही हैं जो अत्यन्त भयंकर है, जिसके द्वारा समस्त दैत्यों का संहार किया गया है आपका यह त्रिशूल सभी प्रकार के भयों से हमारी रक्षा करें हे भद्रकाली आपको नमस्कार है। उक्त तीनों मंत्रों में देवी से अभय की प्रार्थना की गई है।

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत्।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्यो न: सुतानिव।२६

अन्वय - या घण्टा स्वनेन जगत् आपूर्य दैत्यतेजांसि हिनस्ति हे देवि सा घण्टा न: पापेभ्य: सुतानिव पातु।

शब्दार्थ - स्वनेन-नादेन शब्देन जगत्-लोकत्रयं आपूर्य-पूरयित्वा, दैत्यतेजासि-असुराणां तेजांसि, हिनस्ति-नाशयति, न:-अस्मान् देवान्, पातु-रक्षतु, पापेभ्य: दुरितेभ्य:, कष्टेभ्य:, संकटेभ्य:।

व्याख्या - हे देवि आपके जिस घंटे का महाशब्द संसार भर में भरकर प्रतिध्वनित होने लगता है, जिसे सुनकर दैत्यों का तेज नष्ट हो जाता है, वह घंटा सभी पापों से उसी प्रकार हमारी रक्षा करे जिस प्रकार माता पुत्र की रक्षा करती है।

विशेष - यहाँ पर देवी के घण्टा नाद के संबंध में कहा गया है - हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् पूर्व में भी जहाँ घण्टा स्वन के विषय में वर्णन आया है। वहाँ भी कहा गया है - पूरयामास कुकुभो निजघण्टास्वनेन च। समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना। घण्टास्वन से दैत्यों का तेज नष्ट होता है। अन्त: साधना के क्रम में इसके द्वारा नादश्रवण का संकेत किया गया है। हठयोगप्रदीपिका में नाद योग को लय योग के अंतर्गत सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। नादानुसंधानकमेकमेव मन्यामहे मुख्यतमम् लयानाम्। इसका अभ्यास सिद्धासन से बैठकर शाम्भवी मुद्रा के द्वारा आँख, कान, नाक, मुख को मूंद कर दाहिने कान में एकाग्र चित्त होकर नाद का श्रवण किया जा सकता है। दोनों हाथ के अंगूठों से दोनों कान बन्द करे, दोनों तर्जनी से दोनों नेत्र बन्द करे, दोनों मध्यमा से दोनों नाक के छिन्द्रों को बन्द करें, दोनों अनामिका ऊपर के ओष्ठ पर

और दोनों कनिष्ठा नीचे के अधर पर रखकर मुख बन्द करे। इसके लिए कुम्भक का अच्छा अभ्यास होना आवश्यक है। गीता में कहा है - नवद्वारे पुरे देही नैवकुर्वन्न कारयन्। शाम्भवी मुद्रा के द्वारा ऊपर के सात द्वार बन्द होते हैं। मूलबन्ध लगाने से नीचे के दो द्वार-गुदा और उपस्थ बन्द हो जाते हैं। तब दाहिने कान में नाद की उत्पत्ति संभव है। हंसोपनिषद् में नाद की प्रथमावस्था में चिण जैसा शब्द, द्वितीयावस्था में चिण चिण, तीसरा घण्टानाद, चतुर्थ शंखनाद, पंचम तन्त्रीनाद, षष्ठ तालनाद, सप्तम वेणुनाद, अष्टम नगाड़े का सा शब्द, नवम मृदंग का सा शब्द और दशम मेघ गर्जन सा सुनाई देता है। इसप्रकार दशविध नाद में केवल दशम का ही अभ्यास करना चाहिए। त्रिपुरासारसमुच्चय में मुख्यरूप से केवल पाँच नाद का ही वर्णन किया गया है - प्रथम मत्त भ्रमरगुंजन के समान फिर पवन से भरे हुए बांस के समान, फिर घण्टानाद सदृश फिर समुद्र गर्जन, फिर मेघ के गर्जन के समान ध्वनि सुनाई देती है। श्रीपीताम्बरापीठ दतिया के प्रातः स्मरणीय स्वामीजी ने बगलामुखी रहस्य में नाद श्रवण की एक सरल विधि का उल्लेख किया है। निरालम्बा मुद्रा का अभ्यास करते हुए कानों में गुटका रखने से यह नाद सुना जा सकता है। गुटका निर्माण की विधि इस प्रकार है - शुद्ध मृगनाभिजनित कस्तूरी एक रत्ती, लताकस्तूरी नहीं: जायफल दो रत्ती, जावित्री तीन रत्ती, लौंग छः रत्ती इन सबका चूर्ण करके जामून के फल सा बना लें, उसे रेशमी वस्त्र में रेशम के धागे से लपेट कर रखे। अभ्यास काल में दोनों कानों में यह गुटिका लगाकर नाद श्रवण के लिए वायुनिरोध और मन को एकाग्र करें।

आध्यात्मिक पक्ष में दैत्यों से तात्पर्य मन के आसुरी भावों से है। नाद के उदय होते ही समस्त चित्तवृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं। कहा गया है -

मकरन्दं पिबन्भृंगो गन्धान्नापेक्षते यथा।
नादासक्तं सदा चित्तं विषयं नहि कांक्षते।
बद्धः सुनादगन्धेन सद्यः सन्त्यक्तचापलम्
नादग्रहणतश्चित्तमन्तारंगभुजंगमम्।
विस्मृत्य विश्वमेकाग्रं कुत्रचिन्नहि धावति।
मनोन्मत्तगजेन्द्रस्य विषयोद्यानचारिणः
नियामनसमर्थोऽयं निनादो निशितांकुशः।
नादोन्तरंगसारंगबन्धने वागुरायते।
अन्तरंगतरंगस्य रोधे वेलायते पि च।

जिस मन के लिए भगवान ने स्वयं ही असंशयं महावाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् कहा

है वही मन रूप मृग नादसिद्धि के द्वारा जाल में आबद्धमृग के समान स्थिर हो जाता है।''

असुरासृग्वसापंकचर्चितस्ते करोज्वलः।
शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम्।२७

अन्वय - असुरासृग्वसापंकचर्चितः करोज्वलः ते खड्गः शुभाय भवतु हे चण्डिके वयं त्वां नताः

शब्दार्थ - असुरासृग्वसापंकचर्चित - असुराणां दैत्यानां असृक् रुधिरं वसा मेदः असृग्वसे पंके इव तेन चर्चितः लिप्तः ते-तव करोज्वलः खड्गः बलिहस्तांशवः कराः ''इति कोशवचनात् हे चण्डिके वयं देवाः त्वां नताः प्रणताः स्मः।''

व्याख्या - दैत्यों के रक्त और वसा से लिप्त आपके हाथ को देदीप्यमान करने वाला आपका खड्ग वा किरणों से प्रकाशमान खड्ग हम सबके लिए कल्याण कारक हो। हे चण्डिके हम सब आपके सामने नतमस्तक हैं आपको प्रणाम करते हैं।

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तुकामान्सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति।२८

अन्वय - हे देवि त्वं तुष्टा सती अशेषान् रोगान् अपहंसि रुष्टा तु सकलान्, अभीष्टान् कामान् अपहंसि ददासि इति पाठे सकलान् अभीष्टान् कामान् ददासि त्वां आश्रितानां नराणां विपद् न भवति ये त्वां आश्रिता ते आश्रयतां प्रयान्ति।

शब्दार्थ - रुष्टा के स्थान पर ददासि पाठ मानकर भी अर्थ किया गया है। तुष्टा सती हे देवि त्वं अशेषान् समस्तान् रोगान् अपहंसि-नाशयसि, रुष्टा तु-कुपिता सती, सकलान्, अभीष्टान्, अभिप्रेतान् कामान् काम्यमानान् अथवा ददासि त्वां आश्रितानां नराणां त्वदाश्रितानां नराणां मनुष्याणां विपद् आपद् न हिद्यते। त्वदधीना जनाः अन्येषाम् आश्रयतां प्रयान्ति अन्यैः आश्रयन्ते।

व्याख्या - हे देवि, आराधना करने पर जब आप सन्तुष्ट हो जाती हैं तो सभी रोग और व्याधियों का नाश करने वाली होती हैं और सभी कामनाओं को पूरा करती हैं यदि रुष्ट हों तो सभी प्रयत्न विफल कर देती हैं जो आपके आश्रय में रहते हैं उन मनुष्यों पर कभी किसी भी प्रकार की आपत्ति नहीं आती। आपके आश्रित भक्त तो दूसरों को आश्रय देने वाले बन जाते हैं।

एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्यधर्मद्विषां देवि महासुराणाम्।
रूपैरनेकैर्बहुधात्ममूर्तिं कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या।२९

अन्वय - हे देवि अद्य त्वया बहुधा अनेकैः रूपैः आत्ममूर्तिं कृत्वाधर्मद्विषां

महासुराणां एतत् यत् कदनं कृतंहे अम्बिके तत् अन्या का प्रकरोति।

शब्दार्थ - अद्य अधुना इदानीं, बहुधा - बहुप्रकारा, बह्वीभि: विधाभि:, अनेक प्रकार से आत्ममूर्तिं-निजतनुम, अनेकै रूपै: - ब्रह्माण्यादि काल्यादिशक्तिरूपै:, धर्मद्विषाम्-धर्मद्रोहिणां महासुराणां, महिषासुरधूम्रलोचन रक्तबीजशुम्भनिशुम्भादीनां कदनं, हननं "व्यापादनं विशसनं कदनं च निशुम्भनम् इति कोशात् यत्-जो, तत्-हननरूपकार्य अन्या-त्वदन्या: अपरा का स्त्री देवता वा प्रकरोति-कर्तुं शक्नोति न कापि।"

व्याख्या - दे देवि, हे मात: आपने काली, चामुण्डा, ब्रह्माणी आदि अनेक रूप धारण कर अनेक रूपों में प्रकट हो कर धर्म से द्रोह करने वाले महिषासुर, रक्तबीज, धूम्रलोचन शुम्भ, निशुम्भ आदि महा दैत्यों का जो वध किया है, उसे आपके अतिरिक्त अन्य किस देवता की सामर्थ्य है जो ऐसा कर सके।

विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपेष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे बिभ्रामयत्येतदतीव विश्वम्। ३०

अन्वय - विवेकदीपेषु, विद्यासु शास्त्रेषु, आद्येषु वाक्येषु विद्यमानेषु सत्सु त्वदन्या का अतिमहान्धकारे ममत्वगर्ते विश्वं विभ्रामयति।

शब्दार्थ - विवेकदीपेषु को विद्यासु, शास्त्रेषु और आद्येषु वाक्येषु का विशेषण माना जा सकता है, वा पृथक मानकर भी अर्थ किया जा सकता है। अतिमहान्धकारे ममत्वगर्ते का विशेषण हो सकता है। एतद् विश्वं का बोधक है, अतीव बिभ्रामयति का क्रियाविशेषण है। विद्यासु-चतुर्दशसु, अंगानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तर:। पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश।, शास्त्रेषु-मनुस्मृत्यादिषु, आद्येषु वाक्येषु-वेदेषु, विवेकदीपेषु, विवेकस्तत्वसाक्षात्कार: तं दीपयन्ति दीपवत् प्रकाशयन्ति तेषु विवेकदीपेषु वा विवेक-युक्ता: विचार: दीपा: इवअज्ञानान्धकारनिवारक: ज्ञानदीपेषु, ममत्वगर्ते-ममत्वं गर्त इव तस्मिन् गर्तो ममत्वाश्रय: संसार, वा मोहरूपे, अतिमहान्धकारे-अतितरां महान्धकार: तमोगुण: अज्ञानरूपो यस्मिन् स:, बिभ्रामयति-पुन: पुन: प्रवर्तयसि।

व्याख्या - हे देवि मनुष्य के पास ज्ञान के अनेक साधन हैं जिनके होते हुए उसे मोह में डाल कर संसारचक्र में भ्रमण कराने वाली महामाया और महामोहा तामसी शक्ति बनकर आपके अतिरिक्त कौन ऐसा करने में समर्थ हो सकता है। विद्या का अर्थ कुछ भाष्यकारों ने इन्द्रजाल विद्या किया है जो उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि इन्द्रजाल तो स्वयं ही भ्रमरूप है। विद्या से आशय वास्तव में चतुर्दश विद्या से ही हो सकता है। अथवा मन्त्रविद्या भी हो सकता है। वैसे पहिले कह आये हैं कि - विद्या समस्ता:तव देवि भेदा:स्त्रिय: समस्ता: सकला जगत्सु। सभी विद्या और कला देवीरूप ही हैं। सभी शास्त्रों के होते हुए, वेदों उपनिषदों के होते हुए, विवेक का प्रकाश होते हुए भी बड़े

से बड़े ज्ञानी मोहमाया में फंस जाते हैं। कहा भी है - ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा। बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रपच्छति। अज्ञानतमोरूप अन्धकार वाले ममता के गर्त में गिर जाते हैं। सामान्यतया जिसके हाथ में दीपक हो वह न तो गर्त में गिर सकता है और न अन्धकार में भटक सकता है। परन्तु हे देवि आपकी महामाया की अतीव शक्ति है कि जिसके वशीभूत ज्ञानी जन भी विश्व के मायाजाल में बार-बार भटकते रहते हैं।

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागायत्रारयो दस्युबलानि यत्र।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम्।३१

अन्वय - यत्ररक्षांसि यत्र उग्रविषा: नागा: च यत्रअरय: दस्युबलानि यत्र दावानल: तथा अब्धिमध्ये स्थिता त्वं विश्वं परिपासि।

शब्दार्थ- यत्र रक्षांसि उग्रविषा: - महाविषधरा:, अरय:-शत्रव:, दस्युबलानि-उग्रचौराणां बलानि सैन्यं, दावानल:-वन मध्ये प्रचण्डाग्नय:, अब्धिमध्ये-महोर्मिसंकुलसमुद्रे, परिपासि-सर्वत: रक्षसि।

व्याख्या- मनुष्य चाहे जैसे संकट में पड़ा हो, चाहे जैसी विपत्ति में फंस गया हो, जहाँ नरभक्षी राक्षस हों, महाभयंकर विषैले सर्प हों, शत्रु हों, चाहे डाकुओं की सेना से घिर गया हो, समुद्र के मध्य में उसकी नाव डांवाडोल हो रही हो, आप इन सभी परिस्थितियों में प्रकट होकर सारे संसार की रक्षा करती हैं।

विशेष- भयंकर विपत्ति में पड़ जाने पर जिससे उबरने का कोई भी उपाय न बचा हो उस समय उस जगद्धात्री को स्मरण करने से वे अपने भक्त की तत्काल रक्षा करती हैं। ऐसी विपत्ति से रक्षा के लिए इस मन्त्र का स्मरण करना चाहिए।

विश्वेश्वरी त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्रा:।३२

अन्वय- हे देवि विश्वेश्वरी त्वं विश्वं परिपासि, विश्वात्मिका त्वं विश्वं धारयसि, भवती विश्वेशवन्द्या, ये त्वयि भक्तिनम्रा: ते विश्वाश्रया भवन्ति।

शब्दार्थ- विश्वेश्वरी-विश्वस्य ईश्वरी-नियामिका, विश्वात्मिका-सर्वजगत्स्वरूपा विश्वेशवन्द्या-विश्वस्य ईश: सृष्टा, संरक्षक: संहर्ता च ब्रह्मादि: तेषाम् त्रिदेवानामपि वन्दनीया स्तुत्या च असिये- जो भी, त्वयि-आपके प्रति, भक्तिनम्रा-भक्तिसहित नम्र होते हैं विश्ववन्द्या-संसार भर में वन्दनीय और विश्वाश्रया-सबके आश्रय देने वाले।

व्याख्या- आप इस विश्व ब्रह्माण्ड की स्वामिनी हैं नियामिका है इसलिए आप ही इसकी रक्षा करती हैं, आप विश्वात्मिका हैं यह संसार आपका ही रूप है अत: आप इसे

धारण करने वाली हैं। विश्व के स्वामी इसके सृजनपालन-संहारकर्ता आपकी वन्दनाकरते हैं। आपको जो कोई भी भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है वह सब का आश्रय देने वाला बन जाता है।

देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीतेर्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः

पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान्।३३

अन्वय- हे देवी प्रसीद, अरिभीतेः नो परिपालय, यथा अधुना सद्यः एव असुरवधात् वयं परिपालितास्मः इति शेषः आशु सर्वजगतां पापानि प्रशमं नय, उत्पातपाकजनितान् महोपसर्गान् च आशु प्रशमं नय।

शब्दार्थ- प्रसीद-प्रसन्न हों, परिपालय-रक्षा करें, नः- अस्मान् हम सबको, अरिभीतेः-शत्रु के त्रास से सद्यः-तत्काल, अभी, अभी, यथा-येन प्रकारेण, असुरवधात्-असुराणां दैत्यानां वधात् हननात् अधुना-अभी परिपालितास्मः-रक्षित हुए हैं, सर्वजगताम्-समस्त संसार के पापानि-पापजनिताशुभानि, उत्पातपाकजनितान्- उत्पातस्य परिपाकेन फलस्वरूपेण जनितान् जातान् उत्पन्नान् महोपसर्गान्-महामार्यादीन् संक्रामकरोगान् प्रशमं-शान्ति नय-प्रापय।

व्याख्या- हे देवि आप प्रसन्न हों, जिस प्रकार आपने इन त्रासदायक दैत्यों का वध करके शत्रुओं से भयभीत हम देवताओं की अभी-अभी रक्षा की है, उसी प्रकार आप आगे भी भविष्य में भी शत्रुओं से हमारी रक्षा करती रहे। संसार भर में फैले हुए पापों का शमन आप करें इस युद्ध के कारण लाशों के सड़ने से जो महामारी आदि उपसर्गजनित रोग फैल रहे हैं उनको तत्काल शान्त कर दें।

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि।

त्रैलोकक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव।३४

अन्वय- हे देवि विश्वर्तिहारिणि त्वं प्रणतानां प्रसीद, त्रैलोक्यवासिनां ईड्ये लोकानां वरदा भव।

शब्दार्थ- प्रणतानाम्-भक्तिनम्राणाम्, प्रसीद-प्रसन्ना भव, विश्वार्तिहारिणि-विश्वस्य आर्तिं पीडां हरति दूरीकरोति विश्वार्तिहारिणी तत्संबुद् धौ विश्वपीडानिवारिके, त्रैलोक्यवासिनां त्रयो लोकाः त्रैलोक्यम् तत्र वसन्ति त्रैलोक्यवासिनः तेषां त्रैलौक्यवासिनाम्, ईड्ये-स्तवनीये।

व्याख्या- हे देवि जो आपको भक्तिपूर्वक नमस्कार प्रणाम वन्दन आदि करते हैं उन पर आप प्रसन्न हों। आप संसार भर के कष्टों को दूर करने वाली हैं। आप तीनों लोकों के निवासियों के लिए वन्दनीय हैं, तीनों लोकों में आपकी स्तुति की जाती है, आप सभी को वरदायिनी बनें। सभी को इच्छित मनवांछित वर दें।

देव्युवाच- वरदाहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम्।३५

अन्वय- देवी उवाच- हे सुरगणाः अहं वरदा अस्मि यत् मनसा इच्छथ तत् वरं वृणुध्वम् जगतामुपकारकं तं प्रयच्छामि।

शब्दार्थ-वरम्-अभीप्सितार्थम्, प्रयच्छामि-ददामि, यत् वरं मनसा इच्छथ वांछथ वृणुध्वम्-प्रार्थयध्वम्।

व्याख्या- देवताओं के द्वारा इस प्रकार जब देवी की स्तुति की गई तो देवी ने प्रसन्न होकर देवताओं से इस प्रकार कहा- हे देववृन्द, मैं अभीष्ट वर देना चाहती हूँ। आपके मन में जो भी इच्छा हो वह मुझसे वर के रूप में प्राप्त कर सकते हो, तुम जो भी मांगों में देने को प्रस्तुत हूँ। लेकिन ऐसे वर से लोगों का हित होना चाहिए, उपकार होना चाहिए।

देवा ऊचुः- सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम्।३६

अन्वय- देवा ऊचुः हे देवि अखिलेश्वरि त्वया त्रैलोकस्य सर्वाबाधाप्रशमनं अस्मद् वैरिविनाशनं एवं एव कार्यम्।

शब्दार्थ- अखिलेश्वरि-अखिलस्य विश्वस्य ईश्वरि व्यापके नियामिके, त्वया-भगवत्या सर्वाबाधाप्रशमनम् सर्वा आबाधा-महती बाधा आ समन्ताद् बाधा वा सर्वा चासौ बाधा प्रकृष्टं शमनं प्रशमनं, अस्मद् वैरिविनाशनम्-अस्माकं वैरिणः दैत्या तेषां विनाशनं हननं वधं तान् विनाशयतीति अस्मद् वैरिविनाशम् एवम् एतद्विधम् कर्तव्यम्।

व्याख्या- हे देवि यदि आप प्रसन्न होकर वर देना चाहती हैं, हमारा अभीष्ट करना चाहती हैं तो इस समस्त जगत की नियामिका आप तीनों लोकों की स्वामिनी हैं त्रैलोक्यस्य अखिलेश्वरि के स्थान पर यदि त्रैलोक्यस्य सर्वाबाधाप्रशमनं मानें तो अर्थ होगा कि तीनों लोकों की बाधा को दूर करने वाली इसी प्रकार आप हमारे शत्रु दैत्यों का संहार करती रहें।

देव्युवाच- वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ।३७

अन्वय- देवी उवाच-वैवस्वते न्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतितमे युगे प्राप्ते शुम्भ निशुम्भ एव च अन्यौ महासुरौ उत्पत्स्येते।

शब्दार्थ- वैवस्वतेऽन्तरे-वैवस्वत मन्वन्तरे वैवस्वत मनु का जिस काल में अधिकार होगा उस सप्तम मवन्तर में, अष्टाविंशतिमे युगे-भविष्यति अष्टविंशति तमे युगे

अष्टाविंशतिमे अष्टाविंशतिः मीयते संख्यायते वा अष्टाविंशतिसंख्ये युगे चतुर्युगे कलि द्वापरसन्धिकाले अन्यौ एवं प्राक् निहतौ यौ शुम्भनिशुम्भौ शुम्भनिशुम्भनामानौ दैत्यौ उत्पत्स्येते उत्पन्न होंगे।

व्याख्या- सप्तम वैवस्वत मन्वन्तर के आने पर कलि और द्वापर की सन्धि में अट्ठाईस चतुर्युग पूर्ण होने पर शुम्भ निशुम्भ नामक दोनों दैत्य अन्य नाम से उत्पन्न होंगे।

नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसंभवा।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी।३८

अन्वय- ततः नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा विन्ध्याचलनिवासिनी सती तौ नाशयिष्यामि।

शब्दार्थ- नन्दगोपगृहे जाता-नन्दगोपस्य गृहिण्यां जाता उत्पन्ना यशोदागर्भसंभवा-नन्दगोपस्य गृहिणी यशोदा तस्या गर्भात् सम्भवा समुत्पन्ना विन्ध्याचलनिवासिनी-विन्ध्याचले तत्रापि गंगातीरे निवासिनी तौ महासुरौ नाशयिष्यामि व्यापादयिष्यामि हनिष्यामि।

व्याख्या- तब मैं नन्दगोप की गृहिणी यशोदा के गर्भ से उत्पन्न होकर विन्ध्यवासिनी के रूप में उन दोनों महादैत्यों का वध करूंगी।

रहस्य- नन्दगोप के घर जन्म लेने वाली यह देवी वास्तव में लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न होने वाली है। नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा। कनकोत्तमकान्तिः सा सुकान्तिकनकाम्बरा। कमलांकुशपाशाब्जैरलंकृत चतुर्भुजा। इन्दिरा कमला लक्ष्मीः सा श्री रुक्माम्बुजासना। यह रहस्य में स्पष्ट किया गया है।

पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले।
अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांश्च दानवान्।३९

अन्वय- अहं पुनः अपि पृथिवीतले अवतीर्य अतिरौद्रेण रूपेण वैप्रचित्तान् दानवान् हनिष्यामि।

शब्दार्थ- पुनः अपि वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे पृथिवीतले भूमौ अवतीर्य अवतार लेकर, अतिरौद्रेण महाभयंकरेण वैप्रचित्तान्-विप्रचित्तवंशोद्भवान्। विप्रचित्त वंश में उत्पन्न हुए, दैत्यान्-असुरान् हानिष्यामि व्यापादयिष्यामि।

व्याख्या- मैं उसी अट्ठाईसवें मन्वन्तर में अत्यन्त भयंकर रूप धारण कर अवतार लूंगी उस अवतार में विप्रचित वंश में उत्पन्न दैत्यों का वध करूंगी। देवी का यह अवतार भी अट्ठाईसवीं चतुर्युगी में द्वापर के बीतने पर होगा।

भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान्वैप्रचित्तान्महासुरान्।

रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमा।४०

अन्वय- तान् उग्रान् वैप्रचित्तान् महासुरान् भक्षयन्त्या: दन्ता: रक्ता: दाडिमीकसुमोपमा भविष्यन्ति।

शब्दार्थ- उग्रान् प्रचण्डान् रक्ता लोहिता: दाडिमीकुसमोपमा-दाडिम्या: कुसुमानि उपमा येषां दाडिमीकुसमोपमा दाडिमपुष्पवदरुणवर्णा: अनार के पुष्प के समान लाल रंग के।

व्याख्या- उन प्रचण्ड विप्रचित्तवंशी महान् दैत्यों को चबाते समय मेरे दांत अनार की कली के समान लाल वर्ण के हो जायेंगे। दांतों के लाल होने से ही इस देवी को रक्तचण्डिका भी कहा जाता है।

ततो मां देवता स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवा:।

स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम्।४१

अन्वय- तत: मां स्तुवन्त्यो देवता: स्वर्गे मानवा: च मर्त्यलोके सततं स्तुवन्त: रक्तदन्तिकां व्याहरिष्यन्ति।

शब्दार्थ- तत: तेन हेतुना उस कारण, मां मुझ देवी को, मर्त्यलोके-पृथ्वी पर सततम् सदा ही, स्तुवन्त: स्तुति करते हुए, व्याहरिष्यन्ति-कथयिष्यन्ति। रक्तदन्तिका-रक्तादन्ता यस्या सा रक्तदन्तिका।

व्याख्या- उन विप्रचित वंश में उत्पन्न होने वाल महादैत्यों का भक्षण कर डालने के कारण जब मेरे दांत लाल वर्ण के हो जायेंगे तो स्वर्ग में देवता मेरी स्तुति करते हुए और पृथ्वी पर मनुष्य स्तुति करते हुए मुझे रक्तदन्तिका कहेंगे।

भूयश्च शतावार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि।

मुनिभि: संस्मृता भूमौ संभविष्याम्ययोनिजा।४२

अन्वय- भूय: च शतवार्षिक्यां अनावृष्ट्यां अनम्भसि मुनिभि: संस्मृता/संस्तुताभूमौ अयोनिजा संभविष्यमामि।

शब्दार्थ- भूमौ शब्द देहलीदीपक न्याय के अनुसार अनम्भसि भूमौ और भूमौ संभविष्यामि इस प्रकार दोनों ओर संगत है। भूय:-पुन: अपि, शतवार्षिक्यां-शतवर्षभवा शत-वार्षिकी तस्यां शतवार्षिक्यां अनावृष्ट्यां न आसमन्ताद् वृष्टि: अनावृष्टि: तस्यां अनावृष्ट्यां अनम्भसि-नदीतडागादौ अपि जलशून्यायां भूमौखातादिजलरहितायां वा संस्मृता-संस्तुता सन्नुता अयोनिजा-देवकीगर्भसंभवा वा पार्वतीदेहसम्भवा।

व्याख्या- फिर जब पृथ्वी पर सौ वर्ष तक वर्षा न होगी तो सभी जलाशय सूखकर

जल रहित हो जायेंगे, उस समय मुनिजन मेरा स्मरण कर मेरी स्तुति करेंगे। तब मैं देवकी के गर्भ से योगमाया के रूप में प्रकट हो जाऊँगी। अथवा पार्वती के देह से उत्पन्न हो जाऊँगी।

ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन्।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः।४३

अन्वय- ततः नेत्राणां शतेन यन्मुनीन् निरीक्षिष्यामि ततः मां मनुजा शताक्षीं इति कीर्तयिष्यन्ति।

शब्दार्थ- ततः तत्पश्चात् मत्प्रादुर्भावादनन्तरम्, ततः- तस्मात्कारणात्, शताक्षीं शतं अक्षीणि यस्या सा ताम्, कीर्तयिष्यन्ति-कथयिष्यन्ति, निरीक्षिष्यामि-निरीक्षिष्ये।

व्याख्या- उन स्तुति करने वाले मुनियों को मैं एक साथ सौ नेत्रों से देखूंगी, इसलिए मनुष्य मुझे शताक्षी कहकर मेरा कीर्तन करेंगे।

ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टे प्राणधारकैः।४४

अन्वय- हे सुराः ततः अहं आवृष्टेः आत्मदेहसमुद्भवैः प्राणधारकैः शाकैः अखिलं लोकं भरिष्यामि।

शब्दार्थ- ततः उस समय वैवस्वत मन्वन्तर के चालीसवें युग में आवृष्टेः आ भविष्यतीं वृष्टिं अवधिं कृत्वा वृष्टिपर्यन्तम् वर्षा होने तक आत्मदेहसमुद्भवैः-मम देव्याः देहात्शरीरात् उत्पत्स्यमानैः प्राणधारकैः- प्राणधारणकर्तुं समर्थैः शाकैः पत्रपुष्पाद्यै अखिलं-समस्तं भरिष्यामि, पोषयिष्यामि।

व्याख्या- उस समय मैं वर्षा होने तक प्राणधारक शाक सब्जी को अपने शरीर से उत्पन्न कर समस्त संसार का पोषण करूंगी। शाक दस प्रकार के बताये गये हैं- पत्रमूलकरीराग्र-फलकाण्डास्थिरूढकाः। त्वक् पुष्पं कवकं चेति शाकं दशविधं स्मृतम्। पत्ते जैसे पालक बथुवा आदि, २-मूल जैसे मूली, गाजर, ३-करीराग्र-अरबी कें अंकुर और चीन में उत्पन्न होने वाले बांस के अंकुर, ४-फल-केला, आम, पपीता, काण्ड-ईख, अस्थि-खाने योग्य तने का कड़ा भाग मृणाल, रूढक-अंकुर, त्वक् भक्षण करने योग्य छाल, पुष्प और गूदा।

शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि।
तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम्। ४५

अन्वय- तदा अहं शाकम्भरी इति भुवि विख्यातिं यास्यामि तत्र एव च दुर्गमाख्यं महासुरम् वधिष्यामि।

शब्दार्थ- शाकम्भरी-लोकरक्षणार्थ स्वशरीरोद्भवानि शाकानि विभर्तीति शाकम्भरी, विख्यातिं विशेषेण ख्यातिं प्रसिद्धिं इति दुर्गम: आख्या यस्य स:दुर्गमाख्य:वधिष्यामि हनिष्यामि।

व्याख्या- उस शतवार्षिक अनावृष्टि के कारण जब जलाशय तक सूख जायेंगे, उस समय में अपने शरीर से दस प्रकार के शाक उत्पन्न करके लोक का पालन करूँगी इसलिए मुझे शाकम्भरी कहा जायेगा। उसी समय दुर्गम नामक महादैत्य का वध करने के कारण मेरा नाम दुर्गा होगा। आगे कहा भी गया है- शाकम्भरी शताक्षी या सैव दुर्गा प्रकीर्तिता। उमा गौरी सती चण्डी कालिका सापि पार्वती।

दुर्गादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति

पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले।४६

अन्वय- तत् विख्यातं दुर्गादेवी इति में नाम भविष्यति पुन: च अहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले अग्रेणान्वय:।

शब्दार्थ- भीमं-भयंकरम्, तत्-तस्मात् दुर्गमासुरवधात् विख्यातं प्रसिद्धं दुर्गा देवी इति मे नाम भविष्यति, पुन: च यदा हिमाचले भीमं रूपं कृत्वा

व्याख्या- उस दुर्गम नाम दैत्य को मारने के कारण मेरा दुर्गा नाम प्रसिद्ध होगा। फिर मैं अत्यन्त भयंकर रूप धारण करके हिमालय पर्वत पर।

रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात्।

तदा मां मुनय: सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तय:।४७

अन्वय- मुनीनां त्राणकारणात् रक्षांसि भक्षयिष्यामि तदा मां सर्वे मुनय: आनम्रमूर्तय: सन् स्तोष्यन्ति।

शब्दार्थ- रक्षांसि-राक्षसान्, त्राणकारणात्-रक्षणार्थ आनम्रमूर्तय:-भक्त्या नम्रा: शरीराणि येषाम्।

व्याख्या- उस समय हिमालय पर्वत पर मुनियों की रक्षा करने के लिए मैं राक्षसों को चबा डालूंगी। उस समय सभी ऋषिमुनि नम्रतापूर्वक मेरी स्तुति करेंगे।

भीमादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।

यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति।४८

अन्वय- तत् विख्यातं भीमादेवी इति मे नाम भविष्यति। यदा अरुणाख्य: त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति।

शब्दार्थ- भीमा-विभेत्यस्मादिति भीम: सा च भीमा, तत् तस्मात्, अरुणाख्या-अरुणनामा त्रैलोक्ये त्रिष्वपि लोकेषु-तीनों लोकों में, महाबाधां महतीं पीड़ां

व्याख्या- भयंकर रूप धारण कर राक्षसों का भक्षण करने के कारण तब मेरा नाम भीमा देवी होगा। फिर जब अरुण नामक राक्षस तीनों लोकों को पीड़ित करेगा।

तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वासंख्येयषट्पदम्।
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम्।४९

अन्वय- तदा अहं असंख्येयषट्पदं भ्रामररूपं कृत्वा त्रैलोक्यस्य हितार्थाय महासुरं वधिष्यामि।

शब्दार्थ- भ्रामरं रूपं कृत्वा भ्रमरसंबंधिनीं मूर्तिं कृत्वा असंख्येयषट्पदम्-यह भ्रामरं रूपं के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है- असंख्येयाः अगणनीयाः षट्पदाः भ्रमराः यस्मिन् रूपे तत्।

व्याख्या- तब मैं ऐसा रूप धारण करके उस महा असुर का बध करूंगी जिस रूप में असंख्य भ्रमर होंगे।

भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।५०

अन्वय- तदा लोका मां भ्रामरी इति सर्वतः स्तोष्यन्ति, इत्थं यदा यदा दानवोत्था बाधा भविष्यति।

शब्दार्थ- भ्रामरी-भ्रमरस्य इयं आकृत्या भ्रामरी देवी, भ्रमरस्य इदं भ्रामरं रूपं आकारं यस्या सा सर्वतः-सर्वत्र, स्तोष्यन्ति-संकीर्तयिस्यन्ति, इत्थं एवं प्रकारेणदानवोत्था-दानवेभ्यः उत्तिष्ठित दानवोत्था दानवेभ्यः समुद्भवाबाधा-पीड़ा, भविष्यति-उत्पत्स्यति।

व्याख्या- जब मैं भ्रमरों का रूप धारण कर उस अरुण दैत्य का वध करूंगी तो सर्वत्र ही लोग भ्रामरी कह कर मेरी स्तुति करेंगे। इस प्रकार जब जब संसार में दानवों का उपद्रव बढ़ेगा।

तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्। ५१

अन्वय- तदा तदा अहं अवतीर्य अरिसंक्षयं करिष्यामि।

शब्दार्थ- अहं देवी कार्यानुरूपं अवतीर्य अरिसंक्षयम्-अरीणां शत्रूणां संक्षयं विनाशं करिष्यामि।

व्याख्या- इस प्रकार जब दानव उत्पन्न होकर बाधा करेंगे तो तदनुरूप अवतार लेकर मैं शत्रुओं का नाश करती रहूँगी।

विशेष- इस अध्याय में जिन अवतारों का वर्णन भविष्य काल की क्रिया के साथ किया गया है, देवी के वे अवतार आगे चलकर होंगे। लक्ष्मीतन्त्र के अनुसार वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाईसवें चतुर्युग में किन्हीं अन्य शुम्भ निशुम्भ के उत्पन्न होने की बात

कही गई है तो भीमादेवी के अवतार के संबंध में कहा गया है कि वैवस्वत मन्वन्तर के पचासवें चतुर्युग में होगा। किन्तु जैसा कि तुलसीदास जी ने कहा है कि कलप भेद हरि चरित सुहाये। भांति अनेक मुनीसन गाये। उसी प्रकार देवी के ये अवतार भी श्वेतवाराह कल्प के पूर्व भी हुए ही होंगे, इसलिए तत्संप्रदाय के साधकों के द्वारा देवी के इन सभी रूपों की आराधना ठीक ही है। वैसे तो अरुण दैत्य के लिये ही कहा गया है कि - युगे षष्ठितमे कश्चिदरुणो नाम दानव:। "अत: वैवस्वत मन्वन्तर के साठवें चतुर्युग में उसका अवतार होगा।"

जो देवी जिसकी कुल देवता के रूप में पूजी जाती हैं उसमें कोई असंगति नहीं है।

इति श्री मार्कण्डेय पुराणे देवै: कृता नारायणी स्तुतिर्नामैकादशोऽध्याय:।

इस प्रकार मार्गण्डेय पुराण के अंतर्गत देवताओं के द्वारा की गई नारायणी की स्तुति नामक एकादश अध्याय पूरा हुआ।

●●●

द्वादश अध्याय

देव्युवाच

एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः।

तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम्। १

अन्वय- देवी उवाच यः नित्यं समाहितः एभिः स्तवैः मां स्तोष्यते तस्य सकलां बाधां अहं असंशयं नाशयिष्यामि।

शब्दार्थ- देवी-भगवती, उवाच-उचितां वाचं उक्तवती, एभिः ब्रह्मकृतैः इन्द्रादिदेवकृतैः च स्तवैः स्तोत्रैः, च-पुनः पुनः, नित्यं- शश्वत् सततं, मां-देवी समाहितः-अनन्यमनाः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः, तस्य-पुंसः, सकलां-ऐहिकीं पारलौकिकीं च त्रिविधं वा त्रिविधतापं नाशयिष्यामि-शमयिष्यामि, असंशयम्-अस्मिन् विषये न किंचिदपि संशयं

व्याख्या- देवी भगवती ने पुनः देवताओं से कहा कि प्रथम चरित्र से लेकर उत्तमचरित्र तक ब्रह्मा, इन्द्र और देवताओं के द्वारा मेरी जो जो स्तुतियां की गई हैं यदि कोई भी पुरुष अनन्यभक्तिपूर्वक श्रद्धा के साथ नित्य प्रति इन स्तुतियों के द्वारा मेरा स्तवन करेगा तो उसकी सभी प्रकार की पीड़ा, बाधा, संकट, कठिनाई मैं निश्चित ही दूर करूंगी इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम्।

कीर्तयिष्यन्ति ये तद्वद्वधं शुम्भनिशुम्भयोः।२

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः।

श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम्।३

न तेषां दुष्कृतं किंचिद्दुष्कृतोत्था न चापदः।

न भविष्यति दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम्।४

अन्वय- मधुकैटभनाशं महिषासुरघातनं चशुम्भनिशुम्भयोः वधं च ये तद्वद्एकचेतसः अष्टम्यां चतुर्दश्यां नवम्यां च उत्तमं माहात्म्यंश्रोष्यन्ति तेषां न किंचित् दुष्कृतं न च दुष्कृतोत्था च आपदः न दारिद्रयं न च इष्टवियोजनं एव भविष्यति।

शब्दार्थ- एकचेतसः सावधाना सन्तः, अष्टमी, नवमीचतुर्दशी पक्षद्वये ग्राह्याः तद्वत्-पूर्व श्लोक में एभिःस्तवैः आदि के अनुसार, वा मधुकैटभनाशं, महिषासुरघातनं तद्वत् शुम्भनिशुम्भयोः वधं च, कीर्तयिष्यन्ति पठिष्यन्ति, तद्वत्- उसी प्रकार श्रोष्यन्ति-श्रवण करेंगे, भक्त्या-भक्तिपूर्वक, उत्तमं- श्रेष्ठम्, पावनं सर्वकामफलप्रदं च तेषां मनुष्याणां, उन मनुष्यों के जो इस प्रकार मेरे महात्म्य का श्रवणकीर्तन करेंगे, दुष्कृतं

पूर्वजन्मनिकृतं दुरितं पातकं, दुष्कृतोत्था कृतपापफलरूपेण उत्यितमुत्पन्नं आपदः- विपत्तियां संकट, दारिद्रयं-दरिद्रता, इष्टवियोजनम्-प्रियजनवियोगम्। किसी आचार्य के अनुसार मधुकैटभनाशं मधुकैटभयोर्नाशं यस्मिन्ग्रन्थे वर्णितं तं एवमेव जिस ग्रन्थ में महिषासुरवध का वर्णन किया है शुम्भनिशुम्भ के वध का वर्णन किया गया है वह ग्रन्थ ऐसा अर्थ किया गया है।

व्याख्या- पूर्व श्लोक में कहे गये अनुसार जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक श्रद्धासहित, अनन्यचेता होकर मधुकैटभ के नाश की कथा, महिषासुर के वध की कथा और शुम्भनिशुम्भ मारने की कथा जिस ग्रन्थ में है उस मेरे माहात्म्य के प्रतिपादक ग्रन्थ का श्रवण, मनन और पठन नित्य करते रहेंगे उनके संचित कर्मों के फल नष्ट हो जायेंगे प्रारब्ध के पापों से होने वाली आसन्न विपत्ति और संकट से बच जायेंगे, उन्हें धन का अभाव न होगा और न कभी अपने प्रियजन इष्टमित्र पुत्रकलत्रादि का वियोग होगा।

शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः

न शस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्संभविष्यति। ५

अन्वय- तस्य न शत्रुतः न दस्युतः न राजतः भयं भविष्यति नवा कदाचित् शस्त्रानल-तोयौघात् भयं संभविष्यति।

शब्दार्थ- दस्युतः तस्करात् राजतः नृपात् शस्त्रानलतोयौघात्-तोयस्य औघः प्रवाहः पूरः शस्त्रात् शस्त्रघातात् अनलात् अग्निदाहात् जलप्रवाहात् च संभविष्यति- सम्भावना तक न रहेगी।

व्याख्या- उक्त कथानुसार जो भी कोई मेरे माहात्म्य का पठन व श्रवण करेगा उसे न तो किसी शत्रु से किसी प्रकार का भय रहेगा शत्रु उसे किसी प्रकार हानि नहीं पहुँचा सकते, चोर डाकू, लूटेरे भी किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचा सकते राजा भी उस पर किसी प्रकार की शास्ति नहीं कर सकता, उसे राजदण्ड से भी किसी प्रकार की हानि नहीं हो सकती, आग लगने से डूबने और अस्त्रशस्त्र के प्रहार से घायल होने तक की उसे कभी सम्भावना तक नहीं रह सकती।

तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः।

श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं महत्।६

अन्वय- तस्मात् परं स्वस्त्ययनं महत् एतत् मम माहात्म्यं समाहितैः पठतिव्यं सदा भक्त्या श्रोतव्यं च।

शब्दार्थ- तस्मात् इस कारण से, एतत्-यह मम-देव्याः परं उत्कृष्टं स्वस्त्ययनं- स्वस्ति कल्याणं तस्य अयनं मार्गः, महत् विनाशरहितम्, समाहितैः-सावधानचित्तैः दत्तावधानैः कृतप्रयत्नैर्वा।

व्याख्या- इसी कारण मेरे इस माहात्म्य को जो सभी प्रकार कल्याण करने वाला है, योगक्षेमकारक है, सर्वथा उत्कृष्ट है इसे भक्तिपूर्वक पढ़ना और सुनना चाहिए। वास्तव में इसके पाठ का ही विशेष फल है जो पाठ करने में समर्थ नहीं है, उन्हीं के लिए सुनने का विधान समझना चाहिए। ऐसा किसी आचार्य का मत है जो उचित जान पड़ता है।

उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान्।
तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन् मम।७

अन्वय- मम माहात्म्यं महामारीसमुद्भवान् अशेषान् उपसर्गान् शमयेत् तथा त्रिविधं उत्पातं च शमयेत्।

शब्दार्थ- महामारीसमुद्भवान्-महती मारी महामारी महामार्या समुद्भवा तान् महामारीसमुद्भवान् अशेषान् समस्तान् उपसर्गान् उपद्रवान् शमयेत् दूरीकुर्यात् दिव्यान्तरिक्षं भौमं वा आध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकान् उत्पातान्।

व्याख्या- महामारी हैजा, प्लेग विशूचिका इन्फ्लुएंजा आदि ऐसे रोग जो संक्रमण से फैल कर असंख्य जनसंहार का कारण बनते हैं। विज्ञान के वर्तमान आविष्कारों के द्वारा महामारी पर बहुत नियंत्रण किया जा सका है। तीन प्रकार के उत्पात, भूमि, अन्तिरिक्ष और स्वर्ग से संबंधित जिनके विषय में कहा गया है- "भूर्लोकोयं स्मृतो भूमिरन्तरिक्षं भुवा स्मृतम्। स्वराख्यश्च तथा स्वर्गस्त्रैलोक्यं तदिदं स्मृतम्।" अथवा- दैहिक दैविक और भौतिक ताप। दैहिक शरीर सम्बन्धी रोग आदि, दैविक अचानक आ पड़ने वाली विपत्ति आदि, भौतिक आंधी, भूस्खलन, भूकम्प आदि देवी भगवती कहती हैं कि मेरे इस महात्म्य के पठन और श्रवण करने से महामारी से होने वाली विपत्ति दूर होती हैं। इससे त्रिविधि तापों का भी शमन होता है।

यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ् नित्यमायतने मम।
सदा न तद्विमोक्ष्यामि सान्निध्यं तत्र मे स्थितम्।८

अन्वय- यत्र मम आयतने एतत् सम्यक् नित्यं पठ्यते तद्सदा न विमोक्ष्यामि तत्र मे सान्निध्यं स्थितम्।

शब्दार्थ- आयतने-गृहे मन्दिरे शक्तिदेवतालये, एतत्-दुर्गामाहात्म्यम्, नित्यं पठ्यते पुम्भिः सम्यक्-अर्थतः पदतः च शुद्धम्, तत्-देवालयं मन्दिरम्, विमोक्ष्यामि-त्यक्षामि, सानिध्यम् स्थितम्-मैं वहां सदा ही रहती हूँ। सम्यक् से अर्थ समझकर शुद्ध उच्चारणपूर्वक पढ़ने का संकेत है। पढ़ने में त्रुटि न हो, उच्चारण में अशुद्धि न हो पाठ में प्रत्येक मन्त्र का यथार्थ समझकर पढ़ना ही प्रमुख है। वैसे पाठक को इन छः दोषों से भी रहित होना चाहिए-

गीती शीघ्री शिर:कम्पी तथा लिखितपाठक:।

अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमा:।

गाकर पाठ न करें, पाठ में शीघ्रता न करें, पाठ के समय भली प्रकार मेरुदण्ड को सीधा करके बैठे अंग संचालन शिर का कंपाना वर्जित है, मक्षिका स्थाने मक्षिका की भांति न पढ़ें अपेक्षा तो यह की जाती थी कि पूरा माहात्म्य कंठस्थ हो, अर्थ का भी भली भांति जानने वाला हो गले में खराबी न हो। स्पष्टपदाक्षर का उच्चारण हो। इस ग्रन्थ के लिखने का उद्देश्य ही यही है कि सप्तशती के पाठ करने वाले विद्वान मन्त्रों के रहस्य के ज्ञाता हों।

बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे।

सर्वं ममैतच्चरितमुचार्यं श्राव्यमेव च।९

अन्वय- बलिप्रदाने पूजायां अग्निकार्ये महोत्सवे एतत् मम सर्वं चरितं उच्चार्यं श्राव्यं एव

शब्दार्थ- बलिप्रदाने- बलिप्रदानं देवतोद्देशेन पश्वाद्युपहार: बलिप्रदान करते समय, ब्राम्हण के द्वारा मांसबलि वर्जित है। पूजायां- गन्धादि दाने षोडशोपचारपूजने वा अग्निकार्ये हवने, महोत्सवे- पुत्रोत्पत्ति विवाह आदि के समय, एतदुक्त सर्वं 'सम्पूर्ण' समस्त, चरितं- देवीमाहात्म्यसंज्ञकम्, उच्चार्य- पठनीयम्, श्राव्यं- श्रावयितव्यं सर्व जपनीयं वा श्राव्यं उच्चार्य- स्पष्टपदाक्षर का उच्चारण करते हुए पाठ करे जो सुना जा सके।

व्याख्या- देवी को बलिप्रदान करते समय, देवी की पूजा करते समय देवी के लिए उक्त मन्त्रों से हवन करते समय और पुत्रजन्म विवाह आदि के अवसर पर यह सप्तशती का पाठ स्पष्ट पदाक्षर और अर्थ को समझते हुए करना चाहिए।

जानताऽजानता वापि बलिपूजां तथाकृताम्।

प्रतीक्षिष्याम्यहं प्रीत्या बन्हिहोमं तथा कृतम्। १०

अन्वय- जानता वा अजानता अपि तथाकृताम् बलिपूजां तथाकृतं बन्हिहोमं च अहं प्रीत्या प्रतीक्षिष्यामि।

शब्दार्थ- जानता-विधिज्ञेन, अजानता- जो विधिविधान नहीं जानता तथा कृतां- पूर्वोक्त प्रकार से की गई, बलिं पूजां च वा बलिसहितेन कृतां पूजाम्, बन्हिहोमं-अग्नि में मन्त्रोच्चारण पूर्वक तिलाक्षतयवधृतादि की आहुति देना, प्रीत्या-प्रेमपूर्वक, प्रतीक्षिष्यामि- अंगीकरिष्यामि स्वीकार करती हूँ।

व्याख्या- देवी का कथन है कि कोई विधिविधान का ज्ञाता मेरी पूजा करे, बलि प्रदान और हवन करे अथवा जो कोई इस पूजा हवन के विधान को न भी जानता हो

वह भी यदि बलिप्रदान, हवन, पूजन आदि करता है तो भी मैं प्रेमपूर्वक उस पूजा को स्वीकार करती हूं। श्रद्धा भक्ति से समर्पण की भावना ही प्रधान है।

शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी।

तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वित:।११

अन्वय- शरत्काले वार्षिकी च या महापूजा क्रियते तस्यांभक्तिसमन्वित: एतत् मम माहात्म्यं श्रुत्वा

सर्वाबाधा विनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वित:।

मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशय:। १२

अन्वय- मनुष्य: मत्प्रसादेन सर्वाबाधाविनिर्मुक्त: धनधान्यसुतान्वित: भविष्यति संशय: न।

शब्दार्थ- शरत्काले- शारदनवरात्रे आश्विन शुक्ल प्रतिपादमारभ्य दशमी पर्यन्तम्। वार्षिकी वर्षस्य वत्सरस्य आरम्भे क्रियामाणा चैत्रनवरात्रे, चकारेण आषाढपौषनवरात्रयोरपि ग्रहणम्। क्षेत्र विशेष में पौष के स्थान पर माघ में नवरात्र मानते हैं। वैसे पौष का क्रम अधिक समीचीन प्रतीत होता है जिसके अनुसार तीन महीने के अन्तराल से वार्षिकी पूजा हो, वार्षिकी पद को वृष्टि का आरम्भकाल मानकर भी आषाढ मास मानना उचित है। महापूजा दुर्गोत्सवरूपा, वार्षिकी का अर्थ प्रतिवर्षभवा भी किया जा सकता है। तस्यां विषये मम देव्या: प्रसादेन धनधन्यसुतान्वित: धनेन धान्येन सुतादिभि: समन्वित: भविष्यति अस्मिन् विषये संशयो न कर्तव्य:।

व्याख्या- शारदीय नवरात्र में आश्विनशुक्ल प्रतिदा से दशमी पर्यन्त और वर्ष के आरम्भ में चैत्रशुक्ल प्रतिपदा से अथच वर्षा के प्रारम्भ में आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा से और इसी प्रकार पौष मास में भी सप्तशती पाठ के साथ दुर्गा की पूजा का जो महोत्सव किया जाता है, महापूजा की जाती है उस समय इस चरित्रत्रयात्मक सप्तशती का पाठ करने और श्रवण करने से मनुष्य महान संकट से भी मुक्त हो जाता है उसे रोग, शोक, भय आदि किसी भी प्रकार की बाधा नहीं रहती और वह सब प्रकार से धनधान्य से सम्पन्न होकर सन्तानसुख पाता है। इसमें कुछ भी संशय नहीं है मन में श्रद्धा और दृढविश्वास तथा भक्तिभावना होना चाहिए।

विशेष- भक्तिभावना भले ही न हो, श्रद्धा भी न हो, मन में संशय भी हो परन्तु व्यवहार में तो यही देखने में आता है कि देवी की कृपा प्राप्त होकर उक्त सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। इसके लिए परमपूज्य प्रात: स्मरणीय श्री स्वामी जी पीताम्बरा पीठ कहा करते थे कि जिस प्रकार सुरुचि अथवा कुरुचि से भोजन करने से क्षुधा की निवृत्ति तो होती ही है, उसी प्रकार दुर्गामाहात्म्य का फल तो होता ही है। इस विषय में तुलसीदास

जी का भी कथन ध्यान देने योग्य है- भाय कुभाय अनख आलस हूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।

श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः
पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान्। १३

अन्वय- एतत् मम माहात्म्यं शुभाः उत्पत्तयः च श्रुत्वा युद्धेषु पराक्रमं च श्रुत्वा पुमान् निर्भयः जायते। वा पराक्रमं च श्रुत्वा युद्धेषु निर्भयः जायते।

शब्दार्थ- उत्पत्तयः- ब्रह्माणी आदि महाशक्तियों के रूप में देवी का विभिन्न रूपों में प्रकट होना, देवताओं के घनीभूत तेज के रूप में प्रकट होना, पार्वती के कोशों से प्रकट होना आदि, शुभाः - संसार के लिए कल्याणकारी, श्रुत्वा क्रिया के साथ उत्पत्तयः के स्थान पर कर्मणि द्वितीया का प्रयोग होना चाहिए था अतः शुभाः और उत्पत्तयः का प्रयोग आर्ष है। पराक्रम- देवी के द्वारा प्रदर्शित अद्भुत वीरता युद्धेषु पराक्रमं श्रुत्वा और पुमान् युद्धेषु निर्भयः जायते वैसे सबकाल में और भय के सभी कारणों से निर्भय होना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। अथवा युद्ध के लिए प्रस्थान करने के पूर्व यदि देवीमाहात्म्य का विधिवत् अनुष्ठान किया जाता है तो युद्ध में उसे शस्त्रघात और मृत्यु का भय नहीं रहता। अन्य अवसर पर इसके श्रवण, मनन, कीर्तन से सभी प्रकार के भय की निवृत्ति होती है।

व्याख्या- जगदम्बा के अनेक अवसरों पर विभिन्न रूपों में प्रकट होने के वर्णन को सुनकर, देवी के महिषासुर, रक्तबीज, शुम्भ निशुम्भ आदि दैत्यों के साथ युद्ध में प्रदर्शित पराक्रम को सुनकर और इस दुर्गासप्तशती का श्रद्धा भक्ति पूर्वरक परायण करने से मनुष्य सभी प्रकार के भय- चोरभय, राजभय, प्राणसंकट के समय, अनागत आशंकाओं के भय से छूट जाता है। उसे प्रतीत होने लगता है कि जगदम्बा उसकी सहायता के लिए तत्पर है। वह अकुतोभय हो जाता है। जगज्जननी की गोद में सुरक्षित अनुभव कर सकता है। अभयं सर्वभूतेभ्योद दाम्येतद्व्रतं मम वाली बात यहाँ भी है।

रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते।
नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम श्रण्वताम्।१४

अन्वय- मम माहात्म्यं श्रण्वतां पुंसां रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं च उपपद्यते कुलं च नन्दते।

शब्दार्थ- श्रण्वताम् सुनने वालों के, संक्षयं- विनाशं, यान्ति, प्राप्नुवन्ति, कल्याणं- मंगलम्, उपपद्यते- पदगतौ उप समीपं गच्छति प्राप्यते, कुलं- गोत्रं सन्ततिः नन्दते वर्धते। "कुलं गृहे च वंशे च भूमिग्राहिणि च त्रिषु" तथा- सन्ततिर्गोत्रजननकुलान्यभिजान्वयः।

व्याख्या- जो कोई भी मेरे इस माहात्म्य को सुनता है उसके शत्रु नष्ट हो जाते

हैं। उसका सदा ही कल्याण होता है। उसके सन्तान वंशपरम्परा की वृद्धि होती है।

शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने।

ग्रहपीड़ासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम। १५

अन्वय- सर्वत्र शान्तिकर्मणि तथा दुःस्वप्नदर्शने उग्रासु ग्रहपीड़ासु च मम माहात्म्यं श्रुणुयात्।

शब्दार्थ- शान्तिकर्मणि- उपसर्गादिनिवर्तक कर्म तस्मिन्, दुःस्वप्नदर्शने- अनिष्टसूचकः स्वप्नः दुःस्वप्नः तथा दर्शने दृष्टे सति, उग्रासु- घोरासु असहनीयासु, ग्रहपीड़ासु- पापग्रहकृता पीड़ा तस्यां श्रृणुयात् कथनं पाठस्योपलक्षणम्।

व्याख्या- किसी उपसर्ग के शमन के लिये जो अनुष्ठान किया जाय उसे शान्तिक कहते हैं। अशुभसूचक स्वप्न दिखाई देने पर और अनिष्टस्थान में स्थित किसी पापग्रह के कारण होने वाली पीड़ा रोग के समय मेरे माहात्म्य का पाठ कराना या करना चाहिए।

उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणा।

दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते। १६

अन्वय- उपसर्गाः दारुणा ग्रहपीडा च शमं यान्ति नृभिर्दृष्टं दुःस्वप्नं सुस्वप्नम् उपजायते।

शब्दार्थ- उपसर्गाः प्रकृतिविरुद्धाः बाधाः महामारी दिव्यभौमान्तरिक्षे उत्पाताः ईतयः च-अतिवृष्टिरनावृष्टिमूषकाः शलभाः शुकाः। प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेते ईतयः स्मृता। प्लेग हैजा आदि, वज्रपात, भूकम्प तथा अतिवृष्टि, अवर्षण चूहों का उत्पात, टिड्डियों का उत्पात, तोतों का उत्पात और युद्ध के लिए किसी राजा का चढ़ाई कर देना ये छः प्रकार की ईति कही जाती है। दुःस्वप्न और सुस्वप्न शब्द पुल्लिग होते हुए इनका नपुंसकलिग में प्रयोग आर्ष है। किसी ने इसे बहुब्रीहि समास के अनुसार विग्रह करके और किसी ने फल सूचक मानकर इसका समाधान किया है। नृभिः पठितृश्रोतृभिः, उपजायते- सम्पद्यते।

व्याख्या- जो मनुष्य मेरे इस माहात्म्य का पाठ करते अथवा सुनते सुनाते हैं उनके लिए अकस्मात् होने वाले उत्पात शान्त हो जाते हैं। अनिष्टस्थान में स्थिति ग्रहों के कारण होने वाला कष्ट शान्त हो जाता है। बुरे स्वप्न का फल भी उसे शुभकारक हो जाता है। तात्पर्य यह है कि किसी प्रकृतिविपर्यय के समय बड़े पैमाने पर जो कष्ट उत्पन्न होते हैं, वे सब सप्तशती के पाठ या अनुष्ठान से दूर हो जाते हैं, शान्त हो जाते हैं। किसी ग्रह के गोचर से चतुर्थ, अष्टम और द्वादश होने पर जो अनिष्ट फल होने वाला है उसे दूर करने के लिए यह अनुष्ठान किया जाना चाहिए। कहा भी गया है- अतर्कितप्राप्यफ लो हि मणिमन्त्रौषधिदेवताप्रभावः। मणि धारण करने, मन्त्रजाप करने,

जड़ीबूटी का प्रयोग करने और देवता को प्रसन्न करने का ऐसा तत्काल शुभ प्रभाव होता है कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम्।
संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम्। १७

अन्वय- मम माहात्म्यं बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम्, संघातभेदे च नृणां उत्तमं मैत्रीकरणम्।

शब्दार्थ- बालग्रहाभिभूतानाम्- जिस शिशु को पूतना आदि बालग्रह पीडा कर रहे हों, जो बालग्रहों से ग्रस्त हो, शान्तिकारकम्- उस बालग्रह की पीड़ा का शमन करने वाला, संघातभेदे- सजातीयानां परस्परं वैमनस्ये, मैत्रीविघटने उत्तमं- श्रेष्ठम् मैत्रीकरणम्- परस्पर मित्रता करने वाला।

व्याख्या- इस दुर्गामाहात्म्य के पाठ से यदि किसी बालक को पूतना आदि की बाधा हो तो वह शान्त हो जाती है। यदि दो मित्रों अथवा दो समाजों या समूहों में किसी कारण अनबन हो गई हो मनमुटाव हो गया हो एक दूसरे से शत्रुता करने लगे हों तो इसके अनुष्ठान से उनमें पुनः मित्रता हो जाती है। इस अध्याय में वास्तव में यह बताया गया है कि किन-किन परिस्थितियों में किन-किन कार्यों के साधन के लिए दुर्गासप्तशती का अनुष्ठान फलप्रद होता है।

दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम्।
रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम्। १८

अन्वय- दुर्वृत्तानां अशेषाणां परं बलहानिकरम्, रक्षोभूतपिशाचानां पठनात् एव नाशनं भवति।

शब्दार्थ- दुर्वृत्तानाम्- दुष्टं वृत्तं चरितं येषां ते दुष्टाचाराः प्राणिनः तेषाम्असामाजिक तत्वानां आतंकवादिनां भुजंगानां कण्टकानां, तेषां परं उत्कृष्टं बलविनाशकरं बलहानिकरं- स्वव्यवसायं दुर्बलकारकं तेषां शक्तिक्षयकारकं, पठनात् एव-पाठमात्रेण रक्षोभूतपिशाचानाम्- रक्षसां भूतानांपिशाचानां रक्षोभूतपिशाचानां नाशनम्- दूरीकरणम्।

व्याख्या- जो दुष्ट आचार व्यवहार वाले हैं, दस्यु चोरादिक हैं हिस्रं व्याघ्रादिक हैं आतंकवादी हैं उनका सम्पूर्ण बल नष्ट करने वाला यह माहात्म्य हैं। पूर्व में भी कहा गया है- दुर्वृत्तवृत्तशमनम्" इसके पाठमात्र से ग्रह भूत, प्रेत, वैताल, पिशाच आदि के आवेश के कारण होने वाली पीड़ा का शमन होता है। वे इसके पाठ से ही आविष्ट व्यक्ति को छोड़कर भाग जाते हैं। कहा भी गया है- वादी मूकति रंकति क्षितिपतिर्वैश्वानर· शीततिक्रोधी शान्तति दुर्जनः सुजनयति क्षिप्रानुगः खंजति

अन्वय- तस्मिन् श्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते इसका अन्वय और व्याख्या श्लोक संख्या २२ के साथ की जा चुकी है। या: स्तुतय: युष्माभि: कृता, या: च ब्रह्मर्षिभि: कृता या: च ब्रह्मणा कृता: ता: शुभां मतिं प्रयच्छति, अरण्ये वा प्रान्तरे अपि दावाग्निपरिवारित: वा वनहस्तिभि: वृत: वा क्रुद्धेन राज्ञा आज्ञप्त: वध्य: बन्धगत: वा सुदुस्तरे पोते स्थित: वा वातेन आधूर्णित:, भृशदारुणे संग्रामे शस्त्रेषु पतत्सु सत्सु घोरासु सर्वबाधासु अपि वा वेदनाभ्यर्दित: एतत् मम चरितं स्मरन् संकटात् मुच्येत

शब्दार्थ- युष्माभि: या स्तुतय: कृता- आप देवताओं ने जो स्तुतियाँ की हैं इस कथन से देवीसूक्त और नारायणी सूक्त का निर्देश किया गया, या: च ब्रह्मर्षिभि: कृता से ब्रह्मर्षिभि: से ब्रह्मणा च ऋषिभि: च द्वन्द्वसमास मानकर ऋषयो मन्त्रदृष्टार: के अनुसार ऋषि मन्त्रदृष्टा होने से कर्ता कहा गया और ब्रम्हा ने जो स्तुति की महिषान्तकरी स्तुति का निर्देश, ब्रम्हणा च कृता से "विश्वेश्वरीं जगद्धात्री" आदि का संकेत समझना चाहिए। प्रथम अध्याय में ब्रह्मा के द्वारा की गई स्तुति, चतुर्थ अध्याय में इन्द्रादि देवताओं के द्वारा की गई स्तुति, पंचम अध्याय में पुन: देवताओं के द्वारा की गई स्तुति और फिर एकादश अध्याय में की गई स्तुति का उल्लेख है। शुभांमतिं- मोक्षाभ्युदयसाधिकां बुद्धि प्रयच्छन्ति ददाति स्तुति कर्ता रूप में होने के कारण प्रयच्छन्ति यह बहुवचन का प्रयोग, शुभां गतिं पाठ मानकर अर्थ होगा एता: स्तुतय: शुभां उत्तमां सद्गतिं प्रयच्छन्ति। अरण्ये-विपिने वर्तमान:, प्रान्तरे-जनशून्ये मार्गे वर्तमान:, दावाग्निपरिवारित:-अग्नि तीन प्रकार की- बड़वाग्नि जो समुद्र के भीतर, जठराग्नि- जिससे पाचन क्रिया सम्पन्न होती है और दावाग्नि जो बन में बांसों आदि के घर्षण से उत्पन्न होकर पूरे वन को ही जला डालती है। दावाग्निपरिवारित:-परित: दावाग्नि वृत:- चारों ओर से दावाग्नि से घिर जाने पर, शून्ये निर्जनप्रदेशे जनशून्यस्थाने दस्युभि: वृत: तस्करादिभि: वेष्टित: शून्ये शत्रुभि: गृहीत:- एकान्तस्थाने वैरिभि: गृहीत: बद्ध:, वने सिंहव्याघ्रनुयात:-सिंह: च व्याघ्रा: तै अनुयात: अनुद्रत: जिसका सिंह बाघ पीछा कर रहे हों, वा वनहस्तिभि: वृत:- जंगली हाथियों ने घेर लिया हो, क्रुद्धेन कोपाविष्टेन आज्ञप्त:- आदेशित:, वध्य: हन्तुं आदिष्ट: बन्धगत: राजाज्ञया बन्धने निगडित:, कारागारे बद्ध:, सुदुस्तरे- कठिनाई से पार जाने योग्य, पोते-नौकायां स्थित: वातेन आघूर्णित:- वात्याचक्रेण भ्राम्यमान: भ्रशदारुणे संग्रामे- अतिभीषणे युद्धे शस्त्रेषु पतस्तु- जहाँ अस्त्र शस्त्रों की वर्षा हो रही हो, घोरासु सर्वबाधासु- महापीड़ासु, वेदनाभ्यर्दित: वेदनाया अभ्यर्दित: वर्तमान: हिंसित: वा एतत् मम चरितं स्मरन्- मेरे इस प्रथममध्यम और उत्तमचरित के स्मरणमात्र से, संकटात्-विपद्भ्य: मुच्येत-मुक्तो भवति विपद: पारं गन्तुं शक्नोति।

व्याख्या-आपने मेरी जो स्तुतियाँ की हैं चतुर्थ, पंचम और एकादश अध्याय में, तथा ब्रह्मा और ऋषि के द्वारा मेरी जो स्तुतियाँ की गई हैं ब्रम्हा के द्वारा प्रथम अध्याय

में और सुमेधा ऋषि के द्वारा राजा सुरथ के लिए कथा का अवतरण करते समय, अथवा सुमेधा ऋषि इन सभी स्तुतियों के दृष्टा हैं, जैसा कि कहा गया है कि ये स्तुतियाँ मन्त्ररूप देखी गई हैं इन स्तुतियों का जो कोई पठन और श्रवण करता है उसे इस लोक में अभ्युदय और परलोकगमन के समय मोक्ष प्राप्त कराने वाली सन्मति मिलती है। उसे सद्‌गति मिलती है। आगे गिनाते हैं कि किस किस प्रकार का संकट उपस्थित होने पर इस दुर्गामाहात्म्य के पठन और स्मरण से विपत्ति दूर होती है। वन में भटक जाय दूरस्थ सूने स्थान में भटक जाये, वन में आग हो उसकी लपटों में पड़ जाय, निर्जन स्थान में जोर डाकुओं से घिर जाये, एकान्त में शत्रुओं के हाथों में पड़ जाये, सिंह बाघ आदि हिंसक जन्तु जिसका पीछा कर रहे हों, वन में जंगली हाथी जिसके पीछे पड़े हों, भयंकर युद्ध में जहाँ चारों ओर से शस्त्रवर्षा हो रही हो, घोर से घोर कष्ट हो रहा हो, अथवा असहनीय वेदना से पीड़ित हो तो मेरे इस चरित्र का स्मरण मात्र करने से मनुष्य विपत्ति से छुटकारा पा जाता है।

ममप्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तदा।२८

दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम।

अन्वय- तदा मम प्रभावात् सिंहाद्याः दस्यवः वैरिणः मम चरितं स्मरतः पुरुषात् दूरात् एव पलायन्ते।

शब्दार्थ- चरितं स्मरतः- जो मनुष्य मेरे इस चरित्र का स्मरण करता है, दूरात्- दूर से ही, पलायन्ते- भाग जाते हैं।

व्याख्या- मेरे प्रभाव से मेरी शक्ति से हिंसक पशु, चोर डाकू और शत्रु दूर से ही भाग जाते हैं। मेरे स्मरणमात्र से उसकी विपत्ति दूर हो जाती है।

ऋषिरुवाच- इत्युक्तवा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा

पश्यतामेव देवानां तत्रैवान्तरधीयत। २९

अन्वय- ऋषिः सुरथं उवाच सा चण्डिका चण्डविक्रमा भगवती इति उक्त्वा तत्र एव देवानां पश्यताम् एव अन्तरधीयत।

शब्दार्थ- ऋषिः सुमेधा सुरथं राजानं उवाच कथयामास सा प्रसिद्धा चण्डविक्रमा- चण्डोदारुणो विक्रमो यस्याः सा पश्यतामेव देवानाम्- देवताओं के देखते देखते ही, अन्तरधीयत- अन्तर्धानम् अभवत्।

व्याख्या- ऋषि सुमेधा ने राजा सुरथ से कहा कि जगन्माता भगवती प्रचण्डपराक्रम वाली चण्डिका इस प्रकार कह कर उन देवताओं के देखते देखते ही अदृश्य हो गई।

तेऽपि देवा निरातंकाः स्वाधिकारान्यथा पुरा३०

यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहितारयः।

दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि। ३१

जगद्विध्वंसिनि तस्मिन्महोग्रेऽतुलविक्रमे।

निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः। ३२

अन्वय- ते देवाः अपि निरातंकाः सन्तः विनिहतारयः सर्वे यज्ञभागभुजः यथापुरा स्वाधिकारान् चक्रुः। देव्या शुम्भे देवरिपौमहोग्रे अतुलविक्रमे जगदिवध्वंसिनि महावीर्ये निशुम्भे च युधि निहते शेषाः दैत्याः पातालाम् आयुयुः।

शब्दार्थ- निरातंकाः निर्भयाः आतंकरहिताः, विनिहतारयः- निःशेषेण हता विध्वंसिताः अरयः रिपवः येषान्ते विनिहतारयः यज्ञभागभुजः- यज्ञे स्वप्राप्यं भागं भुंजन्तीति यज्ञ भागयुजः सन्तः यथापुरा-पूर्वसद्शं स्वाधिकारान- स्वान् स्वान् व्यापारान् चक्रुः कृतवन्तः देव्या चण्डिकया चदेवरिपौ देवानां शत्रुः तस्मिन्महोग्रे अतिप्रचण्डे अतुलविक्रमे-अतिशक्ति सम्पन्ने जगद्विध्वंसिनि विश्वसंहारकारिणि, महावीर्ये- प्रबलप्रभावे, युधि-संग्रामे निहते- निःशेषेण हते सभी सति सप्तमी के प्रयोग, शेषाः अवशिष्टा, आययुः- प्राविशन्।

व्याख्या- देवता भी निर्भय होकर उन सभी शत्रुओं के मारे जाने पर पूर्व के प्राप्य यज्ञभाग का भोग करते हुए अपने अपने अधिकारों का प्रयोग करने लगे। देवी के द्वारा देवताओं के शत्रु शुम्भ और अतिभयंकर, महापराक्रमी संसार को त्रास देने वाले निशुम्भ के मारेजाने पर बचे हुए दैत्य पाताल में चले गये।

एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः।

सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम्। ३३

अन्वय- सुरंथ प्रति सुमेधसः कथनम्- हे भूप सा देवी नित्या अपि एवं पुनः पुनः सम्भूय जगतः परिपालनं कुरुते।

शब्दार्थ- नित्या अविनश्वरा अपि सम्भूय अविर्भूय अवतीर्य जगतः विश्वस्य संसारस्य परिपालनं रक्षणं।

व्याख्या- सुमेधा ऋषि राजा सुरथ को सम्बोधित करते हुए कहते है कि हे राजा, वह प्रसिद्धदेवी जगज्जननी नित्य निर्विकार सदा सर्वत्र वर्तमान होने पर भी बार बार इस जगती पर अवतार धारण कर संसार की रक्षा करती है पालन करती है।

तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते

साऽयाचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति।३४

अन्वय- सा एव विश्वं प्रसूयते तथा एतत् विश्वं मोह्यते सा याचिताविज्ञानं प्रयच्छति तुष्टा सती च ऋद्धिं प्रयच्छति। सा अयाचिता इतिच्छेदे अयाचिता विज्ञानं प्रयच्छति।

शब्दार्थ- सा प्रसिद्धाविश्वं सचराचरं जगत् ब्रह्माण्डं प्रसूयते सृजति तया-देव्या

एतत् विश्वं मोह्यते- मुह वैचित्ये चित्तविभ्रमं कुरुते याचिता प्रार्थिता सती सा विज्ञानं प्रयच्छति- ददाति अयाचिता सती कैवल्यकारकं ज्ञानं ददाति पूजादिभिः सन्तुष्टा ऋद्धिं समृद्धिं वृद्धिं वैभवं प्रयच्छति ददाति। तुष्टा ऋद्धिं में सन्धि न होना आर्ष प्रयोग है।

व्याख्या- प्रथम अध्याय में कहा गया है कि- महामाया हरेश्चैषा तया सम्मोह्यते जगत्। तथा- तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् और सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये। उसी का उपसंहार करते हुए कहा गया है कि वही शक्ति विश्व का सृजन करती है, उसी महामाया के सम्मोहन में यह विश्व चल रहा है वह प्रसन्न होकर समृद्धि देने वाली और मुक्तिप्रदाता भी वही है।

व्याप्तं तयैत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर।
महाकाल्या महाकाले महामारी स्वरूपया।३५
सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा।
स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी।३६

अन्वय- हे मनुजेश्वर, महाकाले महामारीस्वरूपया महाकाल्या एतत् सकलं ब्रह्माण्डं व्याप्तम्, सा एव काले महामारी सा एव अजा सृष्टिः भवति सा एव सनातनी काले भूतानां स्थितिं करोति।

शब्दार्थ- मनुजेश्वर राजन्, तया देव्या एतत् दृश्यमानं सकलं सम्पूर्णं व्याप्तं पूरितम् महाकाले प्रलये महामारी, स्वरूपया संहारकस्वरूपया महाकाल्या काल एव काली महत्वं च देशकालाकारैरनवच्छिन्नत्वम् काले प्रलय काले सा एव महामारी संहारकारिणी शक्तिः, अजा अजन्मापि सा एव सृजनसमये सात्विकी सृष्टिरूपा भवति जायते सा एवं सनातनी विनाशहीना सदा वर्तमान रजोरूपा भवति।

व्याख्या- महाकाल प्रलय के समय वही देवी महाकाली तामसी होकर महामारी के रूप में संहारक्रिया में प्रवृत्त होकर ब्रह्माण्ड में व्याप्त रहती है। प्रलय के समय जो महामारी है वही देवी अजन्मा सृष्टि का कारण बनती है। सृजन के समय वही सात्विक रूपा अजा है। स्थिति के समय वही विनाशरहिता सनातनी सदा वर्तमान रहने वाली परिपालन करने वाली है। इस प्रकार सृजन, पालन और संहार में वही सनातनी सत्वरूपा, रजोरूपा और तमोरूपा होकर वह सारे कार्य करती है।

भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीवृद्धिप्रदा गृहे।
सैवाभवे तथालक्ष्मीर्विनाशायोपजायते।३७

अन्वय- भवकाले नृणां गृहे सा एव देवी वृद्धिप्रदा लक्ष्मीः भवति तथा सा एव अभावे अलक्ष्मीः विनाशाय उपजायते।

शब्दार्थ- भवकाले संपत्समये वैभवकाले उदयकाले अभ्युदयसमये, वृद्धिप्रदा- वृद्धिः उपचयः तं ददातीति वृद्धिप्रदा लक्ष्मीः सम्पत्प्रदा अभावे विपत्काले तथा सा एव अलक्ष्मीः विनाशाय- अभावाय उपजायते अभावस्य कारणं भवति।

व्याख्या- जब वह देवी प्रसन्न होती है तो वैभवकाल में लक्ष्मी के रूप में सम्पत्प्रदा बन जाती है। वही देवी विपत्ति के समय अलक्ष्मी रूप होकर अभावों का कारण बन जाती है।

स्तुता संपूजिता पुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा।
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे गतिं शुभाम्।३८

अन्वय- सा एव देवी भक्तै स्तुता पुष्पैः धूपगन्धादिभिः सम्पूजिता सती वित्तं पुत्रान् धर्मे मतिं शुभां गतिं च ददाति।

शब्दार्थ- पुष्पैः- सुगन्धिकुसुमैः धूपगन्धादिभिः धूपैः गन्धः चन्दनादिभिः आदिभिः पंचोपचारैः षोडशोपचारैः वा सम्यक् भक्तिभावेन पूजिता सती धर्मे मतिं धर्मबुद्धि शुभां गतिं कैवल्यं वित्तं धनं पुत्रान् पुत्रपौत्रान्।

व्याख्या- इसके पहिले कहा गया कि विपत्काल में वही देवी अलक्ष्मी बनकर अभाव और विपत्ति का कारण बन जाती है उसके निराकरण का उपाय बताते हुए कहा गया है कि यदि उस देवी की भली भांति स्तुति की जाय, गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से उसे प्रसन्न कर लिया जाय तो वही देवी धन, सन्तान पुत्रपौत्र, देकर धर्म के प्रति प्रवृत्त करती है और उत्तम गति देती है।

इतिश्री मार्कण्डेयपुराणे देव्याश्चरितमाहात्म्यं नाम द्वादशोऽध्यायः

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत देवी चरित के माहात्म्य वर्णन का द्वादश अध्याय पूरा हुआ।

यह बारहवां अध्याय अत्यंत महत्वपूर्ण है जिसमें कि जीवन में आने वाली प्रत्येक समस्या का समाधान प्रस्तुत किया गया है। विपत्ति और संकट के जितने और जैसे भी अवसर जीवन में उपस्थित हो सकते हैं, उनके दूर करने के, उन विपत्तियों से रक्षा के सभी उपाय इस अध्याय में बता दिये गये हैं।

●●●

त्रयोदश अध्याय

ऋषिरुवाच

एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम्।
एवं प्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत्।१

अन्वय- हे भूप एतत् उत्तमं देवीमाहात्म्यं ते कथितम् सा देवी एवं प्रभावा यया इदं जगत् धार्यते।

शब्दार्थ- उत्तमं- श्रेष्ठतमं, ते-तुभ्यं एवं प्रभावा-ईदृक्सामर्थ्ययुक्ता, यया-देव्या, इदं जगत् विश्वब्रह्मण्डं धार्यते-सृज्यते पाल्यते च।

जगच्चन्द्रिका के अनुसार इस श्लोक के पूर्व 'ऋषिरुवाच' यह मन्त्र अधिक है।

व्याख्या- सुमेधा ऋषि ने राजा सुरथ को सम्बोधन करते हुए सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाला देवी भगवती जगज्जननी का माहात्म्य वर्णन किया है कि जो इस विश्व ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन, संहार करने का सामर्थ्य रखती है। जिसके द्वारा इस निखिल विश्व का पालन-पोषण हो रहा है।

विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया।
तथा त्वमेव वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः।२
मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे।

अन्वय- तथा एवं भगवत् विष्णु मायया विद्या क्रियते तथा एवं तया त्वं एष वैश्यः तथा अन्ये विवेकिनः मोहिताः मोह्यन्ते च अपरे च मोहं एष्यन्ति।

शब्दार्थ- विद्या- तत्वज्ञानं मोक्षोपयोगिज्ञानं वा, भगवदिवष्णुमायया- भगवतः विष्णोः मायया योगमायया, कथितंच- सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी तथा विष्णुमायया वा यया जगद्धार्यते तथा सृजनपालनसंहारकर्त्र्या त्वं- सुरथः एषवैश्यः- समाधिः तथा अन्ये विवेकिनः- लोकशास्त्रज्ञाः न तु विवेकज्ञानसम्पन्नाः मोहित मुह वैचित्ये इस धातु से मोह चित्त की एक विकृति ही है मोहिताः मोहं प्राप्ताः मोहवशीभूताः मोह्यन्ते मोहं प्राप्यन्ते अपरे च मोहं एष्यन्ति-प्राप्स्यन्ते।

व्याख्या- इस योगमाया के प्रभाव से ही साधक में मोक्ष का साधनभूत ज्ञान उत्पन्न होता है, और यही महामाया- महामाया हरेश्चैषा तया संमोह्यते जगत्। संसार की स्थिति ही इस मोह के कारण चल रही है। इसीलिए कहा है- महामहायाप्रभावेन संसारस्थितिकारिणा। इस महामाया के प्रभाव से संसार चल रहा है। अतः हे राजन् इसी के द्वारा आपको मोह हुआ इस वैश्य को मोह हुआं और दूसरों को भी इसी के कारण मोह होता है और आगे भी होता रहेगा मोहिताः, मोह् यन्ते और मोहमेष्यन्ति कहकर यह बताया गया कि

भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल में प्राणियों को मोह होता ही रहता है।

तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम्। ३

आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा।

अन्वय- हे महाराज ताम् परमेश्वरीं शरणं उपैहि, सा एव आराधिता सती नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा भवति।

शब्दार्थ- महाराज- सुरथस्य संबोधनम्, सुमेधा ऋषि ने बारह अध्यायों में अब तक राजा के लिए नृप, राजन् महाभाग आदि कहकर संबोधित किया है, यहां उपदेश पूर्ण होने पर वह महाभाग से आगे महाराजा बन जाता है उपैहि- उप एहि उपगच्छ शरणं-शरणं गृहरक्षित्रो: तमेव शरणं ब्रज, परमेश्वरीम्-षडैश्वर्यसम्पन्नां देवीं क्योंकि सा एव वही आराधिता-तपसा सपर्यया तोषिता नृणाम् भक्तानां भोगस्वर्गापवर्गदा भोगं-ऐहिकसुखं स्वर्ग पारलौकिकम् अपवर्गो मोक्ष: तान् ददातीति भोगस्वर्गापवर्गदा भोगं।

व्याख्या- देवी के तीनों चरित और महात्म्य का वर्णन करके सुमेधा ऋषि राजा सुरथ से कहते हैं कि हे महाराज आप उसी ऐश्वर्यशालिनी देवी जगदम्बा की शरण जाइये, उसी शक्ति का आश्रय लीजिये जो सांसारिक सुख, पारलौकिक स्वर्ग और जन्मान्तर में मोक्ष देने वाली है। कहा भी है- श्री सुन्दरीसेवनतत्पराणं भुक्तिश्च मोक्षश्च करस्थ एव। जो-ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा। बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति। उसके शरणागत होने से आप पुन: मोह में न पड़कर साधन पथ पर अग्रसर हो सकेंगे और ऐहिक तथा पारलौकिक सुख आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।

मार्कण्डेय उवाच- इति तस्य वच: श्रुत्वा सुरथ: स नराधिप:।४

अन्वय- मार्कण्डेय उवाच- स: नराधिप: सुरथ: तस्य इति वच: श्रुत्वा

व्याख्या- राजा सुरथ उस सुमेधा ऋषि की इस प्रकार वाणी को सुनकर

प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं संशितव्रतम्।

निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च।५

अन्वय- नराधिप: सुरथ: संशितव्रतं महाभागं तम् ऋषिं प्रणिपत्य राज्यापहरणेन अतिममत्वेन च निर्विण्ण: सन् सद्य: तपसे जगाम इत्यग्रेणान्वय:।

शब्दार्थ- नराणां अधिप: नराधिप: तस्य-सुमेधस: श्रुत्वा आकर्ण्यसंशितव्रतम्-तीव्रनियमं प्रणिपत्य-प्रणामं कृत्वा साष्टांग प्रणम्य ममत्वेन अतिमोहेन राज्यापहरणेन च निर्विण्ण: - निर्वेदं प्राप्य

व्याख्या- तीव्रतपस्या करने वाले उन मुनि को साष्टांग प्रणाम करके राज्य अपहरण और ममता से अति दु:खी होकर "जगाम सद्यस्तपसे" तत्काल ही तपस्या करने के

लिए चल दिया। प्रायः सभी टीकाकारों ने निर्विण्ण का अर्थ दुखित ही किया है। मेरे विचार से निर्वेद शम का कारण होता है इसलिए राजा के मन में निर्वेद होने से वह तपस्या के लिए चल दिया ऐसा अर्थ करना अधिक समीचीन जान पड़ता है।

जगाम सद्यस्तपसे सच वैश्यो महामुने।
सन्दर्शनार्थमम्बायाः नदीपुलिनमास्थितः।६

अन्वय- जगामसद्यस्तपसे का पूर्व में आ चुका है।

अन्वय- हे महामुनेस वैश्यः च अम्बायाः सन्दर्शनार्थ नदीपुलिनं आस्थितः।

व्याख्या- मार्कण्डेय क्रोष्ठक ऋषि से कहते है कि हे महामुने वह वैश्य जगदम्बा के दर्शन की इच्छा से नदीतट पर स्थित होकर बैठ गया।

स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन्।
तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं महीमयीम्।७

अन्वयः स वैश्यः च देवीसूक्तं परं जपन् तपस्तेपे। तस्मिन् पुलिने तौ देव्याः महीमयीं मूर्ति कृत्वा

शब्दार्थ- स वैश्यः समाधिः परं उत्कृष्टम्, देवीसूक्तं-वैदिकं ऋग्विशेष वा नमो देव्यै महादेव्यै इति पंचमाध्यायस्थं देवीसूक्तं जपन् देवीसूक्त का पाठ करते हुए, तौ-सुरथः समधिवैश्यः च उभौ पुलिने नदीतटे मूर्ति 'आकृति' महीमयी मृन्मयीं मृत्तिकया निर्मितम्।

व्याख्या- वह समाधि वैश्य सर्वश्रेष्ठ देवीसूक्त का पाठ करते हुए तपस्या में लग गया राजा सुरथ और समाधि वैश्य दोनों ने उसी नदी तट पर देवी की मिट्टी की मूर्ति बनाकर।

अर्हणां चक्रतुस्तस्या पुष्पधूपाग्नितर्पणैः
निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ।८

अन्वय- तौ यताहारौ निराहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ पुष्पधूपाग्नितर्पणैः तस्याःअर्हणां चक्रतुः।

शब्दार्थ- तौसमाधिसुरथौ यताहारौ-मिताहारौ, अल्पाहारौ, निराहारौ-त्यक्ताहारौ, तन्मनस्कौ-तस्यां दत्तचित्तौ, समाहितौ-जितेन्द्रियों, इन्द्रियों की बाह्यचेष्टा से विरत होकर पुष्पधूपाग्नितर्पणैः- पुष्पै, धूपैः अग्निकार्येः हवनैः तर्पणैः च पुष्पधूपदीप हवन तर्पण आदि के द्वारा अर्हणां-पूजां आराधनां "पूजा नमस्यापचितिः सपर्याचार्हणः समाः" इति कोशवचनात् चक्रतुः कृतवन्तौ

व्याख्या- वे दोनों राजा सुरथ और समाधि वैश्य कुछ दिन तक अल्पाहार करते

रहे फिर निराहार रहने लगे भोजन का त्याग कर दिया नियमपरायण सावधान रहकर इन्द्रियों को वश में करके केवल देवी की आराधना में दत्तचित्त होकर पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, हवन तर्पण करते हुए देवी की उपासना में तल्लीन हुए।

ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम्।
एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनो:। ९

अन्वय- तौ निजगात्रासृगुक्षितम् एव बलिं च ददतु: एवं समाराधयतो: त्रिभि: वर्षै: यतात्मनो:

शब्दार्थ- निजागात्रासृगुक्षितम्- निजगात्रासृजा- स्वदेहशोणितेन उक्षितम् सिंचितम् बलिं उपहारं बलिदान कहा भी है ऊरुजं बाहुजं वापि रक्तमांसमयं बलिम्। भक्त्यावेशान्महाशूरो महामायार्थमुत्सृजेत्। यतात्मनो: जितचित्तयो: समाराधयतो: आराधनां सपर्यां कुर्वतो:

व्याख्या- राजा सुरथ और समाधि वैश्य इस प्रकार नदी तट पर देवी की आराधना तीन वर्ष तक करते रहे। उन्होंने अपने शरीर से रक्तसिंचित बलि देकर देवी को प्रसन्न किया। उन्होंने अपने चित्त को संयत करके देवी की ही आराधना में लगाया। अपने शरीर के रक्त से ही सिंचित बलि क्यों दी, पशु आदि की भी बलि दी जा सकती थी किन्तु तपस्या में परहिंसा न करते हुए उन्होंने स्वगात्ररक्त का ही देवी पूजन में उपयोग किया। दूसरा समाधान यह भी है कि उन्होंने निराहार और मिताहार करके भी रह लिया परन्तु देवी का प्रसाद प्राप्त न कर सके तो यह निश्चित किया कि देवी को प्रसन्न करने के लिए भले ही शरीर पात हो जाय पर आराधना को पूर्ण करने में न्यूनता न रहने दें। एक शंका यह भी है कि देवी की आराधना में राज्याभिलाषी सुरथ का बलि देना तो ठीक है क्योंकि रक्त बलि राजस पूजा का ही अंग है। परन्तु मोक्षार्थी समाधि वैश्य का इस राजसी पूजा में लिप्त होना कहां तक ठीक है। उसके लिए एक समाधान तो यह है कि पशुबलि का निषेध केवल ब्राम्हण के लिए ही है। अन्य वर्ण के लिए नहीं। दूसरे हो सकता है कि वैश्य ने कूष्माण्ड आदि की बलि दी और राजा ने अपने रक्त की। तत्वज्ञानेच्छा तो सात्विक भाव है उसके लिए सात्विक साधना भी होना चाहिए।

परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका।
देव्युवाच- यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन।१०

अन्वय- परितुष्टा जगद्धात्री चण्डिका प्रत्यक्षं प्राह। देवी उवाच- हे भूप त्वया यत्प्रार्थ्यते हे कुलनन्दन त्वया च यत्प्रार्थ्यते

शब्दार्थ- परितुष्टा- सम्यक् सन्तोषिता जगतां धात्री जगद्धात्री प्रत्यक्षं- तयो: समक्षं प्रादुर्भूय प्राह- कथयामास कुलनन्दन- कुलवर्धन, कुलं नन्दयतीति कुलनन्दन।

व्याख्या- तब उन दोनों की इस प्रकार की तपस्या से सब प्रकार संतुष्ट होकर जगदम्बा ने उनके समक्ष प्रकट होकर कहा कि हे राजन् हे कुलनन्दन वैश्य तुम दोनों मुझसे जो कुछ भी चाहते हो अग्रेणान्वय:

मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत्।

मार्कण्डेय उवाच- ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि।११

अन्वय- मत्त: तत् सर्व प्राप्यतां परितुष्टा सती तत् सर्वं ददामि। मार्कण्डेय उवाच तत: नृप: अन्यजन्मनि अविभ्रंशि राज्यं वव्रे।

शब्दार्थ- मत्त:-मुझसे सार्वविभक्तिक: तसिल् के अनुसार तसिल् प्रत्यय, तत्- वह सब प्राप्यताम्-स्वीक्रियताम् तत्- वह सब तुम्हारा चाहा हुआ मार्कण्डेय ने कहा- तत: देवी के इस प्रकार कहने के पश्चात, नृप:- राजा सुरथ ने, अन्यजन्मनि- अग्रिमसंभवि यज्जन्म तस्मिन्- अन्यजन्मनि, अविभ्रंशि- अविचलं भ्रंश अध: पतनम् न विभ्रंश अविभ्रंश तत् अविभ्रंशि जिससे कभी पतन न हो, वव्रे- प्रार्थयामास। वरदान के रूप में चाहा।

व्याख्या- देवी ने कहा कि मुझसे तुम जो कुछ भी चाहते हो प्राप्त कर सकते हो मैं पूर्ण सन्तुष्ट होकर देती हूं। तब राजा सुरथ ने देवी से वरदान मांगा कि उसे अन्य जन्म में ऐसा राज्य दीजिये जिसका कभी पतन न हो। कभी उसे राज्य से च्युत न होना पड़े।

देव्युवाच- अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात्।
सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानस:।१२

अन्वय- अत्र एव च अविभ्रंशि निजं राज्यं बलात् हतशत्रुबलं वव्रे। स:वैश्य: अपि तत: निर्विण्ण मानस: सन् ज्ञानं वव्रे।

शब्दार्थ- अत्र- अस्मिन् जन्मनि अस्मिन् नगरे अपि- भी हतशत्रुबलंशत्रूणां बलं सैन्यं शत्रुबलं हतं शत्रुबलं यत्र हतशत्रुबलं, निजं स्वीयं आत्मीयं, ज्ञानं- आत्मविषयंतत्वज्ञानं, निर्विण्ण-मानस: संसाराद्विरक्तमानस:,

व्याख्या- राजा सुरथ ने अन्य जन्म में अविचल राज्य मांगने के साथ यह भी वरदान मांगा कि उसका अपने नगर का वर्तमान राज्य जिस पर शत्रुओं ने बलपूर्वक अधिकार कर लिया है उसे पुन: प्राप्त हो जाय और उसके सभी शत्रु मारे जायें। उसके साथ ही तपस्या करने वाले समाधि वैश्य ने संसार से विरक्त हो जाने के कारण तत्वज्ञान प्राप्ति के लिए प्रार्थना की।

ममेत्यहमिति प्राज्ञ: संगविच्युतिकारकम्।
देव्युवाच- स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान्।१३

अन्वय- स: प्राज्ञ: ममेत्यहमिति संगविच्युतिकारकं ज्ञानं वव्रे। देवी उवाच-हे नृपते स्वल्पैः अहोभिः भवान् स्व राज्यं प्राप्स्यते।

शब्दार्थ- मम इति- ममता ममत्वं, अहमिति- अहन्ता प्राज्ञ:- बुद्धिमान्, प्रज्ञावान्, ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा इति तद्विषयकं ज्ञानं तस्य स: प्राज्ञ: ममेत्यहमितिप्राज्ञ: एकं समस्तं पदं मत्वा ममताहन्ताभ्यां प्रकर्षेण अज्ञ: गीता के अनुसार मुक्तसंगो नहं वादी संग आसक्ति: तस्य विच्युतिकारकम्- विच्युति: विलय: क्षरणं तस्य कारकम्, आसक्तिरहितं करोतीति संग विच्युतिकारकम्, स्वल्पै: कतिपयै: अहोभि: दिवसै: प्राप्स्यते- लप्स्यते।

व्याख्या- पूर्व में कह आये हैं कि वैश्य ने ज्ञान मांगा। यहां प्राज्ञ वैश्य का विशेषण है और ममेत्यहमिति संगविच्युतिकारकम् ज्ञान के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हैं। उस वैश्य ने ऐसा ज्ञान मांगा कि जिसमें ममत्व बुद्धि न हो अहं का अभिमान न हो। जो सांसारिक आसक्तिमाया मोह से रहित करने वाला हो। देवी ने दोनों की याचना सुनकर प्रथम राजा सुरथ से कहा कि हे राजा आपको कुछ ही दिनों में अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त हो जायेगा और आगे कहते हैं कि

हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति।

मृतश्च भूय: संप्राप्य जन्म देवाद्विवस्वत:।१४

अन्वय- तत्र रिपून् हत्वा तव अस्खलितं राज्यं भविष्यति मृत: च भूय: देवाद्विवस्वत: जन्म प्राप्य।

शब्दार्थ- रिपून् शत्रून् हत्वा मारकर तत्र- वहीं पर राज्यं भविष्यति- पूर्व वत् तुम्हारा राज्य हो जायेगा। मृत: च फिर मरने के पश्चात्, भूय: पुन: फिर से देवाद्विवस्वत:- भगवान सूर्य से विवस्वान् से संप्राप्य- पाकर।

व्याख्या- वहां आप अपने शत्रुओं को मारकर अविचल राज्य करेंगे और मरने के पश्चात भगवान विवस्वान् से आपका जन्म होगा जिसमें

सावर्णिको नाम मनुर्भवान् भुवि भविष्यति

वैश्यवर्य त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवांछित:।१५

अन्वय- भवान् सावर्णिको नाम मनु: भविष्यति। हे वैश्यवर्य त्वया अस्मत्त: य: वर: अभिवांछित:।

शब्दार्थ- सावर्णिक:- वर्णसहिता सवर्णा तस्यापत्यं पुमान् सावर्णि सावर्णि: एव कन् प्रत्ययात्सावर्णिक: अस्मत्त:- मुझसे अभिवांछित:- चाहा।

व्याख्या- हे राजन् आप अगले जन्म में सवर्णा से उत्पन्न सावर्णिक मनु होंगे। और हे वैश्य श्रेष्ठ तुमने मुझसे जो मन चाहा वर मांगा है।

तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति

मार्कण्डेय उवाच- इति दत्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम्।१६

वभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता।

अन्वय- तं संसिद्ध्यै प्रयच्छामि तव ज्ञानं भविष्यति। मार्कण्डेय उवाच- इति तयोः यथाभिलषितं वरं दत्वा, ताभ्यां अभिष्टुता च देवी सद्यः अन्तर्हिता बभूव।

शब्दार्थ- संसिद्ध्यैः- मोक्षाय मुक्तये, प्रयच्छामि-ददामि, तयोः समाधि-सुरथयोः यथाभिलषितं-यथा वांछितं अभीष्टम्, ताभ्यां- प्राप्तवराभ्यां, अभिष्टुता-संस्तुता सतीसद्यः सपदि अन्तर्हिता बभूव- अन्तर्धानं अगात् अदृश्या जाता।

व्याख्या- देवी ने समाधि वैश्य से कहा कि हे श्रेष्ठ वैश्य हे कुलनन्दन तुमने जो वर मांगा है वह मैं तुम्हें दे रही हूं। तुम क्रमशः संसार से आसक्ति रहित होकर वह ज्ञान प्राप्त करोगे जिससे कि मुक्ति मिलती है। मार्कण्डेय ऋषि महर्षि क्रोष्टिक से कहते हैं कि देवी इस प्रकार उन दोनों को वर प्रदान करके उसी समय अन्तर्धान हो गई जबकि वे दोनों सुरथ और समाधि वैश्य इस प्रकार वर प्राप्त कर भक्तिपूर्वक जगज्जननी की स्तुति कर रहे थे।

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः।

सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः।१७

अन्वय-क्षत्रियर्षभः सुरथः एवं देव्या वरं लब्ध्वा सूर्यात् जन्म समासाद्य सावर्णिः मनुः भविता।

शब्दार्थ- एवं- उक्त प्रकारेण देव्या सकाशात् वरं अभीष्टं प्राप्य, क्षत्रियाणां ऋषभः श्रेष्ठः क्षत्रियर्षभः, सावर्णिः मनुः- अष्टममन्वन्तराधिपः भविता।

व्याख्या- इस प्रकार देवी से वरदान प्राप्त कर क्षत्रियों में श्रेष्ठ राजा सुरथ ही सूर्य से जन्म लेकर अष्टम मन्वन्तर में मन्वन्तराधिप होगा।

विशेष- सप्तशती के प्रारंभ में कहा गया है- सावर्णिः सूर्यतनयो और समाप्ति पर कहा गया है- सावर्णिर्भविता मनुः। इस प्रकार प्रारंभ सावर्णि से कर समाप्ति में मनु आने से सावर्णि और मनु का समाहार करने से सम्पूर्ण सप्तशती ही मालामन्त्र हो जाती है।

इसी श्री मार्कण्डेय पुराणे सुरथवैश्ययोः वरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः।

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत सुरथ और समाधि वैश्य को वर प्रदान नामक तेरहवां अध्याय पूरा हुआ।

●●●

काम्य प्रयोगों के लिए अनुष्ठान सम्बन्धी कुछ नियम

जिस किसी कामना से जिस इच्छापूर्ति के लिये अनुष्ठान किया कराया जाय उसका देशकाल कथन के साथ सर्वप्रथम संकल्प लिख लेना चाहिए। देवो भूत्वायजेद्देवम् के सिद्धान्त के अनुसार अंगन्यास, करन्यास और हृदयादिन्यास करना चाहिये।

सप्तशती के परायण में घटस्थापन किया जाता है। उसमें कामना भेद से द्रव्य डालने का विधान इस प्रकार है- कलश का पूजन करने के पश्चात उसमें हाथी, घोड़े चतुष्पथ और तीर्थस्थान की मिट्टी डाले। सप्त नदियों का जल यदि उपलब्ध न हो तो केवल गंगाजल डालें। धन की कामना से अनुष्ठान किये जाने पर कलश में स्वर्ण डालें। धान्यवृदिध की कामना के लिये मोती डालें। लक्ष्मीप्राप्ति के लिये कमलपुष्प अथवा कमलगटा डाले। विजय का अभिलाषी अपराजिता डाले। वशीकरण के लिये मोरशिखा बूटी डाले। मोहन के लिये केतकी का फूल, आकर्षण के लिये धतूरे का फूल और उच्चाटन के लिये हिंगुल-ईंगुर डाले।

षट्कर्म में- मारण, मोहन, वशीकरण, आकर्षण, स्तम्भन और उच्चाटन कहे गये हैं। मारण का प्रयोग कभी किसी भी दशा में नहीं करना चाहिये, उससे अपना भी अनिष्ट होता है। अतः यहां शेष केवल पांच कार्यों के संबंध में ही कुछ बताया जा रहा है।

वशीकरण की देवता सरस्वती, स्तम्भन की लक्ष्मी, विद्वेषण की ज्येष्ठा, उच्चाटन की दुर्गा और मारण के लिये काली कहीं गई है। पूजन में पुष्प के लिये कहा गया है- स्तम्भन के लिये पीत, आकर्षण के लिये नील, वशीकरण के लिये अरुण, उच्चाटन के लिये धूम्र वर्ण, शान्तिकर्म के लिये श्वेत और मारण के लिये कृष्ण वर्ण लेना विहित है। इसी प्रकार इसी वर्ण का देवता का ध्यान भी करना चाहिए।

वशीकरण के लिये पूर्व की ओर मुख करके आसन पर बैठे, आकर्षण के लिये आग्नेय मारण के लिये नैऋत्य, उच्चाटन के लिये वायव्य, किसी के मत से विद्वेषण के लिये वायव्य दिशा की ओर मुखकर बैठना चाहिये।

दिन और रात की साठ घड़ी में छः ऋतुओं की कल्पना इस प्रकार की गई है- सूर्योदय से प्रथम दस घड़ी बसन्त, फिर दस घड़ी ग्रीष्म, फिर क्रम से वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर ऋतुएं मानी जाती हैं। हेमन्ते शान्ति कर्म, वसन्त में वशीकरण, स्तम्भन के लिये शिशिर, विद्वेषण के लिये ग्रीष्म और उच्चाटन के लिये वर्षा ऋतु में प्रारंभ करना कहा गया है। इस प्रकार इसका आशय हुआ कि सूर्योदय से आठ घण्टे से लेकर बारह घण्टे तक अपराह्ण दो से छः बजे सन्ध्या तक वर्षा ऋतु होगी।

आसन- स्तम्भन के लिये गजचर्म, उच्चाटन के लिये भेड़ बकरी के चर्म का आसन, वशीकरण के लिये गेंडा के चर्म का आसन विद्वेषण के लिये सियार चर्म वैसे

व्याघ्रचर्म का आसन सर्वसिद्धिदायक है।

शान्ति कर्म में देवता के लिये पंकज मुद्रा, वशीकरण के लिये पाश मुद्रा, स्तम्भन के लिये गदा मुद्रा, विद्वेषण के लिये मुशल मुद्रा, उच्चाटन के लिये वज्र मुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये। ये सभी मुद्राः पोजः हाथ की अंगुलियों से बनते हैं जिनके लिये लेखक की पुस्तक 'मुद्रारहस्य' दृष्टव्य। वज्र मुद्रा कनिष्ठा और अंगूठे को मिलाकर कोणाकार करने से बनती है।

हवन के समय विद्वेषण, उच्चाटन, स्तम्भन आदि के लिये शूकरी मुद्रा का प्रयोग किया जाता है जिसमें पांचों उंगलियों का योग रहता है। शान्तिकर्म में हवन में तर्जनी का प्रयोग वर्जित है।

शान्तिकर्म में मन्त्र के अन्त में नमः वशीकरण के लिये स्वाहा, स्तम्भन के लिये स्वधा-विद्वेषण के लिये वौषट् और उच्चाटन के लिये हूं, फट् का प्रयोग किया जाता है। स्तम्भन और उच्चाटन में अमलतास की समिधा से हवन किया जाता है। विद्वेषण के लिये अलसी के तेल में डुबो कर धतूरे की समिधा से हवन किया जाता है। वास्तव में उच्चाटन के लिये लसोढ़े की समिधा सरसों के तेल में डुबाकर हवन किया जाता है- "उच्चाटने भूतजाता कटुतैलेन संयुता। उच्चाटयेन्महीं सर्वां सशैलवनकाननाम्।"

स्तम्भन, विद्वेषण उच्चाटन आदि में लोहे के स्रुवा से आहुति दी जाती है- 'आयसौ स्रुक्स्रुवौ कार्यौं मारणादिषु कर्मसु। तदन्यत्र तु सौवर्णौं शान्तिकाद्येषु कृत्स्नशः' किस प्रयोजन के लिये सप्तशती की कितनी आवृत्ति की जाय-

१. यदि किसी प्रकार की दैहिक, दैविक अथवा भौतिक आधि-व्याधि अचानक उत्पन्न हो गई हो तो सप्तशती की केवल तीन आवृत्ति करने से उसकी शान्ति होती है। उदाहरण के लिये पक्षाघात, हृदयाघात के रोग अकस्मात ही होते हैं। औषधि, उपचार चिकित्सा जहां तक सुलभ हो कराना ही चाहिये किन्तु उसके साथ अथवा केवल मात्र सप्तशती के तीन पाठ करने से व्याधि मिट सकती है। अतिवृष्टि, बाढ़, समुद्री तूफान के समय भी यह प्रयोग किया जा सकता है। संक्रामक व्याधि फैलने की संभावना भी इससे मिट सकती है। गांव में चोर, डाकू, आतंकवादी, नक्सली आदि के आने की संभावना होने पर तत्काल इस प्रयोग से असामाजिक तत्वों की बुदिध बदल सकती है। अथवा उनका लक्ष्य दूसरी ओर हो सकता है।

घर में आशान्ति हो, किसी प्रकार की भूतप्रेत की बाधा अकस्मात् हो, जैसे कि किसी मकान में रखे हुए कपड़े अपवित्र होते या जलते देखे जाते हों, अज्ञात दिशा से पत्थर गिरते हों, बर्तन में रखी हुई वस्तु फेंक दी जाती हो, तो सप्तशती की पांच आवृत्ति- पांच पाठ करने से शान्ति होती है।

महाभय का कारण उपस्थित होने पर सात अथवा नव आवृत्ति करना चाहिये। नवचण्डी का तो सभी कार्यसिद्धि के लिये नियम सा बन गया है। सत्तासीन व्यक्ति को प्रसन्न करने के लिये-राज्याश्रय वा राज्यकृपा प्राप्त करने के लिये एकादश पाठ का विधान है।

बारह आवृत्ति करने से शत्रुओं को परास्त कर अभीष्ट प्राप्त किया जा सकता है। अभीष्ट का आशय यहां किसी विशेष कामना-पूर्ति से है।

चौदह आवृत्ति करने से शत्रु वैर त्याग कर मित्र बन सकता है। बन्धु-बान्धवों में मनमुटाव अथवा असहयोग की भावना को दूर करने के लिये यह प्रयोग किया जा सकता है। स्त्री-पुरुष में अनबन हो तो उनमें प्रीति उत्पन्न करने के लिये यह प्रयोग करणीय है।

सोलह आवृत्ति करने से सुत-सन्तान की वृदिध तथा समृदिध प्राप्त होती है। इस प्रयोजन के लिये यदि-

''सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वित:
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशय:।''

का प्रतिमन्त्र सम्पुट लगाकरनवचण्डी के बजाय सोलह बार पाठ किया जाय तो अभीष्ट फल अविलम्ब प्राप्त होता है। बहुपरीक्षित सफल प्रयोग है।

शासन की ओर से यदि अनिष्ट की आशंका हो तो उसकी निवृत्ति के लिये सत्तरह आवृत्ति करना चाहिये।

उच्चाटन का प्रयोग अच्छा नहीं माना जाता किन्तु वर्तमान समय में कुछ समस्याएं ऐसी विकराल होती जा रही हैं कि जिनके समाधान के लिये उच्चाटन का प्रयोग ही एकमात्र उपाय रह गया है। उदाहरण के लिये यदि किसी क्षेत्र विशेष में किसी अधिकारी से नागरिक अत्यन्त त्रस्त हों, शासन में उच्च स्तर पर उसकी पहुंच होने के कारण उसके स्थानान्तर के प्रयत्न भी सफल नहीं हो पाते तो उच्चाटन के अमोघ अस्त्र का प्रयोग अनुचित नहीं कहा जा सकता।

समाज में बाहुबली जब किसी की जमीन जायदाद पर बलपूर्वक अनुचित अधिकार कर लेते हैं अथवा कोई किरायेदार मकान मालिक को दुकान मकान का न तो किराया देता है और न खाली करना चाहता है तो ऐसी स्थिति में हमारे लचर कानून पीढ़ियां बीत जाने पर भी न्याय नहीं दे पाते तो उच्चाटन के अनुष्ठान का सहारा लेना पड़ता है। इसके लिए अठारह आवृत्ति करने का विधान है-

''राजभीतिविनाशाय विपक्षोच्चाटनाय च
कुर्यात्सप्तदशावृत्तिं तथाष्टादशकं प्रिये।''

उच्चाटन के लिये कुछ नियम पूर्व में लिखे जा चुके हैं। इसके लिये लालचन्दन की माला का प्रयोग और लसोड़े की समिधा से हवन किया जाता है। इसके लिये कृष्ण पक्ष की अष्टमी से चतुर्दशी तक का समय और शुक्रवार, शनिवार प्रशस्त हैं।

उच्चाटन के लिये विशेष नियम-जिसका उच्चाटन करना हो उसका नाम द्वितीया विभक्ति के साथ पहिले कहकर फिर मन्त्र का उच्चारण किया जाय अन्त में फट् कहा जाता है।

अन्य काम्य प्रयोग-पुत्रप्राप्ति के लिये प्रतिमन्त्र कामबीज-क्लीं से सम्पुट लगाकर प्रतिदिन तीन पाठ के क्रम से इकतालीस दिन करें। वशीकरण के लिये-प्रतिदिन क्लीं का सम्पुट लगाकर इक्कीस दिन तक प्रतिदिनपांच आवृत्ति करें।

आकर्षण के लिये क्लीं बीज सम्पुट से बयालीस दिन तक दस आवृत्ति करें। उच्चाटन के लिये इक्कीस दिन तक प्रतिदिन मन्त्र के प्रारंभ में हूं और अन्त में फट् लगाकर पाठ करें।

ह्रीं श्री क्लीं इन तीनों बीजमन्त्रों के सम्पुट से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं।

१- शत्रु को अनुकूल कर वश में करने के लिये-

''मम वैरिवशं यातः कान्भोगानुपलप्स्यते।

ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः''

इस पूर्ण मन्त्र का सम्पुट देकर अनुष्ठान करने से शत्रु वश में हो जाता है।

२- कारागार से बन्दीमोचनप्रयोग-

''तया विसृज्यते विश्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्।

सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।''

इस मन्त्र का सम्पुट देकर नवचण्डी विधान से पाठ करें। यह क्रम आवश्यकतानुसार २१, ४१ दिन भी चल सकता है, जबकि बन्दी स्वयं हवन में आकर सम्मिलित होता है। अपहृत व्यक्ति की मुक्ति के लिये भी यह अचूक प्रयोग है।

३- दैहिक, दैविक और भौतिक सभी प्रकार के उत्पात शान्ति के लिये-

''उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान्।

तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम''

महामारी, हैजा, प्लेग, इन्फ्लुऐंजा आदि संक्रामक रोगों के शमन के लिये भी यही प्रयोग किया जा सकता है।

४- सर्वजन मोहन प्रयोग-

महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिण:। इसका सम्पुट

अथवा-

महामाया हरेश्चैतत्तया संमोह्यते जगत्। इसका सम्पुट देने से सर्वजन मोहन सर्वप्रिय व्यक्ति हो सकता है।

५- दुर्जन मोहन प्रयोग-

''विष्णु:शरीरग्रहणमहमीशान एव च।
कारितास्ते- यतोऽतस्त्वां क: स्तोतुं शक्तिमान्भवेत्''

६- सुख की प्राप्ति दरिद्रता, दु:ख और भय से मुक्ति के लिये-

''शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधानमुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।
देवि त्रयी भगवती भवभावनाय वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री।''

इसकी एक हजार आवृत्ति प्रतिदिन करने से लक्ष जप पूरा होने पर उक्त फल होता है।

७- दारिद्रय दु:ख भय दूर करने के लिये यह भी-

''दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तो: स्वस्थै: स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्य दु:खभयहारिणि का त्वदन्या सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता''

विधान उक्त मन्त्र के अनुसार ही है।

८- मेधाजनन, बुद्धिवर्धक, विद्याप्राप्ति के लिये-

''मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसंगा।
श्री कैटभारिहृदयैककृताधिवासा गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा।''

यह अद्भुत मन्त्र है। निरन्तर इसका जाप करने वाला सरस्वती का उपासक जो भी कह दे वह सत्य होता है। उसे शास्त्रादि ग्रन्थ, ज्ञानविज्ञान स्वत: स्फुरित होने लगते हैं। वेदों का ज्ञान होता है, सदा सुखी रहता है। तन्त्रशास्त्र के गूढ़ रहस्यों का ज्ञाता होता है। इस मन्त्र को ऐंबीज सम्पुटित करके जपना चाहिये।

९- द्वेषशमन, शत्रुनाशनप्रयोग-

''तयास्माकं वरो दत्तो यथापत्सु स्मृताखिला:।
भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापद:।''

बड़ी से बड़ी विपत्ति आने पर शत्रुओं की प्रबलता होने पर इस मंत्र के सम्पुट से नवचण्डी विधान से सभी प्रकार के संकट दूर होते हैं।

१०- मन की प्रसन्नता और जीविका प्राप्ति के लिये-

''या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः।''

इसका सम्पुट लगाकर नवचण्डी अथवा केवल इसी का लक्ष जप करने से उक्त फल होता है।

११- परकृत कृत्या अभिचारशमन के लिये-

ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम्।

स तदाभिहतो भूमौ मूर्छितो निपपात ह।

घर मकान अथवा व्यक्ति के लिये किसी ने कोई टोना टोटका कर दिया हो जिससे उसका धन्धा चौपट हो गया हो, स्वास्थ्य ठीक न रहता हो अथवा बुद्धि बिगड़ गई हो तो उस प्रयोग का प्रभाव खत्म करने के लिए केवल इस मन्त्र का एक लाख जप अथवा इसे नवार्ण सम्पुट करने से दूसरे के द्वारा किये गये कूटकार्मण प्रयोग अभिचार आदि का शमन होता है।

१२- रोगनाश के लिये- वृक्कः (गुर्दाः) ब्रेनट्यूमर, केन्सर, एड्स, हृदयरोग जैसी घातक बीमारियों से स्वस्थ होने के लिये-

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान्सकलानभीष्टान्।

त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति।

त्र्यक्षर मृत्युंजय मन्त्र-ओम्हौं जूं सः का सम्पुट देकर उक्त मंत्र का एक लाख जप और गुडूची घी में डुबोकर हवन करने से असाध्य मरणासन्न व्यक्ति भी रोगमुक्त हो जाता है।

१३- पीड़ा परिहार रोगशत्रु से मुक्ति के लिये-

शरणागतदीनार्तपरित्रापरायणे।

सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तुते।

इसका सम्पुट लगाकर सप्तशती का पाठ करने से सभी बाधा विघ्न विपत्तियां दूर होती हैं।

१४-विक्षिप्तता, मानसिक विकृति, मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाने पर-

''पुनरप्यति रौद्रेण रूपेण पृथिवीतले।

अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांश्च दानवान्।''

इसके सम्पुट से अनुष्ठान कराना चाहिये।

१५- किसी का कोई आत्मीय स्वजन बिछुड़ गया हो, कोई बहुमूल्य वस्तु खो गई हो, किसी अपेक्षित का अभाव होने पर-

मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत्।

इसके सम्पुट देकर पाठ कराया जाता है।

१७-आतंकशमन और ईतिभीति से रक्षा के लिये-

''यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो ब्रह्मा हरश्च नहि वक्तुमलं बलं च।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय नाशाय चाशुभ भयस्य मतिं करोतु।''

ईति का अर्थ-

अतिवृष्टिरनावृष्टिःमूषकाःशलभाःशुकाः।
प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेते ईतयःस्मृता।

"अतिवर्षा, अवर्षण, चूहों का उत्पात, टिडियों का उत्पात, तोतों के द्वारा फसल को नुकसान और युद्ध के लिये दो राजाओं का अभियान इन्हें ईति कहा गया है।" इसी के समकक्ष यह भी-

१८-

''देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद, प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य''

१९- तथा

''देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीतेःनित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः।
पापानिसर्वजगतां प्रशमं नयाशु उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान्।''

२०- शत्रुनाशपूर्वक यशस्वी बनने के लिये-

इसके लिये रूपचण्डी का अनुष्ठान किया जाता है।

दुर्गोपासनाकल्पद्रुम में इसके विषय में बताया गया है-

''रूपं देहीति संयोज्य नवार्णमनुना सह।
संपुटत्वेन संयोज्य प्रतिश्लोकं जपेत्तथा।
रूपचण्डीति सा प्रोक्ता सर्वाभीष्टफलप्रदा।''

अर्गला में पठित- रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि- इस मन्त्र को नवार्ण मन्त्र से मिलाकर सप्तशती के प्रति मन्त्र के साथ सम्पुट देने से सभी अभीष्ट सिद्ध होते हैं।

२१- चुनाव में विजय पाने के लिये भी यही प्रयोग करना चाहिये।

२२- किसी को मोहित कर अपने वश में करने के लिये मोहन प्रयोग

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।

बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।

संकल्प सहित इस मन्त्र की लक्ष, दस हजार, हजार वा एकमाला मात्र से तत्काल प्रभाव देखा जाता है। प्रतिमन्त्र इसका सम्पुट देकर सप्तशती का पाठ करने से भी उक्त फल होता है। हवन में गुग्गुल का प्रयोग किया जाता है।

२३- अभय प्राप्ति सभी प्रकार के भय आशंका से मुक्ति के लिये-

''सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्व शक्तिसमन्विते।

भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तुते।''

२४- उक्त प्रयोग आसन्न गिरफ्तारी से बचने के लिये भी

२५- असामाजिक तत्वों से रक्षा के लिये भी

२६- जान से मारने की धमकी मिलने पर भी। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित प्रयोग भी

२७- उक्त सभी दशाओं में करणीय है-

ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम्।

त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तुते।

एक से अधिक व्यक्तियों को भय उत्पन्न होने की स्थिति में अथवा पूरे परिवार के लिये भय उपस्थित होने पर यही अनुष्ठान करना चाहिए।

२८- प्रबल शत्रु का पराक्रम नष्ट कर उसे नीचा दिखाने के लिये-

हिनस्ति दैत्य तैजांसि स्वनेनापूर्य या जगत्।

सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्यो नः सुतानिव।

२९- **सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितो/पि वा।**

स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत संकटात्।

इस मन्त्र का सम्पुट देकर सप्तशती का अनुष्ठान करने कराने से महान विपत्ति बड़े से बड़े संकट, घोर शारीरिक पीड़ा, राजकोप, वध बन्धन से छुटकारा मिलता है। हवन में मधुरत्रय-घी, शक्कर, शहद का प्रयोग अथवा केवल गुग्गुल का प्रयोग किया जा सकता है।

३०- लोकप्रतिष्ठाकारक प्रयोग-

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तुते।

३१- शत्रु न रहे इसके लिये-

''त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपिहत्वा।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्तमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते।''

३२- कारागार से, डाकुओं के चंगुल से, अपहर्ताओं की पकड़ से छूटने के लिए प्रयोग-

सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।

प्रति मन्त्र इसका आदि अन्त में सम्पुट देकर शतावृत्ति करने से निश्चित सफलता मिलती है।

३३-

देविप्रपन्नार्तिहरे प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य।

प्रयोग क्रमांक १८ पर भी यह मन्त्र दिया गया है। इसका प्रयोजन भिन्न है। इस मन्त्र की प्रतिदिन सहस्र आवृत्ति करने से मनुष्य सभी संकट, विपत्ति, बाधा से मुक्ति पाता है। सम्पुटित नव पाठ करने से भी वही फल होता है।

३४- सर्वजनवशीकरण प्रयोग-

तथापि ममतावर्ते मोहगर्ते निपातिताः।
महामाया प्रभावेण संसारस्थितिकारिणः

इस मन्त्र का सम्पुट लगाकर नवचण्डी का विधान करें।

वशीकरण के लिये किये जाने वाले अनुष्ठानों में देवी का अरुणवर्ण का ध्यान किया जाता है। इसके लिये निम्नलिखित ध्यान उत्तम है-

ओम् अरुणां करुणातरंगिताक्षीं धृतपाशांकुशबाणचापहस्ताम्।
अणिमादिभिरावृतां मयूखैरहमित्येव विभावये भवानीम्।

३५- सर्वप्रयोजन सिद्धि के लिये-

करोतु सा नःशुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यपहन्तु चापदः।

इसके सम्पुट से सभी प्रयोजन सिद्ध होते हैं, विपत्ति टल जाती है, कल्याण होता है।

३६- देवी से अभीष्ट वरदान पाने के लिये-

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः।

सूर्याज्जन्मसमासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः।

इस मन्त्र के सम्पुटित पाठ से मनचाहा वरदान मिलता है।

३७- सत्ता की प्राप्ति होती है।

३८- चुनाव में विजय प्राप्त होती है। मन्त्रिपद प्राप्त हो सकता है। शतचण्डी के अनुसार विधान से अनुष्ठान करणीय है।

३९- प्लेग, हैजा, महामारी आदि संक्रामक रोग शान्ति के लिये-

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।

तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्।

इसका प्रतिमन्त्र सम्पुट देकर कृष्णापक्ष की अष्टमी से चतुर्दशी पर्यन्त नवावृत्ति अथवा शतावृत्ति करने से शांति होती है। प्रचण्ड व्याधि-शमन के लिये कभी भी अनुष्ठान किया कराया जा सकता है।

४०- यद्यपि संख्या सात पर इसका उल्लेख हो चुका है किन्तु इसके द्वारा विभिन्न प्रयोजन सिद्ध होते हैं जिनका यहां उल्लेख करना आवश्यक है-

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोःस्वस्थैः स्मृता मतिमतीवशुभां ददासि

दारिद्रय दुःखभयहारिणि का त्वदन्या सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता

कार्य के गौरव लाघव के अनुसार इस मन्त्र का एक लाख, दस हजार अथवा एक माला जप करने से भी प्रयोजन सिद्ध होता है।

इस मन्त्र का जप करने वाले को किसी भी हिंसक पशु, आततायी, आतंकी; शत्रु से भय नहीं रहता। आततायी-

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः।

क्षेत्रदारापहर्ता च षडेते ह्याततायिनः।

आग लगाकर जलाने वाला, विष देकर मारने वाला, हाथ में छुरा, चाकू, तलवार लेकर जान से मारने के लिये आने वाला, धन हरण करने वाला, खेत, मकान, घर आदि पर बलपूर्वक अधिकार करने वाला और स्त्री का अपहरण करने वाला ये छः प्रकार के आततायी कहे जाते हैं।

४१- इसी मन्त्र के प्रयोग से दरिद्रता, निर्धनता और जीविका रोजगार संबंधी परेशानी दूर होती है।

४२- प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षा में सफलता भी उक्त प्रयोग से मिलती है।

४३- सत्ता प्राप्ति, पदोन्नति, अधिकारवृदिध और मन्त्री पद की प्राप्ति हेतु-

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्य जन्मनि

अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात्।

इसका सम्पुट देकर नवचण्डी अथवा शतचण्डी का अनुष्ठान कराने से उक्त फल की प्राप्ति होती है। हवन में कमलपुष्प घी में डूबोकर अथवा बिल्वफल के टुकड़े घी में डुबो कर प्रयोग करें। पदोन्नति अथवा अधिकारवृदिध के लिये लाल चन्दन की समिधा घी में डूबो कर हवन किया जा सकता है।

४४- विवाह में विलम्ब होने पर मनो नुकूल पत्नी प्राप्ति के लिये-

पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम्।

तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम्।

इस मन्त्र का सम्पुट देकर अनुष्ठान करने से सुन्दर, कुलीन पत्नी की प्राप्ति होती है।

४५- बुद्धि की मन्दता, जड़ता दूर करने के लिये।

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तः स्मिता जगौ।

दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत्।

आयु के अनुसार बालकों का आई क्यू जब कम होता है तो उन्हें मन्दबुद्धि कहा जाता है। उक्त प्रयोग से बालक मेधावी बनता है। बुद्धि का विकास होता है। अध्ययन में मन लगने लगता है। बैकबेन्चर से क्लास में फोरबेन्चर बन जाता है। हाजिर जवाबी का गुण विकसित होता है जिसे व्युत्पन्नमति कहते हैं। वाक्पटुता आती है।

४६- जो बालक जन्म से ही गूंगा, बहरा न हो किन्तु बोलने में हकलाता या तुतलाता हो, रुक-रुककर बोल पाता हो, तकियाकलाम की लत पड़ गई हो तो उक्त प्रयोग से वह अच्छा वक्ता हो सकता है। स्मरणशक्ति तीव्र हो जाती है।

इस मन्त्र का स्वतंत्र जप भी किया जा सकता है, सप्तशती के मन्त्रों के साथ सम्पुट लगाकर भी अनुष्ठान किया जाता है।

मेधाजनन के लिये विशेष प्रयोग-शिशु के जन्म के दशम दिन चांदी की लेखनी और शहद से बालक की जीभ पर ह्रीं लिखने से बालक आगे चलकर मेधावी और व्युत्पन्नमति होता है।

४७- सब प्रकार कल्याण के लिये :-

सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।

शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते।

४८- संक्रामक रोग, भय, विपत्ति दूर करने और सब प्रकार कल्याण के लिये-कृषक पशुसमृद्धि के लिये और वाहन प्राप्ति के लिये इसका प्रयोग कर सकते हैं-

जयन्ती मंगला काली भद्रकाली कपालिनी।

दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तुते।

४९- समाज के लिये आतंक का पर्याय बने लोगों का प्रभव समाप्त करने के लिये, जादू टोना करने वालों के प्रभाव को शून्य करने के लिए आधिदैविक व्याधि के शमन के लिये-

दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम्।

रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम्।

इसका सम्पुट देकर अथवा स्वतन्त्र रूप से लक्षायुतसहस्रशत वा पाठ करने से भी अथवा नवार्ण के साथ पाठ करने से भी फल होता है।

अब तक जो प्रयोग दिये गये उनमें एक तो वे हैं जिनके लिये दिन और आवृत्ति की सीमा नियत है। दूसरे प्रकार के वे प्रयोग हैं जिनका सम्पुट लगाकर सप्तशती का पाठ किया जाता है। नीचे कुछ बीजमन्त्रों के सम्पुट से सिद्ध होने वाले कार्य और बीजमन्त्रों का निर्देश किया जा रहा है।

५१. पुत्र प्राप्ति कारक प्रयोग-

क्लीं बीज सम्पुट सप्तशती की प्रतिदिन तीन आवृत्ति ४१ दिन तक करने से यह प्रयोग पुत्र प्राप्तिकारक है।

५२. उच्चाटन के लिये-

हूं बीज और मन्त्र के अन्त में फट् लगाकर प्रतिदिन तेरह पाठ सात दिन तक करने से उच्चाटन होता है।

५३. सरस्वती बीज ऐं का सम्पुट देकर शतचण्डी विधान करने से विद्याप्राप्ति होती है।

५४. बिल्व वृक्ष के नीचे बैठकर एक मास तक नवार्ण मन्त्र का जाप करें। दशांश हवन करें। हवन में पायस अथवा केवल दूध में कमलपुष्पों को डुबोकर हवन करें। इससे लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। हवन में नवार्ण के स्थान पर इस मन्त्र से आहुति दें-

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।

नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्।

ज्ञानिनामपि चेतांसि... इस मंत्र के पूर्व श्रीं बीज लगाने से प्रयोग तत्काल सफल होता है।

५५. सप्तशती के पाठ में प्रत्येक मन्त्र केवल ह्रीं श्रीं क्लीं से सम्पुटित करने पर सभी कामनाओं की पूर्ति होती है।

५६. बारहवें अध्याय में स्वयं देवी का कथन है-

> अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारित:।
> दस्युभिर्वा वृत: शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभि:।
> सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभि:।
> राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वध्यो बन्धगतोऽपिवा।
> आघूर्णितो वा वातेनस्थित: पोते सुदुस्तरे।
> पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भ्रशदारुणे।
> सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपिवा
> स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत संकटात्।

यद्यपि इन मन्त्रों की व्याख्या पूर्व में यथास्थान की जा चुकी है किन्तु यहां प्रयोजन विशेष के लिये पुन: संक्षेपकथन है-

"यदि दुर्भाग्य से घोर वन में, दूर सूने मार्ग में, वन में प्रचण्ड आग के बीच में घिर जाने पर डाकुओं, लुटेरों द्वारा घिर जाने पर, शत्रु की पकड़ में आ जाने पर, वन में यदि शेर, बाघ अथवा वन के हाथी पीछा कर रहे हों, राजा ने बन्धन में डाल दिया हो, वध का फांसी पर लटकाये जाने का आदेश हो गया हो, वात्याचक्र जिसके कारण समुद्र का जल ऊभचूभ होने लगता है, अथवा समुद्र या नदी में नाव या जहाज डूबने की स्थिति होने पर, युद्धभूमि में चारों ओर से अस्त्रशस्त्रों की चपेट में आ जाने पर, चाहे जैसे बड़ी से बड़ी बाधा अथवा पीड़ा होने पर यदि मनुष्य मेरे चरित का स्मरण करे तो संकट से मुक्ति मिलती है।"

यह देवी का वचन है, जगदम्बा का वचन है। परन्तु ऐसी घोर विपत्ति के समय इस चरित का स्मरण कैसे किया जाय। समाधान यही है कि ऐसी विपत्ति में भी आंख बन्द कर सच्चेहृदय से-जगदम्बा बचाओ, रक्षा करो-इतना भर कहने से आप जगन्माता की गोद में सुरक्षित होंगे। अनुभव सिद्ध है।

५७. प्लेग, हैजा, इन्फ्लुऐन्जा, चेचक आदि संक्रामक रोगों के प्रकोप से बचने के लिये-

जयन्ती मंगला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोस्तु ते।।

इस मन्त्र से सम्पुटित सप्तशती का पारायण करने से शान्ति होती है।

५८. मधुकैटभविद्राविविधातृवरदे नमः।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

इस मन्त्र के सम्पुटित पाठ से राजभय चोर डाकुओं से भय तथा आतंकवादियों से नहीं रहता। इस प्रकार की आशंका होने पर केवल इस मन्त्र का स्मरण करते रहने से भी भय की निवृत्ति होती है।

काम्य प्रयोग- संख्या ५८ से ७७ तक जितने भी प्रयोग दिये गये हैं उन सभी में देवी से प्रार्थना की गई है कि - रूपं देहि देहि यशो देहि द्विषो जहि। यहाँ रूप देने की प्रार्थना कुछ तर्कसंगत नहीं प्रतीत होती। उसके संबंध में गुप्तवती टीकाकार भास्करराय के अनुसार ऐसा रूप जिसके द्वारा आत्मीय जो अपने हैं, उनका मोहन हो, वे उस कान्ति के कारण मुग्ध रहें और जो रूप शत्रुओं में भयकारक हो। अथवा रूप का अर्थ लावण्य कमनीयता से भी हो सकता है। वास्तव में रूप का आशय उस गुण से है जो चक्षु के द्वारा ग्राह्य हो। पदार्थों के वर्ण व आकृति का योग जिसका ज्ञान नेत्रों को होता है। आकार, आकृति और सुन्दरता को भी रूप कह सकते हैं। पदार्थों में एक शक्ति सन्निहित रहती है। जिससे दृष्टा को उन पदार्थों की आकृति व वर्णादि का बोध होता है इस शक्ति का नाम ही रूप है। रूप शब्द से उसी शक्ति की प्राप्ति की प्रार्थना की गई है जिससे साधक दूसरों को प्रभावित कर सके और जिस पर दृष्टिपात करे उसके मन के गूढ रहस्यों को जान सके। इसे वशीकार विद्या भी कह सकते हैं। जय से अपने उत्कर्ष की प्रार्थना की गई है। यश से ख्याति पाने की प्रार्थना और द्विषां जहि का आशय द्वेष करने वाले दूर हों। अध्यात्मपक्ष में मन, चित्त, अहंकार और बुद्धि को प्रभावित करने वाले काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर दूर हों। भौतिक अर्थ में बाधक बनने वाले विद्वेषी दूर होने की प्रार्थना है।

५९. महिषासुरनिर्नाशविधात्रि वरदे नमः।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

इस मन्त्र के सम्पुट से शत्रुओं का नाश होता है।

६०. वन्दितांघ्रियुगे देवि देवि सौभाग्यदायिनी।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

इसे सम्पुट से मनुष्य सर्वजनप्रिय और समाज में सम्मान का पात्र बनता है। राज-

सम्मान प्राप्त होता है।

६१. रक्तबीजवधे देवि चण्डमुण्डविनाशिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो द्विषो जहि।।

क्रमांक ५९ के समान ही इसका भी फल है।

६२. अचिन्त्यरूपचरिते सर्वशत्रु विनाशिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

इस मन्त्र के निरन्तर पाठ से साधक को परम शान्ति और सन्तोष का अनुभव होता है। इन्द्रिय संयम के द्वारा उसे काम, क्रोध आदि षड्रिपुओं को वश में करने की युक्ति प्राप्त होती है।

६३. नतेभ्य:सर्वदा भक्त्या चण्डिके प्रणताय मे।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

इसके सम्पुट से सभी प्रकार की विपत्तियाँ दूर होती हैं।

६४. स्तुवद्भ्यो भक्तिपूर्वं त्वां चण्डिके व्याधिनाशिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।

किसी भी कष्टसाध्य अथवा असाध्य रोग होने पर इस मन्त्र के सम्पुट से शतचण्डी का अनुष्ठान कराने से मरणासन्न व्यक्ति भी स्वस्थ हो सकता है। हवन में घृताक्त गुडूची का प्रयोग किया जाता है।

६५. चण्डिके सततं ये त्वामर्चयन्तीह भक्तित:।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

यह मन्त्र भाग्योदयकारक है।

६६. देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि देवि परं सुखम्।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।

इस मन्त्र से सम्पुटित चण्डी पाठ से नवचण्डी के क्रम से सौभाग्य, आरोग्य और सुख की प्राप्ति होती है। कार्य के गौरव लाघव के अनुसार इस मन्त्र का केवल लक्ष, अयुत अथवा दस माला जप करने से भी उक्त फल होता है।

६७. विधेहि द्विषतां नाशं विधेहि बलमुच्चकै:।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

इस मन्त्र से सम्पुट देकर अथवा केवल मन्त्रजाप से भी क्रमांक ५९ व ६१ के समान फल होता है। अन्तर केवल इतना है कि उन मन्त्रों का सप्तशती के पाठ में सम्पुट

दिया जाता है, जबकि इस मंत्र के केवल जाप से भी वही फल होता है।

६८. विधेहि देवि कल्याणं विधेहि विपुलां श्रियम्।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

इस मंत्र के जप मात्र से साधक की समस्त विपत्तियों का शमन होता है। परिवार में सुख, सम्पत्ति, आरोग्य की वृद्धि होती है। लक्ष्मी की कृपा प्राप्त होती है। जप संख्या एक लाख। हवन में पलाश अथवा शमी वृक्ष की समिधा घी में डूबो कर हवन करें। कमलगटा की माला से जप करें।

६९. विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं जनं कुरु।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

इस मन्त्र के सम्पुट से नवचण्डी अथवा शतचण्डी का अनुष्ठान करने से बुद्धि का विकास होता है। विद्यार्थी मन्दबुद्धि से मेधावी बनता है। वाद-विवाद और मुकदमे में विजय प्राप्त होती है।

७०. प्रचण्डदैत्यदर्पघ्ने चण्डिके प्रणताय मे।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

इस मन्त्र से सम्पुटित चण्डी पाठ से मुकदमे में विजय प्राप्त होती है। सामान्य वाद-विवाद में प्रतिवादी सामने नहीं ठहर सकता।

७१. चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रसंस्तुते परमेश्वरि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

इस मन्त्र से सम्पुट चण्डी पाठ अथवा मन्त्र का केवल जप, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों का प्रदान करने वाला है।

७२. कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्भक्त्या तथाम्बिके।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

इस मन्त्र का एक लाख, दस हजार अथवा निरन्तर जप करते रहने से सर्व समृद्धि प्राप्त होती है। धर्म, कर्म और अर्थार्जन होता है।

७३. हिमाचलसुतानाथपूजिते परमेश्वरि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

यह मन्त्र जप, तप और साधना में चित्त की एकाग्रता प्रदान करने वाला है। जिस निमित्त जप तप किया जाय उसमें सिद्धि प्राप्त होती है।

७४. सुरासुरशिरोरत्ननिघृष्टचरणेऽम्बिके।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

इस मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर साधक भूत, भविष्य और वर्तमान का ज्ञाता हो सकता है।

७५. पारिवारिक कलह अथवा अन्य किसी भी कारण से पति पत्नी के प्रति उपेक्षा का व्यवहार करने लगता है, उस अवस्था में पत्नी की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाती है। पति की अनुकूलता प्राप्त करने केलिये निम्नलिखित मन्त्र का एक लाख जप अथवा सम्पुट सहित सप्तशती का नव अथवा शत पाठ हवनादि कराने से पति की अनुकूलता और परिवार में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है-

इन्द्राणीपतिसद्भावपूजिते परमेश्वरि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

७६. जलोदार रोग जिसमें आंतों में पानी भर जाता है पेट बढता जाता है, रोगी दुर्बल होता जाता है, उसके लिये प्रभावोत्पादक औषधि प्राय: नहीं मिलती। इसलिये डॉक्टर इन्जेक्शन से पेट का पानी निकाल देता है जिससे तत्काल आराम मिलता है किन्तु पुन: पानी भरने लगता है। उसके लिये निम्नलिखित मन्त्र का लक्ष जप अथवा नवचण्डी का अनुष्ठान सम्पुट सहित कराना चाहिये -

देवि प्रचण्डदोर्दण्डदैत्यदर्पविनाशिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

७७. अवर्षण-अनावृष्टि निवारण और समुचित वर्षा के लिये-

देविभक्तजनोद्दामदत्तानन्दोदयेऽम्बिके।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

इस मन्त्र से सम्पुट देकर नवचण्डी पाठ अथवा केवल इस मन्त्र का लक्ष, अयुत जप मात्र से यथेष्ट वर्षा होती है। सुन्दर कुलीन अनुकूल पत्नी प्राप्ति के लिये- 'पत्नीं' मनोरमां देहि ... का प्रयोग संख्या ४५ पर दिया जा चुका है। वहीं दृष्टव्य।

७८. ऋणमुक्ति के लिये निम्नलिखित वैदिक ऋचा को सप्तशती पाठ करते समय प्रत्येक अध्याय के आदि और अन्त में सम्पुट लगाने से लौकिक ऋण और देवऋण तथा ऋषिऋण से मुक्ति मिलती है। ऋण मुक्ति के लिये यह सरल और अचूक प्रयोग है-

अनृणा अस्मिन्ननृणा: परस्मिन् तृतीये लोके अनृणा: स्याम।
ये देवयाना: पितृयाणाश्च लोका: सर्वान्पथो अनृणा आक्षियेम।।

अथर्ववेद ६/११७/३

७९. ऋणमुक्ति के साथ धनप्राप्ति की कामना स्वाभाविक है अत: इसके लिये निम्नलिखित रूद्राष्टाध्यायी के इस मन्त्र का प्रति अध्याय के आदि अन्त में सम्पुट देकर सप्तशती का पाठ करने से धनधान्य, पशुसमृद्धि और वैभव की वृद्धिहोती है-

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे।
अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरन्नम:।।

८०. सूखपूर्वक प्रसव के लिये-

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीमहि।

प्रत्यध्याय इसका सम्पुट देकर पाठ करने से सुखपूर्वक तत्काल प्रसव होता है।

८१. कोई व्यक्ति घर से भाग गया हो जिसका पता न चल रहा हो, उसके आकर्षण के लिये ऋग्वेद के निम्नलिखित मन्त्र से सप्तशती के प्रत्यध्याय आदि और अन्त में सम्पुट देकर पाठ कराना चाहिये -

मृडा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पितातदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु।।

ऋग्वेद १/१६/११४/२

इस मन्त्र का एक लक्ष जप करने से भी उक्त फल होता है।

८२. पत्नी प्राप्ति के लिये पूर्व में एक प्रयोग दिया गया है। कन्या को सुयोग्य वर की प्राप्ति के लिये एक प्रयोग नीचे दिया जा रहा है -

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनादितों मुक्षीय मामुत।।

सप्तशती के प्रत्येक अध्याय के आदि और अन्त में इसका सम्पुट देकर पाठ करने से अथवा केवल मन्त्र का एक लाख जप करने से कन्या का शीघ्र विवाह होता है।

८३. दृष्टिमान्द्य अथवा आंखों में किसी भी प्रकार का विकार होने पर

वाजश्च में प्रसवश्च मे प्रयतिश्च में प्रसितिश्त मेधीतिश्च मे क्रतुश्च में स्वरश्च मे श्लोकश्च मेश्रवश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।

सप्तशती के प्रत्येक अध्याय के आदि अन्त में इसका सम्पुट देकर पाठ करने से केवल नेत्रज्योति ही नहीं, बहरापन भी दूर होता है। वाणी के विकार दूर होते हैं, स्मरणशक्ति बढ़ती है। सप्तशती के सम्पुट जप के अतिरिक्त जहां मन्त्र के स्वतंत्र रूप से जप का विधान किया गया है, वहाँ संकल्प के साथ हृदयादिन्यास ऋषिच्छन्द देवता

का उल्लेख तथा विनियोग कथन आवश्यक है। यहाँ उदाहरण के लिये एक दो प्रयोग दिये जा रहे हैं :-

प्रयोग संख्या ६ के अनुसार-

शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधानमुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।
देवि त्रयी भगवती भवभावनाय वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री।।

सुख की प्राप्ति, दरिद्रता, दुःख और भय की निवृत्ति के साथ जीविका प्राप्ति के लिये इसके लक्ष जप का विधानहै।

अस्य मन्त्रस्य विष्णु ऋषिः जयाख्या दुर्गा देवता उष्णिक्छन्दः ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

करन्यास -

ऐं शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधानम् अंगुष्ठाभ्यां नमः

ऐं उद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नां तर्जनीभ्यां नमः

ऐं देवित्रयी भगवती मध्यमाभ्यां नमः

ऐं भवभावनाय वार्ता च अनामिकाभ्यां नमः

ऐं सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री कनिष्ठिकाभ्यां नमः

ऐं देवित्रयी भगवती भवभावनाय वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिन्त्री करतलकरपृष्टाभ्यां नमः।

इसी प्रकार हृदयादिन्यास करे

ऐं शब्दात्मिका ... हृदयाय नमः, ऐं उद्गीथरम्य.... शिरसे स्वाहा

ऐं देवित्रयी भगवती शिखायै वषद्, ऐं भवभावनाय ... कवचाय हुम्

ऐं सर्वजगतां .... नेत्रयाय वौषट्, ऐं सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री अस्त्राय फट्

ध्यान- **ओम् कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुलेखाम्**
शंखं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपिकरैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं
ध्याये दुर्गा जयाख्यां त्रिदश परिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः

दूसरा उदाहरण - प्रयोग संख्या १३ सर्वाबाधाप्रशमनम् ...

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वयाकार्यमस्मद्वैरिविनाशनम्।।

यदि रोगशमन के लिये प्रयोग हो तो वैरिविनाशनम् के स्थान पर रोग-विनाशनम् कहना चाहिये।

सर्वाबाधाप्रशमनमिति मन्त्रस्य भगवान् वेदव्यास ऋषिः अनुष्टप्छन्दः दुर्गा देवता रिपुरोगशमनार्थे जपे विनियोगः

करन्यास -

सर्वा इति अंगुष्ठाभ्यां नमः, बाधाप्रशमनमिति तर्जनीभ्यां नमः

त्रैलोक्यस्या खिलेश्वरि मध्यामाभ्यां नमः, एवमेवेत्यनामिकाभ्यां नमः

त्वया कार्यमिति कनिष्ठिकाभ्यां नमः, अस्मद्वैरिविनाशमन् इति करतलकरपृष्ठभ्यां नमः।

हृदयादिन्यास-सर्वेति हृदयाय नमः, बाधाप्रश्मनमिति शिरसे स्वाहा

त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरीति शिखायै वषट्, एवमेवेति कवचाय हुम्, त्वयाकार्यमिति नेत्रत्रयाय वौषट्, अस्मदवैरिविनाशनमिति अस्त्राय फट्।

ध्यानम् - **पाणिग्रन्थनमीलितान् रिपुगणान्निघ्नन्त्यभीक्ष्णं मुहुः**
विघ्नध्वंसनकारिणी निजपदप्राप्तानवन्ती जनान्।
भक्तत्राणपरायणाभयकरी विद्वेषिणां सर्व तो
भूयान्मे भवभूतये भगवती दुर्गारिवर्गापहा।

वैरिविनाशन के प्रयोजन से गुग्गुल का हवन और रोगविनाशन के लिये गुडूची घी में डूबोकर हवन करना चाहिये। इस मन्त्र का लक्ष जप का विधान है।

तीसरा प्रयोग - सर्वजनमोहन के लिये क्रमांक २३ पर मन्त्र लिखा है-

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।।

अस्य मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः महाकाली देवताअनुष्टुप्छन्दः ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः अथवा अमुकस्य मोहने विनियोगः

ध्यान - **खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः**
शंखं सन्दधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वांगभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकाम्
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्।

किसी के अनुसार इस मन्त्र का ओम् क्लीं सम्पुट जप करना चाहिये। ध्यान के लिये भी प्राधनिक रहस्य में-

तप्तकांचनवर्णाभा तप्तकांचनभूषणा।
शून्यं तदखिलं स्वेन पूरयामास तेजसा।।

यह ध्यान करना चाहिये, इसका जप करना ही सफलताप्रद है।

●●●

सहायक व संदर्भ ग्रन्थ-सूची

अथर्ववेद-हिन्दी टीका
अथर्ववेद-सायण भाष्य
अलंकार दर्पण
अमृतनादोपनिषद
अमृतेश्वरी विद्या
अभिनय दर्पण
अनुष्ठान प्रकाश
अघमर्षण सूक्त
अमृतबिन्दूपनिषद
ईशोपनिषद
ऋग्वेद-सायण भाष्य
ऋग्वेद-हिन्दी टीका
कठोपनिषद-शांकर भाष्य
कविराज अभिनन्दन ग्रन्थ
केनोपनिषद-शांकर भाष्य
केनोपनिषद-पीताम्बरा पीठ दतिया
कर्पूरमंजरी
कात्यायनी तन्त्र
कालिका पुराण
कामकला विलास
कुमारसम्भव
गुह्यकाल्युनिषद
गीता ज्ञानेश्वरी
गोरक्षसंहिता
घेरण्डसंहिता
छान्दोग्य उपनिषद
जैमिनि सूत्र
तन्त्रालोक
तन्त्रराजतन्त्र
तन्त्राभिधान-आर्थर एवलेन
ताण्डव-रहस्य
तैत्तिरीय ब्राह्मण
तन्त्र सिद्धान्त और साधना
देवी भागवत
दुर्गोपासना कल्पद्रुम
देवी पुराण
त्रिपुरा रहस्य
त्रिपुरासारसमुच्चय
ध्यानबिन्दूपनिषद
नादबिन्दूपनिषद
नासदीयसूक्त
निरुक्त-यास्क
नैषधीयचरित
नीतिशतक
नित्याषोडशिकार्णव-सेतुबन्ध टीका
नित्याषोडशिकार्णव-रत्नावली टीका
नित्याषोडशिकार्णव-ऋजुविमर्शिनी टीका
पंचस्तवी
पांतंजलयोगप्रदीप
प्रपंचसार
पृथ्वीराजरासो
प्रतीकशास्त्र-परिपूर्णानन्दवर्मा

बृहत्संहिता-भट्टोत्पल टीका
बीजनिघण्टु
बोधिचर्यावतार
ब्रह्मवैवर्त पुराण
ब्रह्मबिन्दूपनिषद
ब्रहद्देशी
भावनोपनिषद
भगवद्गीता-सप्तटीका सहित
भारतीय प्रतीकविद्या
भावप्रकाश-भाव मिश्र
भगवद्गीता-लाहिड़ी महाशय
भुवनेश्वरी संहिता
मनुस्मृति
महाविद्यासूत्र
मानस रहस्य
मत्स्य पुराण
मेघदूत
मुण्डकोपनिषद
महानिर्वाण तन्त्र
मन्त्र महार्णव
मन्त्रमहोदधि
मार्कण्डेय पुराण
मनीषी की लोकयात्रा
मातृका निघण्टु
मुद्रा निघण्टु
मुद्रारहस्य
मन्त्रकौमुदी
मन्त्रकल्पार्णव
मनुस्मृति-कल्लूकभट्ट टीका
मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य
मन्त्रार्थाभिधान
यजुर्वेद-महीधर भाष्य
यजुर्वेद-उव्वटभाष्य
यजुर्वेद-हिन्दी टीका
योगसूत्र-भोजवृत्ति
योगसूत्र-व्यासभाष्य
योगसूत्र-नागोजिभट्ट
योगसूत्र-प्रदीपव्याख्या
योगसूत्र-मणिप्रभा टीका
योगविज्ञान भाग एक-पीताम्बरापीठ
योग विज्ञान भाग दो-पीताम्बरापीठ
योगकुण्डल्युपनिषद
योगचूडामण्युपनिषद
योगतत्वोपनिषद
योगशिखोपनिषद
योगि याज्ञवल्क्य
रामचरित मानस
रुद्रयामल तन्त्र-कलकत्ता संस्करण-१८९५
लक्ष्मीतन्त्र
लक्ष्मीतन्त्र-सटिप्पण
लघुस्तवराज-पीताम्बरापीठ
वराहपुराण
विष्णुपुराण
वैराग्यशतक
वृत्तरत्नाकर
विज्ञानभैरव-बृजवल्लभ द्विवेद

वागम्भणीसूक्त
वरिवस्या रहस्य
वातुलशुद्धाख्य तन्त्र
वायवीय संहिता
वामन पुराण
वाराही तन्त्र
वर्णबीजकोष
वर्णनिघण्टु
शतपथ ब्राह्मण
शाण्डिल्य उपनिषद
श्रीमद्भागवत
शारदातिलक-पदार्थादर्श टीका
शारदातिलक-हिन्दी टीका
शिवसंहिता
शिवताण्डव पटल-अप्रकाशित
श्रीविद्यार्णव तन्त्र
शिवमहिम्न:स्तोत्र
शिवसूत्र
शिवस्वरोदय
श्रीसूक्त-ऋग्वेदखिलसूक्त
श्रीसूक्त-विद्यारण्य भाष्य
श्रीसूक्त-पृथ्वीधर भाष्य
श्रीसूक्त रहस्य
श्रीदुर्गातत्व-श्या मनन्दन नाथ
शाक्तप्रमोद
शाक्तसौरभ भाग एक-पीताम्बरापीठ
शाक्तसौरभ भाग दो-पीताम्बरापीठ
शक्तिसंगमतन्त्र-तीनों भाग
श्वेताश्वतरोपनिषद
शुक्रनीतिसार

षट्चक्रनिरूपण-हिन्दी टीका
षट्चक्रनिरूपण-कालीचरण टीका
षट्चक्रनिरूपण-हंसस्वामी टीका
षट्चक्रनिरूपण-विश्वनाथ कृत टीका
साहित्य दर्पण
सामुद्रिक शास्त्र
सूरसागर
संगीतरत्नाकर
सांख्यकारिका
सुभगोदयस्तुति-अमृतझरिका व्याख्या
सौन्दर्यलहरी-स्वामी विष्णुतीर्थ
सौन्दर्यलहरी-डिण्डिमभाष्य-पीताम्बरापीठ
सौन्दर्यलहरी-लक्ष्मीधरा टीका
सौन्दर्यलहरी-कैवल्याश्रम टीका
सौन्दर्यलहरी-शिवानन्द टीका
सौन्दर्यलहरी-गोपालसुन्दरी टीका
सौन्दर्यलहरी-अरुणामोदिनी टीका
सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्
स्कन्द पुराण
स्वरोदय विज्ञान
स्वरोदय सार
स्वरोदय-चरनदास कृत
स्वरोदय-हस्तलिखित
सप्तशती-गीता प्रेस
सप्तशती-सप्तटीका
स्वछन्द तन्त्र
हरिवंश पुराण
हंसोपनिषद
हठयोगप्रदीपिका

कोश ग्रन्थों की सूची

मैदिनी कोश
विश्वकोश
हलायुध कोश
शब्दार्णव
वाचस्पत्यम्
शब्दकल्पद्रुम
हिन्दी शब्द सागर
संस्कृत हिन्दी कोश-आप्टे
संस्कृत अंग्रेजी कोश-आप्टे
अमरकोश-बेंकटेश्वर प्रेस हिन्दी टीका
अमरकोश-संस्कृत टिप्पणी
अमरकोश-क्षीरस्वामी टीका
अमरकोश-रामाश्रमी टीका
संस्कृत इंग्लिश डिक्सनरी-मोनियर विलियम्स
तन्त्राभिधान

सहायक पत्र-पत्रिकाओं की सूची

कल्याण शक्ति अंक
कल्याण शक्ति उपासना अंक
कल्याण-उपासना अंक
कल्याण-योगांक
कल्याण-साधनांक
कल्याण मत्स्य पुराण अंक-प्रथम
कल्याण मत्स्य पुराण अंक-द्वितीय
चण्डी-जून जुलाई ८६ अंक
चण्डी-अप्रैल जुलाई ८७ अंक
इण्डियन थियॉसोफिस्ट-वॉल्यूम ८२, ठाकुर जयदेवसिंह अभिनन्दन अंक
योगिराज मासिक का नवरात्र पूजा अंक
योगिराज मासिक का शक्ति एवं लक्ष्मी पूजा विशेषांक

अंग्रेजी ग्रंथों की सूची

Bhavanopnisad - Adyar press

Laxmi Tantra - English commentary

Lalita Sahasranam - English commentary

Saundarya Lahari - Aruna Modini

Science of Bhagwat Gita - Virajeswar

Science of Yoga - I.K. Taimini

Bhagwat Gita - Anni Besant Bhagwan Das

Durga Mahatmya - Dr. Vasudeva Sharan Agrawal

Devatma Shakti - Swami Visnu Teertha

Durga Mahatmya -

Sharada Tilak - English commentary

Vigyan Bhairava - Jaydev Singh

Theosophist - Jaydev Felicitation No. Volume 82

Introduction to Hindu Symbolism

Philosophy of the Bhagwad Gita - T. Subba Rao

Saundarya Lahari - Subrahmanyam

Saraswati Rahasyopnisad -

Tripura Tapini Upanisad -

Tripura Upanisad -

आदित्य प्रकाशन भोपाल के कुछ महत्वपूर्ण प्रकाशन

रहस्य माला के अंतर्गत प्रकाशित ग्रन्थ
लेखक - आचार्य गंगाराम शास्त्री

ताण्डव रहस्य - शिव के ताण्डव नृत्य का नाट्यशास्त्र, पुराण, तन्त्र, शाक्तमत और विज्ञान के अनुसार विवेचन।

सजिल्द द्वितीय संस्करण मूल्य १५०/-

मानस रहस्य - रामकथा के विभिन्न पहलुओं पर मौलिक नवीन चिन्तन।

मूल्य ७५/- रुपये

श्रीसूक्त रहस्य - श्रीसूक्त का बहुआयामी भाष्य हिन्दी टीकालक्ष्मी-प्राप्ति के प्रयोग और यन्त्रों सहित

द्वितीय संस्करण मूल्य ९०/- रुपये

बाहुक रहस्य - हनुमान बाहुक के उपलब्ध ८७ छन्दों की व्याख्या, हनुमान की उपासना और अनुष्ठान की विधियों सहित

द्वितीय संस्करण मूल्य ६०/- रुपये

अमृतेश्वरी विद्या - स्वरोदय विज्ञान, अमृतकला के वास का ज्ञान, असाध्य रोगों की चिकित्सा, मृतसंजीविनी विद्या सहित।

मूल्य ५०/- रुपये

सनकेश्वर शतक - सनकेश्वर तीर्थ सेंवढ़ा जिला दतिया का महत्व, काव्यात्मक वर्णन।

मूल्य २०/- रुपये

मुद्रा रहस्य - देवोपासना में मुद्रा-हाथ की विभिन्न आकृतियों का रहस्य, मुद्राओं के चित्र सहित।

मूल्य ६०/- रुपये

दुर्गासप्तशती रहस्य - दुर्गासप्तशती के मन्त्रों का अन्वय, शब्दार्थ, हिन्दी व्याख्या, काम्य प्रयोग जो पाठकों, साधकों और अनुष्ठान करने वाले पण्डितों के लिये उपयोगी।

सजिल्द मूल्य २५०/- रुपये

Rashtriya S

कृति-परिचय

दुर्गासप्तशती अथवा दुर्गामाहात्म्य मन्त्रशास्त्र का बहुप्रचलित और पण्डितों के समाज में मान्य ग्रन्थ है। इसमें मधु, कैटभ, महिषासुर, रक्तबीज, चण्ड-मुण्ड, शुम्भ, निशुम्भ आदि दैत्यों के वध का वर्णन है। यह सामान्य आधिभौतिक पक्ष है। आध्यात्मिक पक्ष में उक्त दैत्य मन के भावों के प्रतीक हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर के दमन का संकेत है। आधिदैविक पक्ष में देवासुर-संग्राम का वर्णन है। जिन्हें ब्राह्मी, माहेश्वरी, इन्द्राणी, आदि कहा गया है, वे ब्रह्मा, महेश, इन्द्र, आदि की पत्नियाँ नहीं हैं। ब्रह्मशक्ति का नाम ब्राह्मी है, महेश की शक्ति का नाम माहेश्वरी और इन्द्र की शक्ति इन्द्राणी है। अस्त्र-शस्त्रों के नाम प्रतीकात्मक हैं। युद्ध मन्त्रों के द्वारा लड़ा जा रहा है। कहीं हुम् के उच्चारण मात्र से धूम्लोचन भस्म होता है, कहीं हुम् की तलवार का प्रयोग है तो कहीं कमण्डलु के जल से दैत्यों का ओज, बल, वीर्य, पराक्रम नष्ट हो रहा है। तान्त्रिकविचारधारा के अनुसार कुण्डलिनी जागरण के क्रम में तीन चरित्रों में ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और रूद्रग्रन्थि का भेदन है। इन्हीं गूढ़ रहस्यों को प्रकट करने का प्रयास इस ''रहस्य'' में किया गया है। अभीष्ट कामनापूर्ति के लिये सर्वजनोपयोगीशताधिक प्रयोग देदि्ये गये हैं। साधक और अनुष्ठानकर्ता विद्वज्जन इसका अनुशीलन कर रहस्य को हृदयंगम करते हुए सफलता के प्रति आश्वस्त हो सकते हैं।

कृतिकार परिचय

नाम – गंगाराम शास्त्री

पिता –पण्डित जगन्नाथ गुवरेले

जन्मस्थान – सेंवढ़ा, जिला दतिया म.प्र.

जन्मतिथि – कार्तिक कृष्ण पंचमी, बुधवार 1982 विक्रमी

कृतित्व – कल्याण, चण्डी, मानस भारती, शिखरवार्ता आदि पत्र–पत्रिकाओं में समाजशास्त्र, मन्त्र,तन्त्र, कानून, हास्य–व्यंग और सामाजिक विषयों पर

लेखन कार्य

प्रकाशन – ताण्डव रहस्य, मानस रहस्य, बाहुक रहस्य, श्रीसूक्त रहस्य, मुद्रा रहस्य, अमृतेश्वरी विद्या सनकेश्वर शतक, दुर्गा–सप्तशती रहस्य

आगामी प्रकाशन – पुरुष–सूक्त रहस्य, शिवमहिम्नः रहस्य, यन्त्र संहिता गायत्री रहस्य, प्राचीन बुन्देली काव्य संग्रह, गाली–पुराण।